संस्कृत वाङ्मय का हिन्दी रामकाव्य पर प्रभाव

डॉ. ज्ञानशंकर पाण्डेय

संस्कृत वाङ्मय का हिन्दी-रामकाव्य पर प्रभाव

(चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में)

डॉ० ज्ञानशंकर पाण्डेय

एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (भाषाविज्ञान), पी-एच० डी०, डी० लिट्०
रीडर, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषाविभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रथम संस्करण : १९९०

मूल्य : रु० १२५/-

प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

मुद्रक : **रामायण प्रेस**, 739-पिक मार्केट, कटरा, इलाहाबाद

समर्पण

पूज्य पिता स्व० पंडित रछपाल पाण्डेय को
जिन्होंने शैशवावस्था में ही मेरे हृदय में
रामानुराग का बीजारोपण किया।

ज्ञानशंकर पाण्डेय

प्रकाशकीय

संस्कृत वाङ्मय बहुविध विशालता और रामकथा की अखण्ड परम्परा समस्त भारतीय साहित्य में प्रतिबिम्बित है। हिन्दी साहित्य तक उसे सीमित रखना दुष्कर है। रामचरितमानस की चतुश्शताब्दी पर विशेषत: प्रकाशित सभी भारतीय भाषाओं से उसका तुलनात्मक अध्ययन उसकी विशालता को प्रमाणित करता है और कामिल बुल्के की 'रामकथा' तथा स्वामी करपात्री जी का 'रामचरित-मीमांसा' परम्परा की अखण्डता के द्योतक हैं। पौराणिक साहित्य के प्रभाव से कलि-कलुष निस्तार का भाव कब आया, इसकी सम्यक् खोज अभी नहीं हो सकी। काव्य का उद्देश्य भक्ति-ज्ञान-मूलक मुक्ति और उससे उत्पन्न आध्यात्मिक आनन्द हो गया। लोकप्रियता के साथ मर्यादा की चेतना रामकाव्य में अधिक दिखाई देती है। दशावतार के अन्तर्गत 'त्रिरामी' में 'मध्यराम' ही लोकबन्ध हुए। परशुराम और बलराम उनके आगे तेजहीन हो गए। कृष्ण का व्यक्तित्व अवश्य ही कुछ बातों में राम का अतिक्रमण करता है, परन्तु बाद में दोनों का विकास एकात्मकता की ओर हो गया। कृष्ण ब्रह्म हैं तो राम भी ब्रह्मरूप मान लिए गये। दोनों में विसंगति कृष्ण-काव्य की तुलना में राम-काव्य में अधिक दिखाई देती है। एक का प्रतीक है वंशी और दूसरे का वाण। दोनों के स्वभाव में गहरा अन्तर है। रामायण के गुजराती अनुवाद में राम की तीन विशेषताएँ लक्षित की गयी हैं। एक वचन, एक वाण और एक नारी। राम की यही पहचान बनी जो संस्कृत तथा भाषा-काव्यों तक व्याप्त रही।

रामकथा करुणा से उत्पन्न कथा है। 'रामचरित' से अधिक वाल्मीकि मूलतः 'सीतायाः चरितम्' रचने के लिए कृतसंकल्प थे। उनकी यही भावना कालिदास और भवभूति में परिलक्षित होती है। शृङ्गार से अधिक वीर और रौद्र से अधिक शान्त राम काव्य की आत्मा बने। वात्सल्य कृष्ण में अवतरित हुआ। रामकथा उसमें अनुकारी भूमिका अदा करती रही।

रामकथा युगान्तकारी रही है और उसकी पात्र-कल्पना एवं संवेदना पर विविध युगों का प्रभाव भी निर्दिष्ट किया जा सकता है। आज का युग कैकेयी, उर्मिला जैसे पात्रों के प्रति नयी भावधारा के साथ गहरी सहानुभूति व्यक्त करता है। यही नहीं, रावण और मेघनाद जैसे पात्रों के प्रति उनके पक्ष से विचार करने का साहस भी कवियों ने किया है। बालि, शम्बूक तथा शान्ता के प्रति उपेक्षा आज के युग को ग्राह्य नहीं है। मैंने स्वयं राम-काव्यधारा से जुड़कर इन्हें क्रान्तिकारी रूप में प्रस्तुत किया है। सीता के प्रति अन्याय के निवारण के जितने प्रयत्न हुए हैं, वे आधुनिक युग की मनोभूमि का स्पर्श नहीं करते। राम का राजसी रूप से उनका वनवासी रूप आज भी अधिक लोकप्रिय माना जाता है। रामराज्य की कल्पना अन्ततः

वादी कल्पना ही है, किन्तु भारतीय संस्कृति का वह प्रतीक बन गयी है। वैसे ही जैसे धर्मरथ की कल्पना। 'राम सकल नामन ते अधिका। 'गांधी युग में भी विश्वसनीय माना गया है। 'निर्गुण सगुण विषम समरूपम्। ज्ञान गिरा गोतीत अनूपम् ॥' से अधिक उसके लिए और कोई क्या कह सकता है।

वाल्मीकि को आज के निम्नवर्ग का प्रतिनिधि मान लिया गया है और इसी तरह कबीर को भी अवैदिक धारा का प्रतिनिधि समझ लिया गया है। रामकथा का मानवीय रूप वैदिक और अवैदिक दोनों धाराओं का अतिक्रमण करता है।

संस्कृत और हिन्दी भाषा के काव्यों में परम्परागत एकता होते हुए भी लोक-संस्कृति का विशेष प्रभाव दिखायी देता है। इस क्षेत्र में संस्कृत एवं हिन्दी में रामकाव्यों का तुलनात्मक अनुशीलन (रीवाँ विश्वविद्यालय, १९७५) तथा संस्कृत और हिन्दी रामकाव्यों में राम का स्वरूप : एक तुलनात्मक अनुशीलन (कानपुर विश्वविद्यालय, १९७६-७७) विशेष उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन रामकाव्य में विभिन्न पात्रों को लेकर कुमायूं विश्वविद्यालय में १९८० में कार्य सम्पन्न हुआ। इसी तरह जम्मू विश्वविद्यालय में भक्तिकालीन रामकाव्यों में अभिव्यंजनाशील का अनुशीलन किया गया। डॉ० ज्ञानशंकर पाण्डेय ने संस्कृत वाङ्मय का हिन्दी रामकाव्य पर प्रभाव जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर १९७७ में लखनऊ विश्वविद्यालय से डी०-लिट्० की उपाधि प्राप्ति की और उनके निर्देशक थे डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव जो कालान्तर में शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय के प्रो० एवं अध्यक्ष हो गये थे।

डॉ० पाण्डेय का शोध-प्रबन्ध बड़े मनोयोग से लिखा गया है और उसकी प्रामणिकता असंदिग्ध है। अपने आशीर्वचनों में उनके निदेशक ने इस शोध-प्रबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में अंकित की है। उनका यह कथन सही है कि डॉ० पाण्डेय ने जो प्रतिपादन किया है, वह तर्कसंगत और प्रमाण-पुष्ट है। दृष्टिकोण की मौलिकता भी सराहनीय मानी गयी है। दस अध्यायों में विभक्त यह शोध-प्रबन्ध जिन ग्रन्थों पर आधारित है, वे संस्कृत और हिन्दी साहित्य के कीर्तिस्तम्भ रहे हैं। पुरोवचन में लेखक ने आदर्शवादिता के मनोवैज्ञानिक पक्षों को उभारकर नयी व्याख्या करने का यत्न किया है। रामकथा के मूल ग्रन्थों से ही नहीं, इस कार्य में उसने रामपरक आलोचनात्मक ग्रन्थों का भी गम्भीर अनुशीलन किया है। मुझे विश्वास है कि एकेडेमी का यह प्रकाशन शोध की गरिमा के साथ ज्ञानार्जन में विशेष सहायक होगा। पात्रों का चरित्र रामकाव्य का केन्द्र रहा है जिनमें राम सर्वोपरि माने गये हैं। राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त के जन्मदिन 'कवि-दिवस' पर इसका प्रकाशन सर्वथा उचित और स्वागत-योग्य माना जायेगा।

जगदीश गुप्त
सचिव एवं कोषाध्यक्ष

आशीर्वचन

रामकाव्य-परम्परा आदिकवि वाल्मीकि द्वारा परिवर्तित होकर अनेक भाषाओं के माध्यम से निरन्तर प्रचलित रही है। संस्कृत वाङ्मय ने अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रेरित और प्रभावित किया है। यद्यपि रामकथा के बाह्य रूप में देशकाल की लोकरुचि और गायक कवियों के व्यक्तिगत कल्पना-वैशिष्ट्य के अनुरूप वैविध्य एवं वैचित्र्य विकसित होता रहा, पर मूल आधार और स्रोत वाल्मीकि का ही काव्य बना रहा। रामायण के निर्माता के रूप में वाल्मीकि मुनि के महत्त्व की व्यापकता प्रत्यक्ष है।

रामकथा के अनेक रूप वैदिक वाङ्मय में भी संश्लिष्ट एवं सांकेतिक रूप में बिखरे हुए हैं, पर उसका एक निश्चित एवं व्यवस्थित स्वरूप सर्वप्रथम लौकिक संस्कृत के आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध होता है। इसके परवर्ती पौराणिक और तान्त्रिक वाङ्मय के माध्यस से भी रामकथा के अनेक आयाम विकसित होते रहे। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की कथा, गाथा और लीला के सगुण-साकार-भक्तिपरक लोकानुरंजक वर्णन-चित्रण के साथ-साथ परब्रह्म राम के निर्गुण-निराकार ज्ञानपरक तत्त्वबोधक प्रतिपादन भी अनेक भावभूमियों और विचार-सरणियों पर होता रहा। विविध भाषाओं के लोकसाहित्य में भी रामकथा का शास्त्रपरम्परायुक्त स्वच्छन्द प्रवाह चलता रहा। विश्वकवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के सन्दर्भ में 'निगमागम पुराणसम्मतम्' तथा 'क्वचिदन्यतोऽपि' कहकर 'रघुनाथ गाथा' के जिन प्रेरणा-स्रोतों का संकेत किया है, उनकी सार्थकता न्यूनाधिकांश में प्रकारान्तर से सभी भारतीय भाषाओं के रामकाव्य के प्रवाह में प्रासंगिक सिद्ध हो सकती है।

सभी भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा का रामकाव्य भी संस्कृत-वाङ्मय से अनेक अंशों में प्रेरित, प्रभावित एवं अनुप्रमाणित रहा है। पूर्ववर्ती प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में भी प्रचुर रामकाव्य प्रस्तुत हुआ है और पालि भाषा में भी 'दशरथ जातक' जैसी रामकथापरक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। पर परवर्ती हिन्दी रामकाव्य उक्त जैन-बौद्ध विचारधारा से अभिभूत रामकथा-वाङ्मय के प्रभाव से अधिकांशतः अछूता रहा है। उसकी मुख्य प्रेरणा संस्कृत वाङ्मय में ही विद्यमान है।

प्रेरणा, प्रभाव और अनुकरण में तात्त्विक भेद है। प्रेरणा कवि और कृति की सृजन-चेतना के संस्कार को प्रबुद्ध करती है; प्रभाव इस सृजन-चेतना को अपनी छाया से अभिभूत करते हुए उसका मार्गदर्शन और दिशा-निर्धारण करता है और अनुकरण में किसी पूर्ववर्ती सरणि का यथावत् अनुसरण की प्रवृत्ति प्रबल होती है जो कभी-कभी मात्र भाषान्तर अथवा अनुवाद का रूप धारण करती है। प्रेरणा प्रतिभा का स्फुरण करती हुई उसकी मौलिकता का संरक्षण करती है, प्रभाव प्रतिभा को अभिभूत करता हुआ उसकी स्वतन्त्र संरक्षणशीलता का नियमन करता चलता है और अनुकरण स्वच्छन्द गति को अवरुद्ध करता है। इस सूक्ष्म अन्तर का बोध न होने के कारण अनेक कवियों और कृतियों के भीतर प्रतिबिम्बित पूर्ववर्ती प्रेरणा, प्रभाव और अनुकरण की विशिष्ट सीमाओं का रेखाङ्कन तथा सापेक्षिक मौलिकता का यथेष्ट मूल्यांकन तथ्यपरक और प्रमाणपुष्ट नहीं हो पाता।

हिन्दी रामकाव्य-परम्परा मूलतः भक्ति और संस्कृति की समन्वित भावभूमि पर अग्रसर रही है और उसकी विकास-यात्रा के दिशानिर्देशक रहे हैं—'लोक और शास्त्र'। 'लोक वेद मत मंजुल कूला' कहकर मूर्द्धन्य रामकाव्यकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामकथा सरिता' के सन्दर्भ में इन्हीं उभय व्यापक प्रेरक तत्त्वों की ओर इंगित किया है। 'लोक' और 'शास्त्र' दोनों के समकक्ष तथा समानान्तर एक स्वच्छन्द वाङ्मय का प्रवाह भी चलता रहा है जिसने रामकाव्य-धारा को समय-समय पर विशिष्ट गतिशीलता प्रदान की है। इस प्रवाह में संस्कृत वाङ्मय सर्वाधिक प्राणवन्त रहा है।

रामकाव्य का प्रतिपाद्य है—मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र; जो परात्पर ब्रह्म की सगुण लीला के माध्यम से भक्त-हृदय को विभोर करता है और साथ ही उदात्त आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा सामान्य लोकमानस को विमुग्ध करता है। रामचरित्र के पूरक अन्य सारे पात्र अपने वैविध्य एवं वैचित्र्य से लोकजीवन के सभी क्षेत्रों के संस्कार-परिष्कार का पावन पथ प्रशस्त करते हैं। भारतीय इतिहास में राम और भरत जैसे जिन अप्रतिम चरित्रों की उद्भावना रामकाव्य में हुई है, उसकी कल्पना मात्र भी विश्व-साहित्य में अन्यत्र संभव नहीं हुई। इस प्रकार चरित्रांकन की उदात्तता रामकाव्य की मौलिक निधि रही है।

हिन्दी रामकथाकारों ने संस्कृत वाङ्मय से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करते हुए भी कथावस्तु और कथन-भंगिमा के वैचित्र्य के साथ-साथ चरित्रांकन के क्षेत्र में भी अनेक विशिष्ट उद्भावनाएँ की हैं। इस दृष्टि से सम्यक् अनुसन्धान की

आवश्यकता बनी हुई थी, यद्यपि स्फुट रूप से अनेक मनीषी अध्येता यत्र-तत्र महत्त्वपूर्ण विचारसूत्र इस विषय में प्रस्तुत कर चुके थे। लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रबुद्ध अध्यापक डॉ० ज्ञानशंकर पाण्डेय ने अपने शोधप्रबन्ध के माध्यम से चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में 'हिन्दी रामकाव्य पर संस्कृनि वाङ्मय के प्रभाव' का तर्कसम्मत और प्रमाणपुष्ट विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करके इस दिशा में अभिनन्दनीय प्रयास किया है। इस मौलिक और प्रौढ़ शोध-कृति पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया है।

दस अध्यायों में विभक्त अपने शोध-प्रबन्ध में लेखक ने पात्रों के चरित्रांकन के विशिष्ट संदर्भ में हिन्दी रामकाव्य धारा के प्रतिनिधि के रूप में 'सूरसागर' का 'रामचरित', 'रामचरितमानस', 'रामचन्द्रिका', 'गोविन्द रामायण' और 'साकेत' का चयन करके उन पर संस्कृत वाङ्मय के प्रमुख प्रेरक ग्रन्थों के रूप में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत (रामोपाख्यान), श्रीमद्भागवत (नवम स्कंध), हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव के प्रभाव का सापेक्षिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से अभी विशद अध्ययन-अनुसन्धान का व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है।

अपने सुयोग्य शिष्य और मनस्वी विद्वान् डॉ० पाण्डेय की उच्चस्तरीय शोधकृति को प्रकाशित देखकर मुझे हार्दिक आह्लाद की अनुभूति हो रही है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत कृति सुधीजनों और मर्मज्ञों द्वारा समादृत होगी और इसके द्वारा अध्ययन-अनुसन्धान के नवीन द्वार उद्घाटित होंगे। मेरी मंगलकामना है कि डॉ० पाण्डेय की भावयित्री शोध-प्रतिभा उत्तरोत्तर समुत्कर्ष की ओर अग्रसर हो।

देवकीनन्दन श्रीवास्तव

प्रोफेसर एवं प्राक्तन अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन
माघ कृष्ण ४, बुधवार, संवत् २०४५
दिनांक २५ जनवरी, सन् १९८९

पुरोवचन

प्रस्तुत शोधविषय की प्रेरणा का मूल उत्स मेरी अध्यात्म-विषयक जिज्ञासा एवं राम-साहित्य के अध्ययन की अभिरुचि में अन्तर्निहित है।

रामकथा के पात्रों का आदर्श चरित शताब्दियों से भारतीय जनजीवन को अनुप्राणित एवं उत्प्रेरित करता रहा है। प्रभाव एवं प्रेरणा की दृष्टि से राम-कथा में पात्रों के चरित्र-चित्रण सम्बन्धी यत्किंचित् जो कार्य अब तक हुए हैं, वे केवल दो-एक कवियों की कृतियों तक ही सीमित रहे हैं। अतएव चरित्र-चित्रण सम्बन्धी एक ऐसे कार्य की अनिवार्य आवश्यकता थी जिसमें रामकथा के पात्रों का चरित्रांकन करने में संस्कृत वाङ्मय के समस्त प्रमुख रामपरक ग्रंथ और उनसे अनुप्रेरित हिन्दी के अद्यावधि प्राप्त प्रतिनिधि रामकाव्य समाविष्ट हो सकें। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उस दिशा में एक अभिनव प्रयास कहा जा सकता है।

कार्य करते समय शनैः-शनैः मुझे विषय की व्यापकता का अनुभव होने लगा। इसी बीच सौभाग्यवश मुझे आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र से परामर्श करने का अवसर मिला। उन्होंने विषय को अत्यन्त व्यापक बताते हुए मुझे यह निर्देश दिया कि संस्कृत और हिन्दी के रामपरक कुछ प्रमुख ग्रंथों को लेकर ही चरित्रांकन-सम्बन्धी कार्य करें। एक बार प्रसंगवश डॉ० भगीरथ मिश्र ने भी मेरे शोधविषय के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उसकी व्यापकता की ओर संकेत किया था। उक्त उभय विद्वानों एवं अपनी अन्तःप्रेरणा के कारण मैंने शोधविषय को सीमित किया। फलतः संस्कृत वाङ्मय के छह प्रमुख रामपरक ग्रंथों वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत का रामोपाख्यान, श्रीमद्भागवत की रामकथा, हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव—को आधार बनाया। इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र प्रसंगवश विभिन्न पुराणों, उपनिषदों, संहिता-ग्रंथों एवं संस्कृत-नाटकों का भी आश्रय लिया है। इसी प्रकार संस्कृत वाङ्मय से अनुप्रेरित एवं प्रभावित हिन्दी रामकाव्य के पाँच प्रतिनिधि ग्रन्थों—सूरसागर का रामचरित, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, गोविन्द रामयण, साकेत—का चयन किया। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न पात्रों के सन्दर्भ में उनसे सम्बन्धित वैदेही बनवास (हरिऔध), साकेत-संत (डॉ० बलदेव-प्रसाद मिश्र), जय हनुमान (पं० श्यामनारायण पाण्डेय), कैकेयी (चाँदमल अग्रवाल) प्रभृति ग्रन्थों से भी सहायता ली है।

प्रस्तुत अध्ययन में रामकथा के केवल उन पात्रों का ही चयन किया गया है जिनका चरित्र-चित्रण तथा प्रभाव एवं प्रेरणा की दृष्टि से संस्कृत और हिन्दी दोनों में ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। अस्तु, रामकथा के निम्नलिखित १५ पात्रों को अपने अध्ययन का विषय बनाया

राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, हनुमान, रावण, दशरथ, परशुराम, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी और मन्दोदरी। इतना सीमित करने पर भी विषय के व्यापकत्व पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। गत चार वर्षों का अथक परिश्रम ही इस बात का साक्षी है। संतुलित एवं संक्षिप्त भाषा लिखने पर भी शोधग्रंथ के कलेवर की वृद्धि रोकी न जा सकी। वस्तुतः यही मेरे संकोच का कारण बनी।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी-रामकाव्य के उन प्रमुख ग्रन्थों के वस्तुविधान का प्रस्तुतीकरण है जो प्रभाव और प्रेरणा की दृष्टि से संस्कृत वाङ्मय के ऋणी रहे हैं। हिन्दी के वे रामपरक ग्रन्थ जिनकी सहायता से पात्रों का चरित्रांकन किया गया है, इस प्रकार हैं—सूरसागर का रामचरित्र, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, गोविन्द रामायण और साकेत।

जैसा कि पूर्व संकेतित है, प्रस्तुत प्रबन्ध में चरित्रांकन के लिए रामकथा के प्रमुख १५ पात्रों का चयन किया गया है। चरित्र में विशदता, विविधता एवं प्रभाव के विस्तार को संलक्ष्य कर इनमें से छह पात्रों का चरित्र-चित्रण पृथक्-पृथक् छह अध्यायों में किया गया है। इस प्रकार द्वितीय अध्याय से सप्तम अध्याय तक क्रमशः राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, हनुमान और रावण का चरित्रांकन समाहित है। अष्टम अध्याय के अन्तर्गत रामकथा के अन्य पुरुष पात्रों, उदाहरणार्थ दशरथ, परशुराम, विभीषण, सुग्रीव, अंगद का चरित्र-निरूपण हुआ है। नवम अध्याय में कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मंथरा प्रभृति अन्य स्त्री पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है। दशम अध्याय (उपसंहार) में रामकथा के व्यापकत्व के साथ ही उनके पात्रों के व्यक्तित्व का महत्त्व तथा विभिन्न रामकथाओं में प्रभाव एवं प्रेरणाकी

दृष्टि से पात्रों के चरित्रांकन में मौलिक एकता का सिंहावलोकन किया गया है। अन्त में प्रस्तुत अध्ययन की उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुपयुक्त न होगा कि पात्रों के चरित्रांकन में रामकथा के मूलग्रन्थों से ही सहायता ली गई है। यद्यपि मैंने विद्वानों के रामपरक एवं अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थों का अध्ययन करके उनके भावों को आत्मसात् किया है, किंतु केवल दो स्थलों को छोड़कर उनकी भाषा अथवा उद्धरणों का प्रयोग कहीं नहीं किया है। केवल विद्वानों के उद्धरणों के सहारे सम्पूर्ण शोधग्रन्थ लिखने की आधुनिक प्रचलित परिपाटी की प्रतिक्रिया ही सम्भवतः मेरी विचारधारा के मूल उत्स में रही हो।

प्रस्तुत प्रबन्ध लिखने में मुझे अनेक विद्वानों से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहायता मिली है जिनमें से निम्नलिखित विद्वानों का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ—

आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० कामिल बुल्के, डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, डॉ० हरवंशलाल शर्मा, डॉ० म० ह० राजूरकर, डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, डॉ० राम निरंजन पाण्डेय, डॉ० शिवकुमार शुक्ल, डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, डॉ० उदयभानु सिंह।

तुलसी तथा राम-साहित्य के अध्ययन में मेरी प्रेरणा के मूलस्रोत पूज्य गुरुदेव एवं विभागाध्यक्ष डॉ० हरिकृष्ण अवस्थी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर पाना क्या कभी संभव है? यह अभी तक नहीं सोच पाया हूँ। साथ ही संतहृदय अपने निर्देशक डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव को धन्यवाद करना औपचारिकता मात्र होगी। उनके सहज स्नेह एवं सतत् प्रेरणा का प्रतिफल ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध है।

पुस्तक-प्रकाशन की व्यवस्था करने में मेरे सहयोगी मित्रों—डॉ० जितेन्द्रनाथ पाण्डेय, डॉ० हरिशंकर मिश्र, डॉ० सुरेशपति त्रिपाठी एवं मेरे दो विद्यार्थियों डॉ० सत्यनारायण और श्री शत्रुघ्नलाल मिश्र का निष्कपट योगदान रहा है, किन्तु उन्हें धन्यवाद देना औपचारिकता मात्र है। वस्तुतः मेरी पत्नी श्रीमती मीरा पाण्डेय का सेवाभाव स्तुत्य रहा है जिन्होंने गृहस्थी का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर लेकर मुझे शोधकार्य हेतु पर्याप्त समय प्रदान किया।

अपने पितृतुल्य अग्रज स्व० श्री कृपाशंकर पाण्डेय, आई० एफ० एस० का आजीवन ऋणी रहूँगा जिनका स्नेह एवं सौहार्द ही वस्तुतः मेरे शोधकार्य का सम्बल रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पर सन् १९७६ में ही लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की गई थी, किन्तु व्यवधानों एवं बाधाओं के मध्य अभी तक इसका प्रकाशन सम्भव न हो पाया था।

वस्तुतः हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद के अध्यक्ष पद्‌विभूषण डॉ० राम-कुमार वर्मा एवं सचिव प्रोफेसर डॉ० जगदीश गुप्त के अनुग्रह के परिणामस्वरूप ही एकेडमी द्वारा इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका। एतदर्थ मैं उक्त विद्वान्‌द्वय के प्रति प्रणत हूँ।

सम्भव है, इस ग्रन्थ में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, अतएव विद्वानों के परामर्श एवं सद्‌विचारों का सदैव स्वागत करूँगा। साथ ही मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्वन्मण्डली मेरी इस तुच्छ भेंट पर प्रसन्न होगी ही, क्योंकि—

"जौ बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥

विजयादशमी

दिनांक २०-१०-१९८८ ई०

अस्तु—

ज्ञानशंकर पाण्डेय

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

अनुप्रेरित ग्रन्थ

☐

संस्कृत वाङ्मय से प्रेरित और प्रभावित हिन्दी के रामपरक ग्रन्थों में सूर-सागर का रामचरित, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, गोविन्दरामायण, साकेत विशेष महत्व रखते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं प्रमुख ग्रन्थों के वस्तुविधान का विवेचन किया गया है।

१. सूर का रामचरित

सूरसागर[१]. के अन्तर्गत रामकथा का वर्णन नवम स्कन्ध में (पद संख्या १५ से १७२ तक) १५८ पदों में हुआ है। इसके अतिरिक्त गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'सूर रामचरितावली' में रामकथा से सम्बन्धित १९९ पद मिलते हैं।

स्वयं कवि के अनुसार यह रामचरित शुकदेव मुनि द्वारा वर्णित भागवती कथा पर आधारित है।[२] भागवत में नवम्-स्कंध के दशम् और एकादश अध्यायों से रामचरित का वर्णन मिलता है। अनेक प्रसंग जो भागवत के रामचरित में नहीं वर्णित हैं किन्तु सूर की रामकथा में उपलब्ध हैं, उनका सम्बन्ध संस्कृत वाङ्मय के अन्य विभिन्न स्थलों से है। हाँ, कुछ प्रसंग अवश्य ही कवि की मौलिक उद्भावना के परिणाम हैं।

सूरसागर की रामकथा एवं उसके अनुप्रेरित स्थलों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित, सम्पादक श्री नन्ददुलारे बाजपेयी।

२. 'दशरथ नृपति अयोध्या राव। ताकें गृह कियो आविर्भाव॥
नृप सों ज्यों सुकदेव सुनायो। सूरदास त्योंही कहि गायो॥'

सूरसागर, ९/१५

यह रामकथा छः काण्डों में विभाजित है। इसमें उत्तरकांड नहीं है। यह कथा राम के अयोध्या प्रत्यागमन और उनके राजारूप में प्रतिष्ठित हो जाने के साथ-साथ लंकाकांड में ही समाप्त हो जाती है।

बालकांड

इस कांड की कथा का वर्णन कवि ने १४ पदों (पद १६ से २९ तक) में किया है। इसके अन्तर्गत भू-भार उतारने के लिए दशरथ के रामादि चार पुत्रों का जन्म, अयोध्या में आनन्दोत्सव, बालक राम की शरक्रीड़ा, यज्ञरक्षार्थ विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को माँगना, राम द्वारा ताड़का-वध एवं कौशिक मुनि के यज्ञ की रक्षा, अहल्योद्धार, धनुर्भंग, दशरथ का जनकपुर आगमन, कंकणमोचन, पाणिग्रहण, दशरथ-विदा, मार्ग में परशुराम का मिलना एवं राम से प्रभावित होकर उनका वन में तप हेतु चले जाना, बारात का अवधपुरी-प्रवेश आदि प्रसंग वर्णित हैं।

यहाँ भागवत की भाँति कवि ने कथा का प्रारम्भ दशरथ के रामादि पुत्रों के जन्म से किया है।[१] अयोध्या में हर्षोल्लास, शरक्रीड़ा सूर के मौलिक प्रसंग कहे जा सकते हैं।[२] तुलसी ने लगभग इन्हीं प्रसंगों का अपने मानस, कवितावली, गीतावली में विस्तार से वर्णन किया है।[३] सूर और तुलसी समकालीन कवि थे; अतएव यदि वे एक-दूसरे से प्रभावित हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस सम्बन्ध में जब तक यह निर्णय न हो जाय कि तुलसी ही सूर से प्रभावित हुए हैं, सूर तुलसी से नहीं, डॉ० दीनदयालु गुप्त जैसे कुछ विद्वानों का यह मत—"सूरसागर के नवम् स्कंध में सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित भागवत नवम् स्कंध का अनुकरण है, रामकाव्य-परम्परा के किसी हिन्दी कवि का प्रभाव नहीं है"[४] सर्वथा असन्दिग्ध नहीं कहा जा सकता।

---

१. (अ) भागवत, ९/१०/१-२।
(ब) सूरसागर, ९/१५-१८।

२. सूरसागर—(अ) हर्षोल्लास ९/१७-१८।
(ब) शरक्रीड़ा ९/१९-२०।
(स) धनुर्भंग, ९/२३।
(द) कंकणमोचन, ९/२५।

३. (अ) हर्षोल्लास—मानस, १/१९३/१९४, गीतावली, बालकांड, पद-१।
(ब) शरक्रीड़ा —मानस, १/२०४/२०५, कवितावली, बालकांड, पद-७।
(स) धनुर्भंग —मानस, १/२५८-२६१।

४. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० २३-२४—डॉ० दीनदयालु गुप्त।

इसके अतिरिक्त अहल्योद्धार प्रसंग की प्रेरणा सूर को अध्यात्म रामायण से मिली है जहाँ श्रीराम पाषणरूपा अहल्या का उद्धार अपने चरण-स्पर्श से करते हैं ।[1] यह प्रसंग भागवत में नहीं है ।

अयोध्याकांड

इस कांड के अन्तर्गत २६ पद (पद ३० मे ५५ तक) आते हैं । उसमें दशरथ का अपनी वृद्धावस्था को संलक्ष्य कर चिन्तित होना और राम का राजतिलक करने का विचार, कैकेयी द्वारा दो वरों की याचना, दशरथ-विलाप, पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर राम का कौशल्या के पास आज्ञा लेने जाना, राम-सीता, लक्ष्मण-राम-संवाद तथा राम का दोनों को वनगमन हेतु अनुमति प्रदान करना, राम-लक्ष्मण-सीता का वन के लिए प्रस्थान, दशरथ और पुरवासियों का विलाप, केवट-प्रसंग, पुरवधू-सीता-संवाद, पुत्र-वियोग में दशरथ का शरीर-त्याग, कौशल्या-विलाप, मातुल-गृह से भरत का चित्रकूट-गमन, राम-भरत-संवाद, पाँवरी लेकर भरत का अयोध्या लौटना आदि प्रसंग आते हैं ।

इस कांड के केवट-प्रसंग की प्रेरणा सूर को अध्यात्म रामायण[2] से मिली है । परन्तु अध्यात्म रामायण में उक्त प्रसंग अहल्योद्धार के उपरान्त मिथिलापुरी जाते समय मार्ग में आता है । इस दृष्टि से सूर और तुलसी में साम्य है । इन कवियों के काव्य-ग्रन्थों में केवट-वनगमन के समय शृंगवेरपुर में गंगातट पर मिलता है ।[3] यह प्रसंग भागवत में उपलब्ध नहीं है ।

ग्रामवधूटी-प्रसंग की प्रेरणा सूर[4] को हनुमन्नाटक के 'पथि पथिक वधूमिः'[5] प्रसंग से मिली है, जहाँ पुरवधुएँ सीता से उनके और नीलकमलवर्ण वाले राम के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रति जिज्ञासा प्रकट करती हैं । तुलसी की बृत्ति इस स्थल पर अधिक रमी है ।[6]

---

१. (अ) सूरसागर, ९/२२ ।
   (ब) अध्यात्म०, १/५/३६ ।
२. अध्यात्म०, १/६/३-४ ।
३. (अ) सूरसागर, ९/४०-४२ ।
   (ब) मानस, २/१००/२-४ ।
४. सूरसागर, ९/४४ ।
५. 'पथि पथिक वधूमिः सादरं पृच्छ्यमाना ।
   कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ॥' —हनुमन्नाटक, ३/१५ ।
६. मानस, २/११७-११८ ।

सूरसागर का चित्रकूट-मिलन-प्रसंग बाल्मीकि[१] और अध्यात्म रामायण[२] से अनुप्रेरित है। उक्त प्रसंग भागवत में नहीं है।

अरण्यकांड

इस कांड की रामकथा १२ पदों (पद ५६-६७) में वर्णित है। इसमें शूर्पणखा-नासिकोच्छेदन, खरदूषण-वध, कनक-मृग मारीच के पीछे श्रीराम का दौड़ना, लक्ष्मण के प्रति सीता-कटु-वचन तथा लक्ष्मण का कुटी के चारों ओर रेखा खींचकर श्रीराम के पास जाना, सीता-हरण, राम-विलाप, गृद्ध-उद्धार, श्रीराम द्वारा शबरी का आतिथ्य स्वीकार करना और जूठे फल खाना प्रसंग वर्णित हैं।

लक्ष्मण का सीता की कुटी के चारों ओर रेखा खींचकर जाने का प्रसंग आनन्द रामायण से अनुप्रेरित है।[३] शबरी-प्रसंग की प्रेरणा कवि को बाल्मीकि[४] और अध्यात्म रामायण[५] से मिली है। यह प्रसंग भागवत में नहीं है। परन्तु शबरी द्वारा जूठे फल खिलाने का वर्णन सूर ने ही किया है। प्रेरक ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

किष्किन्धाकांड

इस कांड का वर्णन ६ पदों (पद ६८-७३) में हुआ है। इसके अन्तर्गत राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-वध, सीता-शोध तथा सम्पाती-वानर-संवाद प्रसंग आते हैं जो वाल्मीकि रामायण के अनुकूल हैं।

सुन्दरकांड

इस कांड की कथा का वर्णन ३२ पदों (पद ७४-१०५) में हुआ है। इसके अन्तर्गत समुद्रोल्लंघन के विषय में वानर-वीरों में विचार-विमर्श, हनुमान का समुद्रोल्लंघन करके लंका में सीता की खोज करना, अशोक बाटिका में सीता को देखकर हनुमान का उनके सीता होने के विषय में सोच-विचार करना, इसी समय आकाशवाणी का होना कि यही सीता हैं, इन्हें प्रणाम करो, पुनः रावण-सीता, त्रिजटा-सीता-संवाद, रम्भा के साथ बलात्कार करने पर रावण को नलकूबर का शाप देना, त्रिजटा-स्वप्न-कथन, सीता-हनुमान-संवाद तथा मुद्रिका-प्रसंग, अशोक बाटिका-विध्वंस, लंकादहन

---

१. वा० रा० अयो०, सर्ग ९९-112।
२. अध्यात्म०, अयो०, सर्ग ९।
३. (अ) आनन्द०, सार०, ७/९८-१००।
   (ब) सूर०, ९/५९।
४. वा० रा०, अरण्य०, सर्ग ७४।
५. अध्यात्म०, अरण्य०, सर्ग १०।

सीता का हनुमान को चूणामणि देना, हनुमान का प्रत्यागमन तथा उनका राम को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाना वर्णित हैं।

इस कांड की अधिकांश घटनाएँ वाल्मीकि रामायण के अनुकूल हैं। भागवत में हनुमान का समुद्रोल्लंघन, हनुमान-सीता-संवाद, लंका-दहन आदि प्रसंग वर्णित नहीं हैं। अशोक बाटिका में हनुमान का सीता को देखकर निश्चय न कर पाना कि यह ही सीता हैं, तदुपरान्त आकाशवाणी द्वारा सीता होने की पुष्टि निश्चित रूप से सूर की मौलिक उद्भावना है।[1] रम्भा-वृत्तान्त की प्रेरणा सूर को वाल्मीकि रामायण[2] से मिली है। यह प्रसंग भागवत में नहीं है।

लंकाकांड

इस कांड की कथा सूर ने ६७ पदों (पद १०५ से १७२) में कही है। इसके अन्तर्गत श्रीराम का ससैन्य सिन्धु-तट पर पहुँचना, हनुमान द्वारा अपना पुरुषार्थ-कथन तथा राम को उत्साहित करना, विभीषण का रावण को समझाना, रावण का विभीषण पर पाद-प्रहार, विभीषण-शरणागति, राम की विभीषण को लंका का राज्य देने की प्रतिज्ञा, रावण-मंदोदरी-संवाद, शुक-सारण-प्रसंग, सेतु-बंध, राम-सेना का समुद्र पार करके लंका पहुँचना, मंदोदरी का रावण को पुनः समझाना, अंगद-दौत्यकर्म, लक्ष्मण द्वारा लंका का घेरा डालने पर मंदोदरी का रावण को पुनः समझाना, मेघनाद का भयंकर युद्ध तथा उसका वानर-सेना को नागपाश से बाँधना, राम का उन्हें नागपाश से मुक्त करना, कुम्भकर्ण का जागना, कुम्भकर्ण-रावण-संवाद, मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, राम-विलाप, हनुमान का संजीवनीसहित द्रोणगिरि लेकर अयोध्या के ऊपर आना तथा भरत का उन्हें वाण मारकर गिराना, हनुमान से राम के प्रति कौशल्या तथा सुमित्रा का संदेश, लक्ष्मण का मूर्च्छारहित होना, रावण-वध, विभीषण-राज्यप्राप्ति, मन्दोदरी-विलाप, सीता की अग्नि-परीक्षा, इन्द्र का अमृत-वर्षा करके वानर-भालुओं को जीवित करना, राम का अयोध्या प्रत्यागमन, अयोध्या में स्वागत एवं हर्षोल्लास, राम का भरत तथा समस्त पुरवासियों से मिलन, राम का राजारूप में प्रतिष्ठित होना, उनकी प्रशस्ति आदि प्रसंग वर्णित हैं।

इस कांड में अधिकांश प्रसंग वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण के अनुकूल हैं। रावण का विभीषण पर पाद-प्रहार करना हनुमन्नाटक से प्रभावित है, जहाँ रावण उस पर बायें चरण से प्रहार करता है।[3] अंगद-दौत्यकर्म, अंगद-रावण-संवाद की प्रेरणा

---

१. सूर० ९/७६।

२. वा० रा०, उत्तर०, सर्ग २६।

३. हनुमन्नाटक, ७/११।

कवि को वाल्मीकि रामायण[1] और हनुमन्नाटक[2] से मिली है। संजीवनी ले जाते समय भरत द्वारा हनुमान को वाण से गिराने का प्रसंग आनन्द रामायण[3] और हनुमन्नाटक[4] पर आधारित है। किन्तु सूर की कौशल्या का राम के प्रति संदेश कि लक्ष्मण के बिना उन्हें यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है[5] तथा सुमित्रा का यह कथन-सेवक जूझि परे रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवे'[6] सूर की मौलिक किन्तु मर्मस्पर्शी उद्‌भावना है। रावण-मंदोदरी-संवाद अध्यात्म रामायण[7] और हनुमन्नाटक[8] से प्रभावित है। यह प्रसंग भागवत में नहीं है।

२. रामचरितमानस

केवल 'स्वान्तः सुख' के लिए लिखी जाने वाली मानसी कथा की सामग्री-संचयन के स्रोत की विविधता तुलसी के ही शब्दों में 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' तथा 'क्वचिदन्यतोऽपि' से ध्वनित होती है।[9] रामचरितमानस के कथासूत्र का क्रम एवं प्रमुख अनुप्रेरित स्थलों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

रामचरितमानस सात कांडों में विभाजित है, जिसे मानसकार ने सप्तसोपान कहा है।[10] बालकांड का प्रारम्भ गुरु, संत-असंत, विभिन्न देवी-देवताओं की वन्दना तथा नाम-माहात्म्य से होता है[11] जो पौराणिक एवं संस्कृत-काव्य-परम्परा पर आधारित है। अध्यात्म रामायण के शिव-पार्वती-संवाद से अनुप्रेरित मानसकार ने मानसर के चारों घाटों की कल्पना करके इस कथा के वक्ता-श्रोता रूप में शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, काकभुशुंडि-गरुड़ और तुलसी-संतजन की प्राण-प्रतिष्ठा की है।[12]

---

१. वा० रा०, युद्ध०, सर्ग ४१।
२. हनुमन्नाटक, अंक ८।
३. आनन्द०, सार०, ११/६२-६७।
४. हनुन्नाटक, १३/२४-२७।
५. सूर०, ६/१५३-१५४।
६. तदेव, ६/१४४।
७. अध्यात्म०, ६/१०/४४-५४।
८. हनुमन्नाटक, ६/५।
९. मानस, १/श्लो० ७।
१०. सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मनमाना॥ — तदेव, १/३७।
११. तदेव, दो० १-२७।
१२. तदेव, १/३६।

इस मानसी कथा की सृष्टि सती-मोह से हुई। सती-मोह एवं शिवचरित[1] का मूल उत्स शिवपुराण ही है।[2] पुनश्च रामावतार के विविध कारणों के प्रसंग में शिव द्वारा वर्णित जय-विजय,[3] कश्यप-अदिति,[4] जलन्धर,[5] नारद-मोह,[6] मनु-शतरूपा[7] और प्रतापभानु[8] की कथाएँ हैं।

जय-विजय का शापित एवं मुक्त होना भागवत,[9] कश्यप-अदिति का तप एवं वर-प्राप्ति अध्यात्म रामायण,[10] जलन्धर का वृत्तान्त[11] और नारद-मोह की कथाएँ[12] शिवपुराण पर आधारित हैं। तपस्या तथा वर प्राप्ति में कुछ भिन्नता होते हुए भी मानस के मनु-शतरूपा-उपाख्यान के प्रेरक भागवत के मनु-शतरूपा ही हैं।[13] भागवत के सौदास-उपाख्यान से साम्य रखने के कारण डॉ० सरनाम सिंह शर्मा ने प्रतापभानु की कथा को उसी पर आधारित माना है[14] परन्तु तुलसी ने इस कथा का निरूपण इतने मनोयोग एवं विस्तारपूर्वक किया है कि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उक्त कथा अपने मूल रूप में किसी पूर्ववर्ती किन्तु आज अनुपलब्ध संस्कृत-ग्रन्थ में अवश्य रही होगी।

इसके अनन्तर रावण-चरित[15] वाल्मीकि रामायण[16] एवं अध्यात्म रामायण[17]

---

१. मानस, १/४८-१०७।
२. शिवपुराण, पूर्वार्द्ध, द्वितीय खंड, अध्याय २४-२६।
३. मानस, १/१२२-१२३।
४. तदेव, १/१२३-१८७।
५. तदेव, १/१२३-१२४।
६. तदेव, १/१२४-१३८।
७. तदेव, १/१४२-१५२।
८. तदेव, १/१५३-१७५।
९. भागवत, ७/४३-४६।
१०. आध्यात्म०, १/२/२५-२६।
११. शिवपुराण, द्वितीय रुद्रसंहिता, पंचम युद्ध-खंड, अध्याय २३।
१२. तदेव, प्रथम खंड, अध्याय २५।
१३. भागवत, अष्टम स्कन्ध, प्रथम अध्याय।
१४. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, पृ० ३३, प्रथम संस्करण।
१५. मानस, १/१७६-१८३।
१६. वा० रा०, उत्तर०, सर्ग ९-३४।
१७. अध्यात्म, उत्तर०, प्रथम सर्ग।

से अनुप्रेरित होते हुए भी संक्षिप्तता की दृष्टि से महाभारत के रामोपाख्यान पर आधारित है।[१]

भारपीड़िता पृथ्वी का गोरूप में ब्रह्मादि देवताओं के पास जाना एवं ब्रह्मवाणी द्वारा रामावतार का आश्वासन प्राप्त करना यद्यपि अध्यात्म रामायण पर आधारित है[२] किन्तु यहाँ तुलसी की दार्शनिक दृष्टि अध्यात्मकार से कुछ भिन्न है। अध्यात्मकार के राम क्षीरशायी विष्णु हैं, जिनके पास पृथ्वी सहित सभी देवगण स्तुति करने जाते हैं किन्तु मानसकार के राम सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी ब्रह्म हैं; अतएव प्रार्थना के लिए उन्हें कहीं जाना नहीं पड़ता। वे शिव के निर्देशानुसार वहीं प्रार्थना के उपरान्त ब्रह्मवाणी सुनते हैं।[३] तदुपरान्त ब्रह्मा की सम्मति से देवताओं का अपने अंशों से वानर रूप में प्रकट होना[४] तथा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ[५] अध्यात्म रामायण से प्रभावित है। रानियों में हवि-वितरण की प्रक्रिया अध्यात्म रामायण[६] और वाल्मीकि रामायण[७] से अनुप्रेरित होते हुए भी रामायण-मंजरी[८] के अधिक निकट है। मानस[९] में राम एवं अन्य भ्राताओं का जन्म, कौशल्याकृत स्तुति, वसिष्ठ द्वारा नान्दीमुख श्राद्ध, नामकरण कराना आदि अध्यात्म रामायण पर आधारित है।[१०] इसके अतिरिक्त राम की बाल-क्रीड़ा भागवत[११], आनन्द-रामायण[१२] तथा राम-रहस्य[१३] से अनुप्रेरित किन्तु अध्यात्म रामायण[१४] पर प्रमुख-रूपेण आधारित है।

---

१. महाभारत, ३/२७५/२७६।
२. अध्यात्म०, बाल, सर्ग २।
३. मानस, १/१८५-१८७।
४. (अ) मानस, १/१८७।
   (ब) अध्यात्म०, १/२/२९-३२।
५. (अ) मानस, १/१८९।
   (ब) अध्यात्म०, १/३/२-९।
६. अध्यात्म०, १/३/१०-१२।
७. वा० रा०, १/६/२७-२९।
८. रामायण मंजरी, बाल० ७०।
९. मानस, १/१९१-१९७।
१०. अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ३।
११. भागवत, १०/८।
१२. आनन्द०, सार०, सर्ग २।
१३. राम रहस्य, सर्ग ३।
१४. अध्यात्म, १/३/४७-५८।

शिशु राम के मुख में कौशल्या द्वारा विराटरूप-दर्शन भागवत में यशोदा द्वारा कृष्ण के मुख में विराटरूप-दर्शन के अनुरूप है।[१] अध्यात्म रामायण में भी यह प्रसंग मिलता है।[२] विश्वामित्र-प्रसंग वाल्मीकि रामायण[३] की अपेक्षा अध्यात्म रामायण[४] से अधिक प्रभावित है। अहल्योद्धार की घटना भी मुख्यतः अध्यात्म रामायण पर ही आधारित है।[५] जनक-वाटिका का प्रसंग पूर्णरूपेण प्रसन्नराघव से अनुप्रेरित है,[६] जबकि जनक के प्रण की उद्घोषणा, धनुर्भंग एवं परशुराम-प्रसंग प्रसन्नराघव एवं हनुमन्नाटक दोनों पर आधारित है।[७] बाल्मीकि रामायण,[८] अध्यात्म रामायण,[९] पद्मपुराण[१०] और नारदपुराण[११] में परशुराम बारात के लौटते समय मार्ग में मिलते हैं किन्तु मानस में उक्त घटना हनुमन्नाटक एवं प्रसन्नराघव के अनुकूल धनुर्भंग के पश्चात् रंगभूमि में ही घटित होती है। विवाह-प्रकरण वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित होते हुए भी कवि की समसामयिक परम्पराओं एवं अनुभूतियों पर आधारित है।

मानस के 'अयोध्याकांड' में दशरथ द्वारा अपने बार्धक्य की सूचना, राम-राज्याभिषेक की इच्छा प्रकट करना एवं उसकी तैयारी कराने का प्रसंग मुख्यतः अध्यात्म और वाल्मीकि रामायण पर आधारित है।[१२] किन्तु 'श्रवन समीप भये सित

---

१. (अ) मानस, १/२०१-२०२।
   (ब) भागवत, १०/८/३७-४५।
२. अध्यात्म०, १/३/२५।
३. वा० रा०, बाल०, सर्ग १९।
४. अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ४।
५. (अ) मानस, १/२१०-२११।
   (ब) अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ५।
६. (अ) मानस, १/२२७-२३६।
   (ब) प्रसन्नराघव, द्वितीय अंक, पृ० ९७-१३०
   (द्वितीय संस्करण, चौखम्बा प्रकाशन)
७. (अ) मानस, १/२४९-२८५।
   (ब) प्रसन्नराघव, अंक ३-४।
   (स) हनुमन्नाटक, अंक १।
८. वा० रा०, १/७४/१८-१/७६/२२।
९. अध्यात्म०, १/७/१-५०।
१०. पद्मपुराण, ६/२४२/१५५-१८०।
११. नारदपुराण, २/७५/२१।
१२. (अ) मानस, २/२-१०।
   (ब) अध्यात्म० अयोध्या०, सर्ग २।
   (स) वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग २ से ६ तक।

केसा'[१] की प्रेरणा रघुवंश के 'तं कर्णं मूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति'[२] से प्राप्त हुई है। देव-प्रेरित सरस्वती का मंथरा की बुद्धि को पलटना अध्यात्म रामायण से प्रभावित है।[३] किन्तु मंथरा-कैकेयी-संवाद बाल्मीकि रामायण के अधिक निकट है।[४] दशरथ-कैकेयी-संवाद, राम-वन-गमन एवं अवधवासियों का राम के लिए व्यथित होना आदि अध्यात्म तथा वाल्मीकि दोनों ही रामायणों से अनुप्रेरित है; किन्तु लक्ष्मण के आक्रोश का उल्लेख न करना मानसकार के निजी शील का परिचायक है।[५] केवट-वृत्तान्त अध्यात्म[६] तथा आनन्द रामायण[७] में अहल्योद्धार के ठीक बाद ही आया है, परन्तु मानस में उक्त प्रसंग वनमार्ग पर शृंगवेरपुर के निकट गंगातट पर आया है।[८] वनपथ पर बटोही राम एवं ग्रामवधुओं का प्रसंग तुलसी की निजी भावनाओं से सम्बद्ध होते हुए भी[९] हनुमन्नाटक के 'पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना'[१०] से अनुप्रेरित है। हाँ, राम-तापस-मिलन अवश्य ही तुलसी की मौलिक सूझ है।[११] पुनश्च वाल्मीकि द्वारा राम की सर्वव्यापकता प्रकट करते हुए उनसे रहने योग्य चौदह स्थानों का निरूपण अध्यात्म रामायण पर आधारित है।[१२] राम का चित्रकूट-निवास, सुमन्त्र का अयोध्या लौटना, दशरथ-मरण, भरत का मातुल-गृह से अवध आना, उनका शोक एवं कौशल्या के समक्ष शपथ लेना, वशिष्ठ का उन्हें समझाना, दशरथ की अन्त्येष्टि करके अवधवासियों सहित राम को मनाने जाना, गुह

---

१. मानस, २/२।

२. रघुवंश, १२/२।

३. (ख) मानस, २/११-१२।
   (ब) अध्यात्म०, अयोध्या०, २/४४-४६।

४. (अ) मानस, २/१३-२२।
   (ब) वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग ७ से ६ तक।

५. (अ) मानस, २/२५-८६।
   (ब) अध्यात्म०, अयोध्या०, सर्ग ३-५ तक।
   (स) वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग १०-४८ तक।

६. अध्यात्म०, १/६/३-४।

७. आनन्द०, सार०, ३/२४-२८।

८. मानस, २/१००-१०२।

९. तदेव, २/१११-१२३।

१०. हनुमन्नाटक, ३/१५।

११. मानस, २/११०-१११।

१२. (अ) मानस, २/१२७-१३१।
   (ब) अध्यात्म०, अयोध्या०, सर्ग ६।

एवं लक्ष्मण का उनके प्रति सशंकित होना, चित्रकूट की सभा, भरत का चरण-पादुका लेकर अवध लौटना आदि बृत्तान्त मुख्यतः अध्यात्म और वाल्मीकि रामायण से ही अनुप्रेरित हैं। चित्रकूट-सभा के अवसर पर जनक के आगमन का प्रसंग तुलसी की मौलिक सूझ प्रतीत होती है। कुछ विद्वानों के अनुसार उक्त प्रसंग श्रवणरामायण में मिलता है।[१]

'मानस-अरण्यकांड' का जयन्त-प्रसंग वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकांड में आता है, जहाँ सीता अभिज्ञान-स्वरूप हनुमान को अरण्यकांड की उक्त घटना सुनाती हैं। परन्तु वहाँ काक जयन्त सीता के स्तनों पर चंचु-प्रहार करता है।[२] इस दृष्टि से मानसकार अध्यात्म[३] और आनन्द रामायण[४] से अधिक प्रभावित है। यहाँ काक सीता के पैर के अँगूठे पर आघात करता है।[५] मुनियों के अस्थि-समूह को देखकर राम की प्रतिज्ञा,[६] शूर्पणखा-खरदूषण-प्रसंग एवं रावण का राम के ब्रह्मत्व पर विचार तथा उनके हाथों मरकर मुक्त होने का निश्चय और सीता का अपनी छाया-मूर्ति कुटी में रख कर अग्नि-प्रवेश आदि बृत्तान्त अध्यात्मरामायण पर आधारित हैं।[७] इसके अतिरिक्त मारीच वध, सीता हरण, जटायु-प्रसंग आदि वाल्मीकि एवं अध्यात्म उभय रामायणों से अनुप्रेरित हैं।[८] राम द्वारा लक्ष्मण को ज्ञान, भक्ति, वैराग्य[९] और शबरी को नवधाभक्ति के उपदेश अध्यात्म रामायण से प्रभावित हैं।[१०] किन्तु विरही राम के समक्ष नारद-आगमन का प्रसंग तुलसी की मौलिक उद्भावना है।[११]

---

१. देखिए—राम-कथा; डॉ० कामिल बुल्के, पृ० ३६३, पृ० १८८ द्वितीय संस्करण।

२. वा० रा०, सुन्दर०, सर्ग ३८।

३. अध्यात्म०, सुन्दर०, सर्ग ३।

४. आनन्द०, १/६/८६।

५. मानस, ३/१-२।

६. (अ) मानस, ३/९।
(ब) अध्यात्म०, अरण्य०, सर्ग २।

७. (अ) मानस, ३/९-२४।
(ब) अध्यात्म०, अरण्य०, सर्ग ५ के ७ तक।

८. (अ) मानस, ३/२४-३२।
(ब) वा० रा०, अरण्य०, सर्ग ४० से ६८ तक।
(स) अध्यात्म०, अरण्य०, सर्ग ७ से ९ तक।

९. (अ) मानस, ३/१५।
(ब) अध्यात्म०, ३/४/१९-५५।

१०. (अ) मानस, ३/३५-३६।
(ब) अध्यात्म० अरण्य०, सर्ग १०।

११. मानस, ३/४१-४६।

'किष्किन्धाकांड' में सुग्रीव-मैत्री तथा बालि-वध की घटनाएँ अध्यात्म एवं वाल्मीकि रामायण के ही अनुकूल हैं, परन्तु उपर्युक्त उभय आधार-ग्रन्थों की अपेक्षा मानस का बालि अधिक विनम्र एवं विनयशील है। प्रवर्षणगिरि पर राम का वर्षावास तथा वर्षा-शरद-वर्णन वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित है।[१] किष्किन्धा जाकर लक्ष्मण का आक्रोश, सुग्रीव का वानर-सेना एकत्र करना एवं सीता अन्वेषण के लिए भेजना, गुहा-प्रवेश वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण पर ही आधारित है।[२] किन्तु स्वयंप्रभी का श्रीराम के पास जाकर स्तुति करना एवं उसका बदरीबन जाने का प्रसंग अध्यात्म रामायण के अनुकूल है।[३] इसके अतिरिक्त समुद्र-तट पर वानरों का प्रायोपवेशन, सम्पाती-भेंट, समुद्रोल्लंघन की मंत्रणा उक्त उभय ग्रन्थों के ही समान है।

मानस के 'सुन्दरकांड' में हनुमान का लंका-प्रवेश अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण की ही भाँति होता है। हनुमान का विभीषण से मिलन और विभीषण द्वारा सीता के अशोकवन में होने का पता बतलाने की प्रेरणा सम्भवतः मानसकार को विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' से प्राप्त हुई हो, जहाँ विभीषण हनुमान का स्वागत करते हैं। आनन्द रामायण में सीतान्वेषण में तत्पर हनुमान को विभीषण रामकीर्तन में निमग्न दिखलाई पड़ते हैं।[४] वाल्मीकि और अध्यात्म में हनुमान-विभीषण-मिलन का उल्लेख नहीं मिलता है। रावण-सीता-संवाद और हनुमान का उसे वृक्ष में छिपकर सुनना, दुःखी सीता का त्रिजटा से अग्नि माँगकर भस्म होने का निश्चय, अग्नि मिलने पर अशोक-वृक्ष से अग्नि-याचना, हनुमान का वृक्ष से मुद्रिका गिराना तथा सीता को राम का विरह-संदेश सुनाना निश्चित रूप से प्रसन्नराघव पर आधारित है।[५] लंकादहन एवं हनुमान का प्रत्यावर्तन वाल्मीकि तथा अध्यात्म-

---

१. (अ) मानस, ४/१३-१७।
(ब) वा० रा०, किष्किन्धा०, सर्ग २७-२९।

२. (अ) मानस, ४/१९-२५।
(ब) वा० रा०, किष्किन्धा०, सर्ग ३०-४८।
(स) अध्यात्म०, किष्किन्धा०, सर्ग ५-६।

३. (अ) मानस, ४/२५।
(ब) अध्यात्म०, किष्किधा०, सर्ग ६।

४. (अ) मानस, ५/६-८।
(ब) पउमचरियं, पर्व ५३।

५. (अ) मानस, ५/९-१५।
(ब) प्रसन्नराघव, ६/२४-४८।

रामायण की भाँति हुआ है। विभीषण-शरणागति अध्यात्म रामायण से अधिक प्रभावित है।[1]

मानस के 'लंकाकांड' में सेतुबन्ध के समय शिव-स्थापना का प्रसंग अध्यात्म रामायण पर आधारित है।[2] अंगद का दूतत्व एवं अंगद-रावण-संवाद की नाटकीयता पर हनुमन्नाटक का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[3] मन्दोदरी बार-बार अपने पति रावण को राम की अप्रतिम शक्ति एवं ब्रह्मत्व का ज्ञान कराकर उनसे युद्ध न करने तथा सीता को वापस करने का आग्रह करती है।[4] इसकी प्रेरणा मानसकार को अध्यात्म रामायण[5] एवं हनुमन्नाटक[6] से मिली है, किन्तु उभय प्रेरक ग्रन्थों में मानस सदृश विस्तार एवं दार्शनिक विवेचन नहीं है। इसके उपरान्त लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, लक्ष्मण को शक्ति लगना, सुषेण वैद्य की प्रेरणा से हनुमान का संजीवनी-आनयन, कालनेमि-वध, भरत के वाण से हनुमान का मूर्च्छित होना, श्रीराम-प्रलाप, कुम्भकर्ण-युद्ध एवं राम द्वारा उसकी परमगति, मेघनाद का राम-लक्ष्मण को नागपाश में बाँधना, मेघनाद यज्ञ-विध्वंस एवं लक्ष्मण द्वारा उसकी वीरगति, रावण का घोर युद्ध एवं राम द्वारा वीरगति, मन्दोदरी-विलाप, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति, इन्द्र की अमृत-वर्षा, विभीषण का राजतिलक तथा उसके द्वारा वस्त्राभूषण बरसाना और वानर-भालुओं का लूटना, सीता की अग्नि-परीक्षा, सीता एवं समस्त परिकरों सहित श्रीराम का पुष्पक यान से अवध के लिए प्रस्थान करना आदि घटनाएँ मानस के लंकाकांड में आती हैं। उपर्युक्त अधिकांश घटनाएँ वाल्मीकि अथवा अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित एवं प्रभावित हैं। कहीं-कहीं तुलसी ने अपने ढंग से इनमें कुछ परिवर्तन भी कर दिया है।

द्रोणगिरि से संजीवनी लाते समय हनुमान का भरत के वाण से आहत होकर अयोध्या में गिरने का प्रसंग अध्यात्म अथवा वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इसकी प्रेरणा मानसकार को हनुमन्नाटक एवं आनन्न रामायण से मिली है। आनन्द

---

१. (अ) मानस, ५/४०-५७।
   (ब) अत्यात्म, युद्ध०, सर्ग ३-४।
२. (अ) मानस, ६/२-३।
   (ब) अध्यात्म०, ६/४/३-४।
३. (अ) मानस, ६/१७-३५।
   (ब) हनुमन्नाटक, अंक ८।
४. मानस, ६/५-६, १४-१५, ३६-३७।
५. अध्यात्म०, ६/१०/४४-५४।
६. हनुमन्नाटक, ६/५।

रामायण में कार्य की शीघ्रतावश भरत वाण द्वारा हनुमान को राम के पास लंका भेज देते हैं तथा लक्ष्मण के जीवित होने पर हनुमान उस पर्वत को अपने स्थान पर रख कर लक्ष्मण का शुभ-समाचार पुनः भरत को सुनाते हैं ।[1] किन्तु यहाँ तुलसी ने हनुमन्नाटक का प्रभाव ही ग्रहण किया है। मानस की भाँति हनुमन्नाटक में भी भरत जैसे ही हनुमान को अपने वाण पर बैठाकर उसका संधान करना चाहते हैं, हनुमान उससे उतर कर उनके बल की प्रशंसा करते हुए श्रीराम के पास स्वतः तीव्र गति से चले जाते हैं ।[2]

'उत्तरकांड' की प्रमुख घटनाओं के अन्तर्गत राम-विरह में निमग्न भरत से हनुमान का मिलन, अयोध्या में हर्ष, पुष्पक यान से आये राम का समस्त अवध-वासियों से मिलन, राम-राज्याभिषेक, वेद एवं शिव-स्तुति, वानरों तथा निषाद की विदाई और राम-राज्य का वर्णन आता है। यहीं मूल राम-कथा समाप्त हो जाती है।

अयोध्या-आगमन के पश्चात् पुष्पकयान-विसर्जन की प्रेरणा मानसकार को वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त[3] रघुवंश,[4] अनर्घराघव[5] और महाभारत[6] से मिली है जहाँ श्रीराम उसे उसके स्वामी कुवेर के पास जाने की आज्ञा देते हैं। परन्तु राम से पृथक होते समय पुष्पक में हर्ष और विरह के भाव जाग्रत होना तुलसी की मौलिक उद्भावना है।[7] राम-राज्याभिषेक, वानरों की विदाई आदि प्रसंग वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की ही भाँति हैं।[8] मानस के राम-राज्यवर्णन[9] के आधार-ग्रन्थ भागवतादि[10] पुराण ग्रन्थ हैं जिसमें राज्य की प्रजा के साथ-साथ प्रकृति भी सभी

---

१. आनन्द, १/१२/६२-७०
२. हनुमन्नाटक, १३/२४-३०
३. वा० रा०, ६/१२७/६१
४. तच्चात्मचिन्तासुलभं विमानं हृतं सुरारेः सह जीवितेन ।
कैलासनाथोद्वहनाय भूयः पुष्पं दिवः पुष्पकमन्वमंस्त ।।
—रघुवंश, १४/२०
५. अनर्घराघव, ७/१४९
६. महाभारत, वन०, २९१/६९
७. मानस, ७/४
८. (अ) वा० रा०, ६/सर्ग १२७-१२८
(ब) अध्यात्म०, युद्ध०, सर्ग १५-१६
९. मानस, ७/२०-३१
१०. भागवत, ९/१०/५१-५५

प्रकार से समृद्ध, सुसम्पन्न एवं अनुकूल है। किसी प्रकार की ईति-भीति या पति-पुत्र-शोक एवं अकाल मृत्यु का भय नहीं है। सभी अपने वर्णाश्रम-धर्म के अनुकूल आचरण करते हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता तथा पति एक पत्नीव्रत हैं। पद्मपुराण[1] एवं ब्रह्मपुराण[2] में उपर्युक्त विवेचन अति विस्तार से उपलब्ध है।

इसके पश्चात् मानस का सिद्धान्तपक्ष वर्णित है। इसके अन्तर्गत सनकादि आगमन एवं संवाद, राम द्वारा भ्राताओं, पुरवासियों को उपदेश, राम-वशिष्ठ-संवाद, नारद-स्तुति, काक भुशण्डि-गरुड़-संवाद, काक-चरित एवं ज्ञानदीपक और भक्ति मणि-निरूपण के साथ-साथ गरुड़ के सप्त प्रश्न एवं राम चरित-माहात्म्य का विवेचन हुआ है।

उपर्युक्त प्रसंगों के सन्दर्भ में दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पदों की प्रेरणा तुलसी को पूर्ववर्ती विभिन्न गीतादि शास्त्रों, लोमश, वशिष्ठ, गर्ग आदि संहिता ग्रन्थों, अध्यात्म, भुशुंडि आदि रामायण ग्रन्थों, भागवत, ब्रह्म, विष्णु, स्कन्द, पद्म आदि पुराणों से मिली है। परन्तु उन्हें आत्मसात् करके अपने ढंग से सँजोना एवं आकर्षक रूप प्रदान करना मानसकार की निजी विशेषता है।

इसी दार्शनिक एवं आध्यत्मिक भाव-भूमि पर मानस के पात्रों का चरित विकसित हुआ है। इसके सभी पात्रों को राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान है। रावण-कुम्भकर्ण सदृश घोर विरोधी भी उनके ईश्वरत्व से अपरिचित नहीं हैं।[3] यही नहीं, समस्त पात्रों का पर्यवसान रामभक्ति को प्राप्त करके ही होता है। यह अमर-कथा जिसके आदि, मध्य, अन्त सर्वत्र एकमात्र प्रतिपाद्य भगवान राघवेन्द्र ही हैं,[4] वस्तुतः राम-भक्ति काव्य ही है।

३. रामचन्द्रिका

आचार्य केशव की रामचन्द्रिका की कथावस्तु एवं उसके प्रमुख प्रभावित स्थलों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

रामचन्द्रिका के कथानक का मूलाधार ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। यह अवश्य है कि केशव ने उसे कहीं संक्षिप्त, कहीं अतिविस्तृत अथवा कहीं अपने

१. पद्मपुराण, पातालखंड, ४/४८-५३, ५/२२-४५
२. ब्रह्मपुराण, २१३/१४५-१५४
३. (अ) मानस, ३/२३
   (ब) तदेव, ६/६२-६३
४. "जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।।"
   —तदेव, ७/६१/३

मनोनुकूल परिवर्तित करके उसमें कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं। साथ ही कुछ विशिष्ट प्रसंगों के विवेचन एवं आदर्शों की स्थापना में अन्य ग्रंथों से भी सहायता ली है। इसमें पात्रों के संवाद की नाटकीयता हनुमन्नाटक, धार्मिक एवं भावपूर्ण स्थलों का उद्घाटन प्रसन्नराघव, दार्शनिक पक्षों का विवेचन अध्यात्मरामायण तथा नीति-तत्व का निरूपण शुक्रनीति से प्रचुर मात्रा में प्रभावित है।

प्रस्तुत ग्रंथ उन्तालीस प्रकाशों में विभाजित है। 'प्रथम प्रकाश' का प्रारम्भ संस्कृत-काव्य-परम्परानुसार गणेश, सरस्वती, इष्टदेव (राम) की वन्दना एवं कवि-वंश-परिचय तथा काव्य-रचना-प्रयोजन से होता है। यहाँ कवि को वाल्मीकि मुनि स्वप्न में रामचरित-वर्णन का आदेश देते हैं।[1] अस्तु प्रस्तुत रचना का प्रमुख प्रेरक स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है। इसके पश्चात् विश्वामित्र के अवध-आगमन, सरयू, दशरथ के हाथियों, बाग और अयोध्यापुरी-वर्णन से कथा प्रारम्भ हो जाती है। उक्त वर्णनों में कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय अवश्य दिया है किन्तु नगर-वर्णन की प्रेरणा निश्चित रूप से उसे वाल्मीकि के अयोध्यापुरी के ऐश्वर्य-निरूपण से मिली है।[2] इसके अतिरिक्त दशरथ-दरबार के वर्णन में राजदरबारी केशव की निजी अनुभूतियाँ सहायक रही हैं।

'दूसरे प्रकाश' में दशरथ-सभा में ऋषि-आगमन, स्वागत, उनका दशरथ से राम की याचना, दशरथ की अस्वीकृति पर उनका क्रुद्ध होना, पुनश्च बसिष्ठ के समझाने पर अनिच्छापूर्वक राम-लक्ष्मण को ऋषि के प्रति समर्पण करना, विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को लेकर अपने आश्रम को जाना, ऋषि द्वारा राम को सर्वायुध समर्पित करना एवं उनकी नींद, भूख, प्यास, भय, लोभादि अनिष्टकारी मनोवृत्तियों का शमन करना अति संक्षेप में वर्णित है। उपर्युक्त घटनाएँ वाल्मीकि रामायण पर ही आश्रित हैं। रामचन्द्रिका की भाँति वाल्मीकि रामायण में भी ऋषि की याचना पर दशरथ को मार्मिक वेदना होती है तथा वसिष्ठ के समझाने पर वे राम-लक्ष्मण को देना स्वीकार करते हैं।[3] राम-लक्ष्मण के नींद, भूख, प्यास आदि शमन का कारण वाल्मीकि रामायण की बला, अतिबला सिद्धियाँ ही हैं, किन्तु राम-चन्द्रिकाकार ने उनका नामोल्लेख नहीं किया है।[4]

---

१. (अ) "वाल्मीकि मुनि स्वप्न महँ, दीन्हों दर्शन चारु। —रा० चं०, १/७
   (ब) "मुनिपति यह उपदेश दै, जबहीं भये अदृष्ट।
   केशवदास तेही कर्‌यो, रामचन्द्र जू इष्ट।।' —तदेव, १/१८

२. वा० रा०, बाल०, सर्ग ५-७

३. तदेव, बा०, सर्ग २१

४. तदेव, बाल०, सर्ग २२

'तीसरे प्रकाश' में वन-वर्णन एवं आश्रम-वर्णन के उपरान्त यज्ञ-रक्षण में बाधक ताड़का को स्त्री समझकर राम का उसके वध करने से हिचकना, पुनश्च विश्वामित्र का पौराणिक कथाओं द्वारा उसे बध्य बताना, राम का उसे और सुबाहु को मारना तथा वाण से मारीच को जलधि-पार उतारना, ऋषि-यज्ञ पूर्ण होने पर एक ब्राह्मण पथिक का वहाँ आना और जनकपुर में हो रहे सीता-स्वयंवर सम्बन्धी वृत्तान्त कहना वर्णित है।

स्त्री अबध्य होने के कारण वाल्मीकि के राम भी उसे मारने में संकोच करते हैं; किन्तु अनेक पौराणिक कथाओं के माध्यम से विश्वामित्र उन्हें प्रेरित करके उसका वध करवाते हैं।[1] अस्तु उक्त प्रसंग वाल्मीकि रामायण के ही अनुकूल है। पथिक ब्राह्मण का आगमन केशव की मौलिक उद्भावना है। हाँ, उसके द्वारा निर्दिष्ट सुमति-विमति-प्रसंग की प्रेरणा निश्चित रूप से प्रसन्नराघव के मंजीरक तथा नूपुरक से प्राप्त हुई है।[2] वस्तुतः 'प्रसन्नराघव' के मंजीरक और नूपुरक ही 'रामचन्द्रिका' के सुमति और विमति हो गये हैं जो सीता-स्वयम्बर विषयक घटनाओं का वर्णन करते हैं।

'चौथे प्रकाश' के अन्तर्गत स्वयम्बर-सभा में रावण-वाणासुर-विवाद का प्रसंग पूर्णतः प्रसन्नराघव पर आधारित है। केशव ने केवल उक्तियाँ ही नहीं प्रत्युत कहीं-कहीं पूरा प्रसंग ही प्रसन्नराघव से ग्रहण किया है। रामचन्द्रिका के सुमति और विमति का लगभग सम्पूर्ण कथन प्रसन्नराघव के मंजीरक तथा नूपुरक के कथन की भावछाया ही है। शिवधनु उठाने में असमर्थ रावण-वाण के वाग्विलास की नाटकीयता उक्त संस्कृत नाटक से अनुप्रेरित है।[3]

'प्रसन्नराघव' में वाण रावण का उपहास करता हुआ कहता है कि बहुत मुख होना तो बहुत बकवादी होने का लक्षण है। बहुत बाहु होना ही पराक्रमी होने का कारण है :—

'अये ? बहुमुखता नाम बहुप्रलापितायाः कारणम्। विक्रमस्य-बहुबाहुतैब।'[4]

इसी प्रकार रामचन्द्रिका का वाण भी कहता है कि :—

---

१. वा० रा०, बाल०, सर्ग २५-२६

२. (अ) प्रसन्नराघव, प्रथम अंक
   (ब) रा० चं०, ३/१३ से पाँचवें प्रकाश तक।

३. (अ) प्रसन्नराघव, १/२८
   (ब) रा० चं०, ३/१६

४. प्रसन्नराघव, १/४६, पृ० ७२।

"बहुत बदन जाके। विविध वचन ताके।"[1]

इस पर रावण उत्तर देता है कि सारशून्य एवं बलहीन भुजाओं के भार से तुम व्यर्थ में अपने को वीर कहलवाना चाहते हो। यहाँ उभय ग्रन्थों में पूर्ण भाव-साम्य है :—

रावण—आः ! कथं रे !! पलालभारनिस्सारेण भुजभारेण वीरम्मन्योऽसि।[2]

रावण—'अति असार भुजभार ही, बली होहुगे वाण।'[3]

इसी प्रकार वाण का 'मेरे गुरु को धनुष यह-सीता मेरी माय' कह कर[4] चतुरता से चले जाना, रावण का सीता को लिये बिना न हटने का हठ, पुनश्च किसी सेवक की आर्त्तपुकार पर स्वयंवर-भूमि छोड़कर चले जाना[5] निश्चित रूप से प्रसन्न-राघव पर आधारित है।[6]

'पाँचवें प्रकाश' में एक त्रिकालदर्शी ऋषिपत्नी का सीता के भावी वर का चित्र दिखाना, ब्राह्मण के मुख से उक्त चित्र की समरूपता राम से सुनकर विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित मिथिला को प्रस्थान करना, मार्ग में राम के दृष्टिपात से शिलारूपी अहल्या का उद्धार, सूर्योदय-वर्णन, विश्वामित्र-जनक का पारस्परिक परिचय, विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण का परिचय कराना, जनक का राम द्वारा शिवधनु उठाने में संदेह, विश्वामित्र की आज्ञा से राम का जनक-भवन से धनुष लाकर तोड़ना, सीता द्वारा राम को जयमाल पहनाना आदि वर्णित है।

ऋषिपत्नी द्वारा चित्रदर्शन केशव की मौलिक उद्भावना है। अहल्योद्धार अध्यात्मरामायण से अनुप्रेरित होते हुए भी उससे कुछ भिन्न है। अध्यात्मरामायण में शिलारूपी अहल्या का उद्धार राम के चरण-स्पर्श से होता है, परन्तु रामचन्द्रिका[7] में उनके दृष्टिपात मात्र से।[8] जनक-विश्वामित्र-संवाद की प्रेरणा केशव को 'प्रसन्न-

---

१. रा० चं०, ४/१०।
२. प्रसन्नराघव, १/४६।
३. रा० चं०, ४/११।
४. तदेव, ४/२८।
५. तदेव, ४/२६-३०।
६. प्रसन्नराघव, प्रथम अंक, श्लोक ५१ तथा श्लोक ६० से अंक समाप्ति तक।
७. 'रामः शिलां पदा स्पृष्टवा तां चापश्यतपोधनाम्।'—अध्यात्म०, १/५/३६।
८. 'वन राम शिला दरशी जबहीं, तिय सुन्दर रूप भई तबहीं।—रा० चं०, ५/३॥'

राघव' से ही प्राप्त हुई है।[1] प्रसन्नराघव में विश्वामित्र जनक से कहते हैं कि राजा दशरथ ने चन्द्र-सदृश सुन्दर शरीर वाले राम को और आपने कुमुदिनी के सदृश लोगों के नेत्रों को आकृष्ट करने वाली सीता को जन्म दिया है :

'अज्ञिवान् दशरथः स हि राजा।
रामभिन्दुमिव सुन्दरगात्रम् ।।
लोकलोचनविगाहनशीलां।
त्वं पुनः कुमुदिनीमिव सीताम् ।।'[2]

यही भाव रामचन्द्रिकाकार ने भी व्यक्त किया है :

"राजराज दशरत्थ तने जू। रामचन्द्र भुवचन्द्र बने जू।।
त्यों विदेह तुमहू अरु सीता। ज्यों चकोर तनया शुभ गीता।।"[3]

'छठे प्रकाश' में जनक का दशरथ के पास उनके चारों पुत्रों से विवाह हेतु लग्नपत्रिका भेजना, दशरथ का जनकपुर में चारों दिशाओं से चार बारातें सजाकर लाना तथा रामादि भ्राताओं का विवाह होना, पुनश्च जेवनार, पलकाचार एवं राम-सीता के रूप-सौन्दर्य का बर्णन है। उपर्युक्त वर्णन केशव की समसामयिक लोक-मान्यताओं एवं निजी अनुभूतियों पर आधारित है।

'सातवें प्रकाश' में बारात के लौटते समय परशुराम का मिलना, उनका क्रोध, रामादि चारों भ्राताओं के साथ उनका वाग्युद्ध, महादेव द्वारा मध्यस्थता एवं युद्ध-निवारण, परशुराम का राम को नारायणी धनुष देना, राम का उसे खींचना और वाण से परशुराम की शक्ति बाधित करना, परशुराम को राम के ईश्वरत्व का ज्ञान होना, उनकी स्तुति करना तथा भयग्रस्त दशरथ का मूर्च्छित होना वर्णित है। उपर्युक्त वर्ण्य-विषय के विवेचन की मूल प्रेरणा वाल्मीकि रामायण से ही मिली है।[4] किन्तु राम के साथ ही भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का भी परशुराम के साथ वाग्युद्ध केशव की मौलिक उद्भावना है। इसके अतिरिक्त धनुष तोड़ने वाले का नाम पूछने

---

१. (अ) प्रसन्नराघव, ३/७, साम्य रा० चं०, ५/१९।
(ब) तदेव, ३/८, साम्य तदेव, ५/२०।
(स) तदेव, ३/१३, साम्य तदेव, ५/२४।
(द) तदेव, ३/१४, साम्य तदेव, ५/२५।
(य) तदेव, ३/२१, साम्य तदेव, ५/२९।
२. प्रसन्नराघव; ३/२९।
३. रा० चं०, ५/३३।
४. बा० रा०, बाल०, सर्ग ७४-७६।

पर वामदेव के 'रा' उच्चारण मात्र से परशुराम का 'रावण' समझ कर उस पर क्रुद्ध होना प्रसन्नराघव पर अवलम्बित है। वहाँ परशुराम को वामदेव के स्थान पर ताण्ड्यायन के कथन से उक्त बात का आभास होता है।[1] परशुराम की कुछ उक्तियों को केशव ने प्रसन्नराघव से ज्यों की त्यों ग्रहण की है।[2] यही नहीं, परशुराम की प्रशंसा में राम का कथन तो हनुमन्नाटक का अनुवाद मात्र है।[3]

'आठवें प्रकाश' में बारात का अवध-प्रवेश, नगर सौंदर्य वर्णन, अवध-वासियों का हर्षोल्लास पूर्ववर्ती रामकाव्यों की भावभूमि पर सामान्य वर्णन है।

'नवें प्रकाश' में दशरथ का भरत, शत्रुघ्न को ननिहाल भेजना, राम-राज-तिलक के लिए वशिष्ठ से मन्त्रणा, इस समाचार से कैकेयी का अवगत होना एवं दो वरदान माँगना, वर की बात सुनकर राम का उठकर वन को चल देना, राम द्वारा माता को पुत्र, नारि एवं विधवा-धर्म का उपदेश, वन-गमन के विषय में राम-सीता, राम-लक्ष्मण-संवाद, राम-लक्ष्मण-सीता तीनों का वन-प्रस्थान, ग्रामवधू-प्रसंग, ग्रामवासिनियों का सीता-मुख-सौन्दर्य निरूपण सन्निहित है। केशव ने इस प्रकार की अधिकांश घटनाओं का वर्णन समास-शैली में वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण के अनुकरण पर किया है, किन्तु मंथरा-प्रसंग का यहाँ उल्लेख नहीं है। राम को भी अपने निर्वासन की सूचना कैकेयी या दशरथ से मिलने का कोई संकेत नहीं है। सम्भवतः ऐसा कवि की संक्षेपवृत्ति के कारण हुआ है। राम का माता कौशल्या के प्रति पुत्र, नारिधर्म का उपदेश तो वाल्मीकि रामायण के अनुरूप है[4] किन्तु विधवा-धर्म

---

१. प्रसन्नराघव, ४/८।

२. (अ) प्रसन्नराघव, ४/२६।
(ब) रा० चं०, ७/३६।

३. (अ) 'स्त्रीषु प्रवीर जननी तथैव,
देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्यै।
त्वद्दोर्वशीकृतविशाखमुखावलोक व्रीडा विदीर्णहृदया स्पृहयांबभूव।
—हनुमन्नाटक, १/४३।

(ब) जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छिति मंडल कर्‌यो।
गिरि बेंध षटमुख जोति तारकनंद को जब ज्यों हर्‌यो॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनन्दिनी।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जग वन्दिनी॥
—रामचन्द्रिका, ७/२६।

४. वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग २४-२५।

का निरूपण केशव की मौलिक उद्‌भावना है। वन-पथ पर ग्रामवधुओं का आगमन हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित प्रतीत होता है।[1]

'दसवें प्रकाश' के अन्तर्गत मातुलगृह से भरत का अवध-आगमन, दशरथ-विहीन अयोध्या की दयनीय दशा का वर्णन, भरत-कैकेयी-संवाद, भरत द्वारा कौशल्या के समक्ष अपने को निर्दोष बताकर शपथ लेना तथा पिता के अन्तिम संस्कार करना, उनका ससैन्य राम को मनाने चित्रकूट जाना, भरत की सेना देखकर लक्ष्मण का क्रुद्ध होना एवं गर्वोक्ति करना, राम को लौटाने के लिए भरत का अनशन की धमकी देना, मन्दाकिनी गंगा का स्त्रीवेश धारण कर भरत को समझाना, भरत का चरणपादुका लेकर लौटना एवं नन्दीग्राम निवास करने के प्रसंग आते हैं।

इस प्रकाश का भरत-कैकेयी-संवाद एवं उसकी नाटकीयता[2] हनुमन्नाटक से प्रभावित है तथा मन्दाकिनी गंगा का प्रवेश कवि की मौलिक उद्‌भावना है। शेष सम्पूर्ण कथानक वाल्मीकि रामायण से ही अनुप्रेरित है।

'ग्यारहवें प्रकाश' के अन्तर्गत राम का चित्रकूट छोड़ कर आगे बढ़ना, अत्रि के आश्रम पर आना, अनुसूया की जरा अवस्था का वर्णन, विराध-वध, राम का अगस्त्याश्रम पर आकर उनके निर्देशानुसार पंचवटी में निवास करना, पंचवटी-सुषमा-निरूपण, दण्डक वन, गोदावरी, सीता के गान-वाद्य आदि का वर्णन, शूर्पणखा-राम-संवाद एवं लक्ष्मण द्वारा उसे नाक-कान विहीन करना वर्णित है। इस प्रकाश के कथानक पर मुख्यतः वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है। हाँ, पंचवटी-शोभा का वर्णन प्रत्यक्षतः हनुमन्नाटक पर आधारित है।[3] किन्तु सीता का गान-वाद्य-निरूपण कवि की मौलिक कल्पना है।

'बारहवें प्रकाश' में खर-दूषण, त्रिशिरा-विनाश, शूर्पणखा का रावण को कामी समझकर सीता के रूप की प्रशंसा करना, रावण का मारीचि के पास जाना,

---

१. हनुमन्नाटक, ३/१५।

२. (अ) रा० चं०, १०/४।
(ब) हनुमन्नाटक, ३/८।

३. (अ) 'एषा पंचवटी रघूत्तम कुटी यत्रास्ति पंचावटी।
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी॥'—हनुमन्नाटक, ३/२२।
(ब) "सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहे जहँ एक घटी।
चहुँ ओरन नाचत मुक्ति नटी, गुन धूरजटी बन पंचवटी॥"
—रामचन्द्रिका, ११/१८।

मारीच का उसे समझाना किन्तु रावण की धमकी पर उसका कपट मृग बनना, राम का सीता से अग्नि में प्रवेश कर छायामूर्ति धारण कराना, मारीच-वध, सीता-हरण एवं विलाप, जटायु-रावण-युद्ध, राम का सीता को पर्णकुटी में न पाकर उन्मत्तों-जैसा आचरण, उनका ऋष्यमूक पहुँचना तथा हनुमान और सुग्रीव से भेंट, सुग्रीव से सीता के वस्त्र एवं नूपुरों की प्राप्ति, सप्तताल-वेधन की घटनाएँ आती हैं। उपर्युक्त अधिकांश प्रसंग वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित हैं। केवल मारीच का निश्चय[1] तथा विरह-कातर राम का उन्मत्तों-जैसा आचरण,[2] उन्हें समस्त प्राकृतिक उपादानों का प्रतिकूल लगना[3] हनुमन्नाटक की ही भाव-भूमि पर आधारित है।

'तेरहवें प्रकाश' में बालि-वध, राम-लक्ष्मण का पर्वत-निवास, वर्षा-शरद-वर्णन, राम प्रेरित लक्ष्मण का किष्किधा जाकर क्रुद्ध होना, तारा का उन्हें शान्त करना, सीतान्वेषण में वानरों का प्रस्थान, सम्पाति-प्रसंग, हनुमान का सुन्दर नामक पर्वत से उछलकर लंका के सुबेल पर्वत पर कूदना, मार्ग में मैनाक वृत्तान्त, सिंहिका-उद्धार, लंकापुरी-वर्णन, वियोगिनी सीता की दशा, रावण-सीता-संवाद, सीता की अशोक से अग्नि-याचना, हनुमान का वृक्ष से मुद्रिका गिराना, मुद्रिका-प्रसंग, हनुमान द्वारा राम की विरह-दशा का वर्णन, सीता को आश्वस्त करना आदि वर्णित है।

इस प्रकाश का लगभग सम्पूर्ण कथानक वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित है। केवल सीता की अशोक से अग्नि-याचना, हनुमान-सीता-संवाद तथा मुद्रिका-प्रसंग प्रसन्नराघव एवं हनुमन्नाटक पर आधारित है।

रामचन्द्रिका की ही भाँति प्रसन्नराघव में भी सीता द्वारा अशोक से अग्नि की याचना पर वृक्ष में छिपे हनुमान मुद्रिका गिराते हैं।[4] इसके अतिरिक्त सीता का मुद्रिका के प्रति कथन हनुमन्नाटक से प्रभावित है।[5] सीता का मुद्रिका-गुण-वर्णन केशव की निजी विशेषता है।[6]

---

१. (अ) हनुमन्नाटक, ३/२४।
(ब) रामचन्द्रिका, १२/११।

२. (अ) हनुमन्नाटक, ५/१२।
(ब) रामचन्द्रिका, १२/२७।

३. (अ) हनुमन्नाटक, ५/२६।
(ब) रामचन्द्रिका, १२/४२।

४. (अ) रामचन्द्रिका, १३/६५।
(ब) प्रसन्नराघव, ६/३५-३८।

५ (अ) रामचन्द्रिका, १३/८६-८७।
(ब) हनुमन्नाटक, ६/१६।

६. रामचन्द्रिका, १३/७८-८५।

"चौदहवें प्रकाश" में हनुमान-रावण-संवाद, विभीषण का दूत को अबध्य बताना, हनुमान द्वारा लंका-दहन, समुद्रपार आकर राम को सीता का समाचार सुनाना, राम द्वारा हनुमान की प्रशंसा, विजयदशमी को राम-सेना का लंका की ओर प्रस्थान, समुद्र-तट पर पड़ाव, समुद्र-वर्णन आदि प्रसंग आते हैं। उपर्युक्त कथा-क्रम का सूत्र वाल्मीकि रामायण का ही अनुगमन करता है। लंका-दहन प्रसंग में कवि की मौलिकता की झलक है किन्तु हनुमान-रावण-संवाद हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित है।[१]

"पन्द्रहवें प्रकाश" में रावण का मंत्रिपरिषद में परामर्श, विभीषण की मंत्रणा से क्षुब्ध रावण का उसके सिर पर पाद-प्रहार करना, विभीषण का राम के शरणागत होना, राम-वाण से समुद्र का क्षुब्ध होना, सेतु-बंधन एवं शिव-स्थापना आदि वर्णित हैं। उक्त सभी प्रसंग वाल्मीकि रामायण के ही अनुकूल हैं, किन्तु विभीषण का सीता को लौटाने की सलाह हनुमन्नाटक[२] तथा सेतु-बन्ध के समय शिव-स्थापना अध्यात्मरामायण[३] से अनुप्रेरित है।

"सोलहवें प्रकाश" के अन्तर्गत रावण के वैभव एवं आतंक का वर्णन तथा अंगद-रावण का वाग्विवाद अत्यन्त नाटकीयता के साथ वर्णित है। यह सम्पूर्ण प्रकाश हनुमन्नाटक की छायामात्र है। रावण के प्रतिहार का उसके वैभव, आतंक का वर्णन एवं ब्रह्मा, नारदादि देवों को डाँटना,[४] रावण का अंगद को भेद-नीति के द्वारा फोड़ने का प्रयत्न,[५] रावण का गर्वोक्ति करते हुए मृत्यु को अपनी दासी, सूर्य को दरबान, चन्द्र को छत्र धारण करने वाला, अग्नि को रसोइया, यम को

---

१. (अ) रामचन्द्रिका, १४/१।
   (ब) हनुमन्नाटक, ६/२२।

२. (अ) रामचन्द्रिका, १५/१०-१२।
   (ब) हनुमन्नाटक, ७/८।

३. (अ) रामचन्द्रिका, १५/३४-३५।
   (ब) अध्यात्मरामायण, ६/४/१।

४. (अ) रामचन्द्रिका, १६/२।
   (ब) हनुमन्नाटक, ८/४५।

५. (अ) रामचन्द्रिका, १६-१५।
   (ब) हनुमन्नाटक, ८/२६।

चौकीदार, ब्रह्मा को द्वार पर वेद-पाठ करने वाला बताना[1] तथा राम को कायर एवं बलहीन कह कर उनकी निन्दा करना[2] पूर्णतः हनुमन्नाटक से प्रभावित है।

'सत्रहवें प्रकाश' में अंगद द्वारा रावण के लाये हुए मुकुट राम को देना, राम का उसे विभीषण के सिर पर रखना, वानर-सेना द्वारा लंका को घेरना, इन्द्रजित का राम-लक्ष्मण को नागपाश में बाँधना, रावण का सीता को विमान पर बैठाकर राम की दशा दिखाना एवं सीता का शोक करना, गरुड़ का नागपाश काटना आदि वाल्मीकि रामायण के अनुकूल हैं।[3] राजनीति-निरूपण, मंत्री,—बर्णन, विभीषण का रावण के योद्धाओं का परिचय कराना वाल्मीकि रामायण के साथ ही केशव की मौलिक कल्पना पर आधारित है, किन्तु लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंग अध्यात्मरामायण के अनुकरण पर है। अध्यात्म की भाँति यहाँ भी लक्ष्मण विभीषण की रक्षा करते हुए रावण के शक्ति-प्रहार से मूर्च्छित होते हैं।[4]

'अठारहवें प्रकाश' के अन्तर्गत कुम्भकर्ण का जगाया जाना, कुम्भकर्ण और मन्दोदरी का रावण को समझाना, रावण की अस्वीकृति, कुम्भकर्ण-वध, लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध एवं मेघनाद-वध के प्रसंग आते हैं।

कुम्भकर्ण के जगाये जाने का प्रसंग हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित है। इस स्थल पर कुम्भकर्ण की प्रिया कहती है कि इनके कान के पास चीत्कार करना बन्द करो। इससे इनकी नींद न टूटेगी। इतना कहते ही कुम्भकर्ण के श्वास के साथ हाथियों का यूथ मुख में मच्छरों के समान प्रवेश कर गया :

> "विरम विरम तूर्णं कुम्भकर्णस्य कर्णा-
> न्नखलु तव निनादेरेष निद्रां जहाति ॥
> इति कथयति काचित्प्रेयसी प्रेक्ष्यमाणा।
> मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ॥"[5]

---

१. (अ) रामचन्द्रिका, १६/२२-२३।
   (ब) हनुमन्नाटक, ८/१६।
२. (अ) रामचन्द्रिका, १६/२५/२७।
   (ब) हनुमन्नाटक, ८/१३।
३. वा० रा०, युद्धकांड, सर्ग ४३-५०।
४. (अ) रामचन्द्रिका, १७/४०।
   (ब) अध्यात्म, ६/७-८ (सर्ग)।
५. हनुमन्नाटक, ११/१४।

जब इस पर भी उसकी निद्रा न टूटी तब शिव के वरदान से किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, देवता और सिद्धों की रमणियों के मधुर संगीत से वह जाग गया।[1]

इसी प्रकार के भाव रामचन्द्रिकाकार ने भी व्यक्त किये हैं किन्तु यहाँ हाथियों द्वारा जगाने का उल्लेख है, उनका मुख में घुसना नहीं वर्णित है।[2] कुम्भकर्ण और मन्दोदरी का रावण को समझाना अध्यात्मरामायण[3] और हनुमन्नाटक से प्रभावित है।[4]

'उन्नीसवें प्रकाश' में पुत्र एवं बन्धु-वध पर रावण का शोक, मकराक्ष-वध के उपरान्त रावण का राम के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजना, रावण-मख-भंग, अंगद का मंदोदरी के केश पकड़कर खींचना एवं उसे वस्त्रहीन करना, मंदोदरी-विलाप, राम-रावण-युद्ध एवं रावण-वध की घटनाएँ वर्णित हैं।

रावण का सन्धि-पत्र भेजना केशव की मौलिक उद्भावना है। अंगद का मन्दोदरी के केश पकड़कर खींचना एवं उसे नग्न करना अध्यात्मरामायण पर आधारित है।[5] मन्दोदरी के कंचुकी-रहित उरोजों के वर्णन में केशव की वृत्ति अधिक रमी है जो कवि की मौलिक सूझ है।[6]

'बीसवें प्रकाश' में सीता-राम-मिलन, सीता की अग्नि-परीक्षा, अग्निदेव द्वारा सीता की शुद्धता का साक्ष्य, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा राम-स्तुति, इन्द्र का वानर-भालुओं को जीवित करना, पुष्पक यान से अयोध्या के लिए प्रस्थान, त्रिवेणी-वर्णन, भरद्वाज मुनि एवं उनके आश्रम का निरूपण, भरद्वाज-स्तुति आदि प्रसंग निहित हैं जो वाल्मीकि एवं अध्यात्मरामायण पर ही आधारित हैं।

रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में इक्कीसवें से उन्तालीसवें प्रकाश तक का कथानक समाहित है। यह मुख्यतः वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित है।

---

१. हनुमन्नाटक, ११/१५।

२. "राक्षस लाखन साथन कीने, दुंदुभि दीन बजाइ नवीने।
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे, कुंजर पुंज जगावत हारे।
आइ जहीं सुरनारि सुभागीं, गावन बीन बजावन लागीं।
जागि उठो तबहीं सुरदोषी, छुद्र छुदा बहुभक्षण पोपी।"

—रामचन्द्रिका, १८/२-३

३. अध्यात्म०, युद्धकांड, ७/५६-७०, १०/४४-५४।

४. हनुमन्नाटक, ११/१६, ६/५।

५. (अ) अध्यात्मक, युद्ध०, १०/२४-३२
(ब) रामचन्द्रिका, १६/२६-३०

६ रामचन्द्रिका, १६/३१-३२

'इक्कीसवें प्रकाश' में दान-विधान, सनाढ्योत्पत्ति-वर्णन, राम-भरत-मिलाप, राम द्वारा कपिदल-प्रशंसा, नन्दिग्राम में राम-गमन आदि; 'बाईसवें प्रकाश' में अवध-प्रवेश; 'तेईसवें प्रकाश' में ऋषिगण-आगमन तथा राम द्वारा राज्यश्री की निन्दा; 'चौबीसवें प्रकाश' में राम-विरक्ति तथा बाल, युवा, जरावस्था के दुःख-वर्णन; 'पच्चीसवें प्रकाश' में जीवोद्धार के उपाय आदि का वर्णन हुआ है। उक्त अधिकांश प्रसंग वाल्मीकि एवं अध्यात्मरामायण से अनुप्रेरित हैं। सनाढ्योत्पत्ति-वर्णन कवि के अपने जातीय अनुराग की ओर संकेत करता है। राज्यश्री-निन्दा, राम-विरक्ति, बाल, युवा एवं जरावस्था के दुःख तथा जीवोद्धार के उपाय के निरूपण में कवि ने योगवासिष्ठ से सहायता ली है।[1]

'छब्बीसवें प्रकाश' में रामनाम-माहात्म्य, तिलकोत्सव; 'सत्ताइसवें प्रकाश' में देवस्तुति तथा 'अट्ठाइसवें प्रकाश' में राम-राज्य-वर्णन के प्रसंग आते हैं जो अध्यात्मरामायण[2] तथा विभिन्न पुराणों से अनुप्रेरित हैं।

'उन्तीसवें प्रकाश' में चौगान, अयोध्या की रोशनी, शयनागार, राजमहल; 'तीसवें प्रकाश' में संगीत, नृत्य, सेज, प्रभात, प्रातःकाल-कृत्य, भोजन के छप्पन प्रकार, बसन्त, चन्द्र; 'इकतीसवें प्रकाश' में शिख-नख, सौन्दर्य-भावशंसा; 'बत्तीसवें प्रकाश' में बाग, कृत्रिम-पर्वत, सरिता, जलाशय, जलक्रीड़ा, स्नानोपरान्त स्त्री-सौन्दर्य, रनिवास की वापसी के प्रसंग वर्णित हैं जो प्रमुख्यतः कवि की मौलिक उद्भावना कहे जा सकते हैं। 'तैंतीसवें प्रकाश' में ब्रह्मागमन, शम्बूक-वध, राम-सीता-संवाद, सीता-निर्वासन, कुश-लव-जन्म की कथाएँ आती हैं जो अध्यात्म[3] और वाल्मीकि[4] रामायण से अनुप्रेरित हैं।

चौंतीसवें प्रकाश' में श्वान-संन्यासी-अभियोग, मठधारी-निन्दा, सत्यकेतु-आख्यान, सनाढ्यद्विज-आगमन, मथुरा-माहात्म्य आदि वर्णित हैं। श्वान-संन्यासी-अभियोग और मठाधीश-निन्दा वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त अंश पर आधारित है।[5] सनाढ्यद्विजागमन की प्रेरणा वाल्मीकि के ऋषि-आगमन के साथ ही केशव की

---

१. योगवासिष्ठ, वैराग्य प्रकरण, सर्ग १३/१६-२२।

२. अध्यात्म०, ७/४/२१-३०।

३. तदेव, उत्तर०, सर्ग ४।

४. वा० रा०, उत्तरकांड।
   (अ) सीता-निर्वासन, सर्ग ४२-४८।
   (ब) कुश-लव जन्म, सर्ग ६५।
   (स) शम्बूक-वध, सर्ग ७५।

५. देखिए वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग ५६ और ६० के मध्य के प्रक्षिप्त सर्ग १-२ (वा० रा०, गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन)।

जातीय भावना से मिली है। लवणासुर-प्रसंग का आधार वाल्मीकि रामायण ही है।[1]

इसके अतिरिक्त 'पैंतीसवें प्रकाश' में रामाश्वमेघ-वर्णन; 'छत्तीसवें प्रकाश' में लव-लक्ष्मण-युद्ध; 'सैंतीसवें प्रकाश' में लव कटु बैन; 'अड़तीसवें प्रकाश' में लव-अंगद-युद्ध तथा 'उन्तालीसवें प्रकाश' में सीता का लव-कुश द्वारा लाये हुए मुकुटों को पहिचानना तथा हनुमान, जाम्बवान को देखकर शोक करना, रण-समुद्र-रूपक, राम-सीता-मिलन, राज्य-वितरण, राम द्वारा राजनीति का उपदेश, रामचरित एवं रामचन्द्रिका के माहात्म्य का वर्णन हुआ है।

वाल्मीकि से अनुप्रेरित होते हुए भी केशव ने उक्त घटनाओं में कुछ परिवर्तन कर दिया है। अश्वमेध के समय सीता की स्वर्ण-प्रतिमा का निर्माण, लव-कुश का राम-सेना से युद्ध करके उसे परास्त करना, युद्ध से लव द्वारा लाये हुए मुकुटों को तथा जाम्बवान और हनुमान को बन्दी देखकर सीता का विलाप करना तथा उन्हें मुक्त करना, सीता का पुनः राम के पास आ जाना केशव की मौलिक उद्भावनाएँ कही जा सकती हैं। वाल्मीकि रामायण में सीता पृथ्वी में समाहित हो जाती हैं, परन्तु यहाँ रामचन्द्रिकाकार ने ऐसा न करके उक्त घटना को सुखान्त बना दिया है।

लवकुश-युद्ध 'उत्तररामचरित' के वर्णन से भिन्न होते हुए भी उसी की भावछाया में लिखा गया है। उत्तररामचरित में उक्त युद्ध लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु और लव के मध्य हुआ है। किन्तु रामचन्द्रिका में राम-सेना के सभी प्रमुख सामन्त पराजित होकर लव द्वारा निन्दा के पात्र बनते हैं।[2] राज्य-विभाजन तथा पुत्रों, भ्रातृ-पुत्रों को राम द्वारा नीत्युपदेश 'शुक्रनीति' पर आधारित है।[3] ग्रंथ-माहात्म्य-वर्णन पूर्ववर्ती संस्कृत-काव्य-परम्परा से प्रभावित है।

४. गोविन्दरामायण

सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने इस ग्रन्थ की रचना संवत् १७५५ में की थी, किन्तु यह संवत् २०१० में प्रकाशित हुआ। इसके अधिकांश प्रसंग वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित हैं। कवि ने कुछ स्थलों पर आनन्दरामायण, प्रसन्नराघव, उत्तररामचरित आदि संस्कृत-ग्रन्थों से भी प्रेरणा ग्रहण की है। साथ ही कहीं-कहीं उसने मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं।

---

१. वा० रा०, उत्तरकांड, सर्ग ६७-६९।

२. उत्तररामचरित, ५/३२-३४।

३. (अ) रामचन्द्रिका, ३९/२९-३४।
    (ब) शुक्रनीति, १/१६१।

इसमें अध्यायों का विभाजन एवं नामकरण प्रमुख घटनाओं के आधार पर विभिन्न शीर्षकों में हुआ है। इस दृष्टि से इसमें २२ अध्याय हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की कथावस्तु एवं अनुप्रेरित स्थलों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

'रामावतार' के अन्तर्गत रघुवंश का वर्णन, दशरथ का कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी से विवाह करना, विवाह के समय ही कैकेयी का दो वर माँगना, देवासुर-संग्राम में सारथी के मरने पर कैकेयी द्वारा दशरथ के रथ का संचालन तथा राजा द्वारा उक्त उभय वरों की पुष्टि, श्रवण कुमार-प्रसंग एवं राजा को अंधमुनि का शाप, दशरथ का राजसूय-यज्ञ, यज्ञ-कुंड से यज्ञ-पुरुष का प्रकट होकर राजा को खीर देना, राजा द्वारा तीनों रानियों में खीर-वितरण तथा उनका गर्भवती होना, तेरहवें मास राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न का अवतरित होना एवं उनकी बाल-क्रीड़ा, विश्वामित्र द्वारा यज्ञ-रक्षार्थ राम-लक्ष्मण की याचना, ताड़का, सुबाहु राक्षसों का वध वर्णित है।

इसमें दशरथ-विवाह की प्रेरणा कवि को सम्भवतः आनन्दरामायण से मिली है जहाँ दशरथ और कौशल्या के विवाह का विस्तृत वर्णन मिलता है।[1] इसके अतिरिक्त वाल्मीकीय रामायण की भाँति दशरथ पुत्र-प्राप्ति हेतु राजसूय यज्ञ तो करते हैं किन्तु यहाँ ऋष्यशृंग का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

'सीता-स्वयंवर' के अन्तर्गत विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिला जाना, राम-सीता का पूर्वानुराग, धनुर्भंग, जयमाल-प्रसंग, राम-परशुराम-युद्ध एवं परशुराम का पराजित होना आदि प्रसंग आते हैं। परशुराम और राम के मध्य युद्ध कराकर कवि ने मौलिकता का परिचय दिया है। यहाँ वाग्विवाद भी परशुराम और राम के मध्य ही होता है, लक्ष्मण उसमें भाग नहीं लेते हैं। इसके अतिरिक्त राम-सीता का पूर्वानुराग प्रसन्नराघव से अनुप्रेरित है।[2]

'अवध-प्रवेश' के अन्तर्गत विवाह करके राम-सीता का अयोध्या आना, पुनः राम से आशीर्वाद लेकर बारात सजाकर तीनों भाइयों का मिथिला जाना और उनका विबाह, दशरथ का अश्वमेधयज्ञ, राम के राज्याभिषेक की तैयारी, ब्रह्मा द्वारा गन्धर्बिणी मंथरा को भेजकर कैकेयी की बुद्धि पलटना, कैकेयी द्वारा दो वरों की याचना, दशरथ द्वारा स्त्रियों की घोर निन्दा, बनगमन के प्रसंग में राम-सीता, राम, लक्ष्मण, राम-कौशल्या, सुमित्रा-लक्ष्मण के संवाद वर्णित हैं।

राम का सीता से विवाह करके अयोध्या लौट आने के उपरान्त दशरथ का बारात सजा कर शेष तीनों पुत्रों के बिबाह के लिए मिथिला जाना कबि की मौलिक कल्पना पर आधारित है। इसके अतिरिक्त यहाँ ब्रह्मा मंथरा को स्वयं भेजते

---

१. आनन्दरामायण, सारकांड, प्रथम सर्ग।

२. प्रसन्नराघव, अंक २।

हैं। इसकी प्रेरणा कवि को महाभारत के रामोपाख्यान से मिली प्रतीत होती है जहाँ ब्रह्मा दुंदुभी नामक गन्धर्वी को मंथरा रूप में उत्पन्न करते हैं।[1]

'बनवास' में राम-बनगमन, कौशल्या-विलाप, दशरथ-मरण, वशिष्ठ का भरत को मातुल-गृह से बुलाना, भरत द्वारा कैकेयी की भर्त्सना, दशरथ की अन्त्येष्टि, भरत का अवधवासियों सहित चित्रकूट जाना, राम-भरत-संबाद, भरत का पादुका लेकर अवध लौटना एवं ऋषिधर्म का पालन, सीता के रूप-सौन्दर्य का वर्णन, विराध-वध प्रसंग आते हैं।

अन्य रामकथाओं का अनुसरण न करते हुए इसमें दूत भरत को दशरथ की मृत्यु का समाचार उनके मातुल-गृह में ही सुना देते हैं। इसी प्रकार चित्रकूट में भरत को ससैन्य आते देखकर राम किसी शत्रु-सेना की आशंका से युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं, यहाँ लक्ष्मण-कोप-प्रसंग नहीं है।

'वन-प्रवेश' में राम-अगस्त्य-भेंट, शूर्पणखा-विरूपीकरण तथा खरदूषण-युद्ध शीर्षक के अन्तर्गत शूर्पणखा का रावण के पास जाना और रावण का खरदूषण को ससैन्य राम से युद्ध करने भेजना, राम-लक्ष्मण से खर-दूषण का युद्ध, खरदूषण-वध-प्रसंग आते हैं।

इसमें विरूप होकर शूर्पणखा सीधे रावण के पास जाती है, तब रावण खर-दूषण को युद्ध के लिए भेजता है। यहाँ राम और लक्ष्मण दोनों ही युद्ध में भाग लेते हैं।

'सीता-हरण' में रावण-मारीच-संवाद, मारीच का सुवर्ण-मृग बनना और राम के हाथों मारा जाना, सीता के आग्रह पर लक्ष्मण का कुटी के चारों ओर रेखा खींचकर राम के पास जाना, रावण का योगी के वेष में सीता के पास जाना, सीता द्वारा लक्ष्मण-रेखा मिटाना तथा रावण द्वारा उसका अपहरण वर्णित है।

उपर्युक्त लक्ष्मण-रेखा की प्रेरणा सम्भवतः कवि को मधुसूदनकृत महानाटक[2] से मिली हो, किन्तु वहाँ सीता रावण के कहने पर रेखा के बाहर नहीं आती, स्वयं रावण ही रेखा का उल्लंघन करके सीता का अपहरण करता है।

'सीता-खोज' के अन्तर्गत विरही राम का प्रलाप, रावण-जटायु-युद्ध, राम-जटायु-प्रसंग, राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध-प्रसंग आते हैं। यहाँ राम को रावण द्वारा सीता-हरण की सूचना स्वयं जटायु देता है।

'लंका-गमन' के अन्तर्गत सुग्रीव का सीता की खोज के लिए वानरों को चारों दिशाओं में भेजना, हनुमान का समुद्र लाँघकर लंका जाना तथा अक्षयकुमार-वध,

---

१. महाभारत, वनपर्व, २७६/१०।

२ महानाटक, ३/६६-७२।

लंका-दहन करके सीता का सन्देश राम को सुनाना, सेतु-निर्माण, राम-सेना और रावण सेना में युद्ध, धूम्राक्ष, जाम्बमाली, अकम्पन का वध, राम का अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजना, अंगद-रावण-संवाद, अंगद का विभीषण को अपने साथ लेकर श्रीराम के पास जाना, विभीषण-शरणागति, मन्दोदरी-रावण-संवाद, पुनः युद्ध प्रारम्भ तथा रावण के दो पुत्रों का वध वर्णित है।

अन्य राम-कथाओं की अपेक्षा इसमें विशेषता यह है कि अकम्पन के वध के उपरान्त अंगद दौत्य-कर्म करने रावण के पास जाता है और विभीषण अंगद के साथ ही राम के पास आता है और शरणागत होता है। इस प्रकार कवि ने स्वेच्छा से घटनाक्रम में परिवर्तन कर दिया है।

'प्रहस्त-युद्ध' में प्रहस्त-वध, पुनश्च विभीषण द्वारा राम को रावण-पक्ष के योद्धाओं का परिचय देना, कुम्भकर्ण को जगाना, कुम्भकर्ण-युद्ध एवं उसका राम के हाथों मारा जाना वर्णित है।

'त्रिमुण्ड-युद्ध' के अन्तर्गत हनुमान द्वारा त्रिमुण्ड का वध तथा 'महोदर-युद्ध' में महोदर-मृत्यु के प्रसंग आते हैं।

'इन्द्रजीत-युद्ध' के अन्तर्गत मेघनाद का सम्पूर्ण राम-सेना को धराशायी करना तथा राम-लक्ष्मण को नागपाश से बाँधना, सीता का नागमंत्र पढ़कर नागपाश काटना तथा राम-लक्ष्मण को जीवित करना, वानरों द्वारा मेघनाद के निकुम्भल-यज्ञ को विध्वंस करना तथा लक्ष्मण का उसे मारना वर्णित है।

इसमें नागपाश के बन्धन की प्रेरणा कवि को वाल्मीकि रामायण से मिली है, परन्तु वहाँ सीता के स्थान पर गरुड़ आकर राम-लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करते हैं।[1]

इसके उपरान्त 'अतिकाय युद्ध' में लक्ष्मण द्वारा अतिकाय तथा 'मकराक्ष युद्ध' के अन्तर्गत राम द्वारा मकराक्ष के मारे जाने का प्रसंग है।

"रावण-युद्ध" में राम-रावण-युद्ध, रावण का लक्ष्मण को शक्ति-प्रहार से मूच्छित करना, हनुमान का सुषेन-वैद्य एवं संजीवनी बूटी लाना और लक्ष्मण को मूर्च्छारहित करना, रावण का बीसों हाथों में शस्त्र धारण करके दसों मुखों से एक साथ भिन्न-भिन्न कार्य करते हुए युद्ध करना तथा राम के द्वारा वीरगति प्राप्त करना प्रसंग आते हैं।

'सीता-मिलन' के अन्तर्गत रावण की रानियों का विलाप, उनका राम पर मुग्ध होना, हनुमान का लंका जाकर सीता को राम के पास लाना, सीता की अग्नि-परीक्षा आदि प्रसंग आते हैं।

---

१. वा० रा०, युद्धकांड, सर्ग ४४-५० ।

'अयोध्या-आगमन' के अन्तर्गत राम का पुष्पक-विमान द्वारा अयोध्या-प्रत्यागमन, अयोध्या में उल्लास का वर्णन हुआ है ।

'माता-मिलन' के अन्तर्गत राम का भरत, पुरवासियों एवं माताओं से मिलन के प्रसंग आते हैं । तदुपरान्त राम-राज्याभिषेक, राम द्वारा शूद्र (शम्बूक) वध और उनका मृत ब्राह्मण-पुत्र को पुनर्जीवित करना, शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर-वध आदि वर्णित हैं ।

'सीता-वनवास' में गर्भवती सीता का वन-विहार करने की इच्छा व्यक्त करना, राम के आदेश से लक्ष्मण का सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ आना, वाल्मीकि मुनि का सीता को अपने आश्रम में ले जाना तथा वहाँ लव का जन्म होना, मुनि द्वारा संकल्प-शक्ति से दूसरे पुत्र 'कुश' की सृष्टि, राम का अश्वमेधयज्ञ कराना, लव का यज्ञ-अश्व को पकड़ना, लव-कुश का रामसेना से युद्ध और रामसहित सम्पूर्ण सेना को मार डालना, पति-मृत्यु पर सीता का विलाप आदि वर्णित है ।

उक्त ग्रन्थ में सीता-परित्याग के प्रसंग में किसी लोकापवाद का उल्लेख नहीं मिलता । यहाँ गर्भवती सीता के वन-विहार की इच्छा प्रकट करने पर राम के आदेश से लक्ष्मण उन्हें वाल्मीकि-आश्रम के निकट छोड़ आते हैं । निर्जन वन में अपने को अकेली पाकर उसे पति द्वारा त्याग दिये जाने का ज्ञान होता है । वाल्मीकि मुनि का दूसरे पुत्र 'कुश' की सृष्टि करने का वृत्तान्त आनन्दरामायण में मिलता है ।[1] वहाँ सीता अपने पुत्र लव को वाल्मीकि मुनि के संरक्षण में रखकर स्नान करने जाती है किन्तु मार्ग में वानरियों को अपने बच्चे लिये हुए देखकर उसे अपने पुत्र के प्रति मोह उत्पन्न होता है; अस्तु वह लौटकर बिना मुनि से कहे हुए अपने पुत्र को लेकर स्नान करने चली जाती है । मुनि उक्त बालक को न देखकर चिन्तित हो उठते हैं तथा संकल्प द्वारा 'कुश' (घास) से एक बालक की सृष्टि करते हैं । कथासरित्सागर में भी लगभग यही कथा मिलती है ।[2] अतः गोविन्दरामायणकार को इसकी प्रेरणा आनन्दरामायण एवं कथासरित्सागर से मिली है ।

'सीता ने सब जिवाये' के अन्तर्गत सीता का वैधव्य दुःख से दुखी होकर सती होने की इच्छा करना, आकाशवाणी द्वारा उसे रोका जाना, सीता का अपने सतीत्व की शपथ लेकर जल छिड़कना तथा राम के साथ समस्त सेना को जीवित करना, सीता का राम के साथ अयोध्या आना वर्णित है ।

---

१. आनन्दरामायण, ५/४/६२-६८ ।

२. कथासरित्सागर, ६/१/८३-६३ ।

वाल्मीकीय रामायण में लव-कुश-युद्ध-प्रसंग नहीं है। गोविन्दरामायणकार को इसकी प्रेरणा पद्मपुराण[1] तथा उत्तररामचरित[2] से मिली है जहाँ लवकुश से राम-सेना का युद्ध होता है किन्तु उत्तररामचरित में राम उस युद्ध को रोक देते हैं तथा सीता को पुनः ग्रहण करते हैं।

'सीता और दुहुँ पुत्रन सहित अवध-प्रवेश' के अन्तर्गत श्रीराम का अनेक प्रकार के यज्ञ करना, राम-राज्य-वर्णन, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी का परमधाम-गमन, दीवार पर सीता द्वारा निर्मित रावण के चित्र को देखकर राम का संदेह और ग्लानियुक्त सीता का पृथ्वी से प्रार्थना तथा उसमें समाहित होना, सीता-वियोग से सन्तप्त राम का लक्ष्मण को द्वार पर बैठाना और अन्तःपुर में जाकर योगाभ्यास द्वारा शरीर का परित्याग, पुनश्च भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न का ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर शरीर छोड़ना, लव-कुश आदि पुत्रों में राज्य-वितरण, सम्पूर्ण अयोध्यापुरी का स्वर्ग-गमन, कथा-माहात्म्य आदि प्रसंग आते हैं।

स्त्रियों के कहने पर सीता का दीवार पर रावण के चित्र बनाना, राम का संदेह करना, सीता का दुखी होकर पृथ्वी से प्रार्थना करना तथा उसी में समाहित हो जाने की प्रेरणा कवि आनन्द रामायण से प्राप्त करता है। परन्तु वहाँ सीता कैकेयी के कहने पर रावण के अँगूठे का चित्र बनाती है। उसके चले जाने पर कैकेयी स्वयं रावण का चित्र पूर्ण कर देती है तथा राम से उसे सीता द्वारा बनाया हुआ बताती है। राम सीता पर सन्देह करते एवं उसका परित्याग कर देते हैं।[3]

सीता के पृथ्वी-प्रवेश की प्रेरणा गोविन्दरामायणकार को निश्चित रूप से वाल्मीकीय रामायण से मिली है।[4]

राम के स्वधामगमन का प्रसंग यद्यपि वाल्मीकीय रामायण से अनुप्रेरित है किन्तु गोविन्दरामायणकार ने उसमें कुछ परिवर्तन कर दिया है। वाल्मीकीय रामायण के काल-आगमन और दुर्वासा-प्रसंग इसमें नहीं हैं।[5]

५. साकेत

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में राम-सीता और लक्ष्मण-ऊर्मिला दोनों

---

१ पद्मपुराण, पातालखंड, अध्याय ५४, ६४।

२. उत्तररामचरित, अंक ५, ६।

३. आनन्द रामायण, जन्मकाण्डम्, ३/३७-५०।

४. वा० रा०, ७/९७/१४-१६।

५. तदेव, उत्तरकांड, सर्ग १०३-१०४।

की ही कथाएँ साथ-साथ मिली हुई चलती हैं। 'साकेत' की समस्त घटनाओं का लक्ष्य है दस्युराज रावण का वध एवं आर्य-संस्कृति की प्रतिस्थापना;[१] और यह कार्य राम द्वारा ही होता है क्योंकि उनका अवतार ही आर्य धर्म की प्रतिष्ठा के लिए हुआ है।[२] अतएव वे ही इस काव्य के नायक माने जा सकते हैं।

यद्यपि लक्ष्मण-ऊर्मिला प्रसंग का अतिविस्तृत वर्णन हुआ है तथा उक्त दोनों पात्रों को अधिक महत्व भी प्राप्त है, किन्तु वे राम-सीता के जयगान में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं।[३] कवि का भी "राम तुम्हारा वृत्त आप ही काव्य है"[४] कहना उसके अतिशय रामानुराग का द्योतक है। उसे केवल लक्ष्मण और ऊर्मिला का चरित्रांकन करके ही शान्ति नहीं मिलती, उसकी अन्तरात्मा सम्पूर्ण रामायण कहे बिना बिश्राम नहीं लेना चाहती, भले ही इस प्रयास में उसे कथानक सम्बन्धी अनेक जोड़-तोड़ करने पड़ते हैं। कवि की इस द्विविधात्मक मनःस्थिति ने 'साकेत' के नायकत्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। लक्ष्मण या ऊर्मिला को नायकत्व भी न प्राप्त हो सका और खींच-खाँचकर सम्पूर्ण रामकथा कहने के कारण यह एक आदर्श रामकाव्य भी न बन पाया।

प्रस्तुत काव्य की सभी घटनाओं का केन्द्र-बिन्दु 'साकेत' (अयोध्या) ही है। साकेत में रह कर ही सम्पूर्ण रामकथा किसी न किसी पात्र द्वारा वर्णित है। कवि चित्रकूट तक गया अवश्य है किन्तु वहाँ सम्पूर्ण साकेत-समाजसहित जाने के कारण वह उसे साकेत (अयोध्या) ही समझता है।[५] कवि द्वारा अयोध्या-वैभव एवं राम-राज्याभिषेक की तैयारी के वर्णन से लेकर चित्रकूट-प्रसंग-निरूपण के उपरान्त नवें-दसवें सर्ग में इसके पूर्व की बालकाण्ड सम्बन्धी कथा ऊर्मिला उन्मादावस्था में कहती है। खर-दूषण-वध तक आधे अरण्यकांड का वृत्तान्त एक व्यापारी द्वारा, तदुपरान्त लक्ष्मण-शक्ति तक की कथा हनुमान द्वारा बतायी जाती है। इसके अतिरिक्त आगे लंका-युद्ध की शेष घटनाएँ वसिष्ठ की दिव्यदृष्टि द्वारा अयोध्यावासियों को दिखाई जाती है।

---

१. "जय जयकार किया मुनियों ने, दस्युराज यों ध्वस्त हुआ।
आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित, आर्य धर्म आश्वस्त हुआ॥"
साकेत, सर्ग ११, पृ० ४१५

२. "मैं आर्यों का आदर्श बताने आया" तदेव, सर्ग ८, पृ० २३४

३. "धराधाम को रामराज्य की जय गाने दो" तदेव; सर्ग १२, पृ० ५००

४. तदेव, सर्ग ५, पृ० १५६ (संस्करण संवत् २०१४)

५. "सम्प्रति साकेत-समाज वहीं है सारा।
सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा॥ "साकेत, सर्ग ८, पृ० २२०

'साकेत' के कथा-सूत्र की संयोजना एवं संस्कृत-साहित्य से प्रभावित उसके अंशों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

साकेत की कथा-वस्तु बारह सर्गों में विभक्त है। ग्रंथ का प्रारम्भ संस्कृत-काव्य-परम्परानुसार गणेश-वन्दना एवं इष्टदेव के मंगलाचरण से होता है। प्रथम सर्ग का प्रारम्भ करते समय सरस्वती-आवाहन, निर्गुण-सगुण एवं अवतारत्व के निरूपण के साथ ही कवि राम-सीता, लक्ष्मण-ऊर्मिला, भरत-माण्डवी, शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्ति तथा दशरथ-जनक का स्मरण करता है। पुनः वाल्मीकि रामायण की भाँति अयोध्या के राज्य-वैभव का विशद वर्णन करने के पश्चात्[१] वह लक्ष्मण-ऊर्मिला का प्रणय-प्रसंग ऊर्मिला-शुक-संवाद से प्रारम्भ करता है। फिर राम-राज्याभिषेक की तैयारी के समय ऊर्मिला द्वारा निर्मित चित्र में पीत-रेखा का अभिषेक-घट पर बह जाना दिखाकर कवि भावी अमंगल की सूचना देता है।[२] वस्तुतः इस सर्ग में कवि की मौलिक उद्भावना ही प्रमुख है।

'द्वितीय सर्ग' में कैकेयी-मन्थरा-संवाद, कौशल्या द्वारा वधू सीता की युवराज्ञी-योग्य साज-सज्जा, ऊर्मिला-लक्ष्मण का भरत के न होने का खेद, राम का अन्य भाइयों को छोड़कर अकेले ही राज्याधिकारी होने पर क्षोभ, दशरथ का अन्ध मुनि के शाप से भयभीत होकर राम के तिलक के लिए आतुर होना, कैकेयी का आक्रोश एवं वर-याचना आदि प्रसंग आते हैं।

इस सर्ग में अन्य रामकथाओं से वैभिन्य है। यहाँ मन्थरा तथा कैकेयी दोनों को ही राम-राज्याभिषेक की सूचना पहले से ही है। मन्थरा की बुद्धि देव-प्रेरित सरस्वती द्वारा भ्रमित नहीं होती तथा कैकेयी स्वयं उसके उदास होने का कारण पूछती है।[३] दशरथ भी स्वयं कैकेयी को दो वरदानों का स्मरण दिलाते हैं।[४] उक्त परिवर्तन कवि की मौलिक कल्पना के परिचायक हैं।

'तृतीय सर्ग' में राम-लक्ष्मण का प्रातःकाल पितृ-वन्दना के लिए जाना और वहाँ वन-गमन के समाचार से अवगत होना, शोक-संतप्त पिता को राम द्वारा सान्त्वना, लक्ष्मण का कैकेयी पर क्षुब्ध होना तथा राम का उन्हें शान्त करना,

---

१. वा० रा०, बालकांड, सर्ग ५-७

२. "एक पीत तरंग-रेखा-सी बही,
और वह अभिषेक-घट पर जा रही।" साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० ३६।

३. "मंथरा बोली निस्संकोच।
आपको भी तो है कुछ सोच॥" साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ४४

४. तदेव, द्वितीय सर्ग, पृ० ६३

लक्ष्मण के रोष पर दशरथ का आनन्दित होना और उनसे अपने को बन्दी बनाकर रामाभिषेक के लिए अनुप्रेरित करना, परन्तु राम द्वारा प्रतिरोध एवं लक्ष्मण की ओर से क्षमा-याचना, लक्ष्मण का वनगमन के लिए हठ और राम की अनुमति, विलाप करते हुए पिता को छोड़कर राम का अपनी माता से मिलने के लिए चले जाना आदि वर्णित हैं।

वाल्मीकि रामायण के अनुकरण पर यहाँ भी लक्ष्मण वनगमन के समाचार से क्षुब्ध हो उठते हैं,[1] किन्तु यहाँ उनके क्रोध की तीव्रता दशरथ के प्रति उतनी अधिक नहीं है जितनी कैकेयी एवं भरत के प्रति है।[2] दशरथ का लक्ष्मण से अपने को कैद कराकर उनसे कुलधर्म-पालन करने को उत्साहित करना वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित है।[3] परन्तु दशरथ के पास राम के साथ लक्ष्मण का भी जाना और वहीं राम के साथ ही उन्हें भी वनगमन की सूचना प्राप्त होना तथा कैकेयी के स्थान पर अप्रत्यक्ष रूप से दशरथ द्वारा राम-वनगमन की सूचना मिलना[4] कवि की मौलिक उद्भावना है।

'चतुर्थ सर्ग' में देवार्चन में लगी कौशल्या एवं सास-सेवा में रत सीता को राम द्वारा वनगमन का समाचार सुनाना, कौशल्या-विलाप, कौशल्या के महल में सुमित्रा का भी आना और उनका प्रतिरोध करने के लिए राम-लक्ष्मण को उत्साहित करना किन्तु राम का उन्हें आश्वस्त करना, सीता का वनगमन के लिए आग्रह तथा राम की अनुमति, ऊर्मिला का मूर्च्छित होना आदि वर्णित हैं।

इस सर्ग में माता से विदा लेने के समय राम और लक्ष्मण को कौशल्या के महल में ही सीता, सुमित्रा मिल जाती हैं तथा कौशल्या अपनी सौत कैकेयी के पैर पकड़कर "राम के वन न जाने की भीख" तक माँगना चाहती है जो कवि की मौलिक सूझ है।[5]

---

१. वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग २१

२. 'अरे, मातृत्व तू अब भी जताती।
ठसक किसको भरत की है बताती?
भरत को मार डालूँ और तुझको।'' —साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ७६

३. (अ) वा० रा०, २/३४/२६
(ब) ''मुझे बन्दी बनाकर वीरता से,
करो अभिषेक साधन धीरता से।'' —साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८३

४. ''अभागिन! देख, कोई क्या कहेगा?
यही चौदह बरस बन में रहेगा।।'' —तदैव, तृतीय सर्ग, पृ० ७९

५. तदेव, पृ० १००

'पंचम सर्ग' के अन्तर्गत राम का वनगमन, नगरवासियों का उनके पीछे लगना और रथ के आगे लेटना, राम का उन्हें समझाकर वापस भेजना, गुह-मिलन, राम का वटदूध से जटा बाँधना, सुमंत्र की निराशा, गंगापार करना, पुरवधू-प्रसंग, भरद्वाज का चित्रकूट-निवास की सम्मति देना, लक्ष्मण द्वारा निर्मित नौका से जमुना पार करना, वाल्मीकि मुनि से भेंट, चित्रकूट में लक्ष्मण द्वारा मन्दिराकृत कुटी का निर्माण आदि प्रसंग आते हैं। इस सर्ग में अयोध्यावासियों का राम के रथ के आगे लेटकर उन्हें वन जाने से रोकना गाँधीजी के सत्याग्रह का प्रभाव है। यहाँ राम पुरवासियों को सोते हुए नहीं छोड़ते हैं प्रत्युत उन्हें समझाकर वापस लौटाते हैं, यह कवि की मौलिक सूझ है। भरद्वाज द्वारा चित्रकूट-निवास की प्रेरणा, स्वर्निर्मित बेड़े से राम-सीता और लक्ष्मण का यमुना पार करना, लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला का निर्माण आदि वाल्मीकि रामायण के अनुकूल हैं।[१]

'षष्ठ सर्ग' में ऊर्मिला का सखी सुलक्षणा से विरह-वर्णन, रानियों एवं दशरथ का शोक, सुमंत्र का संध्या-समय अवध-प्रवेश, दशरथ-मरण, वशिष्ठ द्वारा राजा के मृत शरीर को तेल में रखवाना और भरत को मातुल-गृह से बुलवाने के लिए दूत भेजना वर्णित है। यह सर्ग वाल्मीकि और तुलसी की रामकथा के अनुकूल है, केवल ऊर्मिला-विरह-निवेदन कवि की मौलिक उद्भावना है।

'सप्तम सर्ग' के अन्तर्गत मातुल-गृह से भरत-शत्रुघ्न का लौटना, शोकाभिभूत एवं उजड़ी अयोध्या का चित्रण, पिता की मृत्यु के समाचार से भरत का शोक तथा कैकेयी के प्रति आक्रोश, उनको कौशल्या द्वारा आश्वस्त करना, वशिष्ठ का भरत को समझाना तथा रानियों को सती होने से रोकना तथा दशरथ के अन्त्येष्टि-संस्कार के प्रसंग आते हैं।

इस सर्ग के प्रसंग वाल्मीकि एवं तुलसी की रामकथाओं से ही अनुप्रेरित हैं। परन्तु यहाँ मन्थरा शत्रुघ्न द्वारा दंडित नहीं होती और कौशल्या को भरत की निर्दोषिता पर पूर्ण विश्वास है; अतएव भरत को अपनी सफाई नहीं देनी पड़ती।

'अष्टम सर्ग' में चित्रकूट की पर्णकुटी में सीता का विहार, भरत को ससैन्य आते देखकर लक्ष्मण की आशङ्का, समस्त अवधवासियों का चित्रकूट पहुँचना तथा मिलन, राम द्वारा पिता का तर्पण-श्राद्ध करना, चित्रकूट-सभा-प्रसंग तथा यहाँ पर कैकेयी का मुखर होना और उसके द्वारा राम को अयोध्या लौट

१. वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग ५५-५६

चलने का आग्रह, भरत के सभी प्रयत्न निष्फल होने पर उनका सीता को राज्य सँभालने का प्रस्ताव रखना कवि की मौलिक उद्‌भावना है। जाबालि का सांसारिकता और नास्तिकता का उपदेश तथा राम द्वारा उसका खंडन वाल्मीकि रामायण से प्रभावित है।[1] उक्त सभा में जनक का आगमन संस्कृत-काव्य-परम्परा से अनुप्रेरित न होकर तुलसी के मानस के ही समान है। किन्तु यहाँ सभा द्वारा निर्णय लिये जाने के उपरान्त जनक पहुँचते हैं।

सीता द्वारा प्रेरित लक्ष्मण का पर्णकुटी में तालसम्पुट लाने के सन्दर्भ में ऊर्मिला से मिलन कवि की मौलिक उद्‌भावना है। भरत का पादुका लेकर प्रत्यावर्तन परम्परागत प्रभाव का परिचायक है।

'नवम सर्ग' में करुण-रस से ओत-प्रोत विरहिणी ऊर्मिला का अपनी सखी से उन्मादावस्था में वियोग-कथन है; वर्णन-शैली की दृष्टि से कवि उत्तरराम-चरितकार का ऋणी है जिसे उसने स्वयं स्वीकार किया है[2]; परन्तु उसका प्रसंग-निरूपण सर्वथा मौलिक है।

'दशम सर्ग' में ऊर्मिला अपने विगत बाल्यकाल की कथा-स्मृति संचारी रूप में सरयू से कहती है। इसके अन्तर्गत राम-लक्ष्मण का कौशिक मुनि के साथ उनके यज्ञरक्षार्थ जाना, ताड़का एवं सुबाहु आदि राक्षसों का वध, अहल्योद्धार, धनुर्भंग, सीता-स्वयंवर, भार्गव-प्रसंग, विवाह-वर्णन तथा लक्ष्मण-ऊर्मिला के सुखमय दाम्पत्य-जीवन का निरूपण किया गया है। संक्षेप में वर्णित प्रसंग पारम्परिक रामायणी कथा के ही अनुकूल हैं, केवल लक्ष्मण-ऊर्मिला-प्रसंग ही कवि की मौलिक कल्पना पर आधारित है।

'एकादस सर्ग' में ध्यानस्थ भरत के समक्ष माण्डवी का भोजन लेकर आना, उसके द्वारा माताओं का कष्ट एवं विरहिणी ऊर्मिला के निराहार-व्रत के सम्बन्ध में निवेदन, भरत का भी ग्लानियुक्त होना किन्तु माण्डवी द्वारा पति को पलायन के स्थान पर जीवन के प्रति विश्वास का स्थापन एवं प्रोत्साहन प्रदान करना, पुनश्च भरत के समक्ष शत्रुघ्न द्वारा राज्य की समृद्धि एवं चतुर्दिक उन्नति का वर्णन, भरत का मानसरोवर के एक योगी से प्राप्त संजीवनी के विषय में कथन, शत्रुघ्न का एक व्यापारी से खर-दूषण-वध तक सुनी हुई राम-कथा का निरूपण, फिर

---

१ वा० रा०, अयोध्या०, सर्ग १०६

२. "करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई—
मेरी विभूति है जो उसको "भवभूति क्यों कहे कोई।"
—साकेत, नवम सर्ग, पृ० २६७।

संजीवनी आनयन हेतु जाते हुए हनुमान का भरत के वाण से आहत होकर गिरना, अयोध्या में पूर्व प्रतिष्ठित संजीवनी के उपचार से उनका सचेत होना तथा हनुमान द्वारा आधे अरण्यकांड अर्थात् खर-दूषण-वध के बाद से लक्ष्मण-शक्ति लगने तक की सभी घटनाओं का वर्णन करना अन्तर्निहित है ।

व्यापारी अथवा हनुमान द्वारा वर्णित लगभग सम्पूर्ण राम-कथा वाल्मीकि रामायण के ही अनुकरण पर है । वाल्मीकि रामायण की भाँति यहाँ भी हनुमान सीता को प्रणाम करके उन्हें स्वयं मुद्रिका देते हैं, वृक्ष से गिराते नहीं ।[१] संजीवनी का नन्दिग्राम में प्रतिष्ठित होना, व्यापारी तथा हनुमान द्वारा राम-कथा का वर्णन कवि की मौलिक प्रतिभा के परिचायक हैं । यहाँ विभीषण रावण की संकुचित राष्ट्रीयता के विरोध और विश्वकल्याण की भावना से प्रेरित होकर राम की शरण में जाता है ।[२] इसी प्रकार लक्ष्मण को शक्ति लगने पर यहाँ राम शोक करने के स्थान पर अत्यन्त क्रुद्ध हो शत्रु-सेना का संहार करने लगते हैं तथा "भाई का बदला भाई ही" कह कर कुम्भकर्ण का वध कर डालते हैं । रावण को अपने भाइ की मृत्यु से विह्वल देख राम भी द्रवित हो जाते हैं ।[३] उक्त प्रसंग कवि की मौलिक विचारधारा के परिचायक हैं ।

'द्वादस सर्ग' के अन्तर्गत हनुमान द्वारा लक्ष्मण-शक्ति की सूचना देने पर साकेतवासियों की रण-सज्जा, शत्रुघ्न के नेतृत्व में सेना के प्रयाण के समय ही ऊर्मिला का आ जाना तथा उसका वीर पत्नी एवं भारत माता के रूप में प्रकट होना, वशिष्ठ-आगमन तथा उनका मंत्र-यष्टि द्वारा क्षितिज पर साकेतवासियों को लक्ष्मण-मूर्च्छा से लेकर लंका-युद्ध की शेष घटनाएँ दिखाना, तत्पश्चात् राम-भरत-मिलन का मार्मिक दर्शन और अन्त में लक्ष्मण-ऊर्मिला-मिलन और उनके द्वारा राम-राज्य का जयगान वर्णित है ।

दिव्य-दृष्टि द्वारा वशिष्ठ का अवधवासियों को लंकायुद्ध की सभी घटनाएँ दिखाने की प्रेरणा सम्भवत: कवि को परोक्ष रूप से महाभारत के व्यास द्वारा संजय को प्रदत्त दिव्य-दृष्टि से मिली हो, किन्तु राम-कथा के उपर्युक्त प्रसंग वाल्मीकि रामायण के ही अनुकूल हैं ।

---

१. वा० रा०, ५/३६/२ ।

२. "किसी एक सीमा में बँधकर
रह सकते हैं क्या ये प्राण ?
एक देश क्या अखिल विश्व का,
तात, चाहता हूँ मैं त्राण ।" —साकेत, एकादश सर्ग, पृ० ४३७ ।

३. तदेव, एकादश सर्ग, पृ० ४४५ ।

द्वितीय अध्याय

राम

□

श्रीराम पुर्वतापनीयोपनिषद के अनुसार 'राति राजते वा महीस्थित: सन् इति राम:'' अर्थात् जो महीतल पर स्थित होकर भक्तजनों का सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजा के रूप में सुशोभित होते हैं, वे राम हैं। इस विग्रह के अनुसार 'राति' या 'राजते' का प्रथम अक्षर 'रा' और 'महीस्थित' का आदि अक्षर 'म' लेकर 'राम' शब्द बनता है। उस अनन्त नित्यानन्द स्वरूप चिन्मय ब्रह्म में योगीजन रमण करते हैं, इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पद के द्वारा प्रतिपादित होता है।[1]

ब्रह्मत्व

हिन्दी के सभी प्रमुख रामकथाकारों ने राम को ईश्वर के अवतार रूप में स्वीकार किया है। राम के ब्रह्मत्व के लिए संस्कृत वाङ्मय की वह समस्त भारतीय परम्परा उत्तरदायी है जिसमें रामोपनिषद, रामतापनीयोपनिषद, महाभारत, वाल्मीकि, अध्यात्म एवं आनन्द रामायण, लोमश तथा अगस्त्य आदि संहिताग्रंथ; विष्णु, भागवत, कूर्म, पद्मादि पुराण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव एवं रघुवंश स्मृति संस्कृत के नाटक तथा ललित काव्य विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

तुलसी के राम सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, सर्वशक्तिमान परात्पर पूर्णब्रह्म हैं। वे अज, अव्यक्त, अकल, अनीह एवं निर्गुण निराकार होते हुए भी भक्तों के प्रेमवश भूद्धार हेतु समय-समय पर अवतरित होते एवं मनुज अनुसारी अनेक लौकिक लीलाएँ निष्पन्न करते हैं।

जब-जब धर्म की हानि एवं अधर्म की वृद्धि होती है, राक्षस साधुजनों को पीड़ित करने लगते हैं, तब-तब गीता[2] के कृष्ण की भाँति तुलसी के राम भी भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार हेतु अवतरित होते हैं।[3] यही नहीं, सूर एवं केशव के राम भी पूर्ण पुरातन परब्रह्म ही हैं। वेदों के लिए अगम होते हुए भी वे भूद्धार हेतु

---

१. श्रीरामपूर्व० (उप० अंक), १/१-६।

२. ''यदा यदाहि धर्मस्य ......'' —गीता, ४/७

३. जब जब होइ धरम कै हानी.......'' —मानस, १/१२१/-६-८

सगुण विग्रह धारण करते हैं।[१] मैथिलीशरण गुप्त,[२] पं० रामचरित उपाध्याय,[३] डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र[४] तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'[५] आदि आधुनिक राम-कथाकारों ने भी इसी प्रकार परात्पर निर्गुणनिराकार ब्रह्म को भूद्धार एवं भक्त-वात्सल्य हेतु रामरूप में अवरित होते दिखलाया है।

तुलसी के राम वस्तुतः श्वेताश्वतरोपनिषद्[६] के निर्गुण, निराकार सर्वशक्ति-सम्पन्न ब्रह्म ही हैं जो बिना पैरों के चल लेते हैं, बिना कान के सुन लेते हैं, बिना नेत्र के सम्यक दृष्टा हैं, हाथ न होते हुए भी सब कुछ करने में समर्थ हैं, मुख, वाणी एवं प्राणादि इन्द्रियों से रहित होने पर भी तद्‌द्विषयों के सक्षम भोक्ता हैं।[७] यही

---

१. (अ) सूरदास—"ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम सरीर।"
"प्रगट भये दसरथ-गृह, पूरन चतुर्व्यूह अवतार।"
"रामचंद्र पूरन पुरुषोत्तम, नेक नयन जब हेरे।"
—सूर रामचरितावली, पद ४, २०१, २०६ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

(ब) केशवदास—"सोई परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतार मणि।"
—रा० चं०, १/१७।

"तुम अमल अनन्त अनादि, देव, नहि वेद बखानत सकल मेव।
सबको समान नहिं बैर नेह, सब भक्तन कारन धरत देह॥"
—तदेव, ८/४६।

२. "हो गया निर्गुण सगुण साकार है, ले लिया अखिलेश ने अवतार है।
× × ×
भक्त-वत्सलता इसी का नाम है, और वह लोकेश लीलाधाम है।
पथ दिखाने के लिए संसार को, दूर करने के लिए भू-भार को।
पापियों का जान लो अब अन्त है, भूमि पर प्रकटा अनादि अनन्त है।"
-- साकेत, प्रथम सर्ग, पृ०१८।

३. रामचरित चिन्तामणि, द्वितीय सर्ग, पृ० १०।

४. कौशल किशोर, द्वितीय सर्ग, पृ० १६।

५. ऊर्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० २६६।

६. "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रुणोत्य कर्णः।
स वेत्ति वेषं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम्॥"
—श्वेताश्वतरोपनिषद्, ३/१६

७. "बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ विधि नाना॥
आननरहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥"
—मानस, १/११८/३-४

नहीं, वे अध्यात्म रामायण के राम की भाँति ही अकल, अनीह, अज, सच्चिदानन्द, सहजप्रकाशरूप, परात्पर, सर्वव्यापक ब्रह्म ही हैं जो भक्तों के लिए मानव-शरीर धारण करके अनेक चरित किया करते हैं।[1] राम परमानन्द, प्रकाशक एवं परात्पर पुराणपुरुष हैं। उन्हीं मायापति के कारण जड़माया भी चेतनवत प्रतीत होती है।[2] इस सन्दर्भ में तुलसी अध्यात्म रामायण के ही सर्वाधिक ऋणी हैं। उनके राम अध्यात्म रामायण की ही भाँति मनुष्य नहीं, साक्षात् प्रकृति से परे परमात्मा हैं। अजन्मा होकर भी सृष्टि के सर्जनहार, अविनाशी होकर भी जगत के संहारक हैं। यही नहीं, मायापति होते हुए भी वे मायामानुष रूप धारणकर दुष्टों का संहार एवं सज्जनों का उपकार किया करते हैं।[3] अध्यात्म रामायण में शुकदैत्य रावण को समझाता हुआ

---

१. (अ) "रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशम कल्पषम्॥"
—अध्यात्म०, १/१/३२-३३

(ब) "एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द पर धामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥"
—मानस, १/१३/२

"व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत, चरित्र अनूप॥"
—तदेव, १/२०५

२. (अ) "सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण, एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोक विमोहनीयां, घटे परानुग्रह एव रामः॥"
—अध्यात्म०, १/५/४६

(ब) "राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना॥"
—मानस, १/२/१५

"जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू।
जासु सत्यता में जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥"
—तदेव, १/११७/४

३. (अ) "रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः।"—अध्यात्म० १/४/१२
"श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदास्थितः।
बहिरन्तश्च भूतानां समः सर्वत्र संस्थितः।
नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामलः॥"—तदेव, ६/२/३६-३७

कहता है कि "राम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, वे साक्षात् आदिनारायण परमात्मा हैं।[१] यही बात 'मानस' के जाम्बवान भी वानरों से कहते हैं :—

"तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥"[२]

यही भाव केशव ने मारीच के मुख से व्यक्त कराये हैं :—

"रामहि मानुष के जनि जानौ। पूरन चौदह लोक बखानौ ॥"[३]

तुलसी के राम अगुन, अदभ्र, गिरागोतीत, सर्वदर्शी, सर्वान्तिर्यामी, नित्य, निरंजन, मायातीत एवं प्रकृति से परे होते हुए भी सभी प्राणियों के हृद्देश में सम्यक रूप से निवास करते हैं।[४] मानसकार को ये भाव स्पष्टतः अध्यात्म रामायण,[५] गीता[६] एवं भागतव[७] से मिले प्रतीत होते हैं।

(ब) "तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिन्धु मानुष तनु धारी ॥
—मानस, ५/३९/१-२

१. अध्यात्म०, ६/४/४०-४२
२. मानस, ४/२६/६
३. रामचन्द्रिका, १२/९
४. (अ) "अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता ॥
निरमम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥"
—मानस, ७/७२/३-४
"अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥"
—तदेव, १/२३/४
(स) "तुम ब्रह्मादि जनक जगस्वामी। ब्रह्म सकल उर अन्तरजामी ॥"
—तदेव, १/१५०/६
"सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अन्तरजामी ॥"
—तदेव, १/११८/२
५. "रामः परातमा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि। अध्यात्म०, १/१/१७
"जानन्ति नेवं हृदये स्थितं वे चमीकरं कण्ठगतं यथाज्ञाः।
यथाप्रकाशो न तु विद्यते रवो ज्योतिः स्वभावे परमेश्वरे तथा।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविधा कथं स्यात्परतः परातमनि ॥"
६. "ईश्वरो सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति.... ॥" —गीता, १८/६१
"सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो...... ॥" —तदेव, १५/५
७. भागवत—१०/४६/३६

राम के अवतारत्व का रहस्य प्रकट करते हुए अध्यात्म रामायण में वामदेव मुनि श्रीराम को आदिनारायण विष्णु, जानकी को योगमाया लक्ष्मी और लक्ष्मण को शेषावतार बतलाते हैं। ये ही राम माया का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश होकर सृष्टि का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं।[१] यही बात 'मानस' में वाल्मीकि मुनि अपने आश्रम पर राम का स्वागत करते हुए कहते हैं।[२]

अध्यात्म रामायण के वशिष्ठ औपरोहित्य जैसे निन्द्य कर्म को ब्रह्मा के कहने पर इसी कारण स्वीकार कर लेते हैं कि इक्ष्वाकु वंश में परमात्मा रामरूप में अवतार धारण करेंगे—

"पौरोहित्यमयं जाने विगर्ह्यं दृष्यजीवनम् ।
इक्ष्याकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते ।।
इतिज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ।।"[३]

बिल्कुल यही बात मानस के वशिष्ठ भी भगवान राम से कहते हैं—

"उपरोहित्य कर्म अति मंदा । वेद पुरान सुमृति कर निंदा ।।
जब न लेउँ मैं तब विधि मोही । कहा लाभ आगे सुत तोही ।।
परमातमा ब्रह्म नर रूपा । होइहि रघुकुल भूषन भूपा ।।"[४]

अध्यात्म रामायण के समान मानस का म्रियमाण बालि भी राम को योगिजनदुर्लभ साक्षात् परमेश्वर बतलाता हुआ कहता है कि जो मृत्यु के समय आपका नाम ले लेता है, वह पुरुष परमपद प्राप्त कर लेता है।[५] आनन्द रामायण की छापा में मानस का बालि तारा से राम के ब्रह्मत्व की ही घोषणा करता है।[६]

---

१. अध्यात्म०, २/५/११-१३
२. मानव, अयोध्या०, छंद १२६ ।
३. अध्यात्म०, २/२/२८-२९
४. मानस, ७/४८/३-४
५. (अ) अध्यात्म, ४/२/६५-६८
(ब) मानस, ४/१०/२ से छंद १ तक ।
६ (अ) "ततारावचनं श्रुत्वा बाली तां वाक्यमब्रवीत ।
जानाम्यहं राघवं तं नररूपधरं हरिम् ।।
तस्य हस्तान्मृतिर्मेऽस्ति गच्छामि परमं पदम् ।"
—आनन्द०, सारकांड, ८/५४-५५
(ब) "कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदापि मोहि मारिहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ।।" —मानस, ४/७

तुलसी के राम वस्तुतः उपनिषदों[१] के सर्वव्यापक ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं।[२] मानस में वाल्मीकि मुनि ने राम के सर्वव्यापकत्व पर प्रकाश डालते हुए जो उनके रहने योग्य चौदह स्थानों का निरूपण किया है, वह पूर्णतः अध्यात्म रामायण से प्रभावित है।[३] इसी प्रकार सूर एवं केशव के राम भी सर्वान्तर्यामी एवं सर्वव्यापक विभु ही हैं।[४]

राम-जन्म

अवतरण सम्बन्धी वरदान

तुलसी के 'मानस' में भगवान राम का अवतरण सम्बन्धी प्रसंग एवं वरदान श्रीमद्भागवत[५] से अनुप्रेरित एवं अध्यात्म रामायण[६] से प्रभावित है।[७] यहाँ भागवत एवं अध्यात्म रामायण[८] की भाँति पृथ्वी राक्षसों से संतप्त हो गौरूप धारण कर ब्रह्मा के पास अपनी व्यथा सुनाने जाती है। भागवत[९] एवं अध्यात्म रामायण[१०] में

---

१. (अ) "ब्रह्मवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥
— मुण्डकोपनिषद, द्वितीय मुण्डक, २/११

(अ) एतरेयोपनिषद, ३/३

२. "राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना ॥"
—मानस, १/११६/८

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥"
— तदेव, १/१८५/३

३. (अ) मानस, २/१२८/२/से दो० १३१ तक
(ब) अध्यात्म०, २/६/५२-६३

४. (अ) सूरदास—"अन्तरजामी अति हित मानि, भोजन कीने स्वाद बखानि।"
—सूर रामचरितावली, पद ५७ (गीता प्रेस, गोरखपुर)
(ब) केशवदास—रामचन्द्रिका, १२/६

५. भागवत, १०/१/१७-२५

६. अध्यात्म०, १/सर्ग २

७. मानस, १/छंद १८४ से दो० १८७ तक।

८ अध्यात्म०, १/२/६

९. भागवत, १०/१/९

१०. अध्यात्म०, १/२/७

ब्रह्मा समस्त देवताओं सहित क्षीरसागर के तट पर जाकर पुरुषसूक्त से सर्वान्तर्यामी हरि की स्तुति करते हैं। अध्यात्म रामायण[१] में श्रीहरि पूर्व दिशा में प्रकट होते हैं। इसके विपरीत भागवत में ब्रह्मा को समाधि की स्थिति में अवतार लेने की भविष्य-वाणी सुनाई पड़ती है।[२] परन्तु "मानस" में देवों तथा मुनियों द्वारा बैकुंठ एवं क्षीरसागर जाने के अभिमत प्रकट करने पर भी सभी लोग शंकर की सम्मति से उसी स्थल पर सर्वत्र समानरूप से व्यापक हरि की स्तुति करने लगते हैं तथा भागवत के विपरीत यहाँ केवल ब्रह्मा ही नहीं वरन् सभी लोग ब्रह्मवाणी सुनते हैं।[३] इस प्रकार श्रीमद्भागवत एवं अध्यात्म रामायण से प्रेरित होने पर भी मानस के राम क्षीर सागर स्थित या बैकुंठवासी कमलापति विष्णु न होकर सर्वत्र व्यापक परात्पर पूर्णब्रह्म ही हैं। परन्तु ब्रह्म का अपने अंशों सहित दशरथ-पुत्र रूप में उत्पन्न होने एवं आदिशक्ति योगमाया के सीतारूप में अवतरित होने के वरदान के सन्दर्भ में मानसकार अध्यात्म रामयण का ऋणी है।[४] 'मानस' में ब्रह्मा की सम्मति से देवों का अपने अंशों से वानररूप धारण करने का प्रसंग भी अध्यात्म रामायण पर ही आधारित है।[५]

पुत्रेष्टि यज्ञ

अध्यात्म रामायण की ही भाँति 'मानस' का पुत्रेष्टि यज्ञ प्रसंग वर्णित है। दोनों में दशरथ गुरु वशिष्ठ से पुत्र-अभाव की व्यथा सुनाते हैं। वशिष्ठ शृंगी ऋषि से पुत्रेष्टि यज्ञ करवाते हैं।[६] अध्यात्म रामायण में वशिष्ठ दशरथ को आदेश देकर शृंगी ऋषि को बुलवाते हैं परन्तु मानस में वशिष्ठ स्वयं ऋषि को बुलाकर यज्ञ करवाते हैं।[७] फलतः यज्ञ से अग्निदेव प्रकट होकर दशरथ को हवि प्रदान करते हैं।[८] सूर एवं केशव आदि ने इन प्रसंगों का उल्लेख नहीं किया है।

---

१. अध्यात्म०, १/२/८

२. भागवत, १०/१/२१

३. मानस, बाल० दो० १८६ से दो० १८७ तक।

४. (अ) अध्यात्म०, १/२/२५-२८
   (ब) मानस, १/१८७/१-३; १/१५२/२-४

५. (अ) अध्यात्म०, १/२/२९-३२
   (ब) मानस, १/१८७

६. अध्यात्म, १/३/६

७. "शृंगी रिषिहि वशिष्ठ बुलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥"
   —मानस, १/१८९/३

८. (अ) मानस, १/१८९/३ से दो० १८९ तक।
   (ब) अध्यात्म०, १/३/२-९

हवि-वितरण

मानस की हवि-वितरण प्रक्रिया वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण से प्रेरित होते हुए भी उनसे सर्वथा भिन्न है। क्योंकि वाल्मीकि रामायण[1] में दशरथ खीर का अर्ध भाग कौशल्या को देने के उपरान्त अवशिष्ट का आधा भाग (१/४) सुमित्रा को देते हैं। फिर बचे हुए का आधा भाग (१/८) कैकेयी को एवं शेष आधा भाग (१/८) पुनः सुमित्रा को दे देते हैं। अध्यात्म रामायण में दशरथ पायस को कौशल्या और कैकेयी में आधी-आधी बाँट देते हैं फिर कौशल्या और कैकेयी अपने-अपने में से आधा-आधा भाग सुमित्रा को दे देती हैं।[2]

मानस[3] का हवि-वितरण-प्रसंग रामायण मंजरी[4] से अधिक प्रभावित है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ सुमित्रा स्वयं हवि के दो भाग कर लेती है जब कि मानस में दशरथ चतुर्थांश के दो भाग करके उन्हें कौशल्या और कैकेयी के हाथों से सुमित्रा को दिलाते हैं।

जन्म-काल

जन्म-काल के सम्बन्ध में सूर/तुलसी प्रभृति हिन्दी-रामकथाकारों ने वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण का अनुकरण किया है। मास, दिन एवं तिथि में पूर्णसाम्य है परन्तु नक्षत्र में मतवैभिन्य है। वाल्मीकि रामायण[5] एवं अध्यात्म रामायण[6] में राम का जन्म चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में होता है तथा पाँच ग्रह अपने उच्च स्थान पर रहते हैं। परन्तु तुलसी[7] ने अभिजित नक्षत्र

---

१. वा० रा०, १/६/२७-२९

२. अध्यात्म० १/३/१०-१२

३. "अर्धभाग कौशल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयउ ॥
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि ॥
—मानस, १/१९०/१-२

४. रामायण मंजरी, बाल०, ७०।

५. वा० रा०, १/१८/८-१०

६. अध्यात्म०, १/३/१४-१५

७. "नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विश्रामा ॥"
—मानस, १/१९१/१

का उल्लेख किया है जबकि सूर[१] ने पुष्य नक्षत्र का ।

राम का प्राकट्य

'मानस' में राम माता कौशल्या के समक्ष अपने आयुधों सहित विष्णुरूप में अवतरित हो उन्हें दर्शन देते हैं,[२] जो भागवत के कृष्ण का कंस के कारागार में देवकी को दर्शन देने के समरूप है ।[३] श्रीमद्भागवत से प्रेरित होते हुए भी वस्तुतः रामचरित-मानस पर सीधा प्रभाव अध्यात्म रामायण का ही है ।[४] मानस में कौशल्याकृत स्तुति[५] एवं उनकी विष्णुरूप छोड़कर सामान्य शिशुरूप होने की प्रार्थना भी अध्यात्म रामायण से पूर्णतः प्रभावित है ।[६] अध्यात्म रामायण की ही भाँति मानस में भी माता की प्रार्थना पर राम शिशुरूप होकर रुदन करने लगते हैं ।[७] मानस में दशरथ का पुत्रजन्म

---

१. (अ) सूर सारावली (सूर रामचरितावली, गीता प्रेस गोरखपुर), पद २०१
"पुष्य नक्षत्र, नौमी जु परम दिन, लग्न सुद्ध सुमवार ।
प्रगट भए दशरथ गृह, पूरन चतुर्व्यूह अवतार ।।"
(ब) "पूछत रिषिहिं अजोध्या को पति कहिए जनम गुसाई ।
भौमवार नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई ।।"
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), १/३

२ मानस, १/दो० १९१, छंद १ ।

३. श्रीमद्भागवत, १०/३/९-१०

४. अध्यात्म०, १/३/१४-१८

५. "माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा ।।
—मानस, १/१९२, छंद ४

६ "उपसंहर विस्वात्मन्नदोरूपमलौकिकम् ।
दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम् ।।
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्या म्युत्कटं तमः ।। —अध्यात्म०, १/३/२९

७. (अ) "इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोदह ।"
—तदैव, १/३/३५

(ब) "सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ।"
—मानस, १/१९२/ छंद ४

से ब्रह्मानन्दतुल्य सुखलाभ[१] एवं उनका गुरु वशिष्ठ को बुलावा भेजना[२] तथा गुरु द्वारा नान्दीमुख श्राद्ध निष्पन्न कराके ब्राह्मणों को दान देना[३] अध्यात्म रामायण के ही अनुकरण पर हुआ है।[४]

नामकरण

नामकरण के प्रसंग में तुलसी[५] अध्यात्म रामायण[६] एवं आनन्द रामायण के[७] ऋणी हैं।

बाल-क्रीड़ा

'मानस' में राम बालक्रीड़ा एवं उनकी चपलता[८] यद्यपि श्रीमद्भागवत[९], आनन्द रामायण[१०] एवं रामरहस्य[११] से अनुप्रेरित है किन्तु अधिक प्रभाव अध्यात्म रामायण[१२] का ही परिलक्षित होता है। 'मानस' की कौशल्या अध्यात्म रामायण[१३] की ही भाँति राम की शिशुलीला से भ्रमित हो उनसे उनकी माया से प्रभावित न होने की प्रार्थना करती हैं।[१४] सत्योपाख्यान[१५] की ही तरह रामचरितमानस में भी राम-

---

१. मानस, १/१९३/२
२. तदैव, १/१९३/४
३. तदैव, १/१९३
४. अध्यात्म०, १/३/३६ ; १/३/३९
५. "जौ आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकर तैं त्रैलोक सुपासी॥

× × ×

गुरु वशिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार।"

—मानस १/१९७/३ से दो० १९७ तक

६. अध्यात्म०, १/३/४०-४१
७. आनन्द रामायण, सारकाण्ड, सर्ग २/११

"रमलाद्राम एवासौ लक्षणैर्लक्ष्मणस्त्विवति।
भरणाद् भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रु तर्जनात्॥"

८. मानस, १/२०२ दो० से दो० २०५ तक।
९. श्रीमद्भागवत, १०/८
१०. आनन्द रामायण, सारकाण्ड, द्वितीय सर्ग
११. राम-रहस्य, सर्ग ३
१२. अध्यात्म०, १/३/४७-५८
१३. अध्यात्म०, १/३/२८
१४. मानस, १/ दो० २०२
१५. सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध, २६/२८

जन्म देखने के लिए शंकर तथा काकभुशुण्डि मानवरूप धारण कर अवध की वीथियों में चक्कर लगाते हैं।[1] परन्तु सत्योपाख्यान में शंकर एवं भुशुण्डि अदृश्य रहकर राम-जन्म देखते हैं। साथ ही मानस का भुशुण्डि-मोह-प्रसंग जिसमें काक दशरथ के प्रांगण में क्रीड़ारत बालक राम के हाथ का पूआ लेने की चेष्टा करता है और फिर राम का हाथ प्रकृति के सातों आवरणों तक उसका पीछा करता है[2] सत्योपाख्यान से ही प्रेरित प्रतीत होता है। परन्तु सत्योपाख्यान में राम गरुड़ पर आरूढ़ हो त्रिलोक में उसका पीछा करते हैं। अन्त में 'मानस' की ही तरह काक उनकी शरण एवं भक्ति ग्रहण करता है।[3]

रामचरितमानस की कौशिल्या अपने वत्स राम के बालचरित का गान एवं स्मरण श्रीमद्भागवत के कृष्णजननी यशोदा की भाँति ही करती हुई आनन्दित रहती हैं।[4]

'मानस' के शिशु राम अपने मुख में कौशल्या को विराट रूप का दर्शन भागवत के मिट्टी खाये हुए कृष्ण के मुँह में यशोदा द्वारा देते हुए विराट रूप की भाँति कराते हैं तथा कौशल्याकृत स्तुति भी यशोदा की कृष्ण के प्रति की हुई प्रार्थना से प्रेरित प्रतीत होता है।[5] अध्यात्म रामायण में भी यही भाव द्रष्टव्य है।[6] आनन्द रामायण[7] एवं अध्यात्म रामायण[8] की ही छाया में 'मानस'[9] में भी शैशवकाल से ही लक्ष्मण श्रीराम का और शत्रुघ्न भरतजी का अनुगमन करते थे। साथ ही पिता दशरथ के भोजन के समय बालक राम की चपलता एवं कौशल्या का उनके पीछे-पीछे दौड़ना भी मानसकार ने उक्त दो ग्रंथों की भाव-भूमि पर ही देखा है।[10] 'मानस' के राम का प्रातःकाल उठकर अपने माता-पिता एवं गुरु को

---

१. मानस, १/१६५/२-३
२. तदेव, ७/७७/५ से दो० ७६ तक
३. (अ) सत्योपाख्यान, पूर्वार्द्ध, अध्याय २६
   (ब) मानस, ७/८४ दो०
४. (अ) "प्रेम मगन कौसल्या, निसिदिन जात न जान।
   सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान॥"—तदेव, बाल०, २/२००
   (ब) "यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितनिव।
   दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत॥"—श्रीमद्भागवत, १०/६/२
५. (अ) मानस, १/दो० २०१ से दो० २०२ तक
   (ब) श्रीमद्भागवत, १०/८/३७-४५
६. "जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः।"...... —अध्यात्म०, १/३/२५
७. आनन्द रामायण, सारकाण्ड, २/१२।
८. अध्यात्म०, १/३/६१-६२।
९. मानस, १/१६८/२।
१०. (अ) अध्यात्म०, १/३/४७-४६।
   (ब) आनन्द रामायण, १/२/२०-२२।
   (स) मानस, १/२०३/३ से दो० २०३ तक।

प्रणाम करना तथा वेद-पुराण गुरुमुख से सुनकर अपने लघु भ्राताओं को समझाना पूर्णतः अध्यात्म रामायण पर ही आधारित है।[1]

सूर एवं केशव आदि के रामपरक काव्यों में उक्त विशिष्ट प्रसंगों का अभाव है।

रूप-सौन्दर्य

आदिकवि वाल्मीकि ने राम का सौन्दर्य प्रमुखतः उनके तेजस्वी वीरवेष में ही देखा है[2], परन्तु आगे चलकर भक्तिमार्गीय साधना-पद्धति में—नाम, रूप, लीला, धाम—ये चार प्रमुख आधार-स्तम्भ होने के कारण भागवतादि पुराण परम्परा के भक्तिप्रवर ग्रंथों से प्रभावित एवं प्रेरित सूर तथा तुलसी प्रभृति भक्त-कवियों ने कृष्ण एवं राम के आकर्षक रूप-सौन्दर्य का मनोमुग्धकारी चित्रण किया। वस्तुतः सगुण-साकार विग्रह की उपासना का प्रथम सोपान ही उसकी अनूप रूप-माधुरी के प्रति आकृष्ट एवं प्रलुब्ध होकर आत्मसमर्पण करना होता है। बालरूप अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक और सौन्दर्य-सम्भाव्य है। अतएव भक्तकवियों की वृत्ति भगवान के बालरूप में ही अधिक रमी है। किंबहुना बालरूप पर उनका सर्वस्व न्यौछावर है।[3]

---

१. (अ) तदेव, १/२०५/३-४।
   (ब) अध्यात्म०, १/३/६४-६५।

२. "विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवोमहाहनुः। महारस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः॥
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः। समःसमविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः॥
प्रतापवान्। पीनवक्षो विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुमलक्षणः॥

—वा० रा०, १/१/६-११

३. सूर —(अ) हरि जू की बालछवि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज सोभा हरनि······"

—श्रीकृष्ण बालमाधुरी, गीताप्रेस, पद १३

(ब) "ललन! हौं या छवि ऊपर वारी।
बालगुपाल! लगौ इन नैननि रोग बलाइ तिहारी॥"

—तदेव, पद ४

(स) "लाल! हौं वारी तेरे मुख पर······आदि।

—तदेव, पद ५

तुलसी—"बंदउ बालरूप सोइ रामू। सब सधि सुलभ जपत जिसु नामू॥"

—मानस, १/११२/२

"बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना॥"

—तदेव, ७/११३/४

रामावतार होने के कुछ पूर्व स्तुति करते हुए पितामह ब्रह्मा ने अध्यात्म रामायण में भगवान हरि के जिस दिव्यरूप का अवलोकन किया था[1] उसी से अनुप्रेरित किन्तु कहीं अधिक विमोहक सौंदर्य-सुधा का अतृप्त मन से मानस के मनु-शतरूपा 'विश्ववास' भगवान में करते हैं।[2]

कवितावली—"अरविंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन भृंग पिएं।
मन मो न बस्यो अस बालक जों तुलसी जग में फलु कौन जिएँ॥"
पद—२

"घुँघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करैं तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की॥"
पद—५

[शोक को छुड़ाने वाले शोभाधाम राम के ऐसे रूप को देखकर जो चकित न हुए, उनको धिक्कार है।]

"तुलसी मनरंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समशील उमे नवनील सरोरुह से बिकसे॥"पद—१

१. "कथंचिद्दृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम्।
इन्द्रनील प्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम्॥
किरीट हार केयूर कुण्डलैः कटकादिभिः।
विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभ प्रभयान्वितम्॥
स्तुवद्भिः सनकाद्यैव पार्षदैः परिवेष्ठितम्।
शङ्खचक्रगदापद्म वनमाला विराजितम्॥
स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च।
श्रिया भूम्या च सहितं गरुडो परिसंस्थितम्॥ —अध्यात्म०, १/२/६-१२

२. "नील सरोरुह नीलमनि, नील नीलधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि-कोटि सतकाम॥
सरद मयंक बदन छवि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुन्दर नासा। विधुकर निकर बिनिन्दक हासा॥
नव अम्बुज अंबक छवि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर बन माला। पदिक हार भूषन मनि जाला॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
करिकर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥
तडित विनिंदिक पीतपट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि॥

तुलसी ने माता कौसल्या के समक्ष आविर्भूत चतुर्भुज रूप का सौंदर्य-निरूपण यद्यपि अध्यात्म रामायण[१] एवं भागवत[२] से प्रेरित होकर किया है, किन्तु उनकी वृत्ति खरारि राम में रमी होने के कारण उन्होंने उस चतुर्भुज रूप को 'शोभासिंधु' कह कर शीघ्र ही विराम दे दिया—

> "लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।
> भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥"[३]

फिर वे द्विभुज रामरूप पर इतने अनुरक्त हुए कि अकेले 'मानस' में ही सात बार उस अनुपम रूपराशि का नख-शिख-वर्णन कर डाला, जिसका अवलोकन मनु-शतरूपा[४] या माता कौसल्या[५] ने ही नहीं किया प्रत्युत उस रूपमाधुरी का पान मिथिला के शिशुओं[६] तथा जानकी एवं उनकी सखियों[७] ने तो छककर किया ही साथ ही उसी मदनमोहन रूप को धनुषयज्ञ में समस्त पुरवासियों[८] ने भी अपने-अपने ढंग से परखा। यही नहीं, मदनमोहन राम की नख-शिख-सुषमा को निरखकर वैदेही अपना हृदय ही हार बैठी[९] जबकि बालकरूप राम के नख-शिख-सौंदर्य को देखकर परमज्ञानी भुशुण्डि[१०] की ज्ञानराशि ही बह गई। वस्तुतः तुलसी ने भगवान राम का जितना मर्यादित किन्तु पूर्ण सौंदर्य-चित्रण किया है उतना अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है।

जिस रूपमाधुरी का स्फुरण तथा उद्दीपन दशरथ के मणिमय प्रांगण एवं अवध की वीथियों में हुआ उसी ने रूपराशि बनकर योगिराज जनक के सहज विरागी

> पद राजीव बरनि नहिं जाहीं । मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं ॥
> बाम भाग सोभति अनुकूला । आदिशक्ति छबिनिधि जगमूला ॥"
>
> मानस, बाल०, दो १४६ से १४८/१ तक

१. अध्यात्म०, १/३/१६-१८
२. भागवत, १०/३/६-१०
३. मानस, १/१६१/ छंद-१
४. तदेव, बाल०, दो० १४६ से दो० १५० तक।
५. तदेव, बाल०, दो० १६१ से दो० १६२ तक।
६. तदेव, बाल०, दो० २२४ से दो० २२५ तक।
७. तदेव, बाल०, दो० २२० से दो० २२१ तक।
८. तदेव, बाल०, दो० २४१ से दो० २४२ तक।
९. तदेव, १/२३४/२ से दो० २३४ तक।
१०. मानस, ७/७५/२ से दो० ७७ तक।

मन में राग उत्पन्न कर दिया। वाल्मीकि रामायण में उस रूप पर मुग्ध हो विदेह-जनक विश्वामित्र से कहते हैं कि—"अपने मनोहर रूप से अश्विनीकुमारों को भी लज्जित करने वाले एवं स्वेच्छानुसार देवलोक से पृथ्वी पर उतरकर आये हुए देवताओं के समान ये दोनों राजकुमार कौन हैं ?"[१]

अध्यात्म रामायण में भी वे स्वीकार करते हैं कि देवपुत्रों के समान ये दो नरशार्दूल मेरे हृदय में नर-नारायण के समान प्रीति उत्पन्न कर रहे हैं—

"कस्येतौ नरशार्दूलो पुत्रो देवसुतौपमौ।
मनः प्रीतिकरौ मेऽक्ष्यनरनारायणाविवः॥"[२]

अपने ज्ञान-रवि से भव-निसि नाश करने वाले वही धीर-जनक तुलसी के 'मानस' में साँवरे सलोने कुँवर की बाँकी झाँकीमात्र से ब्रह्मानन्द छोड़कर न जाने कब उस अपूर्व रूप-सिंधु में निमग्न हो गये। उनका विदेहत्व जाता रहा :—

"मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेहु विदेह बिसेषी॥"[३]

वे अपनी मनःस्थिति छिपा न सके, उसे प्रकट करना ही पड़ा :—

"सहज विराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥"[४]

इसी प्रकार गीतावली में जनक राम के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर आत्मविस्मृत हो जाते हैं :—

"ए कौन कहाँ तें आये ?
नील-पीत-पाथोज बरन, मन-हरन, सुभाय सुहाए॥
मुनि सुत किधौं भूप-बालक किधौं ब्रह्म जीव जग जाए।
रूप-जलधि के रतन सुछवि-तिय-लोचन ललित ललाए॥
भये विदेह विदेह नेहबस देह दसा बिसराए।
पुलक गात न समात हरष हिय सलिल सुलोचन छाए॥"[५]

---

१. "गजतुल्यमती वीरो शार्दूलवृषभौपमौ।
पद्मपत्र विशालाक्षौ खड्गतूणीर्धनुर्धरौ॥
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थित यौबनौ।
यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोक दिवामरौ॥"
—वा० रा०, १/५०/१८-१९

२. अध्यात्म०, १/६/६
३. मानस, १/२१५/४
४. मानस, १/२१६/२-३
५. गीतावली, पद ६५

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित केशव की रामचन्द्रिका में भी जनक शोभा-सिंधु राम को देखकर कौशिक से पूछते हैं :—

"ये सुत कौन के शोभहिं साजे, सुंदर श्यामल गौर बिराजे।
जानत हों जिय सोदर दोऊ, के कमला विमलापति कोऊ॥"[१]

प्रसन्नराघव में विदेहराज जनक राम के सौन्दर्य-माधुर्य से प्रभावित होकर विश्वामित्र से कहते हैं कि स्वभाव से ही मनोहर सौंदर्यवाले और स्वाभाविक सौहार्द की शोभा से प्रकाशमान इन दोनों (राम-लक्ष्मण) का जीवात्मा और परमात्मा के सदृश अनिर्वचनीय आभ्यंतरिक सामीप्य शोभित हो रहा है।[२] इसी से प्रभावित मानसकार भी जनक के शब्दों में कहता है :—

"सुन्दर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहू के आनंद दाता॥
इन्हके प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥[३]

तदुपरान्त विश्वामित्र जनक से राम-लक्ष्मण का परिचय कराते हुए उनकी शरीर-सुषमा का निरूपण इस प्रकार करते हैं :—

"सुंदर श्यामल रामु सु जानो। गौर सु लक्ष्मण नाम बखानो॥
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ। सूरज के कुल मण्डन दोऊ॥"[४]

रामचन्द्रिका के ये भाव प्रसन्नराघव के निम्नलिखित श्लोक से प्रेरित प्रतीत होते हैं, परन्तु यहाँ उक्त बात जनक कहते हैं—

"तनुश्रिया निर्जित चम्पकोत्पलौ, सुवर्णनीलोत्पलकोशकोमलौ।
अहो! दृशामुत्सवदान दक्षिणौ, सुलक्षणौ लक्षण-लक्ष्मणाग्रजौ॥"[५]

[शरीर की कान्ति से चम्पक और नीलकमल को जीतनेवाले, सुवर्ण और नीलकमल के भीतरी भाग के सदृश कोमल, नेत्रों के उत्सवदान में उदार और शुभ लक्षणों से सम्पन्न ये लक्ष्मण और उनके बड़े भाई राम हैं।]

१. रा० चं०, ५/२८

२. "एतयोः प्रकृतिरम्यरूपयो रुल्लसत्सहज सौहृदश्रियोः।
आन्तरः स्फुरति कोऽपि सन्निधिः प्रत्मगात्यपरमात्मनोरिव॥"
—प्रसन्नराघव, ३/२०

३. मानस, १/२१७/१-२

४. रा० चं०, ५/२९

५. प्रसन्नराघव, ३/२१

पुनश्च कौशिक मुनि कहते हैं कि महाराज दशरथ ने चन्द्र सदृश सुन्दर शरीरवाले राम को और आपने कुमुदिनी सदृश लोक-लोचन-विमोहिनी सीता को उत्पन्न किया है :—

"जज्ञिवान दथरथः सहिराजा, राम मिन्दुमिव सुन्दर गात्रम् ।
लोक लोचन विगाहनशीलां, त्वं पुनः कुमुदिनी मिव सीताम् ।।"[1]

इन्हीं भावों से भावित केशव भी कहते हैं—

"राज राज दशरथ तनै जू, रामचन्द्र भुवचंद्र बने जू ।
त्यों बिदेह तुमहूँ अरु सीता, ज्यों चकोरतनया शुभ गीता ।।"[2]

विदेह जनक ही नहीं, मिथिला की नारियों ने भी झरोखों में लगकर उस राशि-राशि सौंदर्य को अपने निर्निमेष नेत्र-मार्गों से संचयन किया—

"ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्कृतम् ।
गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम् ।।"[3]

[उस समय श्रीरामचन्द्र के सर्वोलंकार विभूषित भुवनमोहन रूम को झरोखों में से देखकर समस्त रानियाँ अति आनन्दित हुईं ।]

अध्यात्म रामायण की भाँति मानसकार भी लिखता है :—

"जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं । निरखहिं राम रूप अनुरागी ।।"[4]

परन्तु विशेषता यह है कि यहाँ वे संचित रूप-राशि का मूल्यांकन भी करने लगती हैं :—

"कहहिं परसपर बचन सप्रीती । सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती ।।
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । सोभा असि कहुँ सुनिअतिनाहीं ।।
विष्नु चारि भुज विधि मुख चारी । विकट वेष मुख पंच पुरारी ।।
अपर देउ अस कोउ न आही । यह छवि सखी पटतरिव जाही ।।"

और अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि :—

"बय किशोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुखधाम ।
अंग अंग पर वारिअहिं, कोटि-कोटि सत काम ।।"

१. तदैव, ३/२९
२. रा० चं०, ५/३३
३. अध्यात्म०, १/६/३१-३२
४. रा० चं० मा०/१/२१९/२

क्योंकि—"कहहु सखी अस को तनु धारी । जो न मोह यह रूप निहारी ॥"[१]

इसीलिए तो इस श्याम-छविरूप अमृत को भरने के लिए वे अपने नेत्रकमलरूप कलसों को खाली कर रही हैं—

"साँवर रूप सुधा भरिये कहँ, नयन-कमल कल कलस रितौरी ।"[२]

यही नहीं, जब से राम-लखन दृष्टिगोचर हुए हैं तब से जनकपुर में अनेक विदेह बन गये हैं—

"राम लखन जब दृष्टि परे री !
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो विधि विविध विदेह करे री ॥"[३]

जनककिशोरी के नेत्रों ने तो निजनिधि पहिचानकर उस रूपराशि को हृदय में लाकर सँजो लिया । साथ ही परम कृपण के सुवर्ण सदृश उसे सुरक्षित रखने के लिए पलक-कपाट लगा दिये ।[४]

हृदय में सँजोया हुआ वह रूप-सौंदर्य प्रोद्भासित हो उठा और उसकी सखियों से वह छिप न सका—

"श्याम तामरस दाम कोमले, राम नामनि मनो मनोभवे ।"[५]

[सखि ! नीलकोमलांग रामनाम वाले कामदेव में तुम्हारा मन है—यह मैंने जान लिया ।]

प्रसन्नराघव की ही भाँति मानस की सखियों ने भी नयनाभिराम राम की रूपमाधुरी से विमुग्ध सीता को भाँप तो लिया किन्तु उन्हें संकोच है; अतः वे कुछ कह न सकीं—

"जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी । कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥"[६]

परन्तु अधिक देर तक उनसे रहा न गया और उन्होंने सब संकोच छोड़कर व्यंग्य कर ही दिया -

---

१. मानस, १/२२०/३ से २२१/१ तक ।

२. गीतावली, पद ७७ ३. तदेव, पद ७६

४. "देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छवि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषे ॥
अधिक सनेहँ देह भइ भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
लोचन मग रामहिं उर आनी । दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥"
—मानस, ३/२३२/२-४

५. प्रसन्न०, २/२३

६. मानस, १/२३१/४

"बहुरि गौरि कर ध्यान करेहूँ। भूप किशोर देखि किन लेहू ॥"[१]
वस्तुतः उस रूप-सौन्दर्य का वर्णन करें भी तो कैसे, क्योंकि—

"स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥"[२]
परन्तु जनककिशोरी के रूपलोलुप नेत्रों ने सकुचाते-सकुचाते नख से शिख तक सौन्दर्य-सुधा का पान कर ही लिया। प्रेमातिरेक की इस स्थिति में पिता के कठिन प्रण को सुमिर कर[३] जो संक्षोभ हुआ उससे सखियाँ चिन्तित हो उठीं और उनको विवश होकर यह कहना पड़ा —

"परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब एहि बेरिया काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ॥"[४]
वह मातुभयवश घर जाते-जाते राम के रूपमाधुरी का लोभ-संवरण नहीं कर पाती तथा सहकार वृक्ष (सुगंधित आम्रवृक्ष) देखने का बहाना करके थोड़ी देर रुकना चाहती है—

"एकं विस्मृतास्मि ! ननु सहकारपादपोऽवलोकनीयो।
यस्यवासंत्यालतया सहसंगममभिलवन्ति ममाऽम्बा ॥"[५]

[सखि ! एक बात भूल गई। उस सहकार वृक्ष को देखना चाहिए, मेरी माताएँ जिसकी वासंती लता से ब्याह कर देने की इच्छा रखती हैं।]

प्रसन्नराघव की ही भाँति 'मानस' की सीता भी :—

"देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि-निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥"[६]
और घर जाने के पूर्व रामरूप अनुरागिनी सीता को गौरी ने "सहज सुंदर साँवरा" वर प्राप्त होने का आशीर्वाद दे दिया।[७]

---

१. तदेव, १/२३४/१
२. तदेव, १/२२८/१
३. "सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे ॥
नख सिख देखि राम के शोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा ॥"
तदेव, १/२३४/२
४. तदेव, १/२३४/३
५. प्रसन्न०, २/१५
६. (अ) मानस, १/२३४
(ब) प्रसन्न० २/२६ में भी चेरी सीता को रानियों द्वारा अलंकृत होने के लिए शीघ्र चलने का आग्रह करती है।
७. "मन जाहि राच्यो मिलिहि सो वर सहज सुंदर साँवरो……।"
—मानस, बाल०, दो० २३५ के आगे का छंद

फिर इस बहुरूपिये नटनागर की अद्भुत रूपमाधुरी के दर्शन जनक की रंगशाला में होते हैं। यहाँ वह रूपराशि अनेक-रूपा हो ठीक उसी प्रकार विकीर्ण होती है जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में कंस के अखाड़े में कृष्ण का रूप विभिन्न प्रकृति के लोगों को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दृष्टिगोचर हुआ था—[1]

"मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् ।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।।
मृत्युर्भोजपतेर्विराऽविदुषां तत्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गगतः साग्रजः ।।"

यहाँ मानसकार ने भागवत से प्रेरित होते हुए भी उसकी अपेक्षा अधिक विशद एवं मनोवैज्ञानिक रूप का चित्रण किया है—

"जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरत तिन्ह देखी तैसी ।।
देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहु बीर रसु धरें सरीरा ।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहु भयानक मूरति भारी ।।
रहे असुर छल छोनिप वेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ।।
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई । नर भूषन लोचन सुखदाई ।।
नारि विलोकहिं हरषि हिय, निज-निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप ।।
विदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा । बहुमुख कर पग लोचन सीसा ।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसें । सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ।।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ।।
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा । सांत युद्ध सम सहज प्रकासा ।।
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुख दाता ।।
रामहि चितव भायँ जेहि सीया । सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ।।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ । कवन प्रकार कहै कबि कोऊ ।।
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ ।।"[2]

रंगभूमि में सीता एक ओर जब शिवधनु की कठोरता एवं दूसरी ओर भुवनमोहन राम की सुकुमार सुंदर मूर्ति का अवलोकन करती हैं तब उन्हें पिता के दारुण प्रण के प्रति अत्यन्त क्षोभ होता है। हनुमन्नाटककार लिखता है—

---

१. भागवत, १०/४३/१७
२. मानस, १/२४१/२ से १/२४२/४ तक
३. हनुमन्नाटक, १/६

"कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः ।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः ॥"[१]

इसी से अनुप्रेरित तुलसी ने भी भगवान राम की सुकोमलता एवं मृदुता का और भी अधिक विमोहक किन्तु मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है :—

"नीकें निरखि नयन भरि सोभा । पितु पन सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
अहह तात दारुनि हठ ठानि । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥
× × ×
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥"

यही नहीं—

"विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा । सिरस सुमन कन बेधिय हीरा ॥"

शिवधनु की कठोरता के समक्ष राम के सौकुमार्य को देखकर माता सुनयना का हृदय भी विचलित हो उठता है । आनन्दरामायणकार लिखता है—

यत्रैते रावणायश्च नृपाः सर्वेऽति कुंठिताः ।
तस्मिश्चापे त्वयं बालः किमागत्य करिष्यति ॥"[२]

इससे प्रभावित होने पर भी रामचरितमानस की सुनयना में राम के प्रति वात्सल्य एवं आत्मीयता का भाव विशेष है :—

"रावन बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुँअर कर देहीं । बाल मराल कि मंदर लेहीं ॥"[३]

प्रसन्नराघव में अतिक्रोधी परशुराम भी राम के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर चकित हो जाते हैं । वे श्रीराम को कामदेव से भी अधिक सुंदर कह कर उन्हें शृंगार, वीर एवं अद्भुत रसों का समन्वित मूर्तिमान रूप बतलाते हैं ।[४] इसी प्रकार रामचन्द्रिका में भी राम के आकर्षक रूप को देखकर परशुराम मुग्ध हो उन्हें मूर्तिमान कामदेव कहते हैं ।

"अमल सजल घनस्याम वपु केशोदास, चंद्रहु ते चारु मुख सुषमा को ग्राम है ।
कोमल कमल दल दीरघ बिलोचननि, सोदर समान रूप न्यारो-न्यारो नाम है ।

---

१. मानस, १/२५८/१-३

२. आनन्द, सारकांड, २/६५

३. मानस, १/२५६/२

४. "सौंदर्यं मदनादपि प्रथयति प्रौढिप्रकर्षं पुरां ।
मेतारं मदनारिप्यवरयत्युद्दामदोः क्रीडितम् ॥

बालक बिलोकियत पूरण पुरुष, गुन मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है ।
बैर जिय मानि वामदेव को धनुष तोरो, जानत हौं बीस बिसै राम येसकाम है ॥[१]

तुलसी के 'मानस' में भी परशुराम के नेत्र कामदेव के मद को भी छुड़ाने-वाले राम के अपार रूप को देखकर थकित हैं—

"रामहिं चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन ॥"[२]

दूल्हा राम का जैसा मनोरम एवं विशद[३] सौन्दर्य-निरूपण गोस्वामी तुलसी-दास ने किया है वैसा वर्णन संस्कृत ग्रन्थों में अप्राप्य है । वाल्मीकि रामायण[४] और हनुमन्नाटक[५] में अलंकृत दूल्हे रूप राम का उल्लेख मात्र है । तुलसी का रूप-वर्णन उनकी मौलिक सूझ होते हुए भी दूल्हा राम की वेश-भूषा का चित्रण मुगलकालीन राजसी साज-सज्जा का प्रतिफल कहा जा सकता है—

"जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मन मानिक लगे ।
किंकिन ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥"[६]

ज़िसका अश्व ही मूर्तिमान कामदेव है,[७] उस दूल्हे की रूप-सुषमा का वर्णग करने में कौन समर्थ है ?

"जनु बाजि वेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई ।
आपने वय बल रूप गुन गति सकल भुवन विमोहई ॥"

इसीलिए उसे देखने के लिए देवताओं में होड़ लग गई है। विधि, हरि, हर सहित समस्त देवगण दूल्हा-ब्रह्म के रूप को देख कर आश्चर्यचकित एवं मंत्र-मुग्ध हैं—

"संकर राम रूप अनुरागे । नयन पंचदस अति प्रिय लागे ॥
हरि हित सहित राम जब जोहे । रमा समेत रमापति मोहे ॥

मुग्धत्वं मदनारिमौलिशशिनौऽप्युत्कर्षमालम्बते ।
मूर्तेस्तत् किमसौ रसैर्विरचितः शृंगारवीराद्भुतैः ॥"

—प्रसन्न, ४/१४ ।

१. रा० चं०, ७/१४।
२. मानस, १/२६६/४ ।
३. तदेव, १/३१५/४ से ३१७/४ ।
४. वा० रा०, १/७३/६ ।
५. हनुमन्नाटक, १/५७ ।
६. मानस, बाल०, दो-३१५ के आगे का छंद ।
७. तदेव ।

निरखि राम छवि विधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने ।।"[1]

आज देवराज इन्द्र ईर्ष्या के विषय बन गये हैं :—

"रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना ।।
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं ।।"

उमा सहित शिवजी तो उस दूल्हे राम को नख से शिख तक बारम्बार देखते हुए भी तृप्त नहीं होते—

"राम रूपु नख सिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि ।।"[2]

वस्तुतः इस दिव्य रूप-सुषमा का निर्माण ही ऐसे तत्व से हुआ है जिसने वीतराग कामारि शंकर के मन को भी रागी बना दिया है। गोस्वामी जी कहते हैं—

"सुखमा सुरभि-सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छवि मनहु मही, री।"[3]

ऐसे रूप-सुधा-सिंधु भगवान राम को अनिंद्य सुन्दरी वधू सीता ने वर-रूप में वरण किया। राम-रूप-मोहिता जनककिशोरी की विमुग्ध दशा का तुलसी ने कविता-वली में कितना मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है—

"राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गईं कर टेकि रही पल टारत नाहीं ।।"[4]

'मानस' की जानकी की भी कुछ यही स्थिति है—

"निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूप निधान की।
चाहति न भुजबल्ली विलोकनि बिरह भय बस जानकी ।।"[5]

यह मिथिला की सँजोयी एवं अवध की संचित रूप-राशि वनपथ पर चलते ही बिखर गई। शृङ्गवेरपुर से लेकर धुर दक्षिण आसेतु वह बिखरती ही चली गई। वह केवल शृङ्गवेरपुर एवं यमुनापार के पथिकों एवं ग्राम्यबालाओं को ही नहीं

१. मानस, ५/३१७/१-३।
२. तदेव, १/३१५।
३. गीतावली, १/१०६।
४ कवितावली, १/१७।
५. मानस, बाल०, दो० ३२७, छंद ३।

मिली अपितु उसे दण्डकारण्य के ऋषि-मुनियों ने भी बटोरा। कोल-भील आदि बनैले प्राणियों ने तो उसे जमकर लूटा और रंक से राय बन गये।[१] यही नहीं—"सपनेहु जिन्हके धरम न दाया" वाले राक्षस भी उसकी चमक से चमत्कृत हो अपना क्रूरकर्मा स्वभाव ही खो बैठे।[२] उसकी किंचित आभा पाकर वन-मार्ग के साँप-बिच्छुओं का तामस-तीछा स्वभाव भी जाता रहा।[३] और सेतु पर तो उसी रूपराशि को सँजोने के लिए जलचरों की भारी भीड़ ही लग गई—[४]

"देखन कहुँ प्रभु करुनाकंदा। प्रगट भए सब जलचर बृन्दा॥
मकर नक्र नाना झख ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहिं जे खाही। एकन्ह के डर तेपि डेराहीं॥
प्रभुहिं बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भये सुखारे॥
तिन्ह की ओट न देखिअ बारी। मगन भये हरि रूप निहारी॥

× × ×

सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि-चढ़ि पारहि जाहिं॥"

वस्तुतः यह रूप-सौन्दर्य ऐसा आकर्षक एवं विमोहक है ही। गोस्वामी जी के शब्दों में—

"अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय राम बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥"[५]

उसी रूप माधुरी के सुख के लिए शिव ने अशिव वेष धारण कर रखा है।[६]

---

१. तदेव, २/१३४ से दो० १३६ तक।

२. तदेव, ३/१६/१-५।

३. "जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं विषम विषु तामस तीछी॥"
—तदेव, २/२६२/८।

४. तदेव, ६/४/२-४

५. मानस, २/१२४/१।

६. "जेहि सुख लागि पुरारि असुभ वेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महँ संतत मगन॥
सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति॥"
—तदेव, उत्तरकांड, सोरठा ८८

वनपथ पर चलते हुए राम के अप्रतिम सौन्दर्य को देख कर ग्रामवधुएँ मुग्ध हो सीता से पूछती हैं कि सखि ! ये नीलकमलदल सदृश सुन्दर वर्णवाले तुम्हारे कौन हैं ? हनुमन्नाटककार लिखता है :—

"पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना ।
कुबलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ॥"[१]

इसी प्रकार तुलसी की कवितावली में भी ग्रामवधुएँ सीता से पूछती हैं—

"सीस जटा उर बाहु बिसाल, विलोचन लाल तिरीछी सी भौहें ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं ।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ साँवरे-से सखि रावरे को हैं ?"[२]

हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित होते हुए भी 'मानस' की ग्रामवधूटियाँ राम में कोटि-कंदर्प को भी लजाने वाले अपूर्व सौन्दर्य को देखती हैं—

"कोटि मनोज लजावनि हारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥"[३]

इस प्रकार यद्यपि तुलसी ने हनुमन्नाटक से प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु उनका मन बटोही राम के सौन्दर्य में इतना रमा कि उन्होंने उसका अत्यन्त विशद एवं मार्मिक चित्रण किया है । कोटि मदन-मन को भी विमुग्ध करनेवाली भगवान राम की उस अपूर्व छवि को मार्गवासी टकटकी लगाये देख रहे हैं —

"एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचंद्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥"[४]

यही नहीं, वह अनूप रूप इतना मोहक है कि—

"रामहि देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहिं संग लागे ।
एक नयन मग छवि उर आनी । होंहि सिथिल तन मन बरबानी ॥"[५]

वस्तुतः विधाता की सृष्टि में ऐसी सुन्दरता कहीं है ही नहीं, क्योंकि ये तो—

"आपु प्रगट भये विधि न बनाये ।"[६]

---

१. हनुमन्नाटक, ३/१५ ।
२. कवितावली, २/२१
३. मानस, १/११७/१
४. तदेव, २/११५/३
५. तदेव, २/११/४/४
६. तदेव, २/१२०/३

यही कारण है कि ब्रह्मा को इनसे ईर्ष्या हो गई—

> "इन्हहिं देखि विधि मन अनुरागा। पटतर जोग बनावे लागा॥
> कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥"[१]

गीतावली में भी तुलसी ने पथिक राम के मनोहर सौंदर्य को २७ पदों (पद १६ से ४२ तक) में अपनी हर एक दृष्टि से परखा है। राम के उसी कोटि मनोज लजावनि हारे रूप को देखकर एक ग्रामीण बाला अपनी सखी से कहती है कि—

> "तू देखि-देखि री! पथिक परम सुन्दर दोऊ।
> मरकत-कलधौत-बरन, कामकोटि-कांत हरन।
> चरन कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ॥"[२]

इतना ही नहीं—

> "कुँवर साँवरो, री सजनी! सुन्दर सब अंग।
> रोम-रोम छबि निहारि आलि बारि-फेरि डारि।
> कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग॥"[३]

वह इन श्याम-गौर किशोर पथिकों को नेत्र भर कर देख लेना चाहती है, क्योंकि वे रूप-शील के आगार हैं—

> "मनोहरता के मानो ऐन।"
> स्यामल-गौर किशोर पथिक दोउ, सुमुखि! निरखु भरि नैन॥"[४]

यही नहीं—

> "सजनी! हैं कोउ राजकुमार!
> पंथ चलत मृदु-पद-कमलनि दोउ सील-रूप आगार॥"[५]

परन्तु ग्रामवधू उन मनोहर रूपों को जी भरकर निहार भी न पायी थीं कि वे उसके नेत्रमार्ग से ओझल हो गये—

---

१. मानस, २/१२०/३
२. गीतावली, पद १६
३. तद्देव, पद १७
४. तदेव, पद २४
५. तदेव, पद २६

"नीके के मैं न विलोकन पाये !

सखि ! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बधु विधु-वदनि समेत सिधाए।"[१]

और उस रूप-सौन्दर्य का फिर एक बार नेत्र भरकर अवलोकन करने की अभिलाषा अपने मन में सँजोये ही रह जाती हैं—

"पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ।

स्यामल गौर, सहज सुन्दर सखि ! बारक बहुरि विलोकिये काऊ ?"[२]

इसी प्रकार कवितावली के ८ पदों (अयोध्याकांड पद १८-२५ तक) में तुलसी ने बटोही राम के सौंदर्य का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है।[३]

केशव ने भी रामचंद्रिका के १२ छंदों में बटोही राम का सौंदर्यांकन किया है।[४] वहाँ राम के अपूर्व एवं अप्रतिम सौंदर्य से मुग्ध हो लोग हतप्रभ हो जाते हैं—

"रामहिं देखत मोहैं ईश ! कहो नर को हैं ?

संभ्रम चित्त अरूझै, रामहिं यों सब बूझै ॥"[५]

तथा उन्हें रतिनाथ समझकर जिज्ञासा प्रकट करते हैं—

"किधौं रतिनाथ जस साथ केसोदास, जात तपोबन सिव बैर सुमिरता हौ।"[६]

सूरसागर में भी पुरवधुएँ वन-पथ पर चलते हुए राम की कोमलता एवं सुन्दरता को देखकर अत्यन्त द्रवित हो जाती हैं और सीता से पूछती हैं—

"सखी री ! कौन तिहारे जात !
राजिव नैन धनुष कर लीन्हें, बदन मनोहर गात।
लज्जित होहिं पुरवधू पूछें, अंग-अंग मुसकात ॥
अति मृदु चरन पंथ बन-बिहरत, सुनियत अद्भुत बात।
सुन्दर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात ॥"[७]

मार्ग के नर-नारी राम के उस अलौकिक रूप को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं—

---

१. गीतावली, पद ३५
२. तदेव, पद ३६
३. कवितावली, २/१८-२५
४. रा० चं०, ६/३२-४३
५. तदेव, ६/३२
६. तदेव, ६/३४
७. सूर रामचरितावली (गीताप्रेस, गोरखपुर), पद ३१

"तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सफल पुरधाम ।
सूरदास प्रभु रूप चकित भये, पंथ चलत नर-बाम ।।"[१]

दण्डकारण्यवासी वीतराग कवि-मुनि भी राम के अलौकिक रूप को निर्निमेष नेत्रों से देखते तथा आश्चर्यचकित एवं विमुग्ध हो जाते हैं। आदिकवि लिखता है :—

"रूप संहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् ।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ।।
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
आश्चर्यभूतान् ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ।।"[२]

[श्रीराम के रूप, शरीर की गठन, कान्ति, सुकुमारता तथा सुन्दर वेष को उन बनवासी मुनियों ने आश्चर्यचकित होकर देखा। वन में निवास करने वाले वे सभी मुनि श्रीराम, लक्ष्मण और सीता—तीनों को एकटक नेत्रों से देखने लगे। उनका स्वरूप उन्हें आश्चर्यमय प्रतीत होता था।]

इसी प्रकार से मुनि भी राम के रूप-सौंदर्य पर लट्टू हैं। तुलसी राम की उस रूप-माधुरी का वर्णन करते हुए अघाते नहीं। उन्होंने प्रत्येक प्रमुख मुनि के माध्यम से उस दिव्य चिन्मय रूप को निहारा है।

महामुनि अत्रि के नेत्र उस अपूर्व छवि को देखकर शीतल हो जाते हैं—

"देखि राम छबि नयन जुड़ाने सादर निज आश्रम तब आने ।"[३]

और वे नेत्र भर उन्हें देख लेना चाहते हैं —

"प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि ।"[४]

तथा शरभंग के लोचनभृंग तो राममुखपंकज का मकरंद-रस ही पान करने लगे—

"देखि राम मुख पंकज मुनिवर लोचन भृंग ।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग ।।"[५]

वे उस मोहिनी छवि को कभी भी अपने से दूर नहीं रखना चाहते। इसीलिए वे वरदान माँगते हैं—

---

१. तदेव, पद ३२
२. वा० रा०, ३/१/१३-१४
३. मानस, ३/३/४
४. तदेव, ३/३
५. तदेव, ३/७

"सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हियँ बसहु निरन्तर, सगुन रूप श्रीराम ॥"[1]

इधर सुतीक्ष्ण को भी अपने नेत्रों का लाभ मिलने वाला है—

"होइहैं सुफल आजु मम लोचन । देखि वदन पंकज भव मोचन ॥"[2]

और उस बड़भागी मुनि को वह लोचन लाभ प्राप्त हो ही गया—

"आगें देखि राम तन स्यामा । सीता अनुज सहित सुखधामा ॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी ॥"[3]

वह अपने 'हिय गगन' में रामरूप 'इंदु' को सदैव सँजोए ही रखना चाहता है—

"अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव, बसहु सदा निहकाम ॥"[4]

यही नहीं, अगस्त्याश्रम में सम्पूर्ण मुनि-मंडली चकोर-समुदाय रूप में राम के "शरद इंदुतन" की ओर टकटकी लगाये हुए है :—

"मुनि समूह महँ बैठे, सन्मुख सबकी ओर ।
सरद इंदुतन चितवत, मानहुँ निकर चकोर ॥"[5]

एक दिन रावण-भगिनी शूर्पणखा भी पंचवटी में मदन मोहन राम के सौंदर्य पर आसक्त हो जाती है । वाल्मीकि जी लिखते हैं कि "परम सुकुमार, महान बलशाली, राजोचित लक्षणों से युक्त, नीलकमलदल सदृश श्यामकांति से सुशोभित, कामदेव के समान सौंदर्यशाली तथा इंद्र के समान तेजस्वी श्रीराम को देखते ही वह राक्षसी काम-मोहित हो गई :—

"सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य राक्षसः ।
भगिनी राममासाद्यददर्श त्रिदशोपमम् ॥
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
गजविक्रान्तगमनं जटामण्डधारिणम् ॥

---

१. तदेव, ३/८
२. तदेव, ३/६/५
३. मानस, ३/६/१०-११
४. तदेव, ३/११
५. तदेव, ३/१२

सुकुमार महासत्वं पार्थिवव्यञ्जनान्वितम् ।
राममिन्दीवरश्यामं कंदर्पसदृशप्रभम् ।।"[१]

उस प्रमदा की विमुग्ध मन:स्थिति का चित्रण मानसकार ने 'हितोपदेश' के निम्न श्लोक से प्रभावित होते हुए भी कितने श्लील एवं शिष्ट ढंग से किया है :—

"सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा, भ्रातरं जनकं सुतम् ।
योर्निः विलपति नारीणां, सत्यं-सत्यं हि नारद ।।"[२]

"भ्राता पिता पुत्र उर गारी। पुरुष मनोहर निरखतनारी ।।
होई विकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रवि मनि द्रवरविहिं बिलोकी ।।"[३]

यह रूप उसके हृदय में इतना घर कर गया है कि विरूप किये जाने पर भी रावण से अपने वैरी के अद्भुत सौंदर्य का वर्णन किये बिना नहीं रहती। वाल्मीकि रामायण में वह कहती है कि चीर एवं कृष्णमृगचर्म धारण करने वाले दशरथनन्दन श्रीराम दीर्घबाहु तथा विशाल नेत्रों से युक्त कामदेव के समान सुन्दर हैं :—

"दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीर कृष्णजिनाम्बरः ।
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः ।।"[४]

अध्यात्म रामायण में भी वह श्रीराम रूप का वर्णन राजीव लोचन, शोभाधाम कह कर करती है :—

"तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीव लोचनः ।
धनुर्वाणधरः श्रीमान् जटाबल्कल मण्डितः ।।"[५]

इसी प्रकार 'मानस' में भी वह राम को शोभाधाम बतलाती है—

"अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंह बन खेलन आए ।।
× × ×
सोभाधाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ।।"[६]

वाल्मीकि रामायण में तो खरदूषण से भी उसने राम के सौन्दर्य का निरूपण इसी प्रकार किया है—

---

१. वा० रा०, ३/१७/६-८
२. हितोपदेश, मित्रलाभकथा ५, श्लोक १६५
३. मानस, ३/१७/३
४. वा० रा०, ३/३४/५-६
५. अध्यात्म०, ३/५/४७
६. मानस, ३/२२/२, ४ ।

"तरुणौ रूप सम्पन्नो सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीक विशालाक्षौ चीर कृष्णाजिनाम्बरौ॥"[१]

शूर्पणखा के नाक-कान अभी शीघ्र ही कटे थे; अतएव उसके द्वारा यह सौन्दर्य-निरूपण गोस्वामी जी को स्वाभाविक नहीं लगा। परन्तु श्रीराम की यह रूप-सुषमा वे विस्मृत न कर पाये। उन्हें तत्काल उपयुक्त अवसर मिल गया। घोर क्रूरकर्मा खरदूषण चौदह सहस्र राक्षसी सेना सहित प्रतिशोध की भावना से अपनी बहन को विरूप करने वाले एक साँवले तापस राजकुमार के समक्ष मरने-मारने को प्रस्तुत है। परन्तु उसके रूप का जादू इन पाषाण-हृदयों को भी द्रवित कर देता है। उन्हें विवश होकर कहना पड़ता है—

"हम मरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई॥
जद्यपि भगिनो कीन्हि कुरूपा। वध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥"[२]

राक्षस मारीच के हृदय में समाया हुआ श्रीराम का अलौकिक एवं अपूर्व रूप अभी विस्मृत नहीं हुआ है। वह रावण से कहता है कि—

"पुत्रौ दशरथस्यास्ते सिंहसंहननो युवा।
रामो नाम महास्कंधो वृत्तायतमहाभुजः॥
श्यामः पृथुयशाः श्रीमान तुल्यबल विक्रमः।
हतस्तेन जनस्थाने खरश्च खरदूषणः॥"[३]

इसी रूपमाधुरी का स्मरण करके वह 'मानस' में मृत्यु के मुख में जाते हुए भी अपने लोचन तो सुफल कर ही लेना चाहता है—

"निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं॥"[४]

रामचरितमानस में जिस समय सुबेल पर्वत पर वानरवाहिनी का शिविर लगता है, उस समय वहाँ अवस्थित भगवान राम के वीरवेष का सौन्दर्य देखते ही बनता है—

"इहाँ सुबेल सैल रघुवीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उत्तंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र विसेषी॥
तहं तरु किसलय सुमन सुहाए। लक्षिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥

---

१. वा० रा०, ३/१९/१४।

२. मानस, ३/१९/२-३।

३. वा० रा०, ३/३१/१०-११।

४. मानस, अरण्य०, दो० २६ का छंद।

प्रभुकृत सीस कपीस उछंगा । बाम दहिन दिसि चाप निषंगा ।।
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना । कह लंकेस मंत्र लगि काना ।।
बड़भागी अंगद हनुमाना । चरन कमल चापत विधि नाना ।।
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन । कटि निषंग कर बान सरासन ।।
एहि विधि कृपा रूप गुन, धाम रामु आसीन ।
धन्यते नर एहि ध्यान जे, रहत सदा लय लीन ।।"[१]

केशव ने भी इसी प्रकार राम के वीरवेष का निरूपण किया है । राम से भेंट करके रावण का दूत कहता है—

भूतल के इन्द्र भूमि पौढ़े हुते रामचंद्र ।
मारिच कनकमृग छालहिं बिछाए जू ।।
कुंभहर-कुंभकर्ण-नासाहर-गोद सीस ।
करण अकंप अक्ष-अरि उर लाये जू ।।
देवान्तक-नारान्तक-अन्तक त्यों मुसकात ।
विभीषण बैन तन कानन रुखाए जू ।।
मेघनाद-मकराक्ष-महोदर प्राणहर ।
वाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू ।।"[२]

तुलसी एवं केशव को श्रीराम की इस विमोहक झाँकी की प्रेरणा हनुमन्नाटक से मिली है जहाँ युद्ध-भूमि में रावण द्वारा राम के विषय में पूछने पर महोदर कहता है :—

"अङ्के कृत्वोत्तमांगं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु—
र्भूमो विस्तारितायां त्वचि कनकमृगस्याङ्ग शेषं निधाय ।।
वाणं रक्षः कुलघ्नं प्रगुणित मनुजेनार्पित तीक्ष्णमक्ष्णोः ।
कोणेनद्वीक्ष्यमाणस्त्वदनुज वचने दत्तकर्णोऽमास्ते ।।"[३]

[वानर-सेनापति सुग्रीव की गोद में सिर और अक्षहन्ता हनुमान की गोद में पैर रख तथा भूमि में बिछी हुई कनकमृग की खाल पर शेष शरीर को रख कर अनुज लक्ष्मण द्वारा दी हुई प्रत्यंचा पर राक्षस कुलनाशक तीक्ष्ण वाण को नेत्र के कोण से देखते हुए, वह देखिए, आपके भाई विभीषण की बातें श्रीराम जी कान लगाकर सुन रहे हैं ।]

---

१. तदेव, ६/११/१ से दो० ११ तक ।

२. रा० चं०, १६/२० ।

३. हनुमन्नाटक, ११/७ ।

यही नहीं, महाराज दशरथ के मणिमय प्रांगण में विचरण करते हुए शिशु राम की रूपमाधुरी का वर्णन भी जिस प्रकार रामचरितमानस में काकभुशुण्डि करते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत प्रलयार्णव में वटवृक्ष के पत्ते पर अवस्थित बालमुकुन्द की छवि का अवलोकन मार्कण्डेय मुनि करते हैं। अतएव राम के रूप-सौंदर्य की प्रेरणा तुलसी को भागवत के उक्त स्थल से ही मिली प्रतीत होती है।[1]

पितृ-भक्ति

राम की पितृ-भक्ति भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अमर धरोहर है। वे एक आदर्श पुत्र हैं। वाल्मीकि रामायण में पिता के शोक का कारण पूछने पर

---

१. (अ) "महामरकत श्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम्।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दर भ्रुवम्॥
श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम्।
विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम्॥
"पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम्।
श्वासेजद्बलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम्॥
चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्।
मुखे निधाय विपेन्द्रोधयन्तंवीक्ष्य विस्मितः॥"
—श्रीमद्भागवत, १२/९/२२-२५।

(ब) "मरकत मृदुल कलेवर श्यामा। अंग-अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥
रेखा त्रय सुंदर उदर, नाभीरुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि, बाल बिभूषन चीर॥
अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥
कलबल बचन अधर अरु नारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥
नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥
पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥
—मानस, ७/७६/३ से दो० ७७/४ तक।

कैकेयी राम से कहती है कि "तुम इनके प्रिय हो, तुमसे कोई अप्रिय बात कहने में इनकी जबान नहीं खुलती।[१]......यदि तुम उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन कर सको तो मैं तुमसे सब कुछ खोलकर बता दूँगी; वे स्वयं तुमसे कुछ नहीं कहेंगे।"[२] इसी प्रकार मानस की कैकेयी भी कहती है कि, "हे राम ? सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है। वे तुमसे कुछ कहने में असमर्थ हैं, क्योंकि तुम्हारे प्रति उनके मन में संकोच है।"[३]

इस पर पितृभक्त राम वाल्मीकि रामायण में कहते हैं—"अहो, धिक्कार है ! देवि, तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए। मैं महाराज के कहने से आग में भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष का भक्षण कर सकता हूँ और समुद्र में भी गिर सकता हूँ। महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं, मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता ? इसलिए देवि ! राजा को जो अभीष्ट है, वह बात मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसे पूर्ण करूँगा। राम दो तरह की बात नहीं करता।"[४] अध्यात्मरामायण में भी राम कैकेयी से लगभग ये ही बातें कहते हैं।[५]

इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में श्रीराम पिता को आश्वस्त करते हुए कहते हैं—

"मुझे यह इष्ट है, चिन्तित न हो तुम !
पड़ूँ मैं आग में भी जो कहो तुम !

---

१. वा० रा०, २/१८/२१।

२. वा० रा०, २/१८/२६।

३. "सुनहु राम सब कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥

× × ×

सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू॥"

—मानस, २/४०/३-४।

४. वा० रा०, २/१८/२८-३०।

५. "पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्वणम्।
सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्॥

× × ×

अतः करोमि तत्सर्वं यन्नामाह पिता मम।
सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते॥"

—अध्यात्म०, २/३/५६, ६२।

तुम्हीं हो तात ! परमाराध्य मेरे ।
हुए सब धर्म अब सुख साध्य मेरे ।।"[१]

वाल्मीकि के राम तो यहाँ तक कहते हैं कि, "महाराज को असंतुष्ट करके अथवा इनकी आज्ञा न मानकर इन्हें कुपित कर देने पर मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रहना चाहूँगा ।"[२]

इस स्थल पर तुलसी के राम का चरित और अधिक उदात्त हो उठता है । वे पिता की आज्ञा पालन के समक्ष उपर्युक्त त्याग एवं आत्मबलिदान को भी तुच्छ समझते हैं । वे पिता की आज्ञा पालन का सुअवसर पाकर अपने को धन्य मानते हैं । यही नहीं, ऐसी आज्ञा सुनकर वे आनन्दमग्न हैं—

"मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । रामु सहज आनन्द निधानू ।।"[३]

उन्हें तो इसमें अपना लाभ ही लाभ दीखता है । इसीलिए वे कैकेयी से कहते हैं कि यदि मैं ऐसा सुअवसर प्राप्त करके भी वन न जाऊँ तो मुझसे बड़ा मूर्ख कोई न होगा ।[४] यही नहीं, उन्हें विश्वास ही नहीं होता, वे समझते हैं कि मुझसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया है । इसी कारण पिता को इतना दुःख है । वाल्मीकि रामायण में यही बात वे कैकेयी से पूछते हैं कि, "माँ ! मुझसे अनजान में कोई अपराध तो नहीं हो गया, जिससे पिताजी मुझ पर नाराज हो गये हैं । तुम यह बात मुझसे बताओ और तुम्हीं उन्हें मना दो—

"कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद येन मे पिता ।
कुपितस्तन्यमाचक्ष्व त्यमेवैनं प्रसादय ।।"[५]

---

१. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ७५ ।
२. वा० रा०, २/१८/१५ ।
३. मानस, २/४१/३ ।
४. 'सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु-मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु-पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संहारा ।।
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर ।
तेहिं महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ।।"

× × ×

जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहिं मूढ़ समाजा ।।
सेवहिं अरंडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहिं विषु माँगी ।।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाही । देखु बिचारि मातु मन माहीं ।।"
मानस, २/४१/४ से २/४२/३ तक

५. वा० रा०, २/१८/११

तुलसी के राम भी यही कहते हैं :—

"राउ धीर गुन उदधि अगाधू । भा मोहिं ते कछु बड़ अपराधू ।"[१]

पितृभक्त राम माता कौशल्या के चरणों में सिर झुकाकर उनसे निवेदन करते हैं कि मुझमें पिता के वचन टालने की शक्ति नहीं है; अतः मैं वन को ही जाना चाहता हूँ—"

"नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥"[२]

इसी बात को तुलसी के राम बड़े सहज, सरल एवं विनम्र भाव से व्यक्त करते हैं—

"पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू । जहाँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयसु देहि मुदित मन माता । जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥"[३]

अध्यात्म रामायण में वनगमन की आज्ञा माँगते हुए राम पिता दशरथ को आश्वस्त करते हैं कि "मैं इस प्रतिज्ञा का पालन कर फिर आपके पास अयोध्या लौट ही आऊँगा तथा हे राजन् ! वन में रहने से तो मुझे राज्य से भी करोड़ गुना सुख होगा ।"[४] तुलसी के मानस में भी राम लगभग इसी प्रकार विदा माँगते समय पिता दशरथ को सान्त्वना देते हैं ।[५]

वाल्मीकि रामायण में वनवास की बात सुनकर जब लक्ष्मण उत्तेजित हो पिता दशरथ की भर्त्सना करते हैं तब राम उन्हें समझाते हुए पितृ-आज्ञा-पालन को ही परमधर्म बतलाते हैं। वे कहते हैं कि, "पिताजी का यह वचन धर्म के आश्रित होने के कारण परम उत्तम है। धर्म का आश्रय लेकर रहने वाले पुरुष को पिता, माता अथवा ब्राह्मण के वचनों का पालन करने की प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिए। वीर ! मैं पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता,

---

१. मानस, २/४२/४

२. वा० रा०, २/२१/३०

३. मानस, २/५३/३

४. अध्यात्म०, २/३/७३-७४

५. "नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
पितृ असीस आयसु मोहिं दीजै । हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू । जसु जग जाइ होई अपवादू ॥
मानस, २।७७।१-२

क्योंकि पिताजी के कहने से ही कैकेयी ने मुझे वन में जाने की आज्ञा दी है।"[1] वाल्मीकि के इन्हीं भावों से भावित 'साकेत' के राम कुछ अधिक क्षुब्ध हो लक्ष्मण को फटकारते हैं —

"पिता जिस धर्म पर यों मर रहे हैं। नहीं जो इष्ट वह भी कर रहे हैं।।
उन्हीं कुलकेतु के हम पुत्र होकर। करें राजत्व क्या वह धर्म खोकर।।
× × ×
बड़ों की बात है अविचारिणीया, मुकुट मणितुल्य शिर. साधारणीया।।
× × ×
उन्हीं पितृदेव का अपमान लक्ष्मण! किया है आज क्या कुछ पान लक्ष्मण!
उऋण होना कठिन है तात ऋण से, अधिक मुझको नहीं है राज्य तृण से।।"[2]

तुलसी के राम भी पितृ-आज्ञा पालन को परमधर्म मानते हैं। वे भी लगभग यही आदर्श चित्रकूट में भरत के समक्ष प्रकट करते हैं।[3]

वन जाते समय राम को केवल एक ही चिन्ता है और वह यह है कि शोक-संतप्त पिता को कहीं कुछ हो न जाय। इसी कारण वे बार-बार सभी से पिता को सान्त्वना देने का अनुरोध करते हैं। वाल्मीकि रामायण में वे माता कौशल्या से कहते हैं कि, 'माँ! तुम मेरे पिता की ओर दुखित होकर न देखना। वनवास की अवधि भी शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी।"[4]

वे अयोध्या के प्रजाजनों से भी कहते हैं कि, "मेरे वन चले जाने पर महाराज दशरथ जिस प्रकार भी हो शोक मे सन्तप्त न होने पायें, इस बात के लिए आप लोग सचेष्ट रहें। मेरा प्रिय करने की इच्छा से आपको मेरी इस प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।"[5] इसी प्रकार रामचरितमानस में भी भगवान राघवेन्द्र हाथ जोड़कर पुरवासियों से सुखी रखने का आग्रह करते हैं।[6]

---

१. वा० रा०, २/२१/४१-४३
२. साकेत, सर्ग ३, पृ० ७६-८०
३. "मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू।।"
—मानस, २/३०५/१
"राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी।।
तासु बचन मेटत मन सोचू।............"
—मानस, २/२६४/३-४
४. वा० रा०, २/४१/३४ ५—तदेव, २/४५/१०,
६. "बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी।।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहे भुआल सुखारी।।"
—मानस, २/८०/४

वाल्मीकि रामायण में शृङ्गवेरपुर से सुमंत्र को विदा करते हुए राम उनसे यही अनुरोध करते हैं कि, "आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे महाराज दशरथ को मेरे लिए शोक न हो। पिता दशरथ एक तो बूढ़े हैं, दूसरे उनका सारा मनोरथ चूर-चूर हो गया है। इसलिए उनका हृदय शोक से पीड़ित है। यही कारण है कि मैं आपको उनकी सँभाल के लिए कहता हूँ।"[१]

अध्यात्म रामायण में भी वे सुमंत्र से वृद्ध एवं शोकाकुल पिता को ढाढ़स बँधाने के लिए कहते हैं तथा पिता से निवेदन करने को कहते हैं कि वे मेरे लिए शोक करना छोड़ दें।[२]

उक्त ग्रंथों की भाँति मानस के राम भी सुमंत्र से हाथ जोड़कर लगभग यही विनती करते हैं।[३]

वाल्मीकि रामायण में कौशल्या के विलाप से दुखी लक्ष्मण जिस समय उत्तेजित हो पिता दशरथ की भर्त्सना करते हुए उन्हें स्त्रैण, विपरीत बुद्धिवाला एवं कामी आदि कहते हैं,[४] उस समय श्रीराम पिता की आज्ञापालन को सर्वोपरि धर्म बतलाते हुए उनसे कहते हैं कि लक्ष्मण! केवल क्षात्रधर्म का अवलम्बन करने वाली इस ओछी बुद्धि को त्याग दो। धर्म का आश्रय लो। कठोरता छोड़ो और मेरे विचार के अनुसार चलो।"[५]

इस स्थल पर तुलसी लक्ष्मण की कटूक्तियों के प्रति मौन हैं। वस्तुतः वे घोर मर्यादावादी हैं। परन्तु पिता के प्रति लक्ष्मण के उक्त उग्रभाव सुमंत्र के लौटते समय उमड़ ही पड़ते हैं। यहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने उसका संकेतमात्र किया है। साथ ही राम ने उसे बहुत ही अनुचित बतलाकर सुमंत्र से पिता को न बतलाने का आग्रह भी किया।[६]

---

१. वा० रा०, २/५२/२२-२३।
२ अध्यात्म०, २/७/१०-११।
३. "पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि।
चिन्ता कबनिहु बात कै, तात करिअ जनि मोरि॥"
तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें।
सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥"
—मानस, २/६६; ६६/१
४. वा० रा० २/२१/२-३।
५. तदेव, २/२१/४४।
६. "पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी।
सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन संदेसु कहिअ जनि जाई॥"
—मानस, २/६६/२-३

वाल्मीकि रामायण के चित्रकूट-प्रसंग में श्रीराम भरत से पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक से अचेत हो जाते हैं।[1] पुनश्च वे करुण क्रन्दन करते हुए भरत से कहते हैं कि, "भैया ! जब पिताजी परलोकवासी हो गये तब अयोध्या चल कर मैं अब क्या करूँगा । हाय ! जो पिता मेरे ही शोक में मृत्यु को प्राप्त हुए, मैं उन्हीं का दाह-संस्कार तक न कर सका । मुझ जैसे व्यर्थ जन्म लेने वाले पुत्र से उन महात्मा पिता का कौन-सा कार्य सिद्ध हुआ ?[2] परन्तप भरत ! वनवास की अवधि समाप्त करके यदि मैं अयोध्या जाऊँ तो फिर कौन मुझे कर्त्तव्य का उपदेश करेगा ? क्योंकि पिताजी तो परलोकवासी हो गये हैं।"[3] ऐसा कहते-कहते राम उन्मत्त से हो उठते हैं, वे कहते हैं—"सीते ! तुम्हारे श्वसुर चल बसे ! लक्ष्मण ! तुम पितृहीन हो गये, आदि।"[4]

तुलसी ने वाल्मीकि के उक्त विस्तृत वर्णन को सीमित कर दिया है। मानस के राम अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर हैं किन्तु गुरु वशिष्ठ द्वारा जगत की निःसारता एवं मिथ्यात्व के उपदेश के अनन्तर भी उनके शोक की गहराई इन पंक्तियाँ से जानी जा सकती है—

"नृपकर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा।।
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी।।"[5]

यही नहीं—

"ब्रतु निरम्बु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जल काहुँ न लीन्हा।।"[6]

उनकी असह्य वेदना इसी से प्रकट होती है जब वे भरत से कहते हैं—

"तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरुकुल कृपां संभारी।।
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू।।
जौं बिनु अवसर अथइ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।।
तस उतपातु तात विधि कीन्हा। मुनि मिथलेस राखि सबु लीन्हा।।"[7]

---

१. वा० रा०, २/१३०/१।
२. तदेव, २/१०३/८-९।
३. तदेव, २/१०३/१२।
४. तदेव, २/१०३/१५।
५. मानस, २/२४७/२।
६. तदेव, २/२४६/४।
७. मानस, २/३०५/३-४

श्रीराम को अपने पिता का कष्ट असह्य हो जाता है। हनुमन्नाटक में वे म्रियमाण जटायु से निवेदन करते हैं कि, "सीताहरण की चर्चा पिता दशरथ के सामने न चलाइएगा। यदि मैं राम हूँ तो थोड़े दिनों में लज्जा से सिर लटकाये बन्धु-बान्धव सहित रावण स्वयं ही उनके पास जाकर उसकी चर्चा करेगा।"[१] इस कथन से जहाँ राम का अगाध आत्मविश्वास व्यक्त होता है वहीं राम इस बात से भी चिंतित हैं कि सीताहरण को सुनकर स्वर्ग में स्थित मेरे पिता कहीं कष्ट का अनुभव न करने लगें। यही बात तुलसी के राम भी कहते हैं—

"सीताहरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन जाइ।।"[२]

तथा—

"मेरो सुनियो तात संदेसो।
सीय हरन जनि कहेहु पिता सों, ह्वै है अधिक अंदेसो।।"[३]

ऐसे पितृभक्त पुत्र को प्राप्त कर महाराज दशरथ भी कृतकृत्य हैं। तभी तो रावण विजयोपरान्त वे स्वर्ग से उतरकर बड़े स्नेह से राम को गोद में बैठाकर बाँहों में भर लेते हैं[४] तथा अत्यन्त द्रवित होकर कहते हैं कि, "राम, मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुमसे विलग होकर मुझे स्वर्ग का सुख तथा देवताओं द्वारा प्रदत्त सम्मान भी रुचिकर नहीं है"—

"न मे स्वर्गो बहुमतः सम्मानश्च सुरर्षभैः।
त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिश्रुणोमि ते।।"[५]

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी दशरथ पुत्र राम के गुणों एवं सदाचरण के कारण प्रेम पुलकित हो आँसू बहाते हैं।[६]

---

१. हनुन्नाटक, ५/१६
२. मानस, ३/३१
३. गीतावली, ३/१६
४. वा० रा०, ६/११९/१२
५. वा० रा०, ६/११९/१३
६. "तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।
अनुज सहित प्रभु वन्दन कीन्हा। आसिरवाद पितां तब दीन्हा।।
तात सकल तब पुन्य प्रभाऊ। जीत्यो अजय निसाचर राऊ।।
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी।।
मानस, ६/११२/१-२

मातृ-भक्ति

अध्यात्म रामायण में जब राम वनगमन के लिए माता से विदा लेने जाते हैं तब कौशल्या उनके साथ स्वयं भी वन जाने का आग्रह करती है।[१] साथ ही उन्हें वन जाने से रोकती हुई वह कहती है कि जिस प्रकार पिता तुम्हारे गुरु हैं, मैं उनसे अधिक तुम्हारी गुरु हूँ। यदि पिता ने तुमसे वन जाने को कहा है तो मैं तुम्हें रोकती हूँ।[२] अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित तद्यपि रामचरितमानस में भी इसी प्रकार माता श्रीराम को वन जाने से रोकती हैं परन्तु यहाँ कौशल्या अत्यन्त मर्यादित एवं शालीन ढंग से आग्रह करती है—

"जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥[३]

यहाँ माता चाहते हुए भी पुत्र के साथ वन जाने का अधिक आग्रह इसीलिए नहीं करती कि श्रीराम को कहीं यह सन्देह न हो कि इसी बहाने वह उन्हें वन जाने से रोकना चाहती है।[४] क्योंकि "पितु आयसु सब धरमक टीका"[५] का ज्ञान उसे भलीभाँति है।

अध्यात्म रामायण में राम माता कौशल्या को दार्शनिक उपदेश के साथ आश्वस्त करते हैं कि "माता! यह चौदह वर्ष की अवधि आधे क्षण के समान बीत जायेगी, आप दुःख दूर करके हमें वन जाने की अनुमति दीजिए। आपके ऐसा करने से मैं वन में सुखपूर्वक रह सकूँगा।"[६] यह कह कर श्रीराम बहुत देर तक माता के चरणों में दंड के समान पड़े रहे।[७] अध्यात्म रामायण की ही भाँति मानस की कौशल्या को भी श्रीराम सान्त्वना देते और पिता की आज्ञा पूर्ण करके लौटने का आश्वासन देते हैं।[५]

---

१. अध्यात्म०, २/४/८
२. तदेव, २/४/१२
३. मानस, २/५६/१
४. "जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू॥"
मानस, २/५६/३
५. तदेव, २/५५/४
६. अध्यात्म०, २/४/४६-४७
७. तदेव, २/४/४८
८. "आयसु देहु मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि मोरें। आनंदु अंबु अनुग्रह तोरें॥
× × ×

वाल्मीकि रामायण में वनगमन के अवसर पर श्रीराम सीता को घर पर धैर्य धारण करके रहने[१] तथा अपनी बूढ़ी माता कौशल्या की सेवा करते रहने को कहते हैं ।[२] साथ ही वे शेष सभी माताओं की सेवा का निर्देश देते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में सभी माताएँ समान हैं ।[३] वे सीता से यह भी कहते हैं कि, "पिता और माता के अधीन रहना पुत्र का धर्म है, इसलिए मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके जीवित नहीं रह सकता ।[४] माता-पिता और गुरु के समान दूसरा कोई पवित्र देवता इस भूतल पर नहीं है ।[५] माता-पिता की सेवा में लगे रहनेवाले महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक, गोलोक तथा अन्य लोकों को भी प्राप्त कर लेते हैं ।"[६]

इसी प्रकार रामचरितमानस में जब माता कौशल्या कहती हैं कि यदि सीता घर में रह जाय तो मुझे बहुत बड़ा अवलम्ब मिलेगा,[७] तब माता के समक्ष बड़े संकोच से श्रीराम वाल्मीकीय पद्धति पर ही सीता को घर पर रह कर माता की सेवा करने का उपदेश देते हुए अत्यन्त मार्मिक ढंग से समझाते हैं ।[८]

बरष चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मनु जनि करसि मलान ।।

तदेव, २/५३/४; २/५३

१. वा० रा०, २/२६/२८
२. वा० रा०, २/२६/३१
३. तदेव, २/२६/३२
४. तदेव, २/३०/३२
५. तदेव, २/३०/३४
६. तदेव, २/३०/३७
७. "जौं सिय भवन रहै कह अंबा, मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ।।"

मानस, २/६०/४

८. "आपन मोर नीक जौं चहहू । बचनु हमार मानि गृह रहहू ।।
आयसु मोर सासु सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ।।
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ।।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ।।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समुझाएहु मृदुबानी ।।
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ।।"

तदेव, २/६१/२-४

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम लक्ष्मण को अपने साथ वनगमन से इसी कारण रोकते हैं कि "आज मेरे साथ यदि वन को चल दोगे तो परमयशस्विनी माता कौशल्या तथा सुमित्रा की सेवा कौन करेगा।[१] सुमित्राकुमार! तुम मेरे लिए ऐसा ही करो, क्योंकि हम लोगों से वियुक्त हमारी माँ को कभी सुख नहीं मिलेगा।"[२]

मानस के राम भी लक्ष्मण को इसलिए रोकना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में माता, पिता एवं गुरु का आदेश पालन ही जीवन का परम लाभ है। इससे पृथक जीवन तो व्यर्थ ही है—

"मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनमु जग जायँ॥"[३]

माता कौशल्या की तो बात ही क्या, अपने साथ क्रूर एवं निष्ठुर व्यवहार करनेवाली विमाता कैकेयी के प्रति भी राम अत्यन्त विनम्र हैं एवं उसका सम्मान करते हैं। वाल्मीकि रामायण में वे कैकेयी से कहते हैं कि "निश्चय ही मैं चीर और जटा धारण करके वन को चला जाऊँगा, तम प्रसन्न रहो।[४] तथा मैं केवल तुम्हारे कहने से भी अपने भाई भरत के लिए इस राज्य को, सीता को, प्यारे प्राणों को तथा सारी सम्पत्ति को भी प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ही दे सकता हूँ।"[५]

तुलसी के मानस में भी इसी प्रकार श्रीराम कैकेयी से कहते हैं कि, "माता-पिता के वचनों का पालन करने वाला पुत्र ही भाग्यशाली है। माता-पिता को सन्तुष्ट रखनेवाले पुत्र का संसार में मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। प्राणप्रिय भरत को राज्य की प्राप्ति हो रही है, इससे मैं यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि आज ब्रह्मा मेरे अनुकूल हो गया है। यदि इस कार्य के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो वास्तव में मुझसे अधिक मूढ़ अन्य कोई नहीं है।"[६]

---

१. वा० रा०, २/३१/११।
२. तदेव, २/३१/१७।
३. मानस, २/७०।
४. वा० रा०, २/१९/४।
५. तदेव, २/१९/७।
६. "सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
मुनिमन मिलन बिशेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥"
भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥"
—मानस, २-४१ से दो० ४२/१ तक

वाल्मीकि रामायण में हेमन्तऋतु वर्णन के अन्तर्गत गोदावरी के तट पर जब लक्ष्मण क्रूरकर्मा कैकेयी की निन्दा करते हैं तब श्रीराम उसे सहन नहीं कर पाये। वे लक्ष्मण से कहते हैं कि "तात ! तुम्हें मझली माता कैकेयी की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए।"[१] यही नहीं, चित्रकूट में वे भरत से कैकेयी का दोष-दर्शन करने से मना करते हैं।[२] इसी प्रकार मानस में भी जब भरत आत्मग्लानिवश अपनी माता कैकेयी की भर्त्सना करते हैं[३] तब राम को माता कैकेयी की निन्दा अच्छी नहीं लगती। वे भरत को समझाते हुए कहते हैं :—

"उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोक नसाई ॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई ॥[४]

यही नहीं, चित्रकूट में श्रीराम सर्वप्रथम कैकेयी से ही मिलकर उसे आश्वस्त करते हैं।[५]

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में भी लक्ष्मण द्वारा दशरथ एवं कैकेयी की भर्त्सना करने पर श्रीराम पिता दशरथ एवं माता कैकेयी से लक्ष्मण को क्षमा कर देने को कहते हैं—

"लड़कपन भूल लक्ष्मण का सदय हो।
हमारा वंश नूतन कीर्तिमय हो ॥
क्षमा तुम भी करो सौमित्र को माँ !
न रक्खो चित्त में उस चित्र को माँ ॥"[६]

गुरु-भक्ति

श्रीराम के दो गुरु हैं। एक कुलगुरु वशिष्ठ तथा दूसरे दीक्षागुरु विश्वामित्र। श्रीराम कुलगुरु के अनुशासन में उनके गृह में रह कर स्वल्पकाल में ही समस्त विद्याओं में निष्णात हो जाते हैं—

---

१. वा० रा०, ३/१६/३५-३७।
२. तदेव, २/११२/१६।
३. मानस, २/२६१/१।
४. तदेव, २/२६३/४।
५. "प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभायँ भगति मति भेई।
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम विधि सिर धरि खोरी ॥"
तदेव, २/२४४/४
६. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८५।

"गुरोरास्यात्सुमुहूर्ते वेदान सांगांश्चतुर्विधान् ।
चतुर्मुखोद्गतान्यैव कलाः शास्त्रादिकान्यपि ।।[1]

आनन्द रामायण की भाँति तुलसी का भी कथन है कि गुरुगृह जाकर राम ने स्वल्पकाल में ही सभी विद्याएँ प्राप्त कर लीं—

"गुरु गृह गये पढ़न रघुराई । अल्पकाल विद्या सब पाई ।।[2]

अध्यात्म रामायण में राज्यतिलक की सूचना एवं समयोचित शिक्षा देने के लिए राजा दशरथ कुलगुरु वशिष्ठ को श्रीराम के महल में भेजते हैं। आचार्य होने के कारण वे बेरोक-टोक भीतर चले जाते हैं। गुरुजी को अपने घर आया देखकर श्रीराम तुरन्त हाथ जोड़कर उनका स्वागत एवं भक्तिपूर्वक दंडवत प्रणाम करते हैं। पुन. श्रीराम उन्हें बड़े आदर से सिंहासन पर बैठाकर सीता सहित उनका चरणोदक सिर पर रख कर कहते हैं कि, "हे मुने ! आपके चरणोदक को धारणकर आज मैं कृतकृत्य हो गया।"[3]

अध्यात्म रामायण की ही भाँति तुलसी के राम भी गुरु वशिष्ठ का सत्कार एवं सम्मान करते हैं। उनकी गुरु के प्रति प्रणति, शील, विनय एवं आत्मसमर्पण की भावना अध्यात्म रामायण से भी कहीं अधिक मर्मस्पर्शी है।[4] वे जब गुरु का अपमान सुनते हैं तब द्वार पर आकर उनके चरणों में मस्तक झुकाते हैं।[5] षोडषोपचार से उनकी पूजा करके सीता सहित उनके चरण-स्पर्श करते हैं। साथ ही बड़े विनीत भाव से कहते हैं कि "यद्यपि मुझे सेवक के घर आप स्वामी का पधारना समस्त मंगलों का मूल एवं अमंगलों का नाशक है, परन्तु उचित तो यही था कि इस कार्य के लिए आप इस दास को ही बुला भेजते।[6] प्रभु, आपने अपनी प्रभुता पर ध्यान न देकर मुझ पर जो स्नेह दिखलाया है उससे यह घर पवित्र हो गया। अब आपकी जो आज्ञा हो वही मैं करूँ क्योंकि स्वामी की सेवा में ही सेवक का निःश्रेयस निहित है।"[7]

भगवान राम के इस सत्कार से प्रसन्न हो वशिष्ठ मुनि उनकी प्रशंसा करते हैं तथा अध्यात्म रामायण में अपना गुरुत्व भूलकर उनकी विष्णुरूप में स्तुति करने

---

१. आनन्द रामायण, सारकाण्ड, २/२६
२. मानस, १/२०४/४
३. अध्यात्म०, २/२/१७-१६
४. मानस, २/६/१ से २/१०/२ तक
५. तदेव, २/८/१
६. तदेव, २/६/२-३
७. तदेव, २/६/४

लगते हैं। वे यह कहते हैं कि आप ही गुरुओं के गुरु एवं पितृगणों के भी पितामह हैं।[१] साथ ही वे श्रीराम से उनकी लोकविमोहिनी माया से ग्रसित न होने का वरदान माँगते हैं।[२]

परन्तु तुलसी मर्यादावादी भक्तकवि हैं। वे यद्यपि राम के नारायणत्व एवं अवतारत्व से भलीभाँति परिचित हैं किन्तु लोक शिक्षा हेतु वशिष्ठ के गुरुरूप को शिष्य के समक्ष किसी प्रकार भी प्रदर्शित करना उपयुक्त नहीं समझते। यहाँ वशिष्ठ अत्यन्त मर्यादित ढंग से अपने शिष्य की प्रशंसा करके केवल इतना ही कहते हैं कि "हे राम ! भला आप ऐसा क्यों न कहें ? आप सूर्यकुल के भूषण जो हैं।"[३]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में श्रीराम जब गुरु वशिष्ठ को चित्रकूट आश्रम आते देखते हैं तो उन्हें अत्यन्त श्रद्धा से साष्टांग प्रणाम करके बारम्बार अपने को धन्य-धन्य कहने लगते हैं।[४]

अध्यात्म रामायण की भाँति तुलसी के मानस में श्रीराम प्रेम से अत्यन्त विह्वल हो गुरुचरणों में प्रणाम करते हैं।[५] परन्तु यहाँ विशेषता यह है कि गुरु भी राम सदृश आदर्श शिष्य के प्रति अपने स्नेह को हृदय में रोक नहीं पाते—

"मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥[६]

यही नहीं, राम का प्रिय होने के नाते केवट को भी बलात् गले लगा लेते हैं—

"राम सखा रिसि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा॥"[७]

इसी प्रकार साकेत के राम में भी गुरु वशिष्ठ के प्रति पितृ-तुल्य अगाध श्रद्धा है।[८]

---

१. अध्यात्म०, २/२/२२-२६

२. तदेव, २/२/३१-३२

३. मानस, २/६

४. "ततः समागतं दृष्ट्वा वशिष्ठं मुनिपुङ्गवम्।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः॥"
अध्यात्म०, २/६/१०-११

५. मानस, २/२४३/२

६. तदेव, २/२४३/२

७. तदेव, २/२४३/३

८. फिर बोले वे—"क्या करूँ और मैं कहिए।
गुरुदेव, आप ही तात-तुल्य अब रहिए॥"
साकेत, सर्ग ८, पृ० २४२

लंका विजयोपरान्त जिस समय राम का विमान नन्दिग्राम में उतरता है उस समय भरत की असीम एवं असह्य विरह वेदना को जानते हुए भी कि —"बीतें अवधि जाउँ जौं, जियत न पाऊँ वीर"[१] भगवान राम की गुरु-महिमा एवं लोक-मर्यादा का पूर्ण ध्यान है। वे भरत के उत्कृष्ट प्रेम को अपने हृदय में सँजोये हुए सर्वप्रथम अपने कुलगुरु वशिष्ठ के चरणों पर ही गिरते हैं।[२] यही नहीं, वे अपने वानर-सखाओं को भी गुरु चरणों पर गिरने की शिक्षा देते हैं तथा लंका-विजय का सारा श्रेय उदाराशय राम गुरुचरणों को ही देते हैं।

'पुनि रघुपति सब सखा बुलाए। मुनिपद लागहु सकल सिखाए ॥
गुरु वशिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ॥"[३]

इस स्थल पर अध्यात्म रामायण चूक गया है और न आदिकवि को ही सहज ध्यान रहा है। अध्यात्म रामायण[४] एवं वाल्मीकि रामायण[५] दोनों में ही श्रीराम सर्वप्रथम भरत एवं शत्रुघ्न को विमान पर चढ़ा लेते हैं तथा गले से मिलते हैं। आदिकवि को वशिष्ठ का ध्यान बाद में राम के राज्यतिलक के अवसर पर ही आया है।[६] हाँ, अनर्घराघव में राम विमान से उतर कर शीघ्रता से सर्वप्रथम गुरु वशिष्ठ के चरण-स्पर्श करके उन्हें प्रणाम करते हैं और वशिष्ठ राम को गले लगाकर आशीर्वाद देते हैं।[७]

---

१. मानस, ६/११६-ग

२. "चाह धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहिं दाया ॥"
तदेव, ७/५/२

३. तदेव, ७/८/३

४. अध्यात्म०, ६/१४/८३

५. वा० रा०, ६/१२७/४०

६. तदेव, ६/१२८/२३

७. अनर्घराघव, ७/१३६, १३७

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने इस स्थल पर अनर्घराघव से प्रेरणा ग्रहण की है। परन्तु 'मानस' में स्थान-स्थान पर राम की गुरु के प्रति जो निष्ठा, विनय, प्रेम एवं प्रणति प्रदर्शित की गई है[१] वह किसी पूर्ववर्ती रामकाव्य में उपलब्ध नहीं है। तुलसी द्वारा निरूपित गुरु-माहात्म्य का प्रमुख श्रेय उनके समय में परम्परागत सन्तों एवं भक्तों के मध्य चली आने वाली गुरु-पूजा, गुरु-भक्ति एवं विनयी तुलसी की अपनी मर्यादावादी विचारधारा को है।

श्रीराम के दीक्षागुरु विश्वामित्र हैं। वाल्मीकि रामायण में वे दशरथ से याचना के समय शिष्य के प्रति एक आदर्श गुरु के कर्त्तव्य का परिज्ञान कराते हुए आश्वस्त करते हैं कि, "ये मुझसे सुरक्षित रह कर अपने दिव्य तेज से उन राक्षसों का विनाश करेंगे तथा मैं इन्हें अनेक प्रकार के श्रेय प्रदान करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। उस श्रेय को प्राप्तकर ये तीनों लोकों में विख्यात होंगे।"[२] इसी से प्रभावित मानसकार भी कहता है—

"देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं, इन्ह कहँ अति कल्यान॥"[३]

ताड़का-वध-प्रसंग के अन्तर्गत 'मानस' में राम गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाते ही ताड़का का वध बिना किसी ननु-नच के कर डालते हैं, क्योंकि उन्हें गुरु पर अगाध विश्वास है।[४] तुलसी यहाँ अध्यात्म रामायण से प्रभावित हैं। वहाँ गुरु विश्वामित्र ताड़का का परिचय देते हुए राम से कहते हैं कि "तुम बिना कुछ सोच किये उसे मार डालो।" तब राम 'बहुत अच्छा' कह कर उसे एक ही वाण से मार डालते हैं।[५]

रामचन्द्रिका के राम स्त्री होने के कारण ताड़का का वध करने में संकोच करते हैं। परन्तु वाल्मीकि रामायण[६] की भाँति जब विश्वामित्र उन्हें अनेक प्राचीन

---

१. मानस, १/२२६/२-३; १२/२२६; १/२२७/१; १/२३७/१-२; १/२५४/६-७; १/२६१/५; १/३०७/५-७; २/३०६/२-३ तथा ७/२६/२

२. वा० रा०, १/१६/६-११

३. मानस, १/२०७

४. तदेव, १/२०६/३

५. अध्यात्म०, १/४/२७-३०

६. वा० रा०, १/२५/१६-२०

दृष्टान्त देकर आततायी स्त्री-वध का औचित्य समझाते हैं तब वे ताड़का का वध करते हैं।[1]

वाल्मीकि रामायण में सिद्धाश्रम पहुँचकर श्रीराम गुरु विश्वामित्र से पूछते हैं कि यज्ञरक्षार्थ हमें किस समय सन्नद्ध होना है। परन्तु कौशिक के मौन हो जाने के कारण मुनियों के आदेश से निरन्तर छः दिन और छः रात तक तपोवन की रक्षा करते हैं।[2]

इसी प्रकार मानस में राजगुरु विश्वामित्र की यज्ञरक्षा में सतर्क एवं दृढ़ प्रतीत होते हैं। वे गुरु को निर्भय होकर यज्ञ करने को कहते हैं—

"प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥"[3]

यज्ञ पूर्णतः सफल हो जाने पर वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र अपने आज्ञाकारी शिष्य पर गर्व करते हुए कहते हैं कि, "महाबाहो! मैं तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया। तुमने गुरु की आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया। महायशस्वी वीर! तुमने इस सिद्धाश्रम का नाम सार्थक कर दिया।"[4] परन्तु मानस में तो विश्वामित्र आदर्श एवं महापराक्रमी शिष्य को पाकर कृतकृत्य हैं। उस रामरूप महानिधि की प्राप्ति में ही वे अपने यज्ञ को पूर्ण हुआ समझते हैं।[5]

आदर्श पति

राम आदर्श पति हैं। उनका एकपत्नीव्रत स्तुत्य है। अध्यात्म रामायण में "एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षि सर्वदा शुचिः" कह कर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है।[6] इसी आधार पर केशव ने भी रामचन्द्रिका में "सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी" के रूप में उन्हें एकपत्नीव्रत पालन में आदर्श कहा है।[7] तुलसी के राम तो एकपत्नीव्रत के पालन में इतने सतर्क एवं दृढ़ हैं कि जाग्रत की कौन कहे, स्वप्न में भी वे परस्त्री पर दृष्टिपात नहीं करते। जिस प्रकार प्रसन्न-राघव में राम कहते हैं कि

---

१. रा० चं०, ३/८
२ वा० राम०, १/३०/३-५
३. मानस, १/२१०/१
४. वा० रा०, १/३०/२६
५. मानस, १/२०/६/३; १/२०/६/२
६. अध्यात्म०, ७/४/३०
७. रा० चं०, २८/४

"यह परस्त्री है क्या ? ऐसी शंका भी रघुवंश में उत्पन्न पुरुषों को संकोच में डालने वाली होती हैं।"[१] ठीक उसी प्रकार वे मानस में भी कहते हैं कि परस्त्री-दर्शन रघुवंशियों के स्वभाव में ही नहीं है ।[२]

श्रीराम के हृदय में अपनी प्राणप्रिया जानकी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है। वे उनके ऊपर विपत्ति की छाया भी सहन नहीं कर सकते। इसी कारण वनगमन के समय सुकुमारी सीता को वनवास की कठिनाइयों एवं भयानकता का वर्णन करके रोकना चाहते हैं। अध्यात्म रामायण में वे सीता को समझाते हुए कहते हैं कि, "मैं तुम्हें अनेक व्याघ्रादि वन-पशुओं से पूर्ण वन में कैसे साथ ले चलूँ ? वहाँ मनुष्यों का भक्षण करने वाले भयंकर राक्षस रहते हैं तथा सब ओर सिंह, व्याघ्र तथा शूकर आदि हिंस्र जीव फिरते हैं। हे सुन्दर कटिवाली ! वहाँ भोजन के लिए कटु एवं खट्टे फल-मूलादि ही मिलते हैं। वे फल भी सदा नहीं मिलते, किसी-किसी समय कहीं मिलते हैं। अनेक दोषों से युक्त दण्डकारण्य में बहुत-सी गुफाएँ और गड्ढे हैं तथा वह झिल्ली और डाँसों आदि से भरा हुआ है। उस वन में शीत, वायु और धूप आदि के समय भी पैदल चलना पड़ता है। मुझे सन्देह है कि तुम वन में राक्षसादि की भयंकर मूर्ति देखकर तत्काल प्राण-त्याग कर बैठोगी। इसलिए हे भद्रे ! तुम घर में ही रहो, मुझे शीघ्र ही फिर देख पाओगी।"[३]

उपर्युक्त भावों से भावित तुलसी के राम भी मानस-सलिल-सुधा-प्रतिपालित हंसगामिनी एवं नव रसाल वन विहारिणी कोकिल-कंठी सीता को करील, कुश, कण्टकाकीर्ण वन में जाने का प्रतिरोध करते हैं।"[४]

परन्तु सीता के अनन्य अनुराग एवं प्राण-त्याग की आशंका[५] मात्र से श्रीराम उन्हें शीघ्र ही वनगमन की आज्ञा देते हुए कहते हैं —

---

१. प्रसन्नराघव, २/७

२. "रघुबंसन्हि कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥"
—मानस, १/२३१/३

३. अध्यात्म० २/४/६४-६६

४. मानस, २/६२/२ से २/६३/1 तक।

५. "यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः।
इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः ॥"
अध्यात्म०, २/४/७६

"न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये ।
नहि मेऽस्ति भय किंचित स्वयम्भोरिव सर्वतः ।।"[1]

"देवि ! तुम्हें दुःख देकर मुझे स्वर्ग का सुख मिलता हो तो मैं उसे भी लेना नहीं चाहूँगा । स्वयंभू ब्रह्मा की भाँति मुझे किसी से किंचित भी भय नहीं है।"

वाल्मीकि के उक्त भावों से अनुप्रेरित मानस में श्रीराम सीता के प्राणत्याग की आशंका से अपने साथ चलने की अनुमति दे देते हैं—

"देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखें नहिं राखिहि प्राना ।।
कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ।।"[2]

और जब अयोध्या से बाहर वनपथ पर पद रखते ही कोमलांगी सीता श्रमित हो अपने प्राणपति से पूछती हैं कि, अभी और कितनी दूर चलना है, तब श्रीराम की आँखें सजल हो उठती हैं। हनुमन्नाटककार लिखता है—

"सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी ।
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता ।।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा ।
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ।।"[3]

"सिरस-सुमन सदृश कोमलांगी सीता ने अयोध्यापुरी की निकटवर्ती भूमि में शीघ्रता से तीन-चार पग चलकर ही इस प्रकार बारम्बार कह कर कि प्राणनाथ ! अब और कितना चलना है, श्रीराम के आँसुओं का प्रथम जन्म कराया।"

हनुमन्नाटक के उपर्युक्त भावों से पूर्णतः प्रभावित इसी प्रकार तुलसी अपनी कवितावली में भी श्रीराम की भाव-विह्वल स्थिति का चित्रण करते हैं—

"पुर ते निकसीं रघुबीर-वधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भालकनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वे ।।
फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित ह्वै ?
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ।।"[4]

---

१. वा० रा०, २/३०/२७

२. मानस' २/६८/१-२

३. हनुमन्नाटक, ३/१२

४. कवितावली, २/११

गीतावली में भी सीता अपने प्रियतम राम से पूछती हैं :—

"कहौ सो विपिन हैं धौं केतिक दूरि ।

जहाँ गवन कियो कुँवर कौसलपति, बूझति सिय पिय पतिहि बिसूरि ।"[१]

प्रियतमा के इन हृदयद्रावक वचनों को सुनकर श्रीराम के कमलनेत्रों में जल भर आया—

"तुलसिदास प्रभु प्रिया वचन सुनि, नीरज नयन नीर आए पुरि ।।"[२]

आगे वनमार्ग में सीता के श्रमित हो जाने पर श्रीराम प्रियतमा को अपने वल्कल-वस्त्र से वायु करके शान्त एवं प्रसन्न करते हैं । सीता भी अपनी चंचल दृष्टि से उनका श्रम-निवारण करती हैं—

"कान्तेनाथ प्रणयमधुरं किञ्चिदाचञ्चलेन ।

श्रान्ता श्रान्ता जनकतनया वल्कलस्याञ्चलेन ।।"[३]

प्रसन्नराघव के उपर्युक्त स्थल से प्रभावित केशव रामचन्द्रिका में लिखते हैं—

"मग को श्रम श्रीपति दूर करैं, सिय की शुभ वाकल अंचल सों ।

श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव, चंचल चारु दृगंचल सों ।।"[४]

तुलसी के मर्यादापुरुषोत्तम राम अपनी प्रिया को हवा तो नहीं करते किन्तु उसे थकी हुई जान कर अपने पैर के काँटे निकालने के बहाने उन्हें विश्राम का अवसर अवश्य प्रदान करते हैं । अपने प्रति प्रियतम के इस अथाह अनुराग को देखकर सीता के नेत्रों में आँसू छलक पड़ते हैं ।[५]

वनवास-काल में भी श्रीराम को प्रियतमा सीता के योग-क्षेम एवं सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान था । वे उन्हें प्रेमपूर्वक अलंकृत करके उनका मनोरंजन किया करते थे । आनन्द रामायणकार के अनुसार "श्रीराम मैनसिल की सुन्दर शिला पर चन्दनादि घिसकर सीता के मस्तक पर तिलक रचना करते थे । अपने कर कमलों से प्रियतमा के कोमल गालों पर चित्रावली का निर्माण करते थे । वृक्षों के कोमल, लाल पत्तों एवं अनेक प्रकार के पुष्पों से उन्हें सजाते थे ।"[६] आनन्द रामायण के उक्त भाव को मानसकार ने संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया है—

---

१. गीतावली, २/१३

२. तदैव, २/१३

३. प्रसन्नराघव, ५/२८

४. रामचन्द्रिका, ९/४४

५. "तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै,
बैठि बिलम्ब लौं कण्टक काढ़े ।
जानकी नाह कौ नेहु लख्यौ,
पुलको तनु वारि विलोचन बाढ़े ।" — कवितावली, २/१२

६. आनन्द०, सारकांड, सर्ग ७, श्लोक १२०-१२१

"एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषन राम बनाये ॥
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर ॥"[१]

वाल्मीकि[२] एवं अध्यात्म रामायण[३] के अनुसार श्रीराम सीता के साथ मनोविनोद करते हुए इन्द्र और शची सदृश आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते हैं। तुलसी के राम भी इसी प्रकार सुखपूर्वक रहते हुए प्रियतमा एवं अनुज का योगक्षेम वहन करते हैं —

"रामु लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि वासव बस अमरपुर, सची जयन्त समेत ॥"[४]

श्रीराम अपनी प्राणप्रिया की रक्षा में कितने तत्पर एवं सतर्क हैं, इसका पता इसी से लग जाता है कि ऐन्द्र जयन्त के चंचुप्रहार से जब उनके चरण से रक्त-स्रावित होने लगता है तब तत्काल ही वे उसकी कुटिलता का अनुमान लगाकर उस पर दिव्यास्त्र का प्रयोग कर देते हैं।[५] अध्यात्म रामायण में जयन्त सीता के पदांगुष्ठ पर चंचु प्रहार करता है[६] परन्तु वाल्मीकि रामायण में वह उनके स्तन को विदीर्ण करता है।[७] साथ ही इस घटना की सूचना अशोक वाटिका में अवस्थित सीता श्रीराम को अपनी स्थिति का विश्वास दिलाने के लिए हनुमान को देती हैं। गोस्वामी तुलसीदास को इसकी प्रेरणा उक्त ग्रंथों से ही मिली है किन्तु उन्होंने उसका उद्‌घाटन घटनास्थल पर ही कर दिया है। साथ ही मानस का जयन्त भी अध्यात्म रामायण की ही भाँति सीता के चरण पर ही चंचु-प्रहार करता है।[८]

---

१. मानस, अरण्डकाण्ड, सोरठा १, चौपाई २
२. वा० रा०, २/६४/२
३. "वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं, रामः ससीतः सहलक्ष्मणेन।
देवैर्मुनीन्द्रैः सहितोमुदास्ते, स्वर्गे यथा देवपतिः सशच्या ॥"
अध्यात्म०, २/६/६२
४. मानस, २/१४१
५. अध्यात्म०, ५/३/५४-५७
६. तदेव, ५/३/५४-५५
७. वा० रा०, ५/३८/२२
८. "सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
थजमि पिपीलिका सागर थाहा। महामंदमति पावन चाहा ॥
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक सन्धाना ॥
× × ×
प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा ॥"
—मानस, ३/१/३ से ३/२/१

इसी प्रकार पंचवटी में क्रुद्ध शूर्पणखा जब सीता को भयाक्रान्त करके उन्हें खाने दौड़ती है तब अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी पत्नी की रक्षा में तत्पर राम अनुज लक्ष्मण द्वारा उसे कुरूप करवा देते हैं ।[१]

श्रीराम को प्रिया सीता की रक्षा का उतना ध्यान है कि जिस समय खर-दूषणादि चौदह सहस्र राक्षस राम से युद्ध करने आते हैं उस समय वे अपने प्राणों की परवाह न करते हुए लक्ष्मण को शपथ दिलाकर सीता को गिरिगुहा में ले जाने को कहते हैं तथा दुर्द्धर्ष राक्षसों से अकेले ही जूझने को प्रस्तुत होते हैं। अध्यात्म रामायण-कार के अनुसार राम के उक्त आदेश का पालन लक्ष्मण को करना पड़ता है—

"सीता नीत्वा गुहां गत्वा तत्र तिष्ठ महाबलः ।
हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वान् राक्षसान् घोररूपिणः ॥
अत्र किञ्चिन्न वक्तव्यं शापितोऽसि ममोपरि ।
तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वरं ययौ ॥"[२]

रामचरितमानस में भी श्रीराम इसी रक्षा की भावना से अनुप्रेरित हो लक्ष्मण से कहते हैं—

"लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर । आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनुपानी ॥"

मारीच वध के समय अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी श्रीराम की रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंपकर उन्हें सतर्क रहने का आदेश देते हैं ।[४]

इस प्रकार अध्यात्म रामायण में लक्ष्मण के रोकने पर भी कि यह मृगरूप-धारी मारीच है,[५] श्रीराम अपनी प्राणप्रिया का मान रखने के लिए उसके पीछे दौड़ जाते हैं ।[६] इसी प्रकार मानस में भी श्रीराम को मारीच के कपट-मृग बनने का ज्ञान है, परन्तु सीता के आग्रह करने पर कि—

"सत्यसंध प्रभु बधि करि एही । आनहु चर्म कहति वैदेही ॥"[७]

---

१. (अ) अध्यात्म०, ३/५/१६-२०
(ब) मानस, ३/१७/५० से दो० १७ तक ।
२. अध्यात्म०, ३/५/२६-३१
३. मानस, ३/१८/६
४. (अ) अध्यात्म०, ३/७/७-८
(ब) मानस, ३/२७/४-५
५. अध्यात्म०, ३/७/६
६. तदेव, ३/७/१०
७. मानस, ३/२७/३

यहाँ राम को प्रिय सीता की अभिलाषा पूर्ति के साथ-साथ सुरकार्य करने का भी ध्यान है।[१]

मारीच-वध के उपरान्त जब श्रीराम अपने लक्ष्मण को आते देखते हैं तब वे सीता के अनिष्ट की आशंका से कहते हैं कि, लक्ष्मण ! तुम मेरी प्रिया सीता को छोड़कर कैसे चले आये ? अब राक्षसगण जनकनन्दिनी को हर ले गये होंगे अथवा उन्हें खा गये होंगे —

"किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्त्वा मम प्रिअम् ।
नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्जनकात्मजा ।।"[१]

अध्यात्म ही नहीं, वाल्मीकि रामायण में भी वे लक्ष्यण से कहते हैं कि "यह तुमने बहुत बुरा किया जो सीता को अकेली छोड़कर यहाँ चले आये। क्या वहाँ सीता सकुशल होंगी ?"[२]

उक्त ग्रन्थों की भाँति ही मानस के राम भी उलाहना भरे स्वर में लक्ष्मण से कहते हैं—

"जनक सुता परिहरहु अकेली। आयहु तात वचन मम पेली ।।
निसिचर निकर फिरहिं वन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाही ।।[३]

इसके उपरान्त श्रीराम ने सीता-वियोग में जो करुण-क्रन्दन किया वह भारतीय इतिहास में किसी पति द्वारा अपनी प्रिया के वियोग में किये गये विलाप का अनन्यतम उदाहरण है।

हनुमन्नाटक में श्रीराम जब अपनी पर्णकुटी में आकर सीता को नहीं पाते तब उनके वियोग में वे विक्षिप्त हो कहते हैं कि, "न पर्णशाला के भीतर और न उसके बाहर ही कोई चरण-चिह्न दिखलाई पड़ता है। तब क्या यह कोई अन्य पर्णशाला है ? अथवा मैं ही राघव नहीं हूँ। सीता का वियोग तो राम एक क्षण के लिए भी सहन करने में असमर्थ हैं।"[४]

---

१ "तब रघुपति जानत सब कारन । उठे हरषि सुर काज सँवारन ।।
मृग विलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ।।
— तदेव, ३/२७/३-४

२. अध्यात्म०, ३/८/६

३. वा० रा०, ३/५७/१७

४. मानस, ३/३०/१-२

५. "बहिरपि न पदानां पंक्तिरन्तर्न काचित ।
किमिदमियन सीता पर्णशाला किमन्या ।।
अहमपि किल नायं सर्वथा राघवश्चेत् ।
क्षणमपि नहि सोढा हन्त सीतावियोगम् ।। —हनुमन्नाटक, ५/२

हनुमन्नाटक की भावभूमि पर केशव के राम भी शंकालु हो लक्ष्मण से पूछते हैं—

"निज देखौं नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौन कहौ अबहीं ।
अति मो हित कै बन माँझ गई सुर मारग में मृग मार्‌यो जहीं ।।
कटु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रही ।
अब है पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं ?"[१]

यही विरह का उन्माद 'साकेत' के राम में भी द्रष्टव्य है :—

"प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही, करता नहीं पुकार अभंग ।
शून्य कुंज-गिरि-गुहा गर्त भी, तुम्हें पुकार रहे हैं संग ।।"[२]

बिरही राम अपनी प्रियतमा के अंग-प्रत्यंगों की सुषमा का स्मरण करके तत्सम्बन्धी प्रकृति-उपमानों से मृगनयनी सीता का पता पूछते हुए खोज रहे हैं। तुलसी इस स्थल पर वाल्मीकि रामायण से पूर्णरूपेण प्रभावित हैं ।[३]

हनुमन्नाटक में विरह-विदग्ध श्रीराम विलाप करते हुये कहते हैं, "हाय सीते ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे जिस अङ्ग से जिनका तिरस्कर होता था, वे वन-पशु इस वन में मेरी अनुपस्थिति में अवसर पाकर तुझे पशु के समान मारकर उन अंगों को बाँट ले गये हैं। कटि-प्रदेश को सिंहों ने, मुस्कान को चन्द्रमा ने, नेत्रों को हरिणों ने, देहकान्ति को चम्पक-कलियों ने, मधुर भाषण को कोकिलों ने और हाय ! तुम्हारी चाल को हाथियों और हंसों ने न जाने कैसे-कैसे बाँट लिया होगा।"[४]

हनुमन्नाटक के उक्त स्थल से अनुप्रेरित सूर के राम भी विलाप करते हुए कहते हैं—

"सुनौ अनुज, इहि बन इतननि मिलि जानकि प्रियाहरी ।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी ।।

---

१. रा० चं०, १२/२७
२. साकेत, सर्ग २५, पृ० ४२६
३. (अ) वा० रा०, ३/६०/१२-२५
(ब) मानस। ३/३०/५-८
४. "मध्योऽयं हरिभिः स्मितं हिमरुचा नेत्रे कुरंगीगणैः ।
कान्तिश्चम्पकः कुड्मलैः कलरवो हा हा हुत कोकिलैः ।।
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विमज्याधुना ।
कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुवन्नीतासि भो मैथिलि ।।"—हनुमन्नाटक, ५-३

कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी।
मृग मूसी नैननि की शोभा, जाति न गुप्त करी॥
चम्पक बरन चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन-लरी।
गति मराल अरु बिम्ब अधर छबि, अहि अनूप कबरी॥
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुग ज्यों जाति धरी।
सूरदास प्रभु प्रिया-प्रेमबस, निज महिमा बिसरी॥"[1]

राम को सीता के वियोग में प्रकृति की समस्त वस्तुएँ विपरीतधर्मा एवं दुःखद प्रतीत हो रही हैं। हनुमन्नाटक में वे कहते हैं कि, "इस समय चन्द्रमा मेरे लिए सूर्य सदृश सन्तप्तकारी हो गया है, मन्दगामी वायु वज्रसदृश प्रतीत होती है, पुष्पमाला सुई की तरह भेदती है, चन्दन का लेप चिंगारी हो गया है। रात्रि शतकल्पतुल्य दीर्घ हो गई है और ये प्राण विधि विपरीत होने के कारण मार बन गये हैं। और क्या कहूँ, प्रिया से वियोग का यह समय मुझे प्रलयकाल सदृश भयावह लग रहा है।"[2] उपर्युक्त से अनुप्रेरित केशव के राम भी लक्ष्मण से कहते हैं—

"हिमांशु सूर सी लगै सों बात बज्र सी बहै।
दिशा जगैं कृसानु ज्यों बिलेप अंग को दहै॥
विसेस का लराति सों कराल राति मानिए।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिए॥"[3]

हनुमन्नाटक में अपनी विरहजनित दशा का जो संदेश सीता राम के पास भेजती हैं, तुलसी ने अपने मानस से लगभग वही राम का सन्देश सीता के लिए बना दिया है।[4] परन्तु प्रसन्नराघव में ऐसा सन्देश राम ही देते हैं। हनुमान कहते हैं कि "हे देवि! रामचन्द्र ने आपको जो सन्देश दिया है उसे सुनिए। चन्द्र-सूर्य सदृश तीक्ष्ण किरणों वाले, नया मेघ दावानल के समान, नदी-तरंग की हवा कुपित सर्प के निःश्वास वायु सदृश, नवीन बेलीफूल माला के समान और कमलों

---

१. सूर रामचरितावली, पद ५३ (गीता प्रेस गोरखपुर)

२. "चंद्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते।
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते॥
रात्रिः कल्प शतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते।
हा हन्त प्रमदावियोग समयः संहार कालायते॥"

—हनुमन्नाटक, ५/२६

३. रामचन्द्रिका, १२/४२

४. हनुमन्नाटक, ६/१६

का उपवन वृन्तशस्त्री के समूह सदृश लग रहा है। इस प्रकार हे सुन्दरि ! तुम्हारे वियोग के कारण यह संसार ही प्रतिकूल हो रहा है।''[1]

प्रसन्नराघव की ही पद्धति पर मानस के हनुमान राम का सन्देश सुनाते हुए सीता से कहते हैं —

''कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए विपरीता ॥
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥
कुबलय विपिन कुन्त वन सरिता। वारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥[2]

सीता-सीता पुकारते हुए गोविन्द रामायण के राम में विरहाग्नि इतनी अधिक तीव्र हो उठती है कि उनके सम्पर्क में आने वाले सरोवर के जल-जन्तु भस्म हो जाते हैं, फल, फूल, वृक्ष, आकाश दग्ध होने लगते हैं, पृथ्वी उसकी उष्णता से मिट्टी के कच्चे बर्तन की तरह पक कर फूट जाती है। यही नहीं, शीतल वायु इतनी अधिक जलने लगती है कि उसे अपनी रक्षा के लिए सरोवर का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।[3]

इसके अतिरिक्त मानस के राम प्रसन्नराघवकार के शब्दों में कहते हैं कि ''हे चन्द्रमुखि ! इस विपत्ति को किसे बताकर आश्वस्त बनूँ ? हम दोनों के प्रच्छन्न प्रणयतत्व को कौन जानता है ? एक मेरा मन उसे जानता है। हे प्रिये ! उसने भी बहुत समय पहले से तुम्हारा अनुसरण कर रखा है।''

प्रसन्नराघव—''कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं।
को जानीते तिमृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् ?
जानात्येकं शशधरमुखि ! प्रेमतत्वं मनो मे।
त्वमेवैतच्चिरमतुगतं तत् प्रिये ! किं करोमि ॥''[4]

---

१. प्रसन्नराघव, ६/४३

२. मानस, ५/१५/१-२

३. ''चहुँ ओर पुकार बकार थके। लघु भ्रात भए बहु भाँति जथे ॥
उठके पुनि प्रात सनान गए। जल-जन्त सबै जरि छार भए ॥
बिरहीं जिस ओर सुदृष्टि परै। फल फूल पलास अकास जरै ॥
कर सौं धर जौन छुअंत भई। कच बासन ज्यों पक फूट गई।
तन राघव भेंट समीर जरी। तजि धीर सरोवर माँझ दुरी ॥''
—गोविन्द रामायण, सीता की खोज, पृष्ठ ९९ (प्रथम संस्करण)

४. प्रसन्नराघव, ६/४४।

मानस—"कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ।।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माही ।।"[1]

राम का सीता के प्रति इतना प्रगाढ़ अनुराग है कि वे रावण का वध इसीलिए नहीं करते, क्योंकि वे सोचते हैं कि रावण के हृदय में स्थित उनकी प्राणप्रिया को कहीं आघात न पहुँच जाय। हनुमन्नाटककार लिखता है :—

"यौ रामौ न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकेः।
स श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः ।।

हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो।
मय्यास्ते भुवनावली बिलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः ।।"[2]

इसी प्रकार के विचार प्रसन्नराघव में विद्याधर विद्याधरी से प्रकट करता है।[3] तुलसी यहाँ हनुमन्नाटक से प्रभावित हैं। त्रिजटा सीता से कहती हैं—

"प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही ।।

एहि के हृदयँ बस जानकी। जानकी उर मम वास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत। बान सब कर नास है ।।"[4]

अध्यात्म रामायण में अग्निदेव द्वारा सीता को निष्कलंक घोषित करने पर श्रीराम अपनी चिरवियोगिनी पतिभक्ता पत्नी को अंक में बैठा लेते हैं—

,स्वांके समावेश्य सदानपायिनी।
श्रियं त्रिलोकजननीं श्रियः पतिः ।।"[5]

केशव को यहीं से प्रेरणा मिली है—

"श्रीरामचन्द्र हँसि अंक लगाइ लीन्हों।
संसार साक्षि शुभ पावक आनि दीन्हों ।।"[6]

---

१. मानस, ५/१५/३-४।

२. हनुमन्नाटक, १४/२६।

३. प्रसन्नराघव, ७/४६।

४. मानस, ६/९८/७ से अगले छन्द्य तक।

५. अध्यात्म०, ६/१३/२३।

६. रा० चं०, २०/१४।

तुलसी के राम भारतीय मर्यादानुसार अपनी प्रियतमा को वाम भाग में प्रतिष्ठित करते हैं।[१]

अपनी पतिपरायणा पत्नी को शुद्ध जानते हुए भी श्रीराम जब उसे त्याग देते हैं तब वे मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव करते तथा तापस जीवन व्यतीत करने लगते हैं।[२] उनका हृदय शोकावेग से विह्वल हो उठता है। वे हाथी के समान लम्बी श्वासें लेने लगते हैं। वाल्मीकि लिखते हैं—

"शोक संपिन्नहृदयो निःश्वास यथा द्विः ॥"[३]

भवभूति के उत्तररामचरित में भी पत्नी-वियोग से सन्तप्त राम कहते हैं कि, "मेरा हृदय शोक की व्याकुलता से फट रहा है, परन्तु दो टुकड़े नहीं होता। व्यथित शरीर मूर्च्छित होता है परन्तु चेतनता को नहीं त्यागता। अन्तःसन्ताप शरीर को जला रहा है, किन्तु भस्मसात नहीं करता। भाग्य मर्मभेदी प्रहार करता है परन्तु जीवन को सर्वथा नष्ट नहीं करता।"[४]

कुछ इसी प्रकार की अन्तर्वेदना 'वैदेही-वनवास' में भी श्रीराम अपने अनुज से व्यक्त करते हुए कहते हैं—

"तात ! विदित हो कैसे अन्तर्वेदना।
काट कलेजा क्यों मैं दिखलाऊँ तुम्हें ॥
स्वयं बन गया जब मैं निर्मम जीव तो।
मर्मस्थल का मर्म्म क्यों बताऊँ तुम्हें ॥"[५]

---

१. "धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीर सागर इन्दिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सो राम बाम विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नवनीलनीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ॥"
—मानस, ६/१०६/छंद २

२. अध्यात्म रामायण, ७/४/६३।

३. वा० रा०, ७/४५/२५।

४. "दलति हृदयं शोकोद्वेगाद्द्विधा तु न भिद्यते।
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ॥
ज्वलयति तनूमन्तर्दाह करोति न भस्मसात्।
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥"
—उत्तररामचरित, ३/३१।

५. वैदेही-वनवास, ६/४८।

भ्रातृ-प्रेम

जीवन की उषावेला से ही राम को अपने सभी बन्धु अत्यन्त प्रिय थे। उनका हृदय अपने भाइयों के प्रति अत्यधिक अनुराग, स्नेह, करुणा एवं क्षमा आदि भावों से आपूरित था। वे उनके हित में महानतम त्याग एवं बलिदान करने को प्रस्तुत थे। वाल्मीकि के अनुसार "लक्ष्मण तो उनके बाह्यप्राण ही थे। पुरुषोत्तम श्रीराम को उनके बिना नींद भी नहीं आती थी। यदि उनके पास उत्तम भोजन लाया जाता तो श्रीराम उसमें से लक्ष्मण को दिये बिना नहीं खाते थे।"[१] अध्यात्म रामायण में भी वर्णित है कि श्रीराम भाइयों सहित भोजन करके नित्यप्रति मुनिजनों से धर्मशास्त्रों का मर्म सुनते और स्वयं उनकी व्याख्या करते।[२]

इसी प्रकार तुलसी के राम भी क्रीड़ा में, भोजन के समय एवं अध्ययनकाल में अपने भाइयों के साथ रहते एवं उनकी सहायता किया करते थे।[३] यही नहीं, अपने भाइयों की प्रसन्नता के लिए श्रीराम खेलकूद में जीतने पर भी अपनी हार मान लेते थे—

"हारेहुँ खेल जितावहिं मोंहीं ॥"[४]

श्रीराम जब अपने राज्याभिषेक का समाचार सुनते हैं उस समय अपने लघुभ्राता लक्ष्मण से कहते हैं कि, "लक्ष्मण ! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी के राज्य का शासन करो। तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्मा हो। यह राज्यलक्ष्मी तुम्हीं को प्राप्त हो रही है। सौमित्र ! तुम अभीष्ट भोगों और राज्य के श्रेष्ठ फलों का उपभोग करो ; तुम्हारे लिए ही मैं इस जीवन तथा राज्य की अभिलाषा करता हूँ।"[५]

---

१. वा० रा०, १/१८/३०-३१।

२. अध्यात्म०, ८/३/६५।

३. "बन्धुसखा संग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥

× × ×

अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं ॥

× × ×

वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥"

—मानस, १/२०५/१-३।

४. तदेव, २/२६०/४।

५. वा० रा०, २/४/४३-४४

इस स्थल पर तुलसी के राम का भ्रातृ-प्रेम भी उभर कर सामने आता है। उन्हें अपने भाइयों को छोड़ कर अकेले ही राज्याभिषेक करवाने में संकोच है। वे पश्चात्ताप करते हुए सोचते हैं कि—

"जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा ॥
विमल बंस यहु अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥"[१]

अपने छोटे भाई भरत के राज्याभिषेक के प्रस्ताव से श्रीराम को तनिक भी खेद नहीं होता, प्रत्युत वे अत्यन्त प्रसन्न हो अपना अधिकार छोड़ देते हैं। साथ ही वे कैकेयी से कहते हैं कि "मैं केवल तुम्हारे कहने से भी अपने भाई भरत के लिए इस राज्य को, सीता को, प्रिय प्राणों को तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति को भी प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ही दे सकता हूँ।"[२] यही नहीं, मैं अभी पिता की बात पर कोई विचार न करके चौदह वर्षों तक वन में रहने के लिए तुरन्त दण्डकारण्य को चला जाता हूँ।"[३]

इसी प्रकार तुलसी के राम प्राणप्रिय भरत के राज्य-प्राप्ति पर अपना अहोभाग्य समझते हैं—

"भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहिं सनमुख आजू।
जो न जाउँ बन ऐसेहुँ काजा। प्रथम गनिय मोहिं मूढ़ समाजा ॥"[४]

साकेत के राम भी भरत को अपने से अभिन्न ही समझते हैं—

"अरे यह बात है तो खेद क्या है?
भरत में और मुझ में भेद क्या है?"[५]

राम को भरत पर अगाध अनुराग एवं दृढ़ विश्वास है। वे वनगमन के समय सीता को घर पर रहने के लिए समझाते हुए कहते हैं, "सीते! मेरे भाई भरत-शत्रुघ्न मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। अतः तुम्हें उनको अपने भाई और पुत्र के समान या उससे भी बढ़ कर प्रिय समझना चाहिए—"

"भ्रातृ पुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
त्वया भरत शत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥"[६]

---

१. मानस, २/१०/३-४
२. वा० रा०, २/१९/७
३. तदेव, २/१९/११
४. मानस, २/४२/१
५. साकेत, सर्ग ३, पृ० ७४
६. वा० रा०, ६/२६/३३

भरत के ससैन्य चित्रकूट आने के समाचार से जिस समय लक्ष्मण अत्यन्त उत्तेजित होकर भरत के प्रति न कहने योग्य वचन कहने लगते हैं, उस समय वे भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, "हे लक्ष्मण ! मैं सचाई से अपनेआयुध की शपथ लेकर कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम एवं सम्पूर्ण पृथ्वी तथा और जो कुछ चाहता हूँ, वह सब तुम्हीं लोगों के लिए। लक्ष्मण ! मैं भाइयों की भोग्य सामग्री और सुख के लिए ही राज्य चाहता हूँ।......हे मानद लक्ष्मण ! भरत को, तुमको और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसमें आग लग जाय। हे नरश्रेष्ठ वीर ! मेरे प्राणप्यारे भ्रातृवत्सल भाई भरत ने अयोध्या आने पर जब यह सुना होगा कि मैं तुम्हारे और जानकी के साथ जटा-वल्कल धारण करके वन में आ गया हूँ तब उनकी इंद्रियाँ शोक से व्याकुल हो उठी हैं और वे कुलधर्म का विचार करके स्नेहयुक्त हृदय से हम लोगों के पास मिलने आये हैं। भरत के आगमन का इसके अतिरिक्त अन्य उद्देश्य नहीं हो सकता।"[१]

इसी प्रकार 'मानस' के राम को भी भरत के शील, निष्कपट प्रेम एवं बन्धुत्व पर दृढ़ विश्वास है। वे लक्ष्मण से कहते हैं—

"सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥
भरतहिं होइ न राजमदु, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ ॥"[२]

वे भरत के गुण, शील एवं स्वभाव की प्रशंसा करते-करते प्रेमार्णव में निमग्न हो जाते हैं।[३]

चित्रकूट-सभा में जब भरत अपने भैया राम से अयोध्या लौट चलने का अत्यन्त आग्रह करते हैं तब श्रीराम भरत को बड़े स्नेह से समझाते हैं कि "चौदह वर्षों की अवधि पूरी करके जब मैं वन से लौटूँगा तब अपने इस धर्मशील भाई के साथ इस भू-मंडल का श्रेष्ठ राजा होऊँगा। कैकेयी ने राजा से वर माँगा और मैंने उसका पालन स्वीकार कर लिया। अतः भरत ! अब तुम मेरा कहना मानकर उस वर के पालन द्वारा पिता दशरथ को असत्य के बन्धन से मुक्त करो।"[४]

---

१. तदेव, २/९७/५-६, ८-११।
२. मानस, २/२३१/४ से दो० २३१ तक।
३. तदेव, २/२३२/२-४।
४. "अनेन धर्मशीलेन वनात् प्रत्यागतः पुनः।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥
वृतो राजाहि कैकेय्या यथा तद्वचनं कृतम्।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ॥"
—वा० रा०, २/१११/३१-३२

वाल्मीकि की ही भाँति तुलसी के राम की भाई भरत के प्रति प्रदर्शित आत्मीयता एवं प्रेम स्तुत्य है। वे भी उन्हें समझाते हुए कहते हैं—

"मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहूँ। तात तरनिकुल पालक होहूँ॥

× × ×

बाँटी विपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाए। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के धाए॥"[1]

पुनश्च भरत की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीराम अपनी चरणपादुका देकर उन्हें अयोध्या लौटा देते हैं।

लंका-युद्ध में शक्तिवाण से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर श्रीराम ने जैसा विलाप-प्रलाप किया वह भारतीय साहित्य में भ्रातृ-प्रेम का अन्यतम उदाहरण है।

वाल्मीकि के राम ने अपनी दारुण मनोव्यथा प्रकट करते हुए कहते हैं कि, "अब इस युद्ध से अथवा प्राणों की रक्षा से मुझे क्या प्रयोजन है ? अब युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। जब संग्राम के मुहाने पर मारे जाकर लक्ष्मण ही सदा के लिए सो गये तब युद्ध जीतने से क्या लाभ ? वन में आते समय जैसे महातेजस्वी लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, उसी तरह यमलोक जाते समय मैं भी उनके पीछे-पीछे जाऊँगा।······प्रत्येक देश में स्त्रियाँ मिल सकती हैं, देश-देश में जाति-भाई उपलब्ध हो सकते हैं परन्तु ऐसा कोई देश मुझे नहीं दिखाई देता जहाँ सहोदर भाई मिल सके। दुर्द्धर्ष वीर लक्ष्मण के बिना मैं राज्य लेकर क्या करूँगा ? पुत्र-वत्सला माता सुमित्रा से किस प्रकार बात कर सकूँगा।···भैया,···मैं तुम्हारे बिना रो रहा हूँ, तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं हो ? प्रिय बन्धु ! उठो, आँख खोलकर देखो। क्यों सो रहे हो ? मैं बहुत दुखी हूँ। मुझ पर दृष्टिपात करो।"[2]

तुलसी ने रामचरितमानस में भी ठीक इसी प्रकार श्रीराम के करुण-क्रन्दन का

---

१. मानस, २/३०६/१-४।

२. वा० रा०, ६/१०१/१२-१३, १५-१६, २१-२२।

वर्णन किया है।[1] यही नहीं, गीतावली में भी उनका विलाप एक भाई का दूसरे भाई के प्रति प्रतिदर्शित स्नेह एवं ममता का अन्यतम उदाहरण है।[2] इसी प्रकार सूर ने भी राम के विलाप का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है—

"निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुन, बिसाल कमल दल लोचन मोचत नीर।।
बारह बरष नींद है साधी, तातें विकल सरीर।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यो, बिपति बटावन वीर।।"[3]

केशव के राम भी लक्ष्मण के बिना जीवन धारण करना नहीं चाहते, परन्तु यहाँ उनका विलाप अति संक्षिप्त है।[4] इस स्थल पर साकेत के राम का विलाप भी संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त मार्मिक है—

---

१. "सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बन्धु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता।।
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
जौं जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।

× × ×

जैहउँ अवध कौन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।।
बरु अपजस सहतेउँ जग माही। नारि हानि विसेष छति नाहीं।।

× × ×

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा।।
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी।।
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।।"
मानस, ६/६१/२-८

२. गीतावली, लंका, ७

३. सूर रामचरितावली, पद १६५ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

४. बारक लक्ष्मण मोंहि बिलोकी। मो कहँ प्राण चलें तजि रोकी।।
हौं सुमिरो गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे।।
लोचन बान तुही धनु मेरो। तू बल बिक्रम बारक हेरो।।
तू बिनु हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु भूंठ न भाखौं।।"
रा० चं०, १७/४५

"सर्वकागना मुझे भेंटकर, वत्स कीर्तिकामी न बनो।
रहे सदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न बनो॥"[१]

श्रीराम के हृदय में अपने भ्राता लक्ष्मण के प्रति पीड़ा एवं संवेदना की पराकाष्ठा कहाँ तक पहुँच चुकी थी, इसकी अनुभूति तब होती है जब मूर्च्छारहित होने पर लक्ष्मण से उनके घाव की पीड़ा के विषय में पूछा जाता है। वे कहते हैं —

ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः।
वेदनां राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम्॥"[२]

"मैं इस शक्ति की वेदना को अत्यल्प ही जानता हूँ, अच्छी तरह तो श्रीरामचन्द्रजी ही जानते हैं। क्योंकि वेदना तो श्रीराम को ही थी, मैं तो केवल घायलमात्र ही हुआ।"

हनुमन्नाटक के उपर्युक्त श्लोक का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव तुलसी की गीतावली में मिलता है। यहाँ भी लक्ष्मण कहते हैं—

"हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरे।
पाइ सजीवन जागि कहत यों, प्रेम पुलकि बिसराय सरीरे॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि, जैसे पाठ-अरथ-चरचा कीरे।
सोभा-सुख, छति-लाहु भूप कहँ, केवल कान्ति-मोल हीरे॥"[३]

लंका-युद्ध के उपरान्त विभीषण श्रीराम से वहाँ कुछ समय तक रहकर विश्राम करने की प्रार्थना करते हैं। परन्तु भाई भरत की दशा का स्मरण करके श्रीराम को लंका का समस्त वैभव भी एक क्षण के लिए रोक नहीं पाता। वे वाल्मीकि रामायण में विनम्र किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि, "राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूँ—ऐसा कदापि सम्भव नहीं। परन्तु मेरा मन उस भाई भरत से मिलने के लिए आतुर हो रहा है जिसने चित्रकूट तक आकर मुझे लौटा ले जाने के लिए सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने जिसके वचनों को स्वीकार नहीं किया था"—

"न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥"[४]

---

१. साकेत, सर्ग ११, पृ० ४४७
२. हनुमन्नाटक, १३/३८
३. गीतावली, लंका०, पद १५
४. वा० रा०, ६/१२१/१८-१९

अध्यात्म रामायण में भी वे कहते हैं कि "मेरा भाई भरत अति सुकुमार और मेरा भक्त है। वह जटावल्कल धारण करके शब्दब्रह्म के चिन्तन में तत्पर मेरी बाट जोहता होगा। उससे मिले बिना मैं कैसे स्नान या वस्त्राभूषण धारण कर सकता हूँ ?"[१] उपर्युक्त पद्धति पर मानस के राम भी भाई भरत के प्रेम में आचूड़ निमग्न हैं। वे उनसे एक क्षण का विलम्ब किये बिना मिलने को उत्कण्ठित हैं।[२]

अयोध्या पहुँचने पर चौदह वर्ष की दीर्घ अवधि के पश्चात् प्रेम-विह्वल श्रीराम ने भरत को अपनी गोद में बैठाकर हृदय से लगा लिया। वाल्मीकि एवं अध्यात्मकार दोनों ने ही इस स्थिति का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रण किया है।[३]

मानसकार ने उक्त ग्रंथों से अनुप्रेरित होते हुए भी राम-भरत-मिलन का उससे कहीं अधिक प्रेमपूर्ण एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

"भरत पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाये नहीं उठते। कृपासिन्धु श्रीराम अपने लघु-भ्राता को बलपूर्वक उठाकर हृदय से लगा लेते हैं। उनके रोम प्रेम-पुलकित हैं। नेत्रों में प्रेमाश्रु की बाढ़ आ गई है। उस दिव्य प्रेम का वर्णन करने में कवि भी असमर्थ है।"[४]

लवणासुर-वध प्रसंग में शत्रुघ्न ने जब स्वयं उस राक्षस को मारने की आज्ञा माँगी तब श्रीराम ने अपने छोटे भाई की उक्त प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा शत्रुघ्न के न चाहने पर भी बलात् उन्हें वहाँ का राज्य भी दे दिया।[५] केशव ने उक्त स्थल पर वाल्मीकि से प्रेरणा ली है। परन्तु उनके राम में आदिकवि सदृश भ्रातृवत्सलता नहीं दृष्टिगोचर होती। यहाँ भाई की अपेक्षा राम का राजा-रूप अधिक स्पष्ट है। वे शत्रुघ्न को लवणासुर के वध का आदेश देते हैं।

---

१. अध्यात्म०, ६/१३/४३-४४

२. "तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचनु सुनु भ्रात।
भरत दशा सुमिरत मोहि, निमिष कल्प सम जात॥
तापस वेष गात कृस, जपत निरन्तर मोहि।
देखौं वेगि सो जतनु करु, सखा निहोरउँ तोहि॥
बीते अवधि जाउँ जौं, जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर॥"

—मानस, ६/११६

३. (अ) वा० रा०, ६/१२७/४१
(ब) अध्यात्म०, ६/१४/८४

४. मानस, ७/५/४, छन्द १-२

५. वा० रा०, ७/६२/१६-२०

"चलो वेगि शत्रुघ्न ताको संहारो, वहै देश तो भावतो है हमारो ।।"[१]

शत्रुघ्न लवणासुर-वध के उपरान्त वहाँ मथुरापुरी बसाकर श्रीराम के पास चले आते हैं ।[२]

तुलसी, सूर आदि ने इस प्रसंग का वर्णन नहीं किया है ।

जो लक्ष्मण आजीवन अपने अग्रज श्रीराम के पीछे-पीछे छाया की भाँति घूमता रहा, उसी भ्राता का प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण जब त्याग करना पड़ा तब वे शोक से अत्यन्त व्यथित हो सब को बुलाकर कहने लगे कि "मैं भरत का राज्याभिषेक करके आज ही जिस स्थान पर लक्ष्मण गया है, वहीं चला जाऊँगा ।"[३] फिर लक्ष्मण के सशरीर स्वर्ग चले जाने पर श्रीराम अपने लघु-भाई का वियोग सहन न कर पाये तथा अपने समस्त प्रजा-परिजनों सहित परमधाम को पधार गये ।

सूर, तुलसी एवं केशव आदि ने अपने को इस दारुण-दृश्य से बचाया है ।

आदर्श-मित्र

मैत्रीभाव का आजीवन पूर्णरूप से निर्वाह करना राम-जैसे आदर्श मित्र के ही सामर्थ्य की बात थी । उनके प्रमुख तीन मित्र रहे हैं—निषादराज गुह, सुग्रीव तथा विभीषण ।

जिस समय निषादराज अपने प्रिय सखा श्रीराम को शृङ्गवेरपुर आया हुआ सुनकर अत्यन्त प्रेम-विह्वल हो सुन्दर खाद्य-पदार्थों के साथ अपना राज्य भी समर्पित करने को कहता है,[४] उस समय श्रीराम उसके प्रति कृतज्ञ होते हुए अध्यात्म रामायण में कहते हैं कि, "मित्र ! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक किसी घर या गाँव में नहीं जा सकता और न किसी अन्य के दिये हुए फल-मूलादि ही खा सकता हूँ । मित्र ! तुम्हारा यह सम्पूर्ण राज्य मेरा ही है और तुम भी मेरे अत्यन्त प्रिय सखा हो ।"[५] अध्यात्म रामायण के उक्त भावों के आधार पर ही मानस के राम भी कहते हैं—

"कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ।।

१. रा० चं०, ३४/४४
२. तदेव, ३४/५७
३. वा० रा०, ७/१०७/१-३ ।
४. (अ) वा० रा०, २/५०/३८ ।
(ब) मानस, २/८७/६-७ ।
५. अध्यात्म०, २/६/६८-६९ ।

वरष चारिदस बासु बन, मुनिव्रत वेषु अहारु।
ग्रामबासु नहिं उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख भारु ॥"[१]

अपने परममित्र श्रीराम के गुणों पर रीझकर निषादराज वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण से स्पष्ट शब्दों में कहता है कि, "मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि इस भूतल पर मुझे श्रीराम से बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं है"—

"नहि रामात् प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।
ब्रवीम्येव च ते सत्यं सत्येनैव च ते रपि॥"[२]

इसी प्रकार मानस में भी अपने प्रिय मित्र राम को पृथ्वी पर सोते हुए देखकर वह भाव-विह्वल हो उठता है।[३]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में लंका-विजयोपरान्त भरत से मिलने की त्वरा होते हुए भी श्रीराम अपने मित्र केवट को नहीं भूलते। वे उससे मिलकर ही अयोध्या जाते हैं।[४] यही नहीं, अयोध्या से विदा करते समय श्रीराम उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान करके प्रसन्न करते हैं।[५]

श्रीराम की सुग्रीव के साथ मैत्री हनुमान की मध्यस्थता में अग्नि को साक्ष्य बनाकर होती है।[६] मैत्री दृढ़ हो जाने पर फिर वे दोनों मित्र अपनी दुःख-गाथाएँ

---

१. मानस, २/८७/४ से दो० ८८ तक।

२. वा० रा०, २/५१/४।

३. "सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ विषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई॥"

× × ×

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
—मानस, २/९०/३ ; २/९१/३

४. (अ) वा० रा०, ६/१२५/२३-२४।
(ब) अध्यात्म०, ६/१४/३९।
(स) मानस, ६/१२१/५-६ तथा छंद १-२।

५. (अ) अध्यात्म०, ६/१६/१८-२०।
(ब) मानस, ७/२०/१-३।

६. (अ) वा० रा०, ४/५/१५-१६।
(ब) अध्यात्म, ४/१/४४-४५।
(स) मानस, ४/४।

एक-दूसरे को सुनाकर परस्पर सहायता करने का प्रण करते हैं।[१] यही नहीं, वे सुग्रीव को आश्वस्त करते हुए वाल्मीकि रामायण में यहाँ तक कहते हैं कि, "मेरे धनुष चढ़ाने के पूर्व ही तुम सब बातें प्रसन्नतापूर्वक कह डालो, क्योंकि मैंने ज्योंही वाण छोड़ा तुम्हारा शत्रु तत्काल काल के गाल में जायेगा।

"हृष्टः कथय विस्त्रब्धो यावदारोप्यते धनुः।
सृष्टश्च हि मया वाणो निरस्तश्च रिपुस्तव॥"[२]

अध्यात्म रामायण में भी वे प्रण करते हैं कि तुम्हारी पत्नी को छीननेवाले का मैं शीघ्र ही नाश कर डालूँगा।[३]

इसी प्रकार मानस के राम भी सखा सुग्रीव को सान्त्वता देते हुए कहते हैं—

"सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गएँ न उबरिहि प्रान॥"

तथा—

"सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब विधि घटब काज मैं तोरें॥"[४]

मित्र के मन में किसी प्रकार की आशंका एवं भय न रह जाय, उन्होंने दुन्दुभि "अस्थि' और 'सप्तताल' का भेदन कर डाला।[५] पुनश्च बालि को एक ही बाण से धराशायी करके मित्र के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण किया।[६]

इस प्रकार श्रीराम के आलोचकों एवं आक्षेपकों के—'बालि को छिपकर मारने' के दोषारोपण को सहन करते हुए भी अपने संकटग्रस्त मित्र के दुःख का निवारण करके एक सच्चे मित्र का आदर्श स्थापित किया।

जिस समय राज्यमद एवं विषय-भोगों में पड़ कर सुग्रीव अपने मित्र के उपकार भूल जाता है। शरद ऋतु आ जाने पर भी जब उसे अपने प्रण का ध्यान

---

१. (अ) वा० रा०, ४/७/३।
(ब) मानस, ४/५/४।
२. वा० रा०, ४/८/४४।
३. अध्यात्म०, ४/२/३-५।
४. मानस, ४/६ ; ४/७/५।
५. (अ) अध्यात्म०, ४/१/६६-७४।
(ब) मानस, ४/७/६।
६. (अ) अध्यात्म० ४/२/४४-४७।
(ब) मानस, ४/८ से ४/९/१ तक।

नहीं रहता,[१] उस समय राम उसकी कृतघ्नता पर क्षुब्ध हो उठते हैं। अध्यात्मकार के शब्दों में वे कहते हैं कि "जिस प्रकार बालि मेरे हाथ से मारा गया, उसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धवों सहित आज सुग्रीव भी मारा जायेगा"—

"हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम्।
बाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत्॥"[२]

इसी प्रकार मानस में भी राम कहते हैं—

"सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कीसपुर नारी।
जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥"[३]

परन्तु जब लक्ष्मण उसे मारने को उद्यत होते हैं तब मैत्रीभाव का पूर्ण निर्वाह करने वाले श्रीराम अपने पथभ्रष्ट मित्र को सुमार्ग पर लाने के लिए दयालु हो लक्ष्मण से अध्यात्म रामायण में कहते हैं, "वत्स ! सुग्रीव मेरा प्यारा मित्र है, तुम उसे मारना मत। केवल यह कह कर कि—तू बालि के समान मारा जाएगा— उसे डराना और फिर शीघ्र ही उसका उत्तर लेकर आना।"[४] अध्यात्म से ही अनुप्रेरित तुलसी और केशव के राम भी अपने अनुज को इसी प्रकार समझाते हैं।[५] यही नहीं, सुग्रीव के आने पर श्रीराम उसकी कृतघ्नता बिल्कुल भूल जाते हैं तथा उसका सत्कार करते हुए आलिंगन करते हैं—

"रामः सुग्रीवमालिङ्‌ग्य पृष्ठवानामयमन्तिके।
स्थामयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवितं॥"[६]

इसी प्रकार मानस में भी वे सुग्रीव को भरत समान प्रिय बतलाते हैं—

"तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई॥"[७]

रावण से परित्यक्त विभीषण के शरण में आने पर श्रीराम सखा सुग्रीव की सम्मति को सर्वोपरि महत्व देते हैं। अध्यात्म रामायण में सुग्रीव अपनी सम्मति देते

---

१. अध्यात्म०, ४/५/६।
२. तदेव, ४/५/१०।
३. मानस, ४/१८/२-३।
४. अध्यात्म०, ४/५/१३-१४।
५. (अ) "तब अनुजहिं समुझावा, रघुपति करुना सीव।
भय देखाइ ले आवहु, तात सखा सुग्रीव॥
—मानस, ४/१८

(ब) रामचन्द्रिका, १३/२८।
६. अध्यात्म०, ४/६/४।
७. मानस, ४/२१/४।

हैं कि "इस मायावी राक्षस का विश्वास न करना चाहिए तथा हे प्रभो ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उसे मरवा डालूँ।"[१] वाल्मीकि रामायण में भी वे कहते हैं कि "यह महाक्रूर रावण का भाई है, अतएव इसे कठोर दण्ड देकर इसके मंत्रियों सहित मार डालना चाहिए।"[२] यही नहीं, मानस के सुग्रीव भी कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते हैं :—

"जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥"[३]

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम सुग्रीव के उपर्युक्त मंत्रणा को उपयुक्त न समझते हुए भी उनका सम्मान करते हैं और अत्यन्त शीलता से मैत्रीभाव को सर्वोपरि बतलाकर अपने मत का औचित्य सिद्ध करते हैं।[४] साथ ही वे उनसे कहते हैं कि "तात सुग्रीव ! संसार में सब भाई भरत के ही समान नहीं होते। सब पुत्र मेरी तरह पितृ-भक्त नहीं होते और सभी मित्र तुम्हारे समान नहीं हुआ करते—

"न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदोवा भवद्विधाः॥"[५]

शरणागत होने पर भी श्रीराम विभीषण के साथ मित्रवत व्यवहार करते हैं। वे कहते हैं कि जो मेरे पास मित्रभाव से आ गया हो, उसे मैं किसी प्रकार त्याग नहीं सकता। सम्भव है उसमें कुछ दोष हो, परन्तु दोषी को आश्रय देना भी सत्पुरुषों के लिए निन्दित नहीं है—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥"[६]

वाल्मीकि के उपर्युक्त विचारों से प्रभावित होते हुए भी तुलसी का विभीषण अध्यात्म रामायण[७] की भाँति मित्र की अपेक्षा शरणागत भक्त अधिक है। वे सुग्रीव से कहते हैं :—

---

१. अध्यात्म० ६/३/७-८।
२. "बध्यतामेव तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः॥" वा० रा०, ६/१७/२६।
३. मानस, ५/४३/३-४।
४. वा० रा०, ६/१७/३२, ६/१८/३।
५. तदेव, ६/१८/१५।
६. तदेव, ६/१८/३।
७. अध्यात्म० ६/३/१०-१२।

"सखा नीति तुम्ह नीकि विचारी । मम पन सरनागत भयहारी ।।"[१]
तथा उनको समझाते हुए कहते हैं :—

"भेद लेन पठवा दससीसा । तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ।।
जग महुँ सखा निसाचर जेते । लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते ।।
जौं सभीत आवा सरनाईं । रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ।।"[२]

इसके उपरान्त वाल्मीकि की भाँति तुलसी के राम भी शोक-संतप्त विभीषण को सखा सुग्रीव के समान ही हृदय से लगाते हैं—

"इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।"[३]

तथा—

"दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ।।"[४]

पुनश्च, समुद्र जल मँगाकर उन्होंने विभीषण को लंका के राज्यपद पर अभिषिक्त कराया । वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में श्रीराम लक्ष्मण द्वारा अभिषेक करवाते हैं ।[५] उक्त ग्रंथों से प्रभावित होते हुए भी तुलसी के राम में अपने मित्र के प्रति अधिक आत्मीयता है । वे विभीषण का राज्यतिलक स्वयं अपने ही हाथों से करते हैं —

"जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन वृष्टि नभ भई अपारा ।।"[६]

श्रीराम की अपने मित्रों के प्रति यह आत्मीयता एवं कृतज्ञता सदैव बनी रही । लंका विजयोपरान्त वे सुग्रीव को हृदय से लगाकर कहते हैं कि, "हे वीर ! तुम्हारी सहायता से ही मैंने महाबली रावण को जीता है और हे अनघ ? विभीषण को भी लंका के राज्य पर अभिषिक्त किया है—

"सहायेन त्वया बीर जितो मे रावणो महान् ।
विभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो भयानम् ।।"[७]

मानस में यही बात श्रीराम सुग्रीव के साथ-साथ अन्य वानरवीरों से भी कहते हैं :—

'तुम्हरें बल मैं रावनु मार्यो । तिलक विभीषन कहँ पुनि सार्यो ।।"[८]

वाल्मीकि के अनुसार अयोध्या आने पर भरत श्रीराम की ओर से सुग्रीव एवं विभीषण के मैत्रीभाव की सराहना करते हुए कृतज्ञता प्रकट करते हैं,[९] जबकि मानस में स्वयं श्रीराम ही गुरु वशिष्ठ से परिचय कराते समय कहते हैं :—

१. मानस, ५/४३/४ ।
२. मानस, ५/४४/३-४ ।
३. वा० रा०, ६/१९/२४ ।
४. मानस, ५/४६/१ ।
५. (अ) वा० रा०, ६/१९/२६ ।
(ब) अध्यात्म०, ६/३/४५ ।
६. मानस, ५/४९/५ ।
७. अध्यात्म०, ६/१२/५० ।
८. मानस, ६/११८/२ ।
९. वा० रा०, ६/१२७/४७-४८ ।

"ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहुँ ते मोहिं अधिक पियारे॥"[१]

अध्यात्म रामायण में राज्याभिषेकोपरान्त वे अपने सुग्रीवादि सखाओं को बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत कर सम्मानपूर्वक विदा करते हैं।[२] इसी प्रकार मानस में भी श्रीराम अपना रहस्य स्पष्ट करते हुए बड़े प्रेम से उन्हें वस्त्राभूषण पहनाकर विदा करते हैं।[३]

तुलसी के अतिरिक्त अन्य हिन्दी रामकथाकारों ने उक्त प्रसंग का अधिक विस्तृत विवेचन नहीं किया है।

शरणागतवत्सल

विभीषण-शरणागति-प्रसंग में श्रीराम शरणागत धर्म का प्रतिपादन करते हुए वाल्मीकि रामायण में कहते हैं कि, "यदि शत्रु भी शरण में आये और दीनभाव से हाथ जोड़कर दया की याचना करे तो उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए।"[४] शत्रु दुखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षी की शरण में जाय तो शुद्ध हृदय वाले श्रेष्ठ पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए।[५] जो एक बार भी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ,' ऐसा कह कर मुझसे रक्षा की प्रार्थना करता है उसे मैं सभी प्राणियों से अभय कर देता हूँ, यह मेरा सदा के लिए व्रत है"—

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम्॥"[६]

वे सुग्रीव से कहते हैं कि "हे कपिश्रेष्ठ सुग्रीव! वह विभीषण हो या स्वयं रावण ही आ गया हो—तुम उसे ले आओ। मैंने उसे अभयदान दे दिया है।"[७] अध्यात्म रामायण में भी वे लगभग यही बात कहते हैं कि "जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहकर मुझसे अभय माँगता है, उसे मैं समस्त प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ।"[८]

इसी भावभूमि पर मानस में भी शरणागत के भय को दूर करना वे अपना परम कर्त्तव्य बतलाते हैं—

---

१. मानस, ७/८/४।
२. अध्यात्म०, ६/१६/४-५ ; ६/१६/२२।
३. मानस, ७/१६ ७/१७/३-४।
४. वा० रा०, ६/१८/२७।
५. तदेव, ६/१८/२८।
६. तदेव, ६/१८/३३।
७. तदेव, ६/१८/३४।
८. अध्यात्म०, ६/३/१२।

"मम पन सरनागत भयहारी ।"[१]

यहाँ तुलसी के राम की शरणागत-वत्सलता अध्यात्म रामायण की अपेक्षा अधिक उच्च-कोटि की है । उनका तो मत है कि —

"सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥"[२]

यही नहीं, वे तो यहाँ तक कहते हैं कि "जिसे करोड़ों ब्रह्महत्याएँ लगी हों, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता । यदि वह भयभीत होकर मेरी शरण में आया है तो मैं उसे प्राणों की तरह रखूँगा ।"[३]

यही कारण है कि जो ऐश्वर्य रावण को अपने शिर काटकर चढ़ाने पर प्राप्त हुआ था वही लंका का राज्यवैभव शरणागत विभीषण को श्रीराम अपने दर्शनमात्र से दे देते हैं—

"या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेपि शंकरात् ।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ।।'[४]

हनुमन्नाटक के उपर्युक्त श्लोक से प्रेरित होते हुए भी तुलसी के राम की शरणागत विभीषण को देने के लिए लंका का राज्य अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है, इसीलिए उन्हें कुछ संकोच है—

"जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिएँ दसलाथ ।
सोइ सम्पदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।'[५]

कवितावली में यही बात तुलसीदास ने यहाँ तक कही कि जिस सम्पत्ति एवं राज्यवैभव की उपलब्धि रावण द्वारा शिव को अपने मस्तक अर्पण करने पर हुई उसी को बनवासी राम ने समुद्र-तट पर तीन दिनों के उपवास के उपरान्त शरणागत विभीषण को दे दिया ।[६]

हिन्दी रामकथाकारों के राम इतने शरणागत-वत्सल एवं शरण्य की रक्षा में दृढ़ है कि लक्ष्मण-मूर्च्छा के समय अपना सर्वस्व बलिदान करने को उद्यत होते हुए भी वे शरणागत विभीषण को नहीं भूल पाते । वस्तुतः शरणागत विभीषण की

---

१. मानस, ५/४३/४ ।

२. मानस, ५/४३ ।

३. "कोटि विप्रवध लागहिं जाहू । आए सरन तजउँ नहिं ताहू ।
× × ×
जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहउं ताहि प्रान की नाईं ।।"
—तदेव, ५/४४/१,४ ।'

४. हनुमन्नाटक, ७/१४ ।

५. मानस, ५/४६ ।

६. कवितावली, सुन्दरकांड, पद ३२ ।

चिन्ता ही उनके जीवनधारण का प्रमुख कारण बनती है। वे तुलसीकृत गीतावली में कहते हैं :—

"गिरि कानन जैहें साखामृग, हौं पुनि अनुज संघाती।
ह्वै है कहा विभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥"[१]

कवितावली में भी श्रीराम के मन में यही कसम है कि शरणागत विभीषण का कोई प्रबन्ध न कर पाये[२]—

सूर के राम को भी यही चिन्ता है —

"मैं निज प्रान तजौंगौ सुनि कपि, तजिहि जानकी सुनि कै।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनि कै ॥"[३]

केशव के राम को भी अपने प्रण का ध्यान है। वे विमूर्च्छित लक्ष्मण से रुदन करते हुए कहते हैं :—

"मोहि रही इतनी मन शंका। देन न पाई विभीषण शंका ॥
बोलि उठौ प्रभु को पन पारौ। नातरु होत है मो मुख कारौ ॥"[४]

सर्वप्रिय एवं सर्वहितैषी राम

श्रीराम का व्यक्तित्व ही सहज आकर्षक एवं आनन्दप्रदायक है। अध्यात्म रामायण और मानस दोनों में ही वीतराग जनक उन्हें देख कर मुग्ध हो उठते हैं।[५] यही नहीं, अल्पावधि में ही वे जनक पुरवासियों के भी इतने प्रिय हो जाते हैं कि उन्हें शिवधनु के समीप जाते हुए देखकर सभी नर-नारी अपने सुकृतों को न्योछावर करके देव-पितरों से उनकी सफलता की कामना करते हैं। इस स्थल पर मानसकार ने आनन्द रामायण से भाव ग्रहण किये हैं।[६]

---

१. गीतावली, लंकाकांड, पद ७।

२. "भाई को न मोहु, छोहु सीय को न तुलसीस।
कहैं मैं विभीषन की, कछु न सबील की ॥
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की संभार-सार।
साहेबु न राम से, बजाइ लेउँ सील की ॥ —कवितावली ६/५२

३. सूर रामचरितावली, पद १६६ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

४. रा० चं०, १७/४६।

५. (अ) अध्यात्म रामायण, १/६/६।
(ब) मानस, १/२१६/१-३।

६. (अ) "एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं समांगण विराचितम्।
न्यस्त कोदंड तूणीरं शिवचापाभिसंमुखम् ॥
सर्वाः प्रार्थयामासुरुर्ध्वस्या ऊर्ध्वसत्काराः।
भौ हे रमाकान्त हे विधे स्मतपुरा कृतैः ॥
दानादिपुण्येश्च चापं सज्जीकरोत्वयम्।"
—आनन्द रामायण, सारकाण्ड, ३/८

मंथरा द्वारा बुद्धि विकृत करने के पूर्व स्वयं कैकेयी को राम कितने प्रिय हैं, साथ ही अपने भाइयों के कितने हितैषी हैं—यह तथ्य वाल्मीकि रामायण में मंथरा के प्रति कहे गये उसके इस वचन से स्पष्ट हो जाता है कि, 'मेरे लिए जैसे भरत आदर के पात्र हैं, वैसे ही वल्कि उनसे भी बढ़कर श्रीराम हैं। कारण, वे कौसल्या से भी अधिक मेरी सेवा किया करते हैं। यदि श्री राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को ही मिला हुआ समझ, क्योंकि राघव अपने भ्राताओं को भी अपने ही समान समझते हैं।''[१] इसी प्रकार तुलसी की कैकेयी को भी राम प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।[२]

यही नहीं, अयोध्या की प्रजा श्रीराम की इतनी अनुरागिनी है कि उनके वनगमन के समय वह शोक-विह्वल हो आर्त्तनाद कर उठती है।[३] बच्चे अपने माँ-बाप को भूल जाते हैं, पति अपनी स्त्रियों का विस्मरण कर बैठते हैं, भाई-भाई को याद नहीं कर पाता क्योंकि सभी की चित्तवृत्तियाँ एक राम में ही केन्द्रित हो चुकी हैं।

''अनार्थिनः सुताः स्त्रीणां भर्तारो भ्रातरस्तथा।
सर्वे सर्वं परित्यज्य राममेवान्वचिन्तयन ॥''[४]

वाल्मीकि की भाँति अध्यात्म रामायण में भी परिजन राम के मना करने पर भी उनके रथ के पीछे लग लेते हैं।[५] कारण कि अयोध्यावासियों के लिए यशस्वी राम पूर्णचन्द्र-तुल्य प्रिय हो गये थे।[६] उन्होंने निश्चय किया कि हम या तो राम को अयोध्या लौटा ले चलेंगे अन्यथा हम भी इनके साथ बन को ही चले जायेंगे—

''पौराः सर्बे समागत्थ स्थितास्तस्याविद्रतः।
शक्ता रामं पुरं नेतुं नोचेद्गच्छामहे वनम् ॥''[७]

(ब) ''चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरितन भये सुखारी ॥
बंदि पितर सब सुकृत संभारे। जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे ॥
तौ सिव धनु मृनाल की नाईं। तोरहिं राम गनेस गुसाईं ॥
—मानस, १/२५५/३-४

१. वा० रा०, २/८/१८-१९।

२. ''मो पर करहिं सनेहु विसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
जौं विधि जनमु देइ करि छोहू। होहूँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ॥''
—मानस, २/१५/३-४

३. बा० रा०, २/४१/१५-२१।

४. तदेव, २/४१/१९।

५. अध्यात्म रामायण, २/५/४७।

६. वा० रा०, २/४५/३।

७. अध्यात्म रामायण, २/५/५३।

उपर्युक्त ग्रन्थों से अनुप्रेरित तुलसी की भावमयी अभिव्यक्ति दृष्टव्य है :—

"चलत रामु लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं । फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ॥"[१]

× × ×

"सहि न सके रघुवर बिरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ॥
सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं । राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं ॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू । बिन रघुबीर अवध नहिं काजू ॥"[२]

'साकेत' के पौरजन भी इसी प्रकार राम को रोकने का आग्रह एवं अनुरोध करते हैं। परन्तु वाल्मीकि अथवा अध्यात्मकार से प्रेरित होते हुए भी यहाँ गाँधी के सत्याग्रह एवं जनतांत्रिक विचारधारा का प्रभाव अधिक है ।[३]

पर दुःखकातर राम अपनी प्रिय प्रजा का यह दुःख देख न सके; फलतः रात्रि में उन्हें तमसा-तट पर सोते हुए छोड़कर चले गये। जागने पर वे लोग श्रीराम को न पाकर शोक-विह्वल हो इधर-उधर खोजते हुए अयोध्या लौट आये। उपर्युक्त स्थल का मानसकार ने वाल्मीकि से प्रभावित होते हुए अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है ।[४]

वाल्मीकि के अनुसार जिस समय भरत राम को मनाने के लिए वन को प्रस्थान करते हैं, उस समय अयोध्या की समस्त प्रजा अपने प्रियतम राम के मिलन की सम्भावना से हर्षोत्फुल्ल हो उठती है, लोग प्रसन्न होकर परस्पर आलिंगन करने लगते हैं तथा भरत के पीछे-पीछे चल पड़ते हैं ।[५] इसी प्रकार मानसकार ने भी अवधवासियों की मनःस्थिति का अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

---

१. मानस, २/८३/२ ।

२. तदेव, २/८४/२-४ ।

३. "राजा हमने राम तुम्हीं को है चुना ।
करो न तुम यों हाय लोकमत अनसुना ॥
जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहाँ ।
यों कह पथ में लेट गये बहुजन वहाँ ॥"

—साकेत, सर्ग ५, पृ० १२९

४. (अ) वा० रा०, २/४७/१-२ ; ७
(ब) मानस, २/८६/१-३ ।

५. वा० रा, २/८३/८-११ ।

यहाँ तो कोई घर पर रुकना ही नहीं चाहता, क्योंकि रामदरशरूपी जीवन का परम लाभ किसे प्रिय नहीं है।[1]

वाल्मीकि के अनुसार अयोध्या की केवल प्रजा ही नहीं, लोकहितैषी राम के वियोग में पशु,पक्षी एवं समस्त स्थावर-जंगम प्राणी तक शोकाभिभूत हैं तथा वे सब उनसे वापस लौट चलने की प्रार्थना करते हैं।[2] तुलसी के मानस में भी उनकी कुछ ऐसी ही स्थिति है —

"हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुर पसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका, सारस हंस चकोर॥

राम वियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥"[3]

अधिक दिनों के साहचर्य के कारण श्रीराम वानरवीरों के इतने अधिक प्रिय हो गये कि युद्धोपरान्त भी वे उनका साथ नहीं चाहते। वे कहते हैं कि हम अयोध्यापुरी को चलना चाहते हैं। आप हमें भी अपने साथ ले चलिए—

"अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान् नयतु नो भवान्॥"[4]

वाल्मीकि की भाँति अध्यात्म रामायण में भी वे इसी बात का आग्रह करते हैं।[5] इसी प्रकार मानस में श्रीराम में ' निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू"[6] कहने पर उनके प्रेम में विह्वल रीछ-वानर अपने घर नहीं लौटना चाहते।[7] प्रभु की आज्ञा से "हरष विवाद सहित" वे तो चले जाते हैं परन्तु यूथपों का प्रेमाग्रह श्रीराम टाल नहीं पाते और उन्हें विमान पर चढ़ा लेते हैं।[8]

---

१. "कहहिं परस्पर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू॥"
—मानस, २/१८५/३-४।

२. वा० रा०, २/४५/२६-३१।

३ मानस, २/८३, ८४/१।

४. वा० रा०, ६/१२२/१६

५. अध्यात्म०, ७/१३/५३-५४

६. मानस, ६/११८/३

७. तदेव, ६/११८/५

८. "अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हें सकल विमान चढ़ाई॥"
—तदेव, ६/११८/१

वाल्मीकि रामायण के अनुसार राज्याभिषेकोपरान्त वे अपने हितेच्छु श्रीराम को छोड़कर घर जाते समय अचेत से हो जाते हैं, उनका कण्ठ भर आता है तथा उन्हें मर्मान्तक पीड़ा होती है।[६] इसी प्रकार मानस में भी उनकी विदाई के अवसर पर अत्यन्त हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित होता है।[७]

आदर्श राजा

राम के राज्याभिषेक के समय तुलसी के मानस[८] एवं केशव के रामचन्द्रिका[१] में शिव, इन्द्रादि देवता एवं ऋषिगणों की स्मृति अध्यात्म रामायण[२] से अनुप्रेरित है। रामराज्य-वर्णन में भी तुलसी[३] और केशव[४] ने अध्यात्म रामायण[५] का ही अनुकरण किया है। केशव ने रामचन्द्रिका में राजा राम के जिस शृंगारी एवं राज्यवैभवयुक्त ऐश्वर्यरूप का चित्रण किया है वह उनकी समकालीन राजसी विलासिता का तो परिणाम है ही, साथ ही पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव एवं कादम्बरी प्रभृति ग्रंथों का भी प्रभाव है। वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड[६] के अशोकवाटिका में श्रीराम और सीता का विहार-वर्णन रामचन्द्रिका[७] के रनिवास सहित राम के वाटिका-प्रसंग का मूल-स्रोत कहा जा सकता है। तुलसी की गीतावली के उत्तरकाण्ड[८] में जो "राम-हिंडोला" एवं 'वसन्त विहार" का शृंगारी रूप मिलता है वह भी वाल्मीकि रामायण के उक्त स्थल से ही प्रेरित प्रतीत होता है। अध्यात्म रामायण में राम के शृंगारी रूप का संकेतमात्र ही है।[९]

---

१. वा० रा०, ७/४०/२९-३०

२. मानस, ७/१७/१; ७/१८/३; ७/१९/२

३. तदेव, ७/दो०१२ से दो० १४ तक।

४. रामचन्द्रिका, २७ वाँ प्रकाश।

५. अध्यात्म, ६/१५/५१-७५

६. मानस, ७/२०/४ से दो० २३ तक।

७. रा० चं०, २८ वाँ प्रकाश।

८. अध्यात्म०, ७/२१-३०

९. वा० रा०, ७/४२/१-२८

१०. रा० चं०; ३१ वाँ, ३२ वाँ प्रकाश।

११. गीतावली, उत्तरकांड पद १८ से २२ तक (गीताप्रेस गोरखपुर)

१२. अध्यात्म०, ७/४/१४

राम के राजनयिक शासन-प्रक्रिया के सन्दर्भ में रामचन्द्रिका[1] में वर्णित शम्बूकवध निश्चित रूप से वाल्मीकि रामायण के शम्बूक-वध-प्रसंग पर आधारित है।[2] साथ ही भगवान राम का स्वान-संन्यासी के प्रति न्याय का जो निरूपण रामचन्द्रिकाकार[3] ने किया है, वह वाल्मीकि रामायण[4] के एक प्रक्षिप्त अंश से सम्बन्धित है।

नीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ राम

पंचवटी में स्थित जिज्ञासु लक्ष्मण द्वारा पूछे जाने पर श्रीराम का जो माया जीव, ब्रह्म तथा ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति-सम्बन्धी आध्यात्मिक उपदेश रामचरितमानस[5] में हुआ है वह पूर्णतः अध्यात्म रामायण से प्रभावित है।[6] इसी प्रकार राम का शवरी के प्रति नवधाभक्ति का निरूपण मानसकार[7] ने अध्यात्म रामायण[8] के आधार पर ही किया है।

अध्यात्मरामायण में जब बालि राम को छिपकर मारने का अनौचित्य बतलाकर उन्हें धिक्कारता है तब राम उसे फटकारते हुए कहते हैं कि "पुत्री, बहिन, (छोटे) भाई की स्त्री और पुत्रवधू—ये चारों समान हैं। जो मूढ़ इनमें से किसी एक के साथ भी रमण करता है वह वध योग्य है। तू बलात्कार से अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ रमण करता था, इसीलिए मुझ धर्मज्ञ एवं धर्मपालक ने तुझे मारा है।[9] यानसकार के राम भी ठीक उसी प्रकार बालि को फटकारते हुए उसके वध का औचित्य सिद्ध करते हैं।[10]

बालि की मृत्यु पर श्रीराम विलाप करती हुई तारा को तत्वज्ञान का उपदेश देकर उसे शोक-निवृत्त करते हैं। इस संदर्भ में तुलसी ने अध्यात्म रामायण का ही

---

१. रा० चं०, ३७/१२-१९
२. वा० रा०, ७/सर्ग ७१ से ७६ तक।
३. रा० चं०, ३४ वाँ प्रकाश।
४. वा० रा०, ७/सर्ग ५९ के बाद का प्रक्षिप्त सर्ग १;२ (गीताप्रेस, गोरखपुर)
५. मानस, ३/१५/१-१६
६. अध्यात्म०, ३/४/१९-५५
७. मानस, ३/३५/४ से ३/३६/५ तक
८. अध्यात्म०, ३/१०/२२-३२
९. तदेव, ४/२/५९-६२
१०. "अनुज वधू भागिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी।
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।"
—मानस, ४/९/४

अनुकरण किया है। अध्यात्म रामायण में यह तत्वोपदेश काफी विस्तृत है,[१] जबकि मानसकार ने उसका सारांश दे दिया है।[२]

इसके अतिरिक्त रामचन्द्रिका[३] में भगवान राम अपने पुत्रों एवं भ्रातृ-पुत्रों को राज्य-वितरण के अनन्तर जो राजनीति की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि असत्य भाषण, मूर्ख से मैत्री एवं मंत्रणा, शत्रु पर विश्वास, मठधारियों से छेड़छाड़ एवं किसी से अपना मूढ़ अभिमत प्रकट करना निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त परधन विषवत्, परस्त्री मातृवत समझना तथा काम, क्रोध, लोभ, गर्व आदि का परित्याग करने आदि का जो उपदेश देते हैं वह प्रत्यक्षतः शुक्रनीति से प्रभावित है।[४]

क्षमा एवं विनम्रता

इतने अधिक पराक्रमी होने पर भी श्रीराम की क्षमाशीलता एवं विनम्रता स्तुत्य है। प्रसन्नराघव की भाँति ही रामचरितमानस में भी जिस समय परशुराम श्रीराम को शिवधनु तोड़ने के कारण अभिमानी कहकर उन्हें कठोर परशु से दण्ड देने की धमकी देते हैं, उस समय भी श्रीराम शान्त एवं विनम्र भाव से यही कहते हैं कि आप चाहे मुझे दण्ड दें या मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ क्योंकि आप हमारे पूज्य हैं।[५]हनुमन्नाटक में वे यहाँ तक कहते हैं कि मेरे कण्ठ में चाहे जानकी का जयमाल पड़े अथवा तीक्ष्णधार वाला आपका परशु, किन्तु मैं ब्राह्मण के विरुद्ध शस्त्र नहीं उठा सकता।

---

१. अध्यात्म०, ४/३/१२-३५

२. "तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्हीं माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधमसरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥"
—मानस, ४/११/२-३

३. "बोलिये न झूठ......दिजातीन को आयु ही दान दीजै॥"
—रा० चं०, ३६/२६-३४

४. शुक्रनीति, १/१६१

५. (अ) "रामः-भगवन्? निग्रहानुग्रहयोः स्वाधीनोऽयंजनः।
परते कोपबीजं ज्ञातुमिच्छामि॥" —प्रसन्नराघव ४/२०

(ब) "कृपा कोपु बधु बंधव गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिसि जाईं। मुनि नायक सोइ करौं उपाई॥"
—मानस, १/२७६/३

"हारः कण्ठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः ।
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु वे कज्जलं वा जलं वा ।।
सम्पश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तुर्मुखं वा ।
यद्वा तद्बा भक्तु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीरा ।।"[१]

बिल्कुल यही बात प्रसन्नराघव में भी कही गई है ।[२]

इसी से प्रभावित केशव भी रामचन्द्रिका में लिखते हैं कि :—

"कंठ कुठार परे अब हार कि, फूल असोक कि सोक समूरो ।
कै चितसारि चढ़ै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरी ।।
लोक में लोक बड़ी अपलोक, सु केशवदास जु होउ सु होऊ ।
विप्रन के कुल को भृगुनन्दन, सूर न सूरज के कुल कोऊ ।।"[३]

राम की बिनयशीलता का चरमोत्कर्ष रूप उस समय देखने को मिलता है जब वे कहते हैं कि यह मेरी गर्दन है और यह आपका कुठार । आपको जो उचित प्रतीत हो वह कीजिए :—

"अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम् ।।"[४]

हनुन्नाटक की ही भाँति मानस में भी वे अत्यन्त विनम्र हो यही बात परशुराम से कहते हैं ।[५]

यही नहीं, हनुमन्नाटक की भाँति यह भी कहते हैं कि आपके समक्ष मैं सब प्रकार से हीनबल हूँ । हम राजाओं का बल एक गुणवाला (रोदेवाला) वह धनुष है और आपका यह यज्ञोपवीत नवगुणों (तार) वाला है—

"भो ब्रह्मन्भवता समं न घटते संग्रामवार्त्तापि नो ।
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि ।।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा—
मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ।।"[६]

---

१. हनुमन्नाटक, १/४४
२. प्रसन्नराघव, ४/२३
३. रा० चं०, ७/३३
४. हनुमन्नाटक, १/३६
५. "राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठार आगे यह सीसा ।।
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ।।"
मानस, १/२८१/४
६. हनुमन्नाटक, १/४०

उक्त भावों से भावित मानस के राम भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं।[१] साथ ही वे हनुमन्नाटक में परशुराम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आपकी वीरप्रसवा जननी की स्पृहा स्वयं पार्वती करती हैं—

स्त्रीषु प्रवीरजननी जननी तथैव।
देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्यै ॥
त्वद्दोर्वंशीकृता विशाख मुखावलोक —
व्रीडाविदीर्ण हृदया स्पृहयां बभूव ॥"[२]

इसी से प्रभावित केशव के राम भी परशुराम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

"जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छिति मंडल कर्यो।
गिरि बेध षटमुख जोति तारकनन्द को जब ज्यों हर्यो ॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनन्दिनी।
वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भई जग बन्दिनी ॥"[३]

इसी प्रकार लक्ष्मण की कटूक्तियों से अत्यन्त क्रुद्ध परशुराम को श्रीराम अत्यन्त विनम्रता से शान्त करते हुए यही कहते हैं कि इस दुधमुँहे बच्चे पर क्रोध नहीं करना चाहिए—

"अलमिह क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया, तत्क्षम्यताम्।"[४]

उक्त प्रसन्नराघव के कथन से प्रभावित होकर मानसकार भी लिखता है :—

"नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ॥"[५]

श्रीराम को दुर्दमनीय शिवधनु तोड़ने का किंचितमात्र अभिमान नहीं है। हनुमन्नाटक में वे अत्यन्त विनम्र भाव से यही कहते हैं कि "शिव का यह सुन्दर धनुष

---

१. "हमहि तुम्हहिं सरबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा।
रामामात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे ॥"
मानस, १/२८२/३-४

२. हनुमन्नाटक, १/४३

३. रा० चं०, ७/२६

४. प्रसन्नराघव, ४/२७

५. मानस, १/२७७/१

राम नामधारी मेरे सम्पर्क में आते ही बीच से टूट गया।"[1] इसी प्रकार प्रसन्नराघव-कार भी लिखता है :—

"मया स्पृष्टं न वा कार्मुकं पुरवैरिणः ।
भगवन्नात्मनेवेदमभज्यत करोमि किम् ?"[2]

हे भगवन् ? शिवधनु का स्पर्श मैंने किया या नहीं किया, यह अपने आप टूट गया। मैं क्या करूँ ?"

कुछ इसी ध्वनि में मानस के राम भी कहते हैं :—

"छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ।।"[3]

वस्तुतः राम की यह विनम्रता एवं क्षमाशीलता स्वभावज है। उन्होंने मंथरा सदृश दासी के अपकार की कभी चर्चा तक नहीं की। यही नहीं, वनबास देने वाली कैकेयी की निन्दा भी उन्हें सह्य न थी। वाल्मीकि के अनुसार पंचवटी में हेमन्त-ऋतुवर्णन-प्रसंग में जब लक्ष्मण कैकेयी की निन्दा करने लगते हैं तब श्रीराम उन्हें रोकते हुए कहते हैं कि 'तात ! तुम्हें मझली माता कैकेयी की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए।"

"न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।" [4]

इसी प्रकार रामचरित मानस में भी वे भरत से यही कहते हैं कि :—

"दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ।।"[5]

यहाँ कैकेयी द्वारा किए गए अपकार को श्रीराम पूर्णतः भूल गए हैं। क्षमा-भाव का इससे बड़ा उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

वाल्मीकि[6] एवं अध्यात्म रामायण[7] की तरह मानस[8] में भी जब शक्रसुत जयन्त चंचु प्रहार द्वारा सीता को अपमानित करता है तब श्रीराम उस पर अमोघ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर देते हैं। परन्तु जब वह उससे संत्रस्त हो उनकी शरण में जाता है तब वे उसकी एक आँख लेकर ही क्षमा प्रदान कर देते हैं।[9]

---

१. हनुमन्नाटक, १/३४
२. प्रसन्नराघव, ४/२१
३. मानस, १/२८३/४
४. वा० रा०, ३/१६/३७
५. मानस, २/२६३/४
६. वा० रा०, ५/सर्ग ३८
७. अध्यात्म०, ५/३/५४-५६
८. मानस, अरण्य०, दो० १ से दो० २ तक।
९. तदेव, ३/२/७

हनुमन्नाटक में राम की सहृदयता उस समय देखने को मिलती है जब मरते समय बालि उनसे कहता है कि "बिना अपराध आपने मुझे किस कारण मारा? आपके जिस कार्य को सुग्रीव कर सकता है उसको क्या मैं नहीं कर सकता?"[७] इस पर आत्मग्लानि से पीड़ित श्रीराम उससे अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहते हैं कि "हे इन्द्र-नन्दन! जब तू मुझ पातकी को सुख की नींद लेते हुए मारेगा तभी मेरे चित्त की शुद्धि होगी।"

"शुद्धिर्भविष्यति पुरन्दरनन्दर्भ त्वं, मामेव चेदहहपातकिनंशयानम्।"[१]

इससे अनुप्रेरित विनम्रता एवं आत्मग्लानि की व्यंजना केशव की रामचन्द्रिका से भी ध्वनित होती है—

"सुनि वासदसुत बल बुधि निधान, मैं शरणागत हित हते प्रान।
यह सांटो ले कृष्णावतार, तब ह्वै हो तुम संसार पार॥[२]

वाल्मीकि[३] एवं अध्यात्म रामायण[४] की भाँति मानस[५] में भी जब समुद्र क्रुद्ध हुए श्रीराम से अनुनय-विनय करता है तब वे प्रसन्न होकर उसे क्षमादान कर देते हैं।

श्रीराम की क्षमा एवं अतिशय उदारता के दर्शन तब होते हैं जब हनुमन्नाटक में युद्धोन्मत्त अंगद अपने पिता के बैर-शोधन के लिए श्रीराम और उनकी सेना को ललकारता है।[६] हनुमन्नाटक के उक्त प्रसंग से प्रभावित रामचन्द्रिका में भी श्रीराम उसकी इस उदण्डता पर ध्यान न देकर उसे क्षमा ही करते हैं तथा आश्वस्त करते हुए कहते हैं:—

"कोऊ मेरे वंश में, करिहै तोसों युद्ध।
तब तेरो मन होइगो, अंगद मोसों शुद्ध॥[७]

---

१. हनुमन्नाटक, ५/५६
२. हनुमन्नाटक, ५/५७
३. रा० चं०, १३/४
४. वा० रा०, ६/सर्ग २२
५. अध्यात्म, ६/३/६०-७६
६. मानस, सुंदरकांड, दो० ५७ से ५६ तक।
७. हनुमन्नाटक, १४/७२-७३
८. रा० चं०, २६/३५

राम की शक्ति

जीवन की प्रथम बेला से ही श्रीराम की शक्ति-परीक्षण प्रारम्भ हो जाता है। अध्यात्म रामायण की भाँति तुलसी के मानस में क्रूरकर्मा राक्षसों से संत्रस्त विश्वामित्र की करुणयाचना पर श्रीराम पिता की आज्ञा से "मुनि भय हरन" हेतु घर के निकल पड़ते हैं तथा मुनि के संकेत पर एक ही वाण से उस भीमकर्मा ताड़का को देवलोक भेज देते हैं।[१] परन्तु वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित[२] केशव के राम स्त्री होने के कारण जब ताड़का को मारने में हिचकते हैं तब कौशिक के समझाने पर कि विप्रद्रोही पुरुष हो या स्त्री, वह सर्वथा बाध्य है—श्रीराम उसका वध करते हैं।[३] साथ ही अध्यात्म रामायण[४] के श्रीराम की भांति मानस के राम मुनि को निर्भय करते हुए यज्ञरक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं।[५] अध्यात्मकार के ही अनुसार मारीच एवं सुबाहु के आक्रमण करते ही श्रीराम एक वाण से मारीच को शतयोजन दूर समुद्र में फेंक देते हैं तथा दूसरे अग्निमय वाण से सुबाहु को भस्म कर डालते हैं।[६] यहाँ तुलसी यद्यपि अध्यात्मरामायण से प्रभावित हैं किन्तु उनके राम और अधिक शक्ति सम्पन्न प्रतीत होते हैं। क्योंकि वे बिना फलवाले वाण से मारीच को शतयोजन विस्तारवाले समुद्र के उस पार पहुँचा देते हैं।[७]

इस स्थल पर केशव ने "मारीच विडार्‌यो, जलधि उतार्‌यौ, मार्‌यौ सबल सुबाहु" कह कर संकेतमात्र किया है।[८]

मिथिलापुरी में जिस समय विश्वामित्र श्रीराम को शिवधनु उठाने की आज्ञा देते हैं उस समय जनक उनकी शक्ति पर सन्देह करके प्रसन्नराघव में विश्वामित्र से

---

१. (अ) अध्यात्मरामायण, १/४/२६/३०
   (ब) मानस, १/२०८ ; १/२०६/३
२. वा० रा०, १/२६/२५/२६
३. "द्विज दोषी न विचरिए। कहा पुरुष कह नारि।
   राम विराम न कीजिए। बाम ताड़का तारि।।"
   —रा० चं०, ३/६
४. अध्यात्म०, १/५/३-४।
५. "प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम जाई।।
   होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी।।"
   —मानस, १/२१०/१
६. अध्यात्म०, १/५/७/८
७. मानस, १/२१०/२/३
८. रा० चं०, ३/१०

कहते हैं कि आप अज्ञ की भाँति दुधमुँहें राम को शिवधनु लाने की आज्ञा क्यों दे रहे हैं। यह धनुष कठोर हिमालय पर्वत से निर्मित है, सर्पराज बासुकि इसकी प्रत्यंचा और भगवान विष्णु वाण हुए थे। यह शिवजी के बाहुदंडों से नत होकर भी और धनुषों से उन्नत हुआ था।[1]

प्रसन्नराघव के उक्त स्थल से प्रभावित केशव की रामचन्द्रिका में भी जनक इसी प्रकार राम के कोमलरूप एवं धनुष की कठोरता को देख उनकी शक्ति पर संदेह करने लगते हैं।[2] परन्तु राम की अमित शक्ति पर विश्वामित्र को अगाध विश्वास है। प्रसन्नराघव में वे राम को केवल धनुष लाने ही नहीं वरन् उसे झुकाने की भी आज्ञा देते हैं।[3] केशव के राम को भी गुरू से यही आदेश मिलता है—

"राम हत्यौ मारीच जैंहि अरु ताड़का सुबाहु।
लक्ष्मण को यह धनुष दे, तुम पिनाक कौ जाहु ॥

× × ×

सुनि रामचन्द्र कुमार, धनु आनिए इक बार।
पुनि बेगि ताहि चढ़ाउ, जस लोक लोक बढ़ाउ ॥"[4]

वस्तुतः इस स्थल पर केशव प्रसन्नराघव के ऋणी हैं।

हनुमन्नाटक में जिस अमित पराक्रमी राम उस कठोर एवं दुर्दमनीय शिवधनु को तोड़ने के लिए प्रस्तुत होते हैं, उस समय लक्ष्मण दिग्गजों, शेष एवं कच्छप को सतर्क होकर पृथ्वी धारण करने का आदेश देते हैं।[5] ठीक इसी प्रकार मानस के लक्ष्मण भी उन्हें सावधान करते हुए कहते हैं:—

"दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
रामु चर्हाहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥"[6]

---

१. प्रसन्नराघव, ३/३०
२. रा० चं०, ५/३६
३. प्रसन्नराघव, ३/३२
४. रा० चं०, ५/३७, ३९
५. "पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां।
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ॥
दिवकुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षा।
रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥" —हनुमन्नाटक, १/२१
६. मानस, १/२५९/१

यही नहीं श्रीराम द्वारा धनुष तोड़ने पर जो महानहृदय विदारक शब्द उत्पन्न हुआ उसे सुनकर समस्त ब्रह्मांड विचलित हो उठा । तुलसी ने यहाँ हनुमन्नाटक का ही अनुकरण किया है ।[१]

धनुभंग के उपरान्त क्रुद्ध परशुराम आते हैं । राम के नम्रतापूर्वक समझाने पर भी जब भार्गव बेलगाम हो बकते ही चले जाते हैं और उनके साथ ही विश्वामित्र को भी अपशब्द कहने लगते हैं तब श्रीराम गुरु का अपमान सहन नहीं कर पाते । इस स्थल पर प्रसन्नराघव में परशुराम के प्रति व्यक्त किये गये राम के आक्रोश एवं वीरोचित गर्वोक्ति का अनुकरण रामचन्द्रिकाकार ने किया है ।[२]

हनुमन्नाटक में जब परशुराम श्रीराम के क्षत्रियत्व एवं पौरुष को ललकारते हुए वैष्णवधनुष पर रोंदा चढ़ाने को कहते हैं तब उनका क्रोध भड़क उठता है । वे अत्यन्त अमर्ष में भरकर कहते हैं कि "इस समय मैं न उन्हें ब्राह्मण मानूँगा और न अपने को रघुवंशी । रंगस्थल में उपस्थित जनता मुझे वीर या अवीर जो समझे, अब मैं इस ब्राह्मण का घमंड चूर करने के लिए बद्ध परिकर हूँ ।"[३] इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण[४] तथा अध्यात्म रामायण[५] में भी राम अपने पराक्रम की उद्घोषणा करते हैं।

उपर्युक्त ग्रंथों की ही भावभूमि पर मानस के राम को भी अपने पौरुष का पूर्ण परिज्ञान है —

"देव दनुज भूपति भट नाना । सम बल अधिक होउ बलवाना ।।
जौ रन हमहि पचारे कोऊ । लरहि सुखेन कालु किन होऊ ।।
क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना । कुल कलंकु तेहिं पाँवर आना ।।
कहउं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी । कालहु डरहिं न रन रघुवंसी ।।"[६]

---

१. (अ) हनुमन्नाटक, १/२६
(ब) मानस, १२६०/छन्द
(स) कवितावली, १/११

२. (अ) प्रसन्नराघव, ४/३६
(ब) रा० चं०, ७/४२

३. "पुरोजन्मा नाद्यप्रभृति मम रामः स्वयमहं ।।
न पुत्रः पौत्रो वा रघुकुलभुवां च क्षितिभुजाम् ।।
अबीरं वीरं वा कलयतु जनौ मामयमयं ।।
मया बद्धौ दुष्टद्विजदमनदीक्षापरिकरः ।।" —हनुमन्नाटक, १/४६

४. वा० रा०, १/७६/७

५. अध्यात्म०, १/७/१७/१८

६. मानस, १/२८४/१/२

यही नहीं, केशव के राम भी अमर्ष में भर कर भृगुनायक को खरी-खोटी सुनाते हुए अपनी शक्ति की प्रतिस्थापना करते हैं ।[१] तदुपरान्त श्रीराम सहज में ही उनसे वैष्णव धनुष लेकर उस पर वाण संधान करके परशुराम की स्वर्गगमन शक्ति अवरुद्ध कर देते हैं—

"रामस्तदादाय धनुः सहेलं वाणं गुणे योज्य यदा चकर्ष ।
भातिस्म साक्षात्मकरध्वजः स्वर्गतिं प्रचिच्छेद च भार्गवस्य ।।"[२]

वाल्मीकि एवं अध्यात्मरामायण के राम भी भृगुपति के पुण्य लोकों को नष्ट कर देते हैं ।[३] केशव के राम हनुमन्नाटक की भाँति परशुराम की गति भंग कर देते हैं ।

"विजयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग ।
रामदेव त्योंही करी, परशुराम गति भंग ।।[४]

तुलसी के राम के पास तो परशुराम के हाथ से वैष्णव धनुष स्वतः चला आता है, जिससे हतप्रभ हो परशुराम को उनके ईश्वरतत्व का ज्ञान तत्काल हो जाता है और वे अत्यन्त विनम्र होकर उनकी स्तुति करने लगते हैं । अस्तु यहाँ वाण-सन्धान करने का अवसर ही नहीं आता ।[५]

इसके पश्चात् जयन्त-प्रसंग में राम का असाधारण पराक्रम देखने को मिलता है । आदिकाव्य में इस प्रसंग का वर्णन अशोक-वाटिका में सीता हनुमान से करती हैं । इसमें जयन्त सीता के स्तन में चंचु प्रहार करता है ।[६] तुलसी के मानस में इसका उल्लेख रघुवंश[७] की भाँति भरत के चित्रकूट से लौटने के उपरान्त वहीं घटनास्थल पर ही हुआ है, परन्तु उसकी वर्णनशैली पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव

---

१. रा० चं०, ७/४२
२. हनुमन्नाटक, १/४६
३. (अ) वा० रा० १/७६/१६ ।
   (ब) अध्यात्म०, १/७/४५ ।
४. रामचन्द्रिका, ७/५० ।
५. "लेति चापु आपुहिं चढ़ि गयऊ, परशुराम मन बिसमय भयऊ ।।
   जाना राम प्रभाउ तब......।।"
   —मानस, १/२८४/४ / दो० २८४
६. वा० रा०, ५/३८/१५/३५ ।
७. रघुवंश (कालिदास), १/३/५ ।

परिलक्षित है वहाँ जयन्त सीता के चरण में चोंच मारता है।[1] यहाँ भगवान राम क्रुद्ध हो एक तृण का प्रज्वलित दिव्यास्त्र उस कौए के ऊपर छोड़ देते हैं। काक भयभीत होकर शरण के लिए त्रिलोकी भर में भटकता फिरता है किन्तु ब्रह्मा एवं स्वयं उसके पिता इन्द्र भी रामवाण से उसकी रक्षा न कर सके। अन्त में उसे आना पड़ा प्रभु के अभयद श्रीचरणों में ही। तब दयालु श्रीराम ने उसे केवल एकाक्षी करके छोड़ दिया।[2]

इस स्थल पर मानसकार अध्यात्म रामायण से पूर्णरूपेण प्रभावित हैं।[3] यहाँ भी जयन्त जब त्रिलोकों में भटकने के उपरान्त श्रीराम की शरण में आता है तब वे उसे एक नेत्र से विहीन करके छोड़ देते हैं—

> "आतुर समय गहेसि पद जाई। त्राहि-त्राहि दयाल रघुराई॥
> निजकृत कर्मजनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तक आयउँ॥
> सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी॥"[4]

परन्तु केशव की रामचन्द्रिका में इस प्रकार के पराक्रम का अवसर नहीं आया है।

राम का अद्भुत पराक्रम खरदूषणादि राक्षसों से युद्ध करते समय प्रकट होता है। श्रीराम अकेले ही चौदह सहस्र राक्षसों का वध अल्पावधि में कर डालते हैं। उक्त प्रसंग में तुलसी[5] एवं केशव[6] दोनों ने ही आदिकाव्य[7] तथा अध्यात्म रामायण[8] से प्रेरणा ग्रहण की है।

खरदूषण के उपरान्त वालमीकि रामायण में भयग्रस्त अकंपन राम के अति-मानवीय पराक्रम का वर्णन करता हुआ रावण से कहता है कि "राम यदि कुपित हो जायँ तो उन्हें अपने पराक्रम के द्वारा कोई भी परास्त नहीं कर सकता। वे अपने वाणों के वेग से सम्पूर्ण आकाशमंडल एवं आसेतु पृथ्वी को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं।

---

१. (अ) अध्यात्म०, ५-५-५३-६०।
   (ब) मानस, ३/सोरठा ६ से दो० २ तक।
२. अध्यात्म०, ५/३/५७-६०
३. मानस, ३/२/१-३।
४. तदेव, ३/२/६-७।
५. तदेव, ३/दो० १६ से २० तक।
६. रा० चं०, १२/१-३।
७. वा० रा०, ३/सर्ग २५ से ३० तक।
८. अध्यात्म०, ३/५/३५।

यही नहीं, वे अपने पराक्रम से सम्पूर्ण लोकों का संहार एवं उनका पुनः सृजन करने में पूर्ण समर्थ हैं। उन्हें समस्त राक्षसों तथा असुरों सहित आप एवं सम्पूर्ण देवगण भी मिलकर परास्त नहीं कर सकते।[1]

रामचरितमानस में अकम्पन के स्थान पर शूर्पणखा इसी प्रकार राम की अद्‌भुत शक्ति का परिचय देती हुई रावण से कहती है :—

"अवधि नृपति दशरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए।।
समुझि परी मोहि उन्ह के करनी। रहित निसाचर करिहहिं घरनी।।
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए विचरत मुनि कानन।।
देखत बालक काल समाना। परम बीर धन्वी गुन नाना।।
अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता।।"[2]

अध्यात्म रामायण में भगवान राम राक्षसों द्वारा खाये गये ऋषि-मुनियों के अस्थि-कंकाल को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर पृथ्वी को राक्षसों से विहीन करने की भीष्म प्रतिज्ञा करते हैं।[3] ऐसा ही प्रण श्रीराम वाल्मीकि रामायण में भी करते हैं।[4] अध्यात्म रामायण से प्रभावित तुलसी के राम भी भुजा उठाकर 'निसिचरहीन-महि' करने का दृढ़ संकल्प करते हैं।[5]

यही नहीं, सीता-हरण से क्षुब्ध शत्रुहन्ता श्रीराम का आत्मविश्वास सराहनीय है। हनुमन्नाटक में वे म्रियमाण जटायु से कहते हैं कि "तात जटायु! आपने अपने ही तेजोबल से स्वर्ग प्राप्त किया है। जाइए आपका कल्याण हो। परन्तु आपसे निवेदन है कि सीता-हरण की चर्चा पिताजी के सामने न चलाइएगा। यदि मैं राम हूँ तो थोड़े दिनों में लज्जा से सिर झुकाये अपने बन्धु-बान्धवों सहित रावण स्वयं ही उनके पास जाकर इसकी चर्चा करेगा—

"तात त्वं निजतेजसैव गमितः स्वर्गे व्रज स्वस्तिते।
बूमस्त्वेकमिमां बधूहृतिकथां तातान्तिके माकृथाः।।

---

१. वा० रा०, ३/३१/२४-२८।

२. मानस, ३/२२/२-४।

३. अध्यात्म०, ३/२/२०-२२।

४. वा० रा०, ३/६/२३-२५।

५. "निसिचरहीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।"—मानस, ३/९।

रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयेर्व्रीडानमत्कन्वरः ।
सार्धं बन्धुजनेन सेंद्रविजयी वक्ता स्वयं रावण ॥"[१]

बिल्कुल यही बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव तुलसी के मानस में भी मिलता है—

"सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहहि दसानन जाइ ॥"[२]

गीतावली में भी दृढ़व्रती राम यही उद्घोषणा करते हैं ।[३]

सुग्रीव बालि से इतना अधिक आतंकित एवं भयभीत है कि उसे राम की अमित शक्ति पर पूर्ण विश्वास नहीं हो पाता; फलतः वह उनकी परीक्षार्थ दुंदुभि-अस्थि एवं सप्तताल-वेधन का प्रस्ताव रखता है ।

वाल्मीकि के अनुसार श्रीराम दुंदुभि के शरीर को अपने पैर के अंगूठे से दस योजन दूर फेंक देते हैं[४] तथा सालवृक्षों को एक ही वाण से विदीर्ण कर देते हैं ।[५] चम्पूरामायण में सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिए राम ने पैर के अंगूठे से दुंदुभि की देह को दूर फेंक दिया । इससे भी जब सुग्रीव को सन्तोष नहीं हुआ तब सुग्रीव की प्रार्थना पर राम ने अपने दुष्ट राक्षसों के संहारक वाण द्वारा उन सातों साल-वृक्षों को बिद्ध कर दिया ।[७]

उपर्युक्त ग्रंथों की भाँति मानस में भी उक्त कार्य भगवान श्रीराम अति सरल एवं सहज रूप में कर देते हैं परन्तु तुलसी ने यह वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है ।[८]

---

१. हनुमन्नाटक, ५/१६ ।
२. मानस, ३/३१ ।
३. "मेरो सुनियो तात ! सदेसो ।
सीय हरनि जनि कहेहु पिता सों, ह्वै है अधिक अंदेसो ॥
रावरे पुन्य प्रताप अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं ।
कुल समेत सुर सभा दसानन समाचार सब कहिहै ॥"
—गीतावली, ३/१६
४. वा० रा०, ४/११/८४-८५ ।
५. तदेव, ४/१२/३-५ ।
६. अध्यात्म०, ४/१/७०-७४ ।
७. चम्पूरामायण, किष्किन्धा, श्लोक १२ के बाद ।
८. "कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । बालि महाबल अति रन धीरा ॥
दुंदुभि अस्थिताल दिखराए । बिनु प्रयास रघुबीर ढहाए ॥"
—मानस, ४/७/६

वाल्मीकि एवं अध्यात्मकार से अनुप्रेरित तुलसी के राम भी अपनी प्रतिज्ञानुसार[१] महाबलशाली बालि का वध केवल एक ही बाण से करके[२] सुग्रीव को किष्किधा के राज्यपद पर प्रतिष्ठित करते हैं। किन्तु विषयासक्त होने के कारण वह श्रीराम का कार्य भूल जाता है; फलतः अत्यन्त क्षुब्ध हो श्रीराम लक्ष्मण द्वारा उसे सन्देश भेजते हैं कि, "सुग्रीव ! जिस मार्ग पर मरकर बालि गया है वह आज भी बन्द नहीं हुआ है; अतएव तुम अपने प्रण पर दृढ़ रहो । बालि के मार्ग का अनुसरण न करो। बालि तो रणक्षेत्र में अकेला ही मेरे वाण से मारा गया था परन्तु यदि तुम सत्य से विचलित हुए तो मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवों सहित काल के गाल में डाल दूँगा।"

"न च संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः ।।
एकएव रणे बाली शरेण निहतो मया ।
त्वां तु सत्यादितिक्रांन्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ।।"[३]

वाल्मीकि की भाँति अध्यात्म रामायण में श्रीराम सुग्रीव को बन्धु-बान्धवों सहित मारने को उद्यत हो जाते हैं।[४] उपर्युक्त ग्रंथों की तरह तुलसी के राम भी आवेश में आकर कहते हैं :—

"जेहि सायक मारा मैं बाली । तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।।"[५]

इसके उपरान्त श्रीराम की अतुलशक्ति का आभास उस समय होता है जब उनकी अति पराक्रमी एवं साहसी वानरवाहिनी अपनी गुरुता से दिग्दिगंत को आतंकित एवं प्रकम्पित करती हुई लंका-विजय हेतु प्रयाण करती है। रामचरितमानस का यह प्रसंग हनुमन्नाटक पर आधारित होते हुए भी तुलसी द्वारा बड़े स्वाभाविक एवं सुन्दर ढंग से सँजोया गया है। हनुमन्नाटक में हनुमान श्रीराम से कहते हैं कि, "हे

---

१. (अ) वा० रा०, ४/८/२१।
(ब) अध्यात्म० ४/१/५६।
(स) मानस, ४/६।

२. (अ) वा० रा०, ४/१६/३५-३६।
(ब) अध्यात्म० ४/२/४६-४७।
(स) मानस, ४/८।

३. वा० रा०, ४/३०/८१-८२

४. अध्यात्म०, ४/५/१०

५. मानस, ४/१८/३

राजाओं के मुकुट-मणि ! वानरों के पदभार से धँसती हुई पृथ्वी के बोझ से आक्रान्त शेषनाग, बूढ़े कच्छपराज की पीठ पर, बानरों के उछलने पर ऊपर की लोर उठे हुए तथा वानरों के गिरने पर नीचे की ओर बैठते हुए दाँतों की कीलों से मानो आपके विजय-प्रयाण की प्रशस्ति लिखते हैं।"[१]

कुछ इसी प्रकार की कल्पनानुभूति मानसकार को होती है :—

"सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सोकिम सोहई॥
रघुबीर रुधिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी॥"[२]

वाल्मीकि रामायण में तीन दिनों तक समुद्रतट पर प्रायोपवेशन करने के उपरान्त भी जब समुद्र श्रीराम को मार्ग नहीं देता तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उसे सुखा डालने के लिए लक्ष्मण से धनुष-वाण माँगते हैं।[३] हनुमन्नाटक में भी अमर्ष में भर कर श्रीराम कहते हैं, "लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो लाना, मैं अभी धनुष चढ़ाकर समुद्र को सुखा डालता हूँ जिससे वानरगण पैदल ही चलकर समुद्र पार करें—

"चापमानय सौमित्रे राघवेऽधिज्यधन्वनि।
समुद्रं शोषयिष्यामि पदा गच्छन्तु वानरा॥"[४]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी वे कहते हैं कि समस्त प्राणी राम का पराक्रम देखें। मैं इसी नदीपति समुद्र को भस्म किए देता हूँ।[५]

यहाँ भी उपर्युक्त ग्रन्थों से मानसकार ने प्रेरणा ग्रहण की है—

तीन दिनों तक प्रार्थना करने के उपरान्त भी जब समुद्र उनकी नहीं सुनता तब श्रीराम क्रुद्ध हो उसे अग्निवाण से सुखा डालने के लिए लक्ष्मण से धनुष-वाण माँगते हैं। पुनश्च एक भयंकर वाण से समुद्र सहित समस्त जलधरों को क्षुब्ध कर देते हैं।[६] अध्यात्म रामायण में भयभीत समुद्र अपनी रक्षा की याचना करता हुआ दिव्य

१. हनुमन्नाटक, ७/३
२. मानस, ५/३५ का छन्द २
३. वा० रा०, ६/२१/११-१२; २१-२२
४. हनुमन्नाटक, ७/१८
५. अध्यात्म०, ६/३/६५
६. (अ) वा० रा०, ६/२१/२६-३०
(ब) मानस, ५/५८/३-४

रूप में उनके समक्ष प्रकट होता है।[१] इसी प्रकार मानस में वह श्रीराम के चरण पकड़कर क्षमा-याचना करता है परन्तु यहाँ उसके ब्राह्मण वेष धारण करने का उल्लेख है।[२] केशव के राम भी जब क्रुद्ध हो वाण उठाते हैं तब समुद्र भयाकुल हो ब्राह्मण वेष में उपस्थित होता है—

"जबही रघुनायक वाण लियो, सविशेष विशोषित सिंधु हियो।
तबहीं द्विजरूप सुआइ गयो, नल केतु रचे यह मंत्र दियो॥"[३]

तदुपरान्त अध्यात्म रामायण[४] की ही भाँति मानस[५] में भी वह पंचभूतों के सन्दर्भ में अपने को जड़ (मूर्ख) बतलाकर दण्ड का अधिकारी मानता एवं अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करता तथा जलोदधि-संतरण का उपाय बतलाता है। फिर उसके आग्रह पर श्रीराम एक ही वाण से उसके उत्तर-तटवर्ती दुमकुल्य देश के दुष्ट आभीर-मण्डल को भस्म कर देते हैं'[६]

वानरवीरों ने यथपि समुद्र पर सेतु का निर्माण कर दिया किन्तु हनुमन्नाटक के हनुमान की मान्यता है कि "जो पत्थर दूसरों को डुबाने एवं स्वयं भी डूबनेवाले थे, वे स्वयं तैरकर वानरवीरों को पार कर रहे हैं, इसमें न तो उन पाषाणों की विशेषता है, न समुद्र का ही गुण है और न वानरों की महिमा है वरन् रामप्रताप से ही सेतु-निर्माण सम्भव हुआ है।"[७] इसी बात की पुष्टि में रामचरितमानस के शंकर अपना अभिमत प्रकट करते हैं—

"बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥
महिमा यह न जलधि कइ करनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी॥

---

१. अध्यात्म०, ६/३/६८-७०
२. मानस, ५/५८/४; ५/५६/१
३. रा० चं०, १५/२७
४. अध्यात्म०, ५/३/७१-७८
५. मानस, ५/५६/१-३
६. (अ) अध्यात्म०, ६/३/७६-८२
(ब) मानस, ५/६०/३
७. "ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परांस्ते प्रस्तरादुस्तरे।
वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्तेऽपि च॥
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः।
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते॥"
—हनुमन्नाटक, ७/१६

"श्रीरघुबीर प्रताप ते, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥[1]

सुबेल-पर्वत के अपने सैनिक-शिविर में प्रतिष्ठित श्रीराम एक ही वाण से लंका में मंत्रियों के मध्य स्थित रावण के छत्र, मुकुटादि काटकर उसे आश्चर्यचकित एवं लज्जित कर देते हैं—

"किरीटिनं सभासीनं मन्त्रिभिः परिवेष्टितम् ।
शशाङ्कार्थनिभेनैव वाणेनैकेन राघवः ॥
श्वेतच्छत्र सहस्त्राणि किरीट दशकं तथा ।
विच्छेद निमिषार्थेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥"[2]

अध्यात्म रामायण-वर्णित राम-वाण के इस अद्भुत पराक्रम से तुलसी एवं केशव दोनों ने ही प्रेरणा ग्रहण की है।[3]

हनुमन्नाटक में विरूपाक्ष के पराक्रम का वर्णन करते हुए रावण को हितकारी सम्पत्ति देता है कि खेल-खेल में समुद्रोल्लंघन करने वाले राम को आप मनुष्यमात्र न समझिए। आपके मंत्रियों की बात यद्यपि श्रवण सुखद एवं अति मधुर है किन्तु परिणाम में दुःखदायी है।[4] मानसकार ने ये ही बातें प्रहस्त द्वारा कहलवायी हैं।

---

१. मानस, ६/३/४ से दो० ३ तक।

२. अध्यात्म०, ६/५/४३-४४

३. तुलसी—"छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सबके देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ॥
अस कौतुक करि राम सर प्रविसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग ॥
—मानस, ६/१३

केशव—"राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
हंस सबल अंसु सहित मानहु उड़ि के गयो ॥
लज्जित खल तज्जि सुथल मज्जि भवन में गयो।"
—रा० चं०, १५/४०-४१

४. हनुमन्नाटक, ६-१४-१५

"सुनत नीक आगे दुख पावा । सखियन अस मत प्रभुहि सुनावा ।।
जैहि बारीस बंधायेहु हेला । उतरेउ सेन समेत सुबेला ।।
सौ भनु मनुज खाब हम भाई । बचन कहहिं सब गाल फुलाई ।।"[१]

अंगद-रावण-संवाद के अन्तर्गत रामशक्ति का उद्‌घाटन अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से होता है । रावण द्वारा राम को एक साधारण मनुष्य कहने पर अंगद क्रुद्ध हो राम का पराक्रम वर्णन करता हुआ कहता है कि, "अरे दीन हीन कुबुद्धि ! तू राम को साधारण मनुष्य समझता है । क्या गंगा साधारण नदी है ? ऐरावत साधारण हाथी है ? उच्चस्रवा साधारण घोड़ा तथा रम्भा को तू साधारण स्त्री समझता है ? क्या सत्युग साधारण युग है और कामदेव क्या साधारण धनुषधारी है ? यही नहीं, त्रैलोक्य में प्रकट प्रतापवाले हनुमान क्या साधारण वानर हैं ?"[२] उसी से प्रभावित मानसकार भी लिखता है :—

"राम मनुज कस रे सठबंगा । धन्वी कामु नदी पुनि घंगा ।।
पसु सुरधेन कल्पतरु रूखा । अन्नदान अरु रस पीयूषा ।।
बैनतेय खग अहि सहसानन । चिन्तामनि पुनि उमल दसानन ।।
सुनु मतिमंद लोक बैकुण्ठा । लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ।।
सैन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि ।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जौ तव सुत मारि ।।"[३]

यही नहीं, हनुमन्नाटककार की भाँति तुलसी का अंगद कहता है कि श्रीराम सहस्रबाहु अर्जुन की सहस्र भुजाओं को काटने में प्रवीण परशुराम के भी भारी गर्व को दूर करने वाले हैं ।[४]

रावण के पूछने पर अंगद बड़े नाटकीय ढंग से अपना परिचय देता हुआ राम-वाण की अतुल शक्ति को उद्‌घाटित करता है । रामचन्द्रिकाकार के शब्दों में :—

---

१. मानस, ६/६-२-३

२. "रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः ।
किं गङ्गापि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवाःकिं हयः ।।
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वीनुकिं ।
त्रैलीक्य प्रकटप्रतापविभवः किं रे हनुमान्कपिः ।।"
—हनुमन्नाटक, ८/२४

३. मानस, ६/२६/५ से दो० २६ तक ।

४. (अ) हनुमन्नाटक, ८/४०
(ब) मानस, ६/२६/१/२

"कौन के सुत ? बालि के ! वह कौन बालि न जानिए ?
कोख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हाअ बखानिए ।।
है कहाँ वह ? वीर अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गयौ ? रघुनाथवान बिमान बैठ सिधाइयो ।।"[१]

केशव का उपर्युक्त छन्द हनुमन्नाटक के निम्नलिखित अंश का अनुवाद मात्र है।

"कस्त्वं वन्यपतेः सुऔ वनपतिः कः सार्थिकतस्त्वेकदा ।
यातः सप्तसमुद्रलंघम विधावेकाह्निनको वेद्मयम् ।।
अस्ति स्वस्ति समन्वितो रघुवरे रुष्टेऽत्रकः स्वस्तिमान् ।
कौ भूयादनरण्यकस्य मरणातीतां चिताम्बुप्रदः ।।"[२]

उपर्युक्त कथन की ही छाया में मानसकार ने भी राम के क्रोध एवं पराक्रम को अत्यन्त व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त किया है ।[३]

वस्तुतः राम के कुपित हो जाने कर कोई सकुशल रह नहीं सकता । अंगद अमित पराक्रमी राम के वाण की भयानकता से रावण को आतंकित करता है :—

"नाराच श्रीराम जहीं धरैंगे, अशेष माथे कटि भू परैंगे ।
शिखा शिवा स्वान गहै तिहारी, फिरैं चहूँ ओर निरै बिहारी ।।"[४]

केशव का उपर्युक्त छन्द हनूमन्नाटक के श्लोक का अनुवादमात्र है ।[५] और इसी से प्रभावित मानस के अंगद ने भी रावण की भर्त्सना करते हुए रामावण की करालता का दिग्दर्शन कराया है ।[६]

इधर मन्दोदरी भी रावण से दुर्दमनीय एवं दुर्द्धर्ष राम के अतिमानवीय पराक्रम के सन्दर्भ में उनके विराटरूप का वर्णन करती एवं उससे राम के प्रति किये गये विरोध से विरत होने की प्रार्थना करती है । रामचरितमानस का यह वर्णन

---

१. रा० चं०, १६/६

२. हनुमन्नाटक, ८/१०

३. "अब कहु कुसल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचनतब अंगद कहई ।।
दिन दस गए बालि पहिं जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ।।
राम विरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ।।"
—मानस, ५/२०/४/५

४. रा० चं०, १६/२१

५. हनुमन्नाटक, ८/२०

६. मानस, ६/२७/२/४

अध्यात्मरामायण में कबन्ध द्वारा श्रीराम के विराट रूप के निरूपण पर आधारित है।[१] इसी प्रकार भागवत में भी शुकदेव द्वारा निरूपित ब्रह्म के विराट रूप का वर्णन हुआ है।[२]

रामचरितमानस का कुम्भकर्ण-बध-प्रसंग अध्यात्म रामायण से ही अधिक प्रभावित है। यद्यपि उक्त वर्णन वाल्मीकि रामायण की पद्धति पर विस्तृत हो गया है।[३] जिस प्रकार भूधाराकार राक्षस गजराज के समान वानरवाहिनी को रौंदकर प्रलयंकारी एवं भयावह दृश्य उपस्थित कर देता है उस समय श्रीराम अपनी संत्रस्त वाहिनी को पीछे छोड़कर अत्यन्त क्रुद्ध हो खेल-खेल में ही उसके हाथ, पैर एवं मस्तक को धड़ से पृथक कर देते है।[४] दोनों में अन्तर केवल यही है कि जहाँ अध्यात्म रामायण में उसका मस्तक जाकर लंका का द्वार अवरुद्ध कर देता है तथा धड़ समुद्र में गिर कर जल-जन्तुओं को कुचल देता है[५] वहाँ तुलसी के मानस में उसका सिर रावण के आगे तथा धड़ युद्ध-क्षेत्र में ही वानरों एवं राक्षसों को अपने नीचे दबाता हुआ गिरता है।[६] यहाँ एक अद्भुत बात और होती है कि उसका तेज श्रीराम के मुख में समा जाता है।[७]

संसार को संत्रस्त एवं त्रिलोकी का रुदन करानेवाले रावण का मस्तक बार-बार काटने पर भी जब वह नहीं मरता तब अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी चिन्ताग्रस्त श्रीराम को विभीषण उसके नाभिदेश में अवस्थित अमृतकुण्ड को आग्नेयास्त्र से सुखा डालने की मंत्रणा देते हैं।[८] फलतः श्रीराम नाभिकुण्ड के उस

---

१. (अ) अध्यात्म०, ३/९/३६-४५
(ब) मानस, लंका, दो० १४ से १५ तक।

२. भागवत, २/१/२६-३७

३. वा० रा०, युद्धकाण्ड, अध्याय ६७

४. (अ) अध्यात्म०, ६/८/१७-३०
(ब) मानस, ६/६८/१; ६/७१/४

५. अध्यात्म०, ६/८/२९

६. मानस, ६/७१/३-४

७. तदेव, ६/७०/४

८. (अ) "नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्।
तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्॥
—अध्यात्म०, ६/११/५३-५४

(ब) "नाभिकुण्ड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥"
—मानस, ६/१०२/३

अमृत को वाण से शुष्क करके वध कर डालते हैं। अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी रावण के शरीर से एक प्रकाशपुञ्ज निकलकर श्रीराम में प्रविष्ट हो जाता है। वस्तुतः मानसकार यहाँ अध्यात्म रामायण का ही कड़ी है।[1]

केशव ने रावण के नाभि में अमृत की कल्पना नहीं की। यहाँ वाल्मीकि रामायण की भाँति ही राम एक तीक्ष्ण वाण से उसका प्राणान्त कर देते हैं। अन्तर इतना ही हैं कि रामचन्द्रिका में रामवाण से रावण के दसों मस्तक कटने पर उसका प्राणान्त होता है, परन्तु वाल्मीकि रामायण में वाण उसका हृदय विदीर्ण कर देता है।[2] सूरदास ने कुम्भकर्ण और रावण-वध का उल्लेख सामान्य ढंग से अति संक्षेप में कर दिया है।[3]

वस्तुतः शत्रुहन्ता राम की शक्ति अतुलनीय एवं अपरिमेय है। आदिकवि वाल्मीकि ने उनके इस अद्भुत पराक्रम का निरूपण इस प्रकार किया है :—

'विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
धनदेन समस्त्वागे सत्ये धर्म स्वापरः।'[4]

यहां तुलसी वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित होते हुए भी अपने राम को उक्त देवताओं से भी अनन्तगुना शक्तिशाली एवं सामर्थ्यवान बतलाते हैं—

"विष्नु कोटि सन पालनकर्त्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥"[5]

तुलसी के मत से तो राम निरुपमेय हैं। क्योंकि वेद का भी यही कथन है कि श्रीराम के समान श्रीराम ही हैं—

"निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ॥"[6]

---

१. (अ) अध्यात्म०, ६/११/६१-७६
(ब) मानस, ६/१०३/४-५
२. (अ) वा० रा०, ६/१०८/१७-२०।
(ब) रा० चं०. १६/५२।
३. सूर रामचरितावली, पद १७६, पृ० १८८ (गीता प्रेस गोरखपुर)
४. वा० रा०, २/१/१८-१६।
५. मानस, ७/६२/३-४।
६. मानस, ७/६२ का छंद।

तृतीय अध्याय

सीता

भारतीय संस्कृति एवं वाङ्मय में सीता का चरित अपने सतीतत्व और पातिव्रत धर्म के कारण ही स्त्रियों के लिए अनुकरणीय एवं स्पृहणीय रहा है। एक भारतीय नारी के जीवन का उज्ज्वल चरित में अन्तर्निहित है।

सीता-तत्व

सीता की चारित्रिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करने से पूर्व उनके तात्विक स्वरूप एवं अद्भुत प्रादुर्भाव पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में सीता मुख्यतः आद्याशक्ति, मूल प्रकृति तथा योगमाया रूप में ही स्वीकार की गई हैं। सीतोपनिषद में वह मूलप्रकृति एवं प्रणवस्वरूपिणी कही गई हैं—

"मूलप्रकृतितिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥"[१]

वे वस्तुतः श्रीराम के सान्निध्य में रहनेवाली, जगत के आनन्द के कारण एवं सर्वभूतों की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करनेवाली आद्याशक्ति हैं—

"श्रीराम सांनिध्यावशाज्जगदानन्दकारिणी।
उत्पत्ति स्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥"[२]

यही नहीं, वे इच्छा, ज्ञान, क्रिया—इन तीनों शक्तियों से समन्वित हैं :—

"इच्छाज्ञान क्रियाशक्तित्रितयं यद्भावसावनन्।
तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्वनुपास्महे॥"[३]

इसी प्रकार श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् में विदेहनन्दिनी सीता को श्रीराम के सामीप्यमात्र से सर्वभूतों की उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाली, जगदानन्ददायिनी एवं प्रणव से अभिन्न मूलप्रकृति माना गया है।[४]

---

१. सीतोपनिषद।
२. सीतोपनिषद्।
३. तदेव।
४. श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्, खण्ड १ (उपनिषद् अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ० ५४३)।

रामतापनीयोपगिषद् में भी यह उल्लेख मिलता है कि श्रीराम साक्षात भगवान् हैं और देवी जानकी भूर्भुवःस्वरूप व्याहृति हैं।

"यो वे श्रीरामचंद्र से भगवान या जानकी भूर्भुवः सुवस्तस्ये वैनमो नमः।"[1]

अध्यात्म रामायण में भी सीता को सर्ग, स्थिति और अन्त करनेवाली मूल-प्रकृति कहा गया है जो परब्रह्म राम के सांनिध्य से प्रमादशून्य होकर सभी कार्यों का सृजन करती है—

"माँ विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमयन्तन्द्रिता ॥[2]

वस्तुतः वह मूलप्रकृति, पराशक्ति एवं योगमाया ही सीता रूप में प्रादुर्भूत हुई है।

"उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः ॥"[3]

तथा

"योगमायापि सीतेति जाता वै।"[4]

यही नहीं योगमाया नाम से विख्यात श्रीलक्ष्मी ही जानकी हैं—

"षा सा जानकी लक्ष्मीयगमायेति विश्रुता।"[5]

विष्णुपुराणकार की भी यही धारणा है कि अवतार रूप में श्रीलक्ष्मी विष्णु भगवान की सहायिका होती हैं। वे रामावतार में सीता हैं और कृष्णावतार में रुक्मिणी हैं—

"एवं यदा जगत्स्वामीं देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्धेषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥

× × ×

राघवत्वेऽमवत्सीता रुक्मिणी कृष्णाजन्मनि ॥"[6]

---

१. रामतापनीयोपनिषद्, २५ (उपनिषद् अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर)
२. अध्यात्म रामायण, १/१/३४।
३. अध्यात्म रामायण, १/७/२७।
४. तदेव, १/८/६५।
५. तदेव, २/५/११।
६. विष्णुपुराण, १/६/१४२, १४४।

आनन्द रामायण में सीता और दुर्गा की अभिन्नता सिद्ध की गई है।[१] स्कंदपुराण में सीता को विष्णु के अनुरूप शरीर धारण करनेवाली जगन्माता कमला रूप में स्मरण किया गया है।[२] इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मा भी सीता को लक्ष्मी कह कर स्तुति करते हैं—

"सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः।"[३]

संस्कृत-वाङ्मय के सीता-तत्व विषयक विचारधारा से हिन्दी के अधिकांश रामकथाकार प्रभावित हैं। उनके अनुसार भी सीता मूलप्रकृति, आदिशक्ति, योगमाया एवं साक्षात् लक्ष्मी ही हैं। तुलसी ने रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही जगज्जननी सीता की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने वाली एवं समस्त कल्याणप्रदायनी मूल-प्रकृति किंवा आद्याशक्ति के रूप में स्तुति की है—

"उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीता नतोऽहं रामबल्लभाम्॥"[४]

वस्तुतः जगत की उत्पादिका आदिशक्ति एवं ब्रह्म राम की योगमाया ही सीतारूप में अवतरित होती हैं। यहाँ मानसकार ने अध्यात्मरामायण से प्रेरणा ग्रहण की है।

"योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा।
उत्पत्स्यते तथा सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम्॥[५]

"आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥"[६]

यह आद्याशक्ति योगमाया सीता ब्रह्म राम से सर्वथा अभिन्न हैं। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम अग्निदेव से सीता के साथ अपनी अनन्यता स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य एवं उसकी प्रभा परस्पर अनन्य एवं अभिन्न हैं, उसी प्रकार सीता मुझसे अभिन्न है—

"अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा॥"[७]

इसी प्रकार तुलसी के राम-सीता भी सर्वथा अभिन्न हैं।

---

१. आनन्द०, मनोहरखंड, अध्याय १२, श्लोक २६, ३९।
२. स्कंदपुराण, ब्रह्म, सेतुमाहात्म्य, २२/१६,१७।
३. वा० रा०, ६/११७/२७।
४. मानस, बाल०, श्लोक ५।
५. अध्यात्म०, १/२/२८।
६. मानस, १/१५२/२।
७. वा० रा०, ६-११८-१९।

"गिरा अरथ जल वीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।।"[१]

यहाँ भी राम की योगमाया जानकी ब्रह्म राम की प्रेरणा से जगत का सृजन, पालन एवं संहार करती हैं ।

"श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह, जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की ।।[२]

इसके अतिरिक्त तुलसी की सीता में अध्यात्मकार की सीता से विशिष्ट अन्तर यह है कि वह अध्यात्म रामायण की केवल लक्ष्मी नहीं, किन्तु परात्परा, आद्याशक्ति है जिसके अंशमात्र से अनेक रमा, उमा एवं सरस्वती प्रादुर्भूत हुआ करती हैं—

"बाम-भाग सोभित अनुकूला । आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला ।।
जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई । राम बाम दिसि सीता सोई ।।"[३]

श्रीराम की प्रियतमा सीता वस्तुतः जगज्जननी एवं तुलसी की आराध्या अम्बा भी हैं ।[४]

सूर की सीता भी साक्षात् लक्ष्मी की अवतार हैं । मंदोदरी रावण को समझाती हुई कहती है कि ये जनकनन्दिनी एवं राम की भार्या सीता को साक्षात् लक्ष्मी एवं जगन्माता हैं । अरे मूर्ख रावण ! जानकी को क्या सामान्य स्त्री समझ लिया है—

"यह सीता जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनन्दन रानी ।
रावन मुग्ध करम के हीने, जनकसुता तैं तिय करि मानी ।।"[५]

× × ×

"ये जगदीश ईस कमलापति, सीता तिय करितैं कत जानी ।।"[६]

× × ×

---

१. मानस, १/१८ ।
२. तदेव, २/दो० १२५ के आगे का छंद ।
३. तदेव, १/१४८/१/२ ।
४. तदेव, १/१८/४ ।
५. सूर रामचरितावली, पद १२५ (गीताप्रेस, गोरखपुर) ।
६. तदेव, पद १८४ ।

"तैं कत सीता हरि आनी ?
जनकसुता जगत-मात राम-नारि मैं जानी ।"[१]

इसी प्रकार केशव की जनकात्मजा भी ब्रह्म राम की योगमाया से भिन्न नहीं है ।

"ह्वजै कृपाल गहिजै जनकात्मजाया ।
योगीश–ईश तुम हौ यह योगमाया ॥"[२]

सीता की विलक्षण उत्पत्ति

सीता का जन्म भी अनेक विलक्षण एवं अलौकिक घटनाओं से युक्त है । वाल्मीकि रामायण, महाभारत, हरिवंश एवं जैन पउमचरियं में सीता के अलौकिक जन्म की ओर संकेत नहीं है तथा वे जनक की औरस पुत्री के रूप में ही स्वीकार की गई हैं ।

सीता की उत्पत्ति के विषय में अन्य अनेक अलौकिक एवं विलक्षण मान्यताएँ हैं । गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, महाभागवतपुराण, कश्मीरी रामायण, तिब्बती एवं खोतानी रामायण, रामजातक आदि ग्रंथ सीता को रावण की पुत्री मानते हैं । दशावतारचरित (११वीं श० ई०) तथा गोविन्दराजकृत वाल्मीकि रामायण के पाठ सीता को पद्मजा कहते हैं । अद्भुतरामायण और आनन्दरामायण में इनको क्रमशः रक्तजा एवं अग्निजा बतलाया है । इसके अतिरिक्त दशरथजातक तथा रामकेलिंग (जावा) और सेरी (मलय) में सीता को दशरथ की पुत्री कहा गया है ।[३]

कुछ विद्वान् सीता के नामकरण का सम्बन्ध वैदिककालीन कृषि की अधिष्ठात्री देवी से मानते हैं, जहाँ सीता शब्द का अर्थ हल से खींची हुई रेखा होता है । सम्भवतः उनके भूमिजा कहलाने का यही कारण रहा हो ।[४]

वाल्मीकि रामायण तथा अधिकांश रामकथाएँ सीता को पृथ्वी से उद्भूत मानती हैं । वाल्मीकि रामायण में जनक विश्वामित्र से सीता की अलौकिक उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि हल की फाल के समीप प्रादुर्भाव होने के कारण उसका नाम सीता पड़ा ।

---

१. तदेव, पद १२३ ।

२. रा० चं० २०/१३ ।

३. विस्तार के लिए देखिए—रामकथा का विकास, पृ० २६५-३८२, संस्करण १९६२—डॉ० कामिल बुल्के ।

४. तदेव, पृ० ३६९ ।

"अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।।"[१]

तथा किसी माता के गर्भ से उत्पन्न न होने के कारण वे "अयोनिजा कहलाईं ।[२] यहीं नहीं, सीता अनुसूया को अपना परिचय देती हुई स्वयं को अयोनिजा ही कहती हैं—

"अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत् स चिन्तयन् ।
सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम ।।"[३]

हिन्दी के अधिकांश सभी रामकथाकार उपर्युक्त धारणा से प्रभावित हैं । विद्यापति, तुलसी एवं केशव ही नहीं वरन् वैदेही-वनवास तथा 'भूमिजा' तक के आधुनिक रचयिताओं ने भी सीता की उत्पत्ति पृथ्वी से ही मानी है । वे सीता को पृथ्वी से उद्भूत जनक द्वारा पोषित कन्या-रूप में ही स्वीकार करते हैं । पृथ्वी से इस प्रकार के विलक्षण प्रादुर्भाव को लेकर ही विद्यापति ने जानकी-वन्दना रोचक ढंग से प्रस्तुत की है :—

"रे नरनाह सतत मजु ताही । ताहि नहिं जननि जनक नहिं जाही ।।
बसु नइहरा ससुरा के नाम । जननिक सिर चढ़ि गेल बहि गाम ।।
सासुक कोर में सुतल जमाय । समथि बिलह तौ बिलहल जाय ।।
जाहि ओदर सें बाहरि मेलि । से पुनि पलटि ततय चलि गेलि ।।"[४]

तुलसी के अनुसार भी सीता जनक द्वारा पोषित "धरनिसुता ही हैं ।[५] केशव ने भी सीता को पृथ्वी से उत्पन्न जनक की पुत्री माना है । बिश्वामित्र जनक से कहते हैं—

"....भूपन की तुम ही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू-तन से तनया उपजाई ।।"[६]

---

१. वा० रा०, १/६६/१३-१४ ।
२. "वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ।"—तदेव, १/६६/१५
३. तदेव, २/११८/३७ ।
४. विद्यापति पदावली, प्रार्थनाचारी, पद सं० २४६ ।
५. (अ) "सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी संभारि ।
धरनिसुता धीरजु धरेउ, समउ सुधरमु विचारि ।।"
—मानस, २/२८६

(ब) विनयपत्रिका, ३६ ।
६. रा० चं०, ५/२४ ।

इसी प्रकार वैदेही-वनवास में 'महिषनन्दिनी'[१] एवं 'भूमिजा' खंडकाव्य में भी सीता को पृथ्वी-पुत्री कहा गया है।

रूप-सौंदर्य

वाल्मीकि ने सीता के रूप-सौंदर्य का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने उनके अंग-प्रत्यंग की सुषमा का अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया है। वाल्मीकि की दृष्टि में सीता का सौंदर्य अनुपम एवं अद्वितीय है। वस्तुतः देवकन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा अथवा नागकन्या कोई भी रूप में उसकी समानता नहीं कर सकती, फिर मनुष्य जाति की कोई स्त्री उसकी समता कैसे कर सकेगी—

"नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा न पन्नगी।
तुल्या सीमन्तिनी तस्या मानुषी तु कुतो भवेत् ॥"[२]

शूर्पणखा सदृश राक्षसी भी रावण से यही कहती है :—

"नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी।
तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥"[३]

"देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और किन्नरों की स्त्रियों में भी कोई उसके समान सुंदरी नहीं है। इस भूतल पर वैसी रूपवती नारी मैंने पहले कभी नहीं देखी।" उसके रूप-सौंदर्य का चित्रण करते हुए वह कहती है कि "सीता विशालाक्षी एवं पूर्णचन्द्र सदृश सुंदर मुखवाली है। उसके केश, नासिका, ऊरु तथा रूप अत्यन्त सुंदर एवं मनोहर हैं। वह दण्डकवन की देवी एवं दूसरी लक्ष्मी के समान शोभा-सम्पन्न है। उसके शरीर का वर्ण तप्त-स्वर्ण-कान्तियुक्त, नख अरुणाभ तथा उच्च हैं। उसके समस्त अंग सुडौल एवं कटिभाग अत्यन्त सुंदर है।"[४]

सीता के रूप पर मुग्ध हो वह तो यहाँ तक कहती है कि, "सीता जिसकी भार्या हो और वह हर्ष में भरकर जिसका आलिंगन करे, समस्त लोक में उसी का जीवन इन्द्र से भी अधिक भाग्यशाली है।

---

१. वैदेही वनवास, १८/३३।

२. वा० रा०, ३/३१/३०।

३. तदेव, ३/३४/१८।

४. तदेव, ३/३४/१५-१७।

"यस्य सीता भवेद् भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत् ।
अभिजीवेत् स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात् ॥"[१]

और रावण उस रूप-सौन्दर्य का अवलोकन करता हुआ खड़ा का खड़ा रह गया । वस्तुतः वे अप्रतिम सुन्दरी थीं । उनके दाँत और ओठ सुन्दर थे । मुख पूर्ण-चन्द्र की शोभा को छीने लेता था ।[२] आश्चर्यचकित हो वह पूछने लगा, "शुभानने ! तुम श्री, ह्री, कीर्ति, शुभस्वरूपा-लक्ष्मी अथवा अप्सरा तो नहीं हो ? अथवा वरारोहे ? तुम भूति या स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामदेव• की पत्नी रति तो नहीं हो ?

"ह्री श्रीः कीर्ति शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने ।
भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वेरचारिणी ॥"[३]

वह सीता के रूप का सौंदर्यांकन करता हुआ यह स्वीकार करता है कि "पृथ्वी पर तो ऐसी रूपवती सुकुमार एवं नवीन-आयुवाली नारी मैंने आज से पहले कभी देखी ही नहीं थी—

"नेवं रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ।
रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यंवयश्च ते ॥[४]

इसी प्रकार वाल्मीकि ने सीता की अप्रतिम रूपराशि को अपने निर्निमेष नेत्रों से अनेक स्थलों पर निरखा है । वस्तुतः उनके अनुसार वे रूप में देवांगनाओं के समान थीं और मूर्तिमती लक्ष्मी-सी प्रतीत होती थीं -

"देवताभिः समारूपे सीता श्रीरिवरूपिणी ।"[६]

वाल्मीकि की भाँति ही मैथिलीशरण गुप्त ने सीता के नख-शिख का सम्यक् रूप दर्शन किया है, किन्तु उनके इस सौन्दर्य-चित्रण में रीतिकालीन कवियों का स्मरण हो आता है; यथा :—

"अंकुर-हितकर थे कलश-पयोधर पावन ।
जन मातृ-गर्वमय कुशल वदन-भव-भावन ॥

× × ×

---

१. वा० रा०, ३/४४/१६ ।
२. तदेव, ३/४६/१७ ।
३. तदेव, ३/४६/१७ ।
४. तदेव, ३/४६/१८-२२ ।
५. तदेव, ३/४६/२३ ।
६. तदेव, १/७७/२८ ।

कर, पद, मुख तीनों अतुल अनावृत पट-से ।
थे पत्र-पुंज में अलग प्रसून प्रकट से ।।
कन्धे ढककर कच छहर रहे थे उनके ।
रक्षक-तक्षक से लहर रहे थे उनके ।।
मुख धर्म-विन्दु-मय ओस-भरा अम्बुज-सा ।
पर कहाँ कंटकित नाल सपुलकित भुज-सा ।।
पाकर विशाल कच-भार एड़ियाँ धँसती ।
तब नख ज्योति-मिष मृदुल अंगुलियाँ हँसती ।।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता ।
तब अरुण एड़ियों से सुहाग-सा झड़ता ।।

× × ×

तनु गौर केतकी-कुसुम-कली की गाभा ।
थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा ।।[1]

यद्यपि वाल्मीकि की भाँति तुलसी की सीता भी अनिन्द्य एवं अपूर्व सुन्दरी हैं किन्तु मातृभाव होने के कारण उनका सौन्दर्यांकन मर्यादित तथा आदर्शपूर्ण है। ये जगदम्बा सीता में अप्राकृत, दिव्य-चिन्मय रूप के दर्शन करते हैं। वस्तुतः काव्य की त्रिगुणात्मक एवं मायिक उपमाएँ उस अलौकिक रूप-राशि के सौन्दर्य-चित्रण में तुच्छ, हीन एवं सर्वथा असमर्थ हैं। कारण संसार में कोई ऐसी रूपवती रमणी है ही नहीं जिसके साथ सीता के सौन्दर्य की तुलना की जाय।

'सिय सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदम्बिका रूप-गुन खानी ।।
उपमा सकल मोंहि लघु लानी । प्राकृत नारि अंग अनुरागी ।।
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकवि कहाइ अजसु को लेई ।।
जौं पटतरिय तीय सम सीया । जग असि जबति कहाँ कमनीया ।।'[1]

संसार की स्त्रियों की तो बात ही क्या, श्रेष्ठ देवांगनाएँ भी उसकी रूप-सुषमा के समक्ष नगण्य एवं दोषयुक्त ठहरती हैं—

"गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ।।
विष वारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमा सम किमि वैदेही ।।"[2]

---

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २२१-२२२ (द्वितीय संस्करण) ।
२. मानस, १/२४७/१-२ ।
३. तदेव, १/२४७/३ ।

वाल्मीकि ने सीता की उपमा तमलरहित लक्ष्मी से की है[1] परन्तु तुलसी की दृष्टि में सामान्य साधनों से उत्पन्न वह लक्ष्मी तो नगण्य है ही, यदि उनकी कल्पनासार एक विशिष्ट प्रक्रिया से दिव्य लक्ष्मी का उद्भव हो सके तो वह भी सीता के सौंदर्य की तुलना कर सकेगी—इसमें भी सन्देह हैं।

'जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज्ञ मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल॥'[2]

हनुमन्नाटक में सीता के अंगों से स्पर्धा रखने वाले प्राकृतिक उपादानों के प्रति वियोगी राम आशंकित हैं कि उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने उसे मारकर उसके विभिन्न अंगों को बाँटलिया और अब सीता के न रहने पर उन्हें सौन्दर्य-प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो गया। राम विलाप करते हुए कहते हैं कि "कटिप्रदेश कों सिंहों ने, मुस्कान को चन्द्रमा ने, नेत्रों को हरिणों ने, देहकान्ति को चम्पा की कलियों ने, मधुर भाषण को कोकिलों ने और हाय! तुम्हारी चाल को हाथियों तथा हंसों ने न जाने किस प्रकार बाँट लिया होगा—

'मध्योऽयं हरिभिः स्मितं हिमरुचां नेत्र कुरंगी गणैः।
कान्तिचम्पक कुडमलैः कलरवौ हा-हा हृतः कोकिलै॥
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विभज्याधुना।
कान्तारे सकलेर्विनाश्य पशुबन्वीतासि भो मैथिलि॥'[3]

तुलसी ने हनुमन्नाटक के उक्त स्थल से प्रेरणा ग्रहण की है। यहाँ भी सीता के सुन्दर अंगों से ईर्ष्या रखनेवाले प्राकृतिक उपादान विरही राम को व्यंग्य से करते प्रतीत होते हैं। राम विलाप करते हुए कहते हैं —

"खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्दकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
बरु न पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कमल कदलि हरषाहीं। नेकू न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥"[4]

---

१. "तामुत्तमां त्रिलोकानां पद्महीनामिव श्रियम्।
विभ्राजमानां वपुषा रावणः प्रशशंस ह॥" —वा० रा०, ३/४६/१५

२. मानस, १/२४७/४ से दो० २४७ तक।

३. हनुमन्नाटक, ५/३।

बाल्मीकि ने सीता को 'पूर्णेन्दुसदृशानना'[१] कहा है, परन्तु तुलसी के राम सीता के मुख-सुषमा के समक्ष चन्द्रमा को मलिन एवं निस्तेज पाते हैं, क्योंकि वह कालिमायुक्त एवं अनेक अवगुणों का आकार है—

"जनमु सिंधु पुनि बंधु विषु, दिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि, चंदु वापुरो रंक ।।
घटइ बढ़ई बिरहिनि दुख दाई । ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई ।।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही । अवगुन बहुत चंद्रमा तोही ।।
वैदेही मुख पटतर दीन्हें । होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हें ।।'[२]

इसी प्रकार केशवकृत 'रामचन्द्रिका' में भी राम के साथ वनपथ पर जाती हुई जानकी के मुख-सौन्दर्य का अवलोकन कर एक ग्रामबाला 'चन्द्रमा-सी चंद्रमुखी सब जग जानिए'[३] कह कर उसे चन्द्रमा के समान बतलाती है, जबकि दूसरी ग्रामवधू चंद्रमा को सदोष बतलाकर सौन्दर्य, सुगन्ध, सुकोमलता एवं निर्मलता की दृष्टि से सीता के मुख को कमलवत् कहती है—

"पून्यो ई को पूरन पै आन दिन ऊनो-उनो,
छन छन छीन होत छीलर के जल को ।
चन्द्र सो जो बरनत रामचंद्र की दोहाई,
सोई मतिमंद कवि केशव मुसल सो ।
सुन्दर सुबास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख केवल कमल सो ।'[४]

परन्तु तीसरी सखी दोनों के मतों का खंडन करके कहती है कि सीता के मुख के समान न तो चंद्रमा है और न कमल ही । क्योंकि चंद्रमा केवल रात्रि में प्रकाशित रहता है और कमल केवल दिन में प्रफुल्लित रहता है । किन्तु सीता का मुख तो अहर्निश आनन्ददायक है; अतएव अपना अभिमत प्रकट करती है कि इस मुख (सीता के) के समान यही मुख है :—

'बासर ही कमल रजनि ही में चंद्र मुख,
बासर हू रजनि बिराजै जगवंदरी ।
देखे मुख भावै अनदेखई कमल चन्द्र,
ताते मुख सुखे कमले न चंदरी ।।'[५]

---

१. वा० रा०, ३/३४/१५
२. मानस, १/२३७ से २३८/२ तक ।
३. रा० चं०, ६/४२ ।
४. तदेव, ६/४१ ।
५. सदेव, ६/४२ ।

इस प्रसंग में केशव वाल्मीकि से प्रेरित होते हुए भावसाम्य की दृष्टि से तुलसी के अधिक निकट हैं।

इसी प्रकार हरिऔध ने 'वैदेही-वनवास' में सीता को कमलिनी तथा कुसुम सदृश सुकुमार एवं कोमलांगी कहा है—

''कमलिनी-सी जो है सुकुमार, कुसुम कोमल है जिसका गात।
चटाई पर या भू पर पौढ़, बिताई उसने है सब रात॥''[१]

जनक की बाटिका में राम सीता के अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्य को देखकर मुग्ध हो जाते हैं तथा अनेक प्रकार के मैथिली का रूप-निरूपण करते हुए प्रसन्न-राघव में कहते हैं कि ''सीता का अनिर्वचनीय दर्शन, नवयौवन का सर्वस्व, भोग का आश्रयस्थान, नेत्रों का सौभाग्य, यौवनमद के विलास का सुख, जगत का सार, जन्म का फल, कामदेव का अभिप्राय विशिष्ट स्थान, स्वतः मेरा हृदय, रागवृत्ति की चरम परिणति और शृङ्गार का रहस्य है—

'सर्वस्वं नवयौवनस्य, भवनं भोगस्य, भाग्यं दृशां।
सौभाग्यं मदविभ्रमस्य, जगतसारं, फलं जन्मनः॥
साकूतं कुसुमायुधस्य, हृदयं रामस्य, तत्वं रतेः।
शृङ्गारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत् किञ्चिदालोकितम्॥'[२]

प्रसन्नराघव की भाँति मानस में भी राम सीता का सौन्दर्य वर्णन करते-करते विमुग्ध हो जाते हैं। परन्तु यहाँ मर्यादा एवं शालीनता का ध्यान अधिक है—

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिर चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निशि तजे दिगंचल॥

देखि सीव सोभा सुखुपावा। हृदयँ सराहत बचनु नआवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥'[१]

यही नहीं, वह अलौकिक सुषमा इतनी मोहक एवं आकर्षक है कि उसे देखकर राघवेन्द्र को भी यह स्वीकार करना पड़ा :—

---

१. वैदेही वनवास, द्वितीय सर्ग, छंद ३१।

२. प्रसन्नराघव, २/२६।

३. मानस, १/२२६/१-३।

"जासु विलोकि असौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।'[१]

इसी प्रकार साकेत के सीता की भी रूप माधुरी अनुपम किन्तु आकर्षक है—

परिधि बनी थी बिधु-मुख की, सीमा थी सुषमा-सुख की।
भात-सुरभि का सदन अहा, अमल-कमल सा वदन अहा !!
अधर छबीले छदन अहा, कुन्दकली से रदन अहा।
साँप खिलाती थीं जलके, मधुप पालती थीं पलकें।
और कपोलों की जलकें, उठती थीं छवि की छलकें।
गोल-गोल गोरी बाँहें, दो आँखों की दो राहें।'[२]

वाल्मीकि की भाँति मैथिलीशरण गुप्त की सीता भी कल्याणी कमला सदृश है—

"थी कमला सी कल्याणी, वाणी में वीणापाणी ।।"[३]

गोविन्दरामायण के अनुसार भी सीता का रूप-सौन्दर्य परम उत्कृष्ट था। वह चन्द्रमा के समान मुखवाली, मृगनयनी, क्षीण कटिवाली तथा पद्मिनी सदृश मोहक थी—

'विधुं वाक बैंनी। मृगी राज नैंनी ।।
कटं छीन देशी। परी पद्मिनी सी ।।'[४]

सीता के अंग अत्यन्त कोमल एवं सुकुमार हैं। वाल्मीकि रामायण में विलाप करते हुए दशरथ कैकेयी से कहते हैं :—

'कैकेयि कुशचीरेश म सीता गन्तुमर्हति।
सुकुमारी च वाला च सततं च सुखोचिता ।।'[५]

"कैकेयि। सीता कुश-चीर पहनकर वन जाने योग्य नहीं है, वह सुकुमारी है, बालिका है तथा सदा सुखों में ही पली है।" इसी प्रकार वाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर सीता की सुकुमारता का वर्णन किया है।[६]

हनुमन्नाटक में कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने को उद्यत कोमलांगी सीता के इसी सौकुमार्य को देखकर राम संदेह प्रकट करते हुए कहते हैं कि "तुम तो पहले से ही कृशोदरी हो, उस पर स्तनभार से नयी जाती हो। यहाँ तक कि क्रीड़ा के लिए घर

१. तदेव, १/२३०/२।
२. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६३-६४ (द्वितीय संस्करण)
३. तदेव, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६४।
४. गोविन्दरामायण, वनवास, पृ० ७६।
५. वा० रा०, २/३८/३-४।
६. तदेव, ३/४६/२३ ; ३/१३/३।

घर में भी नहीं फिर सकती थी और झूला झूलने के समय भी थक जाती थी। फिर झरने, खाड़ी, पर्वतीय नदियों एवं भयानक जन्तुओं से युक्त वन-प्रदेश में तुम कैसे चल सकोगी ?"[1]

हनुमन्नाटक की इसी भावभूमि पर मानस में कौशल्या राम से सीता की सुकुमारता का चित्रण करती हुई उसे वन न ले जाने का आग्रह करती हैं—

"तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहिं पिआरी॥

× × ×

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
कमलबेलि जिमि बहु विधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत-फलत भयउ विधि बामा। जानि न जाइकाह परिनामा॥
पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनि मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥

"करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्टजन्तु बन भूरि।
विष बाटिका कि सोह सुत सुभग सजोवन मूरि॥"[2]

और जब बहुत आग्रह करने पर भी सीता नहीं मानती तथा प्रियतम राम के साथ वन-पथ पर निकल ही पड़ती हैं तब उसके सौकुमार्य से द्रवित हो हनुमन्नाटकार अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत करता है—

"संद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी।
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता॥
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणां।
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥"[3]

सिरस सुमन के समान कोमलांगी सीता ने अयोध्यापुरी की निकटवर्ती भूमि में शीघ्रता से तीन-चार पग चलकर ही इस प्रकार बार-बार कहकर कि 'प्राणनाथ ? अब और कितना चलना है, श्रीराम के आँसुओं का प्रथम जन्म कराया।

हनुमन्नाटक के इन्हीं भावों से अनुप्रेरित तुलसी भी कवितावली में अत्यन्त दयग्राही चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं :—

१. हनुमन्नाटक, ३/१३।

२. मानस, २/५८/४ ; २/५६/१-३ ; २/५६।

३. हनुमन्नाटक, ३/१२।

'पुरते निकसी रघुवीर वधू, धर धीर दए मग में डग द्वै ।
झलकी भरि भालकनीं जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।।
फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ?
तिय कों लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै ।।''[१]

पातिव्रत धर्म

दाम्पत्य जीवन की प्रथम बेला से ही सीता की यह दृढ़ आस्था थी कि स्त्री की एक मात्र गति एवं आश्रय उसका पति ही है। बाल्मीकि रामायण में वन-गमन के लिए राम से आग्रह करती हुई वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि ''पति को छोड़कर नारी का सच्चा सहायक माता-पिता, सखियाँ या अपना शरीर भी नहीं है''[२] वह राम द्वारा निर्दिष्ट वन के अनेक संकटों की ओर किंचित भी ध्यान न देते हुए कंटकाकीर्ण मार्ग पर अपने आराध्य पतिदेव के आगे-आगे चलने को उद्यत है—

''यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्‌गन्ती कुशकण्टकान् ।।''[४]

उसके हृदय का सम्पूर्ण प्रेम एक मात्र उसके आराध्य पतिदेव को ही समर्पित है। बह किसी प्रकार के सुख-समृद्धि की अपेक्षा पति-चरणों की छाया में रहना ही श्रेयस्कर समझती है।[३] यही नहीं, पति से वियुक्त हो जाने पर उसके लिए जीवन धारण करना सम्भव नहीं है —

'ननन्यमावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।'[५]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी पतिव्रता सीता का राम के प्रति अनन्य अनुराग दर्शनीय है। वह पति से कहती है कि वन में आपके साथ विचरण करते हुए मेरे लिए कु-काश और चंटकादि भी फूलों के बिछौने के समान होंगे[६] तथा वह क्षुब्ध हो यहाँ तक कह देती है कि ''यदि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो मैं अभी आपके सामने ही अपने प्राण त्याग दूँगी।''

---

१. कवितावली, २/११ ।

२. ''न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीसनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ।।''[२]

—वा० रा०, २/२७/६

३. तदेव, २/२७/७ ।

४. तदेव, २/२७/६, १२-१३ ।

५. तदेव, २/२७/२३ ।

६. अध्यात्म रामायण, २/४/७४ ।

"यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणांस्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ।"[१]

वाल्मीकि रामायण में तो और भी कठोर शब्दों में कहती है कि यदि आप मुझ सेविका को अपने साथ वन नहीं ले जाना चाहते तो मैं मृत्यु के लिए विष खा लूँगी, आग में कूद पड़ूँगी अथवा जल में डूब जाऊँगी—

"यदि माँ दुःखितामेवं वनं वस्तु न चैच्छासि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ।।"[२]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से प्रेरित एवं प्रभावित होकर भी तुलसी की सीता कहीं अधिक शालीन, संयत एवं गम्भीर चित्रित की गई हैं। इस स्थल पर पतिव्रत-धर्म विषयक उसकी भावाभिव्यक्ति नारी-समाज के उच्चतम आदर्शों का आधार-स्तम्भ है। तुलसी की सीता के लिये भी पति के वियोग के समान संसार में कोई दुःख नहीं है। उसके लिए स्वर्ग भी नरक-तुल्य है।[३] माता-पिता, बन्धु-बान्धव तथा सुख-समृद्धि पति के बिना सभी उसकी दृष्टि में शोक के समान एवं भारस्वरूप हैं।[४] उसकी तो अडिग आस्था है कि जिस प्रकार बिना जीव के देह और बिना जल के नदी निस्सार है, उसी प्रकार पुरुषविहीन पत्नी का जीवन भी तुच्छ है—

"जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।।"[५]

उसका विश्वास है कि पति के सानिध्य में बन के समस्त दुःख-द्वन्द्व सुख एवं समृद्धि में परिणत हो जायेंगे। कन्द-मूल और फल ही उसके अमृततुल्य आहार होंगे। पर्वतों के दुर्गम गह्वर एवं कन्दराएँ ही उसके लिए सैंकड़ों राजमहलों के समान सुख-प्रदायिनी होंगी।[६] इसके अतिरिक्त प्रियतम के बिना उसका घर में रहने का प्रयोजन ही क्या है ?

---

१. अध्यात्म०, १/२/४/७६

२. वा० रा०, २६/२१

३. "प्राणनाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद विधु सुरपुर नरक समान ।।"
—मानस, २/६४

४. तदेव, २/६५/१-३

५. तदेव, ३/६५/४

६. मानस, २/६६/१-४

"कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ।
विपिन कोटि सुरपुर समान मोको, जो पै पिय परिहर्‌यो राजु ॥"[१]

वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण की भाँति यहाँ भी उसका अटल विश्वास है कि यदि उसके आराध्य-पति उसे छोड़कर वन चले ही गये तो उसका मरण अवश्यम्भावी है—

"राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत न जनिबहिं प्रान ।"[२]

तथा

"जौ हठि नाथ राखिहौ मौकहूँ, तौ संग प्रान पठावोगी ।"
तुलसीदास प्रभु बिनु जीवत रहि, क्यों फिरि वदन देखावोंगी ॥"[३]

प्रियतम राम भी यह जानते हैं कि हठपूर्वक घर में रखने पर वह अपने प्राणों को नहीं रखेगी—

"देखि दसा रघुपति जियँ जाना । हठि रहिं नहिं राखिहि प्राना ।"[४]

वह वन-गमन अपने सुख के लिए नहीं करना चाहती वरन् उसका एकमात्र ध्येय पति-सेवा ही है । वाल्मीकि रामायण में वह स्वीकार करती है कि शूरवीर वनवासी पति की सेवा करना मेरे लिए अधिक रुचिकर है—

"वनवासस्य शूरस्य मम चर्या हि रोचते ॥"[५]

तुलसी की सीता का भी यही मन्तव्य है—

"सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥

× × ×

"सममहि तुम तरु पल्लव डासी, पाय पलोटिहि सब निसिदासी ॥"[६]

वस्तुतः उसके आश्चर्य का यही कारण है कि पति तो जीवन भर दुःख झेलता रहे और पत्नी आनन्दोपभोग करे ।

---

१. गीतावली, २/७
२. मानस, २/६६
३. गीतावली, २/५/६
४. मानस, २/६८/१
५. वा० रा०, २/२६/१५
६. मानस, २/६७/१-३

"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहूँ भोगू ।।"[१]

वह पति के बिना घर में रहकर करेगी ही क्या ?

"तुलसीदास प्रभु पद-सरोज तजि, रहिहौं कहा करोंगी भवन ?"[२]

प्रियतम् राम में ही अनुरक्त होने के कारण वह वन में भी प्रसन्न एवं निर्भय है ।[३] वाल्मीकि रामायण में सुमन्त्र ने अयोध्या लौटकर कौशल्या के समक्ष पति-परायणा सीता की मनःस्थिति का अत्यन्त सुन्दर एवं विशद चित्रण किया है ।[४] वस्तुतः पतिभक्ता जानकी का जीवन श्रीराम के ही अधीन है । पति बिना उसका अवध-निवास वन-तुल्य ही है—

"तद्गतं हृदयं यस्यास्तद्धीनं च जीवितम् ।
अयोध्या हि भवेदस्या रामहीना तथा वनम् ।।"[५]

प्रियतम राम के साहचर्य में सीता का वन-निवास मोदयुक्त एवं मंगलदायक है ।[६]

मानसकार ने उपर्युक्त तथ्य का उद्घाटन स्वयं सीता के मुख से तब करवाया है जब श्रृंगरवेपुर से लौटते समय सुमंत्र सीता को वापस ले जाने का आग्रह करते हैं । सती सीता विनम्र किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि आर्यपुत्र के चरण कमलों के बिना मेरे लिए संसार के सभी नाते व्यर्थ हैं ।[७] यही नहीं ऐश्वर्ययुक्त एवं प्रभावशाली ससुर महाराज दशरथ तथा वैभवपूर्ण नगरी अयोध्या, प्रिय कुटुम्बी और मातृतुल्य सासुएँ—ये कोई भी प्रियतम राम के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखद नहीं प्रतीत होते ।[८] इसके विपरीत प्राणपति राम के साथ रहने पर दुर्गम मार्ग,

---

१. तदेव, २/६७/४

२. गीतावली, २/८

३. वा० रा०, २/६०/७

४. तदेव, २/६/८-२०

५. तदेव, २/६०/११

६. तदेव, २/६०/१७-१८

७. मानस, २/९७

८. तदेव, २/९८/३

वन्यभूमि, पर्वत, हाथी, सिंह, अगाध सर-सरिताएँ, कोल-भील एवं बनैले पशु-पक्षी मेरे लिए सुखद होंगे।"[१]

उपर्युक्त कथन की वास्तविकता के दर्शन चित्रकूट-निवास में होते हैं। प्रियतम राम के सान्निध्य में सीता का जीवन बन में रहते हुए भी मोदयुक्त एवं मंगलदायक हो गया है। वह प्रत्येक क्षण पति के चंद्रमुख को देखकर चकोरी के समान परम प्रसन्न रहती है। इस सौख्य के समक्ष उसे कुटुम्बनी एवं परिजन भी विस्मृत हो चुके हैं। वस्तुतः सीता का मन पति राम में इतना अनुरक्त है कि उसे वन सहस्रों अवध के समान प्रिय लगता है।[२]

इसी प्रकार साकेत की सती-सीता का निःश्रेयस भी पति के चरणों में ही अन्तर्निहित है—

"मेरी यही महामति है, पति ही पत्नी की गति है।
नाथ न भय दो तुम हमको, जीत चुकी हैं हम यम को।।"[३]

वह पति के दुःख में दुःख और पति-सुख में ही सुख मानती है—

"तुमको दुःख तो मुझको भी,
तुमको सुख तो मुझको भी।
सुख में आकर घेरूँ,
संकट में अब मुँह फेरूँ।"[४]

यहीं नहीं, अर्द्धांगिनी होने के नाते पति के साथ वन-गमन में वह अपना अधिकार समझती है।

"जो गौरव लेकर स्वामी, होते हो कानन गामी।
उसमें अर्द्ध भाग मेरा, करो न आज त्याग मेरा।।"[५]

इसी प्रकार "रामचरित-चिन्तामणि" में वह दृढ़ता के साथ कहती है :—

---

१. तदेव, २/६८/५

२. "राम संग सिय रहित सुखारी। पुरि परिजन गृह सुरति बिसारी।।
छिनु छिनु प्रिय विधु बदनु निहारी। प्रमुदित महहुँ चकोर कुमारी।।
× × ×
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा।।"
—मानस, २/१४०/१-२

३. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० १२० (संस्करण-सं० २०१४)

४. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ११७

५. तदेव, चतुर्थ सर्ग, पृ० ११७

"क्या आपके आधे कलेवर को मिला बनबास है ?
आधे कलेवर को कहो कैसे मिला रनिवास है ?"[१]

'वैदेही-बनवास' में राम के यह कहने पर कि मेरे साथ तुम वन में रहने योग्य नहीं हो, सीता अपने प्रिययम से अपने को अभिन्न बतलाती हुई कहती है कि क्या चाँदनी कभी चंद्रदेव का परित्याग कर सकी है ?

"कहाँ तुम और कहाँ बनवास, यदि कभी कहता चले• प्रसंग ।
तो बिहँस कहती त्याग सकी न, चन्द्रिका चंद्रदेव का संग ।।"[२]

सूरदास ने इस प्रसंग का संक्षिप्त किन्तु मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ भी प्रतिव्रता सीता प्रियतम राम से कहती है कि "आपके समान स्वामी को छोड़कर मेरी जैसी दासी और कहीं आश्रय नहीं ले सकती। मेरे लिए तो आपके चरण-कमल सुख के समुद्र हैं। अतः मैं अपने पातिव्रत धर्म का पालन करूँगी तथा समस्त सुखों को तिलांजलि देकर इस विपत्ति के अवसर पर आपके साथ बनगमन करूँगी।"[३]

केशव की रामचंद्रिका में भी वाल्मीकि[४] एवं अध्यात्म रामायण[५] की भाँति सीता दृढ़तापूर्वक स्पष्ट शब्दों में कहती है कि "इस विपत्ति के समय आपको छोड़कर न तो अयोध्या में रहूँगी और न जनकपुर ही जाऊँगी"—

"न हौं रहौं न जाहूँ जू बिदेह धाम की अबै ।
कही जु बात मातु पै सु आजु में सुनी सबै ।।"[६]

---

१. रामचरित-चिन्तामणि, छठा सर्ग, पृ० ७६

२. बैदेही-बनबास, २/३६

३. "ऐसो जिय न धरो रघुराइ ।
तुम-सौ प्रभु तजि मो-सी दासी, अनत न कहूँ समाइ ।।
तुम्हरो रूप-अनूप भानु ज्यों, जब नैननि भरि देखौं ।
ता छिन हृदय कमल प्रफुलित ह्वै, जनम सफल करि लेखौं ।।
तुम्हरे चरन-कमल सुखसागर, यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं ।
सूर सकल सुख छाँड़ि आपनौ, बन-विपदा संग चलिहौं ।।"
—सूर रामचरितावली, २/२२ (गीताप्रेस, गोरखपुर)

४. वा० रा०, २/२७/६

५. अध्यात्म०, २/४/७९

६. रा० चं०, ९/२४

प्रियतम के संग वह वन के सभी दुःख-द्वन्द्वों एवं क्लेशों को सहर्ष सहन करने के लिए समुद्यत है, यहाँ तक कि वह विषपान भी कर सकती है—

"केसौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास।
दुःख को निवास विष मुखहू गह्यो परे ॥"[१]

गोविन्द रामायण की भी सीता किसी भी प्रकार पति का साथ नहीं छोड़ना चाहती। वह सभी प्रकार के दुःख झेलने को तैयार है।[२] वन में अनेक शोक एवं भय के कारण उपस्थित होने पर भी वह अपने मुँह से 'सी' न करेगी—

"शूल सहों तन सूक रहों, पर सी न कहों सिर शूल सहूँगी।
बाघ बघार फनीन फुंकार सुसीस गिरे पर सी न कहूँगी ॥[३]

'साकेत' की सीता वाल्मीकि रामायण एवं 'मानस' की भाँति पति-सेवा के लिए ही वन जाना चाहती है। इसी कारण वह वन-गमन के समाचार से उद्विग्न नहीं होती प्रत्युत उसे यह सोचकर संतोष ही है कि—

"स्वर्ग बनेगा अब बन में, धर्मचारिणी हूँगी मैं।
बन-बिहारिणी हूँगी मैं।"[४]

साकेतकार की सीता को भी पति के साहचर्य में वन मंगलदायक प्रतीत होता है। उसे किसी प्रकार का भय नहीं है :—

"वन में क्या भय ही भय है? मुझको तो जय ही जय है।
यदि अपना आत्मिक बल है, जंगल में भी मंगल है ॥"[५]

---

१. तदेव, ६/२६

२. "मैं न तजौं पिया संग, कैसो दुःख जिय पै परे।
तनिक न मोरउँ अंग, अंग से होइ अनंग किन ॥"
—गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश, पृ० ५६ (प्रथम संस्करण)

३. गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश, पृ० ६० (प्रथम संस्करण)

४. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० १०५

५. तदेव, चतुर्थ, सर्ग, पृ० ११६

वस्तुतः पतिव्रता पत्नी के लिए पति का आश्रय ही सब सुखों का मूल है। वाल्मीकि एवं अध्यात्मकार की भाँति यहाँ भी वह प्रियतम राम से कहती है :—

"मन होगा दुःख भूल भरा, बन होगा सुख मूल भरा।
अथवा कुछ भी न हो वहाँ, तुम तो हो जो नहीं यहाँ ॥"[१]

वाल्मीकि रामायण में अत्रि-आश्रम पर अनसूया से पातिव्रत धर्म का उपदेश सुनकर सीता अपने पतिप्रेम के प्रति दृढ़ निष्ठा व्यक्त करती है कि "यदि मेरे पतिदेव अनार्य और जीविकारहित होते तब भी मैं निस्संकोच इनकी सेवा में संलग्न रहती। फिर जब ये अपने गुणों के कारण ही सब की प्रशंसा के पात्र बने हुए हैं तथा दयालु, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा एवं हितैषी हैं तब इनकी सेवा के विषय में कहना ही क्या है।"[२] वाल्मीकि रामायण के उक्त स्थल से प्रेरित होते हुए भी तुलसी की सीता कहीं अधिक विनम्र, संकोचशीला एवं उदात्त चरितवाली चित्रित हुई है। वह संसार की पतिव्रताओं में शिरोमणि है। उसे अपने सतीत्व के प्रति कुछ कहना ही नहीं है। यहाँ स्वयं अनसूया ही कहती हैं—

"सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥"[३]

सीता के पातिव्रत धर्म की कठिन परीक्षा उसके अपहरण-काल में राम से वियुक्त होने पर होती है। रावण द्वारा अपहृत होने पर प्रियतम राम के प्रति किया गया सीता का करुण-क्रन्दन उनकी पतिनिष्ठा का परिचायक है--

"हा राम ! हा रमण ! हा जगदेकवीर !
हा नाथ ! हा रघुपते ! किमुपेक्षसेमाम् ॥"[४]

प्रसन्नराघव की ही भाँति रामचरितमानस में भी सीता अपने प्राणपति के लिए अनेक प्रकार से विलाप करती है—

"हा जग एक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥

× × ×

बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥"[५]

---

१. साकेत चतुर्थ सर्ग, पृ० ११६-१२०
२. वा० रा०, २/११८/३-४
३. मानस, ३/५ (ख)
४. प्रसन्नराघव, अंक ५, पृ० २६२ (चौखम्बा प्रकाशन)
५. मानस, ३/२६/१-२

बाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण सीता को लंका ले जाकर प्रीति,[१] प्रलोभन[२] एवं भय[३] दिखलाकर वशीभूत करना चाहता है तथा उसके यह कहने पर कि तुम मेरी भार्या बन जाओ, पातिव्रत के इस मोह को छोड़ो। मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा।[४] किन्तु पतिपरायणा जानकी किसी प्रकार विचलित नहीं होती। राक्षसियों द्वारा भयभीत करने पर वह यहाँ तक कहती है कि—"मनुष्य की कन्या कभी राक्षस की भार्या नहीं हो सकती। तुम्हारा जी चाहे तो तुम सब लोग मिलकर मुझे खा जाओ, परन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी"—

"न मानुषी राक्षस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि यां वचः॥"[५]

वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित सूर ने भी सीता के अविचल पातिव्रतरूप के दर्शन किये हैं। रावण के यह कहने पर कि—

"जनक सुता तू समुझि चित मैं, हरषि मोहि तन हेरी।
चौदह सहस किंनरी जेती, सब दासी हैं तेरी॥
× × ×
छाँड़ि राम तपसी के मोहै, उठि आभूषन साजु।
चौदह सहस तिया में तोकों, पटा बधाऊँ आजु॥"[६]

वह रावण को फटकारती हुई कहती है :—

"पापी जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी।
सिंह को भच्छ सृगाल न पावै, हौं समरथ की नारी॥"[७]"

राक्षसियों के समझाने पर कि—

"अब रावन घर बिलसि सहज सुख, कह्यो हमारौ मानि।"[८]

सती सीता झुँझलाकर अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करती है—

१. वा० रा०, ५/२०/११-१५
२. तदेव, ५/२०/१६-१८
३. तदेव, ५/२२/८; ५/२४/२७
४. तदेव, ५/२०/१६
५. तदेव, ५/२५/३
६. सूर रामचरितावली, ५/७० (गीता प्रेस, गोरखपुर)
७. तदेव, ५/७०
८. सूर रामचरितावली, ५/६८ (गीताप्रेस, गोरखपुर)

"तब रावन कौ बदन देखिहौं, दस सिर स्रोनित न्हाइ ।
कै तन देउँ मध्य पावक के, कै बिलसैं रघुराइ ।।"[१]

इसी प्रकार तुलसी की सीता को भी रावण भय एवं प्रीति दिखाकर थक जाता है किन्तु सीता अपने पातिव्रत-धर्म पर दृढ़ है—

"हारि परा खल बहु विधि, भय अरु प्रीति देखाइ ।
तब असोक पादपतर, राखिसि जतन कराइ ।।"[२]

प्रसन्नराघव में रावण सीता को पातिव्रत-धर्म से डिगाने के लिए जब यह कहता है कि, "हे सुन्दरि ! रावण तुम्हारे लिए मन्दोदरी को भी छोड़ता है, आनन्द-पूर्ण इस राज्य को भी तुम्हारे चरण-कमल के नीचे रख देता है।"[३] इस पर सती सीता का तेज प्रज्ज्वलित हो उठता है, तब रावण से कहती है कि क्या जुगुनू की चमक से भी कमलिनी खिलती है—

"अपि खद्योतभासापि समुन्मीलति पद्मिनी ।"[४]

प्रसन्नराघव के उक्त स्थल से तुलसी पूर्णतः प्रभावित हैं। यहाँ प्रसन्नराघव-कार के ही शब्दों में मानसकार भी कहता है—

"कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ।।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ।।
तृन धरि ओट कहत बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ।।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ।।"[५]

क्रुद्ध रावण के यह कहने पर कि तूने मेरा अपमान किया है, मैं तेरा सिर कठोर कृपाण से काट डालूँगा अन्यथा मेरे बाहुओं का आलिंगन करो। सीता अविचल भाव से कहती है कि हे राक्षस, तू चुप रह, चुप रह। व्यर्थ बकवाद से क्या लाभ है? ऐ रावण ! नीलकमल के समान श्यामराघव के बाहुदण्ड से अथवा करुणाशून्य तेरी तलवार से भिन्न कोई भी मेरी कण्ठसीमा का स्पर्श नहीं कर सकता है।

---

१. सूर रामचरितावली, ५/६८
२. मानस, ३/२६ (क)
३. प्रसन्नराघव, ६/२८ (चौखम्बा प्रकाशन)
४. तदेव,६/२८, पृ० ३३२
५. मानस, ५/६/२-३

"विरम विरम रक्षः किं मुधाजल्पितेन,
स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः ।
रघुपति भुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते –
र्दशमुख ! भवदीयनिष्कृपाद्वा कृपाणात् ।"[१]

प्रसन्नराघव के इन्हीं भावों से भावित तुलसी की सीता का भी दृढ़ निश्चय है कि—

"स्याम सरोज दाम सम सुंदर । प्रभु भुज करिकर सम दसकंधर ।।
सो भुज कंठ कि तब असि घोरा । सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ।।"[२]

वह अपने पातिव्रतधर्म की रक्षा हेतु चन्द्रहास खड्ग से विनय करती है कि रामचन्द्र के वियोगानल से उत्पन्न मेरे सन्ताप को तुम अपनी शीतल धार से काटकर मिटा दो—

"चन्द्रहास ! हर मे परितापं । रामचंद्र विरहानलजातम् ।।
त्वं हि कान्तिजित मौक्तिक चूर्णं । धारया बहसि शीतलमम्भः ।।"[३]

प्रसन्नराघव के उपर्युक्त शब्दों में ही मानस की सीता भी यही अनुनय करती है—

"चंद्रहास हरु मम परितापं, । रघुपति विरह अनल संजातं ।।
सीतल निसित बहसि बर धारा । कह सीता हरु मम दुख भारा ।।"[४]

यही नहीं, वह अपने अस्तित्व को मिटाकर भी प्राणपण से अपने सतीत्व की रक्षा करने को समुद्यत है । वह त्रिजटा से अग्नि की याचना करती हुई भस्म हो जाने का संकल्प करती है—

"सर्वमेवानल प्रवेशेन व्यवसितास्मि, तदुपनय मेऽङ्गारखण्डकम् ।।[५]

इसी प्रकार तुलसी की सीता भी यही मन्तव्य प्रकट करती है—

"आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी । सुनै को स्रवन सूल सम बानी ।।[६]

---

१. प्रसन्नराघव, ६/३०, पृ० ३३४ (चौखम्बा प्रकाशन)
२. मानस, ५/१०/२
३. प्रसन्न०, ६/३३
४. मानस, ५/१०/३
५. प्रसन्न०, षष्ठोऽङ्कः, श्लोक ३४ से आगे ।
६. मानस, ५/१२/२

"रामचरित चिन्तामणि" में भी सीता को पातिव्रत-धर्म की रक्षा में मृत्यु से भी भय नहीं है। वह रावण को निर्भीकतापूर्वक उत्तर देती है—

"भारत की मैं पतिव्रता हूँ सुन दशकन्धर।
नश्वर है जब देह मृत्यु का फिर क्या है डर ?"[१]

त्रिजटा से अग्नि न मिलने पर वह अग्नितुल्य रक्तिम नूतन किसलयों को देखकर अशोक-वृक्ष से अग्निकण की याचना करती है :—

"कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोकवनस्पते।
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु॥"[२]

प्रसन्नराघव के उपर्युक्त भावों से प्रभावित मानस की सीता भी कहती है—

"सुनहि विनय मम विटप असोका। सत्यनाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥"[३]

केशवकृत रामचंद्रिका में भी सीता अशोकवृक्ष से अग्नि की याचना करती है—

"देखि-देखि के अशोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यो॥"[४]

हनुमान ने भी सर्वप्रथम अशोकवाटिका में अवस्थित राम का एकाग्र मन से चिन्तन करनेवाली सीता के पातिव्रत्यरूप के ही दर्शन किये। वाल्मीकि रामायण में वे सीता के सतीत्व की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "ये धर्मशील मिथिला नरेश जनक की पुत्री सीता पातिव्रत-धर्म में अत्यन्त दृढ़ हैं।"[५] वे सोचते हैं कि सीता का मन रघुनाथ में तथा राम का मन इनमें लगा हुआ है, इसी कारण यह तथा धर्मात्मा राम जीवित हैं। इनके मुहूर्तमात्र जीवन का भी यही कारण है—

"अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम्।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति॥"[६]

---

१. रामचरित चिन्तामणि, सर्ग, १५, पृ० २१६
२. प्रसन्न०, ६/३५
३. मानस, ५/१३/५-६
४. रा० चं०, १३/६५
५. वा० रा०, ५/१६/१५
६. तदेव, ५/१५/५२

इसी प्रकार मानस में भी श्रीरामचरणों में लीन सीता को देखकर हनुमान शोकाभिभूत हो उठते हैं—

"निज पद नयन दिएँ मन, रामपद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ।।"[१]

हिन्दी के आधुनिक काव्यकार पन्त की सीता प्रियतम राम के ध्यान में इतनी तल्लीन है कि उसमें द्वैतभाव रह ही नहीं गया है—

"भूल गई जो तन, अपनापन, जिसके मन का बना राम तन ।
रूप गन्ध रस की मृत रज को, वह ज्योतित कर न उठाएगी ।।"[२]

पतिवियोग से अत्यन्त दीन, दुर्बल एवं मलिनबसना सीता रामनाम की ही रट लगाये हुए है । उसके बालों की जुड़कर एक वेणी हो गई है—

"तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थितां जनकनन्दिनीम् ।
ददर्श हनुमान् वीरो देवताभिव भूतले ।।
एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ।"[३]

इसी प्रकार 'रघुवीर चरित' में भी—

"धृतैकवेणीं भुवि केवलायां, निषेदुषीं क्षेमकृतोत्तरीयाम् ।"[४]

अध्यात्म रामायण एवं रघुवीर चरित से प्रभावित तुलसी ने भी सती सीता की उसी दयनीय स्थिति का चित्रण किया है—

"कृस तनु सीस जटा एक बेनी । जपति हृदयँ रघुपति गुन स्रेनी ।।"[५]

सीता को अत्यन्त विरहकातर एवं दुखी देख कर वाल्मीकि रामायण में हनुमान जब यह कहते हैं कि आप मेरी पीठ पर बैठ जाइए, मैं आज ही आपको इस राक्षसजनित दुःख से मुक्त कर दूँगा ।"[६] उनकी इन बातों से सीता संकोच में पड़ जाती है, जब वे कहते हैं कि मुझमें रावण सहित सम्पूर्ण लंका को उठा ले जाने की शक्ति है ।[७] यद्यपि वह इस समय घोर विपत्ति में पड़ी हुई है । उसे अपने स्वामी से मिलने की उत्कंठा भी है; साथ ही मातृभाव रखने वाले हनुमान के प्रति दृढ़ आस्था

---

१. मानस ५/८
२. स्वर्णकिरण (अशोक बन), पृ० १५७
३. अध्यात्म०, ५/२/८-९
४. रघुवीर चरित, १२/४४
५. मानस, ५/८/४
६. वा० रा०, ५/३७/२१
७. तदेव, ५/३७/३९

भी है किन्तु पातिव्रतधर्म की रक्षा की दृष्टि से सीता किसी भी पर-पुरुष का स्पर्श नहीं करना चाहती । वह अत्यन्त संकोच के साथ हनुमान से कहती है—"वानर-श्रेष्ठ ! पतिभक्ति की ओर दृष्टि रखकर मैं श्रीराम के सिवा दूसरे किसी पुरुष के शरीर का स्वेच्छा से स्पर्श करना नहीं चाहती । रावण के शरीर से जो मेरा स्पर्श हो गया है, वह तो उसके बलात्कार के कारण हुआ है । उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और विवश थी ।"[१]

वाल्मीकि रामायण के उक्त भावों से सूरदास पूर्णतः प्रभावित हैं । यहाँ भी हनुमान सीता से अपनी पीठ पर बैठने का आग्रह करते हैं —

"चढ़ि मम जठर पानि ग्रीवा गहि उपै अकासहिं जाऊँ ।
जैसे सोध न लहै निसाचर, बीच बिलम्ब न लाऊं ।।"[२]

इस पर सूर की सीता भी वाल्मीकि रामायण की ही भाँति हनुमान से स्पष्ट कहती हैं कि पातिव्रतधर्म के पालनार्थ वह किसी भी स्थिति में परपुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती—

"श्री रघुनाथ–पातिव्रत मेरे, सुनौ बच्छ सति भाऊँ ।
हम अबला पर-पुरुष पीठ पर कैसे धरिये पाऊँ ।।"[३]

परन्तु तुलसी ने वाल्मीकि रायायण से प्रेरित होते हुए भी सीता को इस प्रकार संकोच में पड़ने से बचा लिया है । यहाँ हनुमान स्वयं ही कहते हैं कि मैं रघुनाथ की कृपा से आज ही शत्रु का तिरस्कार करके हठपूर्वक तुम्हें ले जा सकता हूँ किन्तु स्वामी की आज्ञा-भंग करने से डरता हूँ और इससे देवकार्य में भी बाधा आती है—

"निदरि अरि, रघुवीर-बल ले जाउँ जौ हरि आज ।
डरौं आयसु-भंग तें, अरु बिगरिहै सुरकाज ।।"[४]

तथा

"अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ।।"[५]

---

१. वा० रा०,५/३७/६२-६३

२. सूर रामचरितावली, ५/१०२ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

३. तदेव, ५/१०२

४. गीतावली, ५/६

५. मानस, ५/१६/२

केशवकृत रामचन्द्रिका में भी लंका से वापस लौटते हुए हनुमान के मन में यही कसक है कि मैं वीर होते हुए भी सीता को न ला सका, परन्तु वे विवश हैं। उन्हें ज्ञात है कि सीता के शरीर का पर-पुरुष द्वारा स्पर्श सम्भव नहीं है—

"सीता न ल्याये बीर, मन मांझ उपजति पीर।
आनौ सु कौन उपाय, परपुरुष छीवै काय ॥"[१]

परन्तु तुलसी की भाँति साकेतकार ने हनुमान को किसी संकोचपूर्ण स्थिति में नहीं डाला है। यहाँ सीता ही सतर्क हैं। उन्हें हनुमान द्वारा चोरी से ले जाना स्वीकार नहीं है—

"मैंने कहा—अम्ब कहिए तो अभी आपको ले जाऊँ।
बोलीं वे—"क्या चोरी-चोरी मैं अपने प्रभु को पाऊँ ॥"[२]

पति की वियोगाग्नि से संतप्त सीता इतनी कृशकाय हो गई है कि उसके जीवनधारण की कोई आशा अवशिष्ट नहीं है। उस सती की दुर्बलता इतनी बढ़ गई है कि कनगुरी (कनिष्ठिका) की अँगूठी अब हाथ का कंगन बन गई है—

"अब जीवन कै हैं कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होइ ॥"[३]

तुलसी ने उक्त भाव थोड़े परिवर्तन के साथ हनुमन्नाटक से ग्रहण किये हैं। हनुमन्नाटक में हनुमान सीता से वियोगी राम की दुर्बलता का चित्रण करते हुए कहते हैं कि, "जनककुमारी ! इस मुद्रिका को तुम अब दूसरे नाम से पुकारा करो, क्योंकि तुम्हारे विरह में श्रीराम ने चिरकाल से इसे कंकण का पद दे रखा है —

"एना व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना।
रामस्त्वद्विरहेण कङ्कणपदं ह्यस्ये चिरं दत्तवान ॥"[४]

परन्तु केशव ने हनुमन्नाटक की भाँति ही रामचन्द्रिका में अँगूठी के ब्याज से वियोगी राम की दुर्बलता का वर्णन किया है। मुद्रिका द्वारा सीता को कुछ उत्तर न मिलने पर हनुमान कहते हैं—

"तुम पूँछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम ॥"[५]

---

१. रा० चं०, १४/१५
२. साकेत, एकादश सर्ग, पृ० ४३४
३. तुलसी, बरवैरामायण, सुंदरकांड, ३८
४. हनुन्नाटक, ६/१६
५. रा० चं०, १३/८७

इस स्थल पर तुलसी और केशव ने हनुमन्नाटक से प्रेरणा ग्रहण करके सीता-मुद्रिका संवाद का सविस्तार वर्णन किया है।[1]

हनुमन्नाटक में पति-अनुरक्ता सीता राम के प्रति संदेश देते हुए हनुमान से कहती है कि, "इस समय चन्द्रमा मेरे लिए सूर्य-रश्मियों के समान, कमल अग्निकणों के समान, कपूर वज्र के समान, चन्द्रकला बिजली के समान, वायु वाड़वाग्नि सदृश और चन्दन अग्नि के समान प्रतीत होता है।[2] इन्हीं भावों में भावित तुलसी की सीता भी कहती हैं :—

"डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम॥"[3]

हनुमन्नाटक में वर्णित सीता के उपर्युक्त सन्देश को मानसकार ने राम का सन्देश सीता के प्रति बना दिया है। हनुमन्नाटक के भावों से पूर्ण साम्य रखते हुए यहाँ हनुमान सीता को सन्देश सुनाते हैं—

"कहेउ राम वियोग तब सीता। मो कहुँ सकल भए विपरीता॥
नवतरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥
कुबलय विपिन कुन्त बन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥"[4]

इसी प्रकार सूर ने भी विरहानल-सन्तप्त सीता का चित्र प्रस्तुत किया है। वह हनुमान को सन्देशा देते हुए कहती है कि जैसे दावाग्नि वृक्षों एवं लताओं को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार प्रभु के वियोग का संताप मेरे शरीर को दग्ध कर रहा है। अब प्राण निकलने ही वाले हैं—

"विरह ताप तन अधिक जरावत, जैसे दव द्रुम-बेली।
सूरदास प्रभु बेगि मिलाओ, प्रान जात हैं खेली॥"[5]

सीता की अग्नि-परीक्षा वस्तुतः उसके सतीत्व के उज्ज्वल-पक्ष की अलौकिक एवं महत्वपूर्ण घटना है। लंका-विजयोपरान्त वाल्मीकि रामायण में श्रीराम अपने

---

१. (अ) हनुमन्नाटक, ६/१६,
   (ब) गीतावली, ५/३,४
   (स) रा० चं०, १३/७७-८७
२. हनुमन्नाटक, ६/१६
३. बरवैरामायण।
४. मानस, ५/१५/१-२
५. सूर रामचरितावली, ५/६० (गीता प्रेस, गोरखपुर)

समक्ष उपस्थित सीता के चरित पर सन्देह प्रकट करते हुए कहते हैं कि, "अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिए मनुष्य का जो कर्त्तव्य है, वह सब मैंने अपनी मानरक्षा की अभिलाषा से रावण का वध करके पूर्ण किया।...अतः जनककुमारी ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। मैं अपनी ओर से तुम्हें अनुमति देता हूँ। भद्रे ! ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली हैं। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही स्त्री को केवल इस लाभि से कि यह मेरे साथ बहुत दिनों तक रह कर सौहार्द्र स्थापित कर चुका है, मन से भी ग्रहण कर सकेगा। रावण तुम्हें गोद में उठाकर ले गया और तुम पर अपनी दूषित दृष्टि डाल चुका है, ऐसी दशा में अपने कुल को महान बताता हुआ मैं फिर तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ। जिस उद्देश्य से मैंने तुम्हें जीता था, वह सिद्ध हो गया। अब मेरी तुम्हारे प्रति ममता या आसक्ति नहीं है; अतः तुम जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो।"[१]

प्रियतम राम के इन वाग्वाणों से व्यथित सीता ने करुण-क्रन्दन करते हुए हृदयद्रावक शब्दों में कहा कि, "आप सामान्य पुरुषों की भाँति ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु एवं रूखी बातें मुझे क्यों सुना रहे हैं ? स्वामी ! आप मुझे अब जैसी समझते हैं, वैसी मैं नहीं हूँ। मैं अपने शील की शपथ करके कहती हूँ, आप मुझ पर विश्वास करें। प्रभो ! हरण करते समय रावण ने मेरे शरीर का स्पर्श अवश्य किया था परन्तु उस समय मैं विवश थी। इसके लिए तो मैं दोषी नहीं ठहरायी जा सकती। मेरा हृदय मेरे अधीन है, वह सदा आप ही में लगा रहता है।"[२]

इसके उपरान्त वे अग्नि को साक्षी देकर अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना करती हैं कि "यदि मेरा हृदय कभी एक क्षण के लिए भी श्रीरघुनाथ से दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें। मेरा चरित्र शुद्ध है, फिर भी राघव मुझे दूषित समझ रहे हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलंक होऊँ तो सम्पूर्ण जगत के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें"—

> यथा मै हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
> तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥
> यथा मां शुद्ध चारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
> तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥"[३]

---

१. वा० रा०, ६/११५/१३, १८-२१

२. तदेव, ६/११६/५, ६, ८, ९

३. तदेव, ६/११६/२५-२६

इसी प्रकार हनुमन्नाटक में जब राम कहते हैं कि सीता यद्यपि पतिव्रता है किन्तु चिरकाल तक पर-पुरुष के घर रही है; अतएव मैं बिना परीक्षा के इसे स्वीकार नहीं कर सकता।[1] तब जानकी वहाँ उपस्थित समस्त जनसमुदाय के समक्ष शपथ लेती हुई अग्निदेव से कहती है कि, "यदि मेरे मन में, मेरे वचन में, जागते या सुप्तावस्था में भी श्रीराघवेन्द्र से अन्य किसी पुरुष में पतिभाव हुआ हो तो आप मेरे इस शरीर को जला डालिए, क्योंकि आप सबको पवित्र करनेवाले एवं सत्कर्मों के साक्षी हैं।"[२] यह कहकर सीता प्रज्ज्वलित अग्नि में कूद पड़ी तब ब्रह्मा ने उसे शुद्ध कहकर राम को समर्पित किया।[३]

परन्तु तुलसी ने इस घटना को बड़े कौशल से नया मोड़ दे दिया है। जगज्जननी सीता में उनका मातृभाव होने के कारण उनके लिए उक्त दारुण दृश्य असह्य था; अतएव उन्होंने उसका संकेतमात्र यह कहकर कर दिया कि :—

"तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब लागीं, करैं बिषाद॥"[४]

वस्तुतः जगदम्बा सीता को इस विषम एवं दारुण परिस्थिति से बचाने के लिए तुलसी ने प्रारम्भ में ही माया-सीता की कल्पना कर ली थी।[५] अतएव राम के दुर्वचन एवं कटुवाक्य माया-सीता को सुनने पड़े, वास्तविक सीता को नहीं। साथ ही वास्तविक सीता को प्रकट करने के लिए माया-सीता का पूर्वानुसार अग्नि में प्रवेश आवश्यक भी था।

वाल्मीकि रामायण एवं हनुमन्नाटक की भाँति मानस में भी सीता अपनी पवित्रता के साक्ष्य में अग्निदेव से प्रार्थना करती है—

---

१. हनुमन्नाटक, १४/५३

२. तदेव, १४/५४

३. तदेव, १४/५५

४ मानस, ६/१०८

५. "तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी॥"
—तदेव, ३/२४/१-२

"जौ मन वच क्रम मम उर माहीं । तजि रघुवीर आन गति नाहीं ।।
तौ कृसानु सब के गति जाना । मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ।।"[१]

फलतः सीता की निष्कलुषता को प्रमाणित करते हुए अग्निदेव ने प्रकट होकर जगत्प्रसिद्ध सीता श्रीराम को समर्पित कर दी—

"धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो ।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ।।"[२]

मानस में अग्निदेव द्वारा सीता का यह समर्पण वाल्मीकि रामायण की ही छाया में हुआ है जहाँ अग्निदेव सीता को समर्पित करते हुए श्रीराम से कहते हैं कि, "श्रीराम ! यह आपकी धर्मपत्नी विदेह-राजकुमारी सीता है। इसमें कोई पाप या दोष नहीं है।"[३]

सूर ने भी इसी पद्धति पर सीता की अग्नि-परीक्षा का प्रसंग केवल एक पद में चित्रित किया है। यहाँ भी साक्षात् अग्निदेव सीता को गोद में उठाकर श्रीराम के पास आकर कहते हैं कि सीता सर्वथा निष्कलुष है।[४]

इसी प्रकार केशवकृत रामचंद्रिका में भी अग्निदेव सीता के सतीत्व एवं शुद्धता की साक्षी देते हुए श्रीराम से कहते हैं कि—

---

१. मानस, ६/१०६/४

२. तदेव, ६/दो० १०८ के आगे का छंद ।

३. वा० रा०, ६/११८/४-५

४. "लछिमन ! रचौ हुतासन भाई ।
यह सुनि हनूमान दुख पायौ मोपै लख्यौ न जाई ।।
आसन एक हुतासन बैठी, ज्यों कुन्दन अरुनाई ।
जैसे रवि एक पल घन भीतर, बिनु मारुत दुरि जाई ।।
लै उछंग उपसंग हुतासन, निहकलंक रघुराई ।
लई विमान चढ़ाइ जानकी, कोटि मदन छवि छाई ।।"
—सूर रामचरितावली, ६/१८६ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

"श्रीरामचन्द्र यह संतत शुद्ध सीता।
ब्रह्मादिदेव सब गावत शुभ्र गीता ।।
हूजै कृपाल गहिजै जनकात्मजाया।
योगीश-ईश तुम हो यह योगमाया ।।"[१]

परन्तु साकेत की सीता के सतीत्व के विषय में किसी प्रकार की द्विविधात्मक या संशयात्मक स्थिति नहीं है। वह पतिवियुक्ता होने पर भी सात्विकी वृत्ति-पुनीता शुद्धा-चरण-सम्पन्न एवं निष्कलुष है।[२] यही कारण है कि मैथिलीशरण गुप्त ने अग्नि-परीक्षा का संकेतमात्र किया है। अग्निदेव के स्थान पर यहाँ सरमा ही सीता की शुद्धि का साक्ष्य देती है—

"तुम सोने की सती मूर्ति, शम दम की दीक्षा।
दी है अपनी यहाँ जिन्होंने अग्नि-परीक्षा ।।"[३]

गोविन्द रामायण में राम सीता पर किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं करते, वहाँ वे उनसे केवल यही कहते हैं कि पहले तुम अग्नि में प्रवेश करो, तभी शुद्ध हो सकोगी। सीता उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके अग्नि में प्रवेश करती हैं। यहाँ लक्ष्मण के स्थान पर वानर लोग ही चिता की रचना करते हैं।[४]

युद्धोपरान्त लंका से अयोध्या-प्रत्यावर्तन का समय सीता के जीवन का सर्वाधिक सुखदकाल कहा जा सकता है। सीता अपने प्राणपति राम के साथ रमण करती हुई देवदुर्लभ आनन्दोपभोग किया करती थी।[५] वह देवार्चन आदि कर्मों से निवृत्त हो पति सेवा के साथ ही अपनी सभी सासुओं की समान रूप से सेवा-सुश्रूषा करती थी—

"सीतापि देवकार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि वै।
श्वश्रूणामकरोत् पूजां सर्वासामविशेषतः ।।"[६]

---

१. रा० चं०, २०/१३

२. साकेत, सर्ग, १२, पृ० ४८८, ४९१

३. तदेव, सर्ग १२, पृ० ४८९

४. "धंसो आग मद्धं। तबै होहि सुद्धं ।।
लई मान सीसं। रच्यो पाव कीसं ।।"
—गोविन्द रामायण, सीता मिलन, पृ० १८३

५. वा० रा०, ७/४२/२३-२७

६. तदेव, ७/४२/२८

यही नहीं, साध्वी सीता अपने प्रियतम का रुख परखने वाली थ। उन्होंने अपने प्रेम, आज्ञापालन, नम्रता, इंद्रियसंयम, लज्जा और भीरुता आदि गुणों से पति का मन हर लिया था—

"सीता प्रेम्णानुवृत्त्या च प्रस्रयेण दमेन च।
भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रियाभियां॥"[१]

इस प्रकार वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायणों से अनुप्रेरित होते हुए भी तुलसी ने सीता के गार्हस्थजीवन का अपेक्षाकृत अधिक सौम्य एवं आदर्शपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। सुशीलता एवं विनम्रता की मूर्ति सीता सदैव पति के अनुकूल रहती है। वह उनके चरणकमलों की सेवा में निमग्न रहती है। घर में अनेक दास-दासियों के रहने पर भी वह पति-सेवा करना अपना सौभाग्य समझती है। सीता केवल वही कार्य करती है जिससे उसके प्रियतम को सुख मिले। साथ ही कौसल्यादि सभी सासुओं की वह अभिमानरहित होकर सेवा करती है।[२]

परित्यक्ता सीता

लंका में अग्नि-परीक्षा द्वारा सबके समक्ष पवित्र एवं शुद्ध सिद्ध होने के उपरान्त भी श्रीराम ने लोकापवाद के कारण पतिव्रता सीता का परित्याग कर दिया। भरतादि भ्राताओं की इच्छा के विपरीत श्रीराम ने प्रजा की संतुष्टि हेतु उन्हें लक्ष्मण के साथ वन भेज दिया। वन में जब लक्ष्मण से सीता को ज्ञात हुआ कि निर्दोष होते हुए भी श्रीराम ने उनका परित्याग कर दिया है, उस समय उनके दुःख की कोई सीमा न रही। इस विषम एवं दारुण स्थिति में पतिव्रता सीता ने पति पर किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं किया। लक्ष्मण से केवल इतना ही कहा कि "पति-सेवा के लिए ही पहले मैंने वनवास के दुःख झेले तथा उनके साथ आश्रम में रहना पसन्द

---

१. अध्यात्म०, ७/४/३१

२. "पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील विनीता॥
जानति कृपा सिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥
जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवत सबन्हि मान मद नाहीं॥"
—मानस, ७/२४/१-४

किया था।'[1] वाल्मीकि रामायण में उन्होंने लक्ष्मण द्वारा श्रीराम के पास संदेश भेजते हुए यह मार्मिक वाणी कही—"रघुनन्दन ! आप यह बात जानते ही हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध है और सदैव आपकी भक्ति एवं हित में तत्पर रहती है। वीर ! आपने अपयश से डरकर ही मुझे त्यागा है; अतः लोगों में जो आपकी निन्दा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्त्तव्य है क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं। लक्ष्मण ! तुम महाराज से कहना कि आप धर्मपूर्वक अत्यन्त सावधान होकर पुरवासियों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा अपने भाइयों के साथ करते हैं। रघुनन्दन ! जिस प्रकार पुरवासियों के अपवाद से बचाकर रहा जा सके, उसी तरह आप रहें। स्त्री के लिए तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु हैं। इसलिए उसे प्राणों की बाजी लगाकर भी विशेषरूप से पति का प्रिय करना चाहिए।"[2]

सीता-परित्याग एवं उनके रसातल-प्रवेश के असह्य और दारुण दृश्य की कल्पना से ही भक्तहृदय तुलसी ने अपने मानस में उक्त प्रसंग को स्थान ही नहीं दिया। गीतावली का यत्किंचित् वर्णन उनका जगदम्बा सीता के प्रति प्रगाढ़ अनुराग, असीम ममता, करुणा एवं संवेदना का सहज परिचायक है। वाल्मीकि रामायण की उक्त भावभूमि पर ही सीता का यह सन्देश संक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक है—

'तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि।
बहुरि तिहि विधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि॥
लखनलाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि॥
सुनत सीता-वचन मोचत सकल लोचन-बारि।
वाल्मीकि न सके तुलसी सो सनेह संभारि॥'[3]

केशवकृत रामचन्द्रिका में सीता को अपने परित्याग का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता प्रत्युत वे लक्ष्मण को रोता हुआ देखकर ही मूर्च्छित हो जाती हैं। इसी स्थिति में लक्ष्मण उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। तत्पश्चात् वाल्मीकि उन्हें सचेत कर तथा सर्वथा शुद्ध समझ कर अपने साथ आश्रम पर ले जाते हैं।

---

१. "पुराहमाश्रमे वासं रामपादानुवर्तिनी।
अनुरुध्यापि सौमित्रे दुःखे च परिवर्तिनी॥"—वा० रा०, ७/४८/५

२. वा० रा०, ७/४८/१२-१७

३. गीतावली, उत्तरकांड, पद २९।

'सर्वथा गुनि शुद्ध सीतहिं ले गये मुनिराय ।
आपनी तपसानि की शुभ सिद्धि सी सुख पाय ।।'[१]

गोविन्द रामायण में सीता के प्रति किसी लोकापवाद का उल्लेख नहीं मिलता। वहाँ गर्भवती सीता वन-विहार की इच्छा प्रकट करती है तथा राम के आदेश से लक्ष्मण उसे वालमीकि-आश्रम के निकट छोड़ आते हैं ।[२] परन्तु सीता जब अपने को निर्जन वन में देखती है तो उसे संदेह होता है कि वह राम द्वारा परित्यक्ता है—

"वनं निर्जनं देख कै कै अपारं ।
वनंवास जान्यो दियो रावणारं ।।"[३]

शोकाकुल हो वह मूर्च्छित हो जाती हैं तदुपरान्त वाल्मीकि मुनि उसे अपने आश्रम में ले जाते हैं ।[४]

वाल्मीकि आश्रम में अपने मातृत्व एवं पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई सीता को अश्वमेधयज्ञ के समय जब श्रीराम अयोध्या बुलाते हैं, उस समय वाल्मीकि राजसभा में सीता को निष्कलुष बतलाते हुए यहाँ तक कह डालते हैं कि "मैंने सहस्रों वर्षों तक तप किया है, यदि मैथिली सीता दुष्ट आचरणवाली हो तो मुझे तपस्या का फल न मिले—

"बहुवर्णसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता ।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ।।"[५]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी वे सीता को निष्कलुष बतलाते हैं ।[६] इस समय भाव-विह्वल श्रीराम स्वीकार करते हैं कि, "ब्रह्मन् ! यह जानते हुए भी कि सीता सर्वथा निष्पाप है, मैंने केवल समाज के भय से इन्हें छोड़ दिया था; अतः आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें । मैं यह भी जानता हूँ कि लव-कुश मेरे ही पुत्र हैं तथापि जगत में शुद्ध प्रमाणित होने पर ही मिथलेशकुमारी में मेरा प्रेम हो सकता है ।[७]

---

१. रामचन्द्रिका, ३३/५६ ।
२. 'रह्यो सीय गर्भं सुन्यो सर्व वामं ।
करयो एम सीता पुनर्वेन रामं ।।
फिर्यो बाग बागं विदा नाथ दीजै ।
सुनो प्राण प्यारे इहै काज कीजै ।।
—गोविन्द रामायण, सीता वनवास, पृ० २०४ ।
३. गोविन्द रामायण, सीता वनवास, पृ० २०५ ।
४. तदेव, सीता वनवास, पृ० २०५ ।
५. वा० रा०, ७/९६/२० ।
६. अध्यात्मरामा।ण, ७/७/२८-३३ ।
७. वा० रा०, ७/९७/४-५ ।

इस स्थल पर सीता द्वारा की गई तीन शपथें समस्त नारी-समाज एवं पातिव्रतधर्म को युग-युग तक उत्प्रेरित एवं अनुप्राणित करती रहेंगी। उन्होंने कहा —

"यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्थये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
यथैतत् सत्ययुक्तं मे वेद्मि रामात् परंन च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥"[१]

"यदि मैंने श्रीरघुनाथ को छोड़कर किसी दूसरे पुरुष का कभी मन से भी चिन्तन न किया हो तो हे पृथ्वी देवी! मुझे अपनी गोद में स्थान दे। यदि मैंने मन, वाणी और क्रिया के द्वारा केवल राम का ही पूजन किया हो तो हे माधवी देवी! मुझे अपने में ले ले। श्रीराम को छोड़कर मैं किसी दूसरे पुरुष को नहीं जानती, मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती पृथ्वी देवी! मुझे अपनी गोद में स्थान दे।"

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी वे कहती हैं कि "यदि मैं श्रीराम के अतिरिक्त अन्य पुरुष को मन से भी चिन्तन नहीं करती तो पृथ्वी देवी ? मुझे आश्रय दें।"[२]

पृथ्वी भी सीता की इस ग्लानियुक्त मार्मिक वाणी को सहन न कर पायी। उस समय एक अलौकिक घटना घटित हुई। सहसा पृथ्वी विदीर्ण हुई। एक दिव्य-सिंहासन पर भू-देवी प्रकट हुई तथा समस्त जन-समुदाय के समक्ष सीता को अपनी गोद में बैठाकर रसातल में प्रवेश कर गयी।

वाल्मीकि की भाँति गोविन्द रामायण में भी सीता पृथ्वी में प्रवेश करती है। परन्तु वहाँ दीवार पर उसके द्वारा रावण का चित्र बनाने के कारण राम उस पर शंका करते हैं। ग्लानियुक्त सीता पति का सन्देह दूर करने के लिए पृथ्वी से प्रार्थना करती है; फलतः पृथ्वी फट जाती है और वह उसी में समाहित हो जाती है—

---

१. वा० रा०, ७/९७/१४-१६

२. अध्यात्म०, ७/७/४०

"जउ मेरे मन वच क्रमन, हृदय बसत रघुराय।
पृथवि पैंड मुहिं दीजिए, लीजै मोहिं मिलाय।।
सुनत वचन धरती फट गई। लोप सिया तिहि भीतर भई।।"[१]

सीता द्वारा रावण के चित्र बनाने की प्रेरणा गोविन्द रामायणकार को आनन्द रामायण से मिली है। गोविन्द रामायण में स्त्रियों के कहने से सीता रावण का चित्र बनाती है[२] किन्तु आनन्द रामायण में कूटनीतिज्ञ कैकेयी उसे दीवार पर रावण का चित्र बनाने को कहती है; परन्तु सीता रावण के अँगूठे का ही चित्र बना पाती है। सीता के चले जाने पर रावण का सम्पूर्ण चित्र कैकेयी स्वयं बना देती है तथा राम से उसे सीता द्वारा बनाया जाना बतलाती है। इस पर राम क्रुद्ध हो सीता का परित्याग कर देते हैं।[३]

परन्तु अधिकांश हिन्दी-रामकथाकार इस दारुण दृश्य के वर्णन में मौन रहे हैं। केशव ने इस प्रसंग को दुःखान्त होने से बचा लिया है। उनकी सीता को जन-समुदाय के समक्ष न कोई शपथ ही लेनी पड़ती है और न वे रसातल में ही प्रवेश करती हैं। युद्ध-क्षेत्र में ही मुनि वाल्मीकि दोनों पुत्रों सहित सीता को श्रीराम के चरणों में डाल देते हैं।[४] इस प्रकार प्रियतम राम के साथ वे अवध आ जाती हैं।

केशवकृत रामचन्द्रिका का यह सुखान्त दृश्य वस्तुतः पद्मपुराण (पाताल खंड) की कथा पर आधारित है जहाँ अन्त में राम-सीता का मिलन होता है तथा वाल्मीकि के कथन पर ही श्रीराम सीता को ग्रहण करते हैं।[५]

हरिऔधकृत बैदेही-वनवास में सीता वाल्मीकि रामायण की भाँति यद्यपि कुलपति वाल्मीकि एवं आश्रमवासियों के साथ अयोध्या आती है किन्तु उसका तिरोधान उक्त ग्रंथ की भाँति अलौकिक ढंग से नहीं होता। यहाँ उनका अवसान प्रियतम राम के चरण-कमलों का स्पर्श करके भावातिरेक की स्थिति में होता है, और वह दिव्य ज्योति बन कर स्वर्गगामिनी होती है।

---

१. गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश, पृ० २३६-३७

२. तदेव, अवध प्रवेश, पृ० २३६

३. आनन्द रामायण, जन्मकाण्डम्, ३/३७-५०

४. "जीय उठी सब सेन सभागी। केशव सोवत ते जनु जागी।।
त्यों सुत सीतहिं ले सुखकारी। राघव के मुनि पाँयन पारी।।"

—रामचन्द्रिका, १९/११

५. पद्मपुराण, पातालखंड, अध्याय १/६८।

"ज्योंही पतिप्राणा ने पति-पद-पद्म का।
स्पर्श किया निर्जीव-मूर्ति सी बन गई ।।
और हुए अतिरेक चित्त-उल्लास का।
दिव्य ज्योति में परिणत वे पल में हुईं ।।"[१]

इस प्रकार हरिऔध ने वाल्मीकि रामायण की घटनाक्रम से अनुप्रेरित होकर भी सीता के तिरोधान-प्रसंग को एक नया मोड़ देकर उसे अलौकिक से स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया है।

धार्मिक प्रवृत्ति

सीता धर्मपरायणा है। वह स्थान-स्थान पर देवाराधन एवं पूजन में तल्लीन दिखाई पड़ती है। जनकवाटिका अवस्थित चंडिका-मंदिर में गौरी की मूर्ति के समक्ष वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है—

देवि; शशधरमौलिदेहार्धधारिणि, त्रिभुवन वन गृह सुवासिनि ! नमो नमस्ते।"[२]

—हे देवि ! हे महादेव की अर्धांगिनि ! हे त्रिभुवन रूप गृह में निवास करने-वाली ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।"

प्रसन्नराघव के उक्त स्थल से प्रेरित तुलसी की सीता भी भाव-विभोर हो कुछ इसी प्रकार की विनय करती है—

"गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी ।।
जय जय जय गिरिराज किसोरी। जय महेस मुखचंद चकोरी ।।
जय गजवदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।"[३]

प्रसन्नराघव में सीता की सखी उसके लिए चंडिका से राम को वररूप में प्राप्त करने की प्रार्थना करती है कि "देवि ! सीता के दुखित होने के पूर्व ही मेरे इस मनोरथ को शीघ्र ही पूर्ण कर दीजिए—

"कान्तामिन्दुमणिदायकोमले ! कौमलेन्दुमुकुटाङ्कशायिनि !
इन्दुचारुमचिरेण विन्दतामिन्दु सुन्दरमुखी सखी मम ।।"[४]

---

१. वैदेही वनवास, ८/४०।

२ प्रसन्नराघव, अंक २, श्लोक ६ के आगे, पृ० १०३
(चौखम्दा प्रकाशन, काशी)

३. मानस, १/२३५-२-३

४. प्रसन्न०, २-१०

इसी भाव को मानसकार ने किंचित परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। यहाँ सखो के स्थान पर स्वयं सीता बड़े संकोच के साथ गौरी से राम को वररूप में प्राप्त करने की याचना करती है—

"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के ॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेही ॥"[१]

यहाँ विशेषता यह है कि सीता की प्रार्थना से द्रवित गौरी की प्रतिमा सजीव होकर उसे अभिलाषित वर भी दे देती है—

"सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहिं मन कामना तुम्हारी ॥"

तथा

"मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो ॥"[२]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में वनपथ पर गंगा पार करते हुए सीता अनेक प्रकार की मनौती मानती हुई[३] स्तुति करती है कि वन से पुनः कुशलपूर्वक लौटने पर सम्पूर्ण मनोरथों से सम्पन्न हुई मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आपकी पूजा करूँगी—

"ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता।
यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकाम समृद्धिनी ॥"[४]

यही नहीं, पुरुषसिंह श्रीराम लौटकर जब अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे तब मैं सीता, आपको मस्तक झुकाऊँगी और आपकी स्तुति करूँगी—

"सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने।
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते ॥"[५]

वाल्मीकि की भाँति अध्यात्म रामायण में भी सीता गंगा से प्रार्थना करती है कि "देवि गंगे ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। बनवास से लौटने पर मैंराम और लक्ष्मण सहित सुम्हारी पूजा करूँगी—

"देवि गङ्गे नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः।
रामेण सहिताहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥"[६]

---

१. मानस, १/२३६/२
२. मानस, १/२३६/४, छंद
३. वा० रा०, २/५२/८८-९०
४. तदेव, ३/५२/८५
५. तदेव, २/५२/८७
६. अध्यात्म०, २/६/२२

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से प्रभावित 'मानस' में भी सीता इसी प्रकार गंगा की स्तुति करती है।[1] परन्तु यहाँ विशेषता यह है कि गंगा सीता की प्रार्थना से द्रवित होकर उनकी प्रशंसा करती तथा आशीर्वाद भी देती है—

> "प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
> पूजिहि सब मन कामना, सुजसु रहिहि जग छाइ ॥"[2]

शील-संकोच एवं लज्जा का भाव

सीता वस्तुतः शील, संकोच एवं लज्जा की मूर्ति है। भारतीय नारी कुमार्यावस्था में माता-पिता के अधीन होती है। प्रसन्नराघव में जब चेटी सीता से कहती है कि माता ने तुम्हें अलंकरण के लिए शीघ्र ही राजभवन में बुलाया है तब वह न चाहते हुए भी राम का रूपदर्शन छोड़कर जनकवाटिका से माता के पास चली जाती है।[3]

प्रसन्नराघव के इस स्थल से अनुप्रेरित होते हुए भी तुलसी की सीता अपेक्षाकृत अधिक विनयी, संकोची, लज्जालु, परवश एवं धर्मभीरु दृष्टिगोचर होती है। 'मानस' में सखियाँ सीता को प्रेमविह्वल एवं परवश पाकर अत्यन्त चिन्तित हो उठती हैं और कहने लगती हैं कि बड़ी देर हो गई अब चलना चाहिए, कल इसी समय फिर आवेंगी। सीता उनकी इस गूढ़ वाणी को सुनकर लज्जा से सकुचा जाती है तथा वापस लौट जाती है।"[4]

भारतीय संस्कृति में पत्नी नारी की मर्यादा एवं लज्जा के दिग्दर्शन सीता के चरित में विशिष्ट रूप से उस समय होते हैं जब वनपथ पर ग्रामवधुएँ सीता से आदरपूर्वक पूछती हैं कि, "आर्ये ! ये नीलकमल के समान सुन्दर नेत्रवाले तुम्हारे कौन हैं ?" तब जानकी मन्द मुस्कान से विकसित कपोलोंवाले अपने मुख को झुकाते हुए अपनी शर्मीली आँखें नचाकर ही उन्हें उत्तर देती हैं—

---

१. "सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥
पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी ॥"
—मानस, २/१०३/१-२

२. मानस, २/१०३।

३. प्रसन्न०, २/२८ से आगे ; पृ० १२४ (चौखम्बा प्रकाशन, काशी)

४. मानस, १/२३३/३-४।

"पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना।
कुवलयदलनीलः कोऽमार्ये तवेति ॥
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्त नेत्रं।
मुखपवनभयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ॥"[१]

हनुमन्नाटक की भाँति ही तुलसी के मानस में भी ग्रामबालाओं के पूछने पर सीता अत्यन्त संकोच एवं लज्जा के साथ अपने चन्द्रमुख को आँचल में ढँककर तिरछे नेत्रों से प्रियतम राम की ओर संकेत करके उन्हें उत्तर देती हैं—

"कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुलि बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥
तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचित वर बरनी ॥

× × ×

बहुरि बदनु बिधु आँचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ॥"[२]

कवितावली में सीता नेत्रों के इशारे से उन्हें अपने पति से परिचय करा देती हैं—

"तिरिछे करि नैन, दै सैंन तिन्हैं समुझाइ कछु मुसुकाइ चली।"[३]

इसी प्रकार सूर के ग्रामवधू-प्रसंग में भी सीता का संकोच एवं लज्जाभाव देखने योग्य है। जब ग्रामवधूटियाँ उससे पूछती हैं कि :—

"कौन वरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारौ नाथ ?"

तब वे बड़े संकोच के साथ कहती हैं :—

"कटि-तट पट पीताम्बर काछे, धारे धनु-तूनीर।
गौर-बरन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम-सरीर ॥"[४]

विनोदप्रियता

कुछ स्थलों पर सीता के विनोदी रूप के भी दर्शन होते हैं। हनुमन्नाटक में चित्रकूट से भरत के लौटने के उपरान्त जब राम आगे बढ़ते हैं तब सीता गौतम-

---

१. हनुमन्नाटक, ३/१५।

२. मानस, २/११६/१-४।

३. कवितावली, २/२२।

४. सूर रामचरितावली, २/३२, पृ० २८ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

पत्नी अहल्या की घटना का स्मरण करके राम से विनोद में कहती हैं कि "जब गौतम ऋषि ने शाप से शिलारूप हुई अहल्या को तुम्हारे चरणकमल की धूलि के स्पर्श से पुनः धर्मपत्नी रूप में प्राप्त किया, तब विन्ध्यगिरि के ये बिखरे पत्थर भी तुम्हारे चरणस्पर्श से स्त्रियाँ बनेंगे और तब कितने ही तापसों को पत्नियाँ प्राप्त होंगी।"[१]

तुलसी हनुमन्नाटक के उक्त प्रसंग से पूर्णतः प्रभावित हैं। किन्तु उनकी सीता अपेक्षाकृत अधिक संयत एवं गम्भीर हैं; अतएव उन्होंने उक्त बातें सीता के मुख से न कहलवाकर स्वयं मुनियों के मुख से कहलाई हैं—

विधि के बासी उदासी तपी ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिवृंद सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखीं, परसें पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुनाकरि कानन को पगु धारे॥"[२]

परन्तु तुलसी की सीता का विनोदीरूप भूला नहीं। उन्होंने 'मानस' में उसके उपयुक्त स्थल ढूँढ़ ही लिये। जनक की रंगशाला में जब सखियाँ सीता से पति के चरण-स्पर्श करने को कहती हैं तब वह गौतम पत्नी अहल्या की सद्गति का स्मरण करके उनके पैर नहीं छूती है क्योंकि वह श्रीराम से वियुक्त होकर सद्गति नहीं प्राप्त करना चाहती—

"सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥
गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुवंसमनि प्रीति, अलौकिक जानि॥"[३]

इसी प्रकार हनुमन्नाटक के दूसरे स्थल पर वनवास के समय नौका द्वारा नदी पार करते हुए सीता श्रीराम से कहती है कि, "गौतम ऋषि के शाप से पाषाण शरीरधारी अहल्या-सदृश यह नौका भी यदि शापग्रस्त कोई मुनि, पत्नी हो तो वह आपके चरण-स्पर्श द्वारा मुनि पत्नी बनकर चिरकाल तक हमें सुख देने वाली हो जाय।"[४]

---

१. "पदकमल रजोभिर्मुक्त पाषाणदेहा—
मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम्।
त्वयि चरित विशीर्णग्राव विन्ध्याद्रिपादे।
कति-कति भवितारस्तापसा दारवन्तः॥" —हनु०, ३/१६

२. कवितावली, २/२८।

३. मानस, १/२६५/४ से दो० २६५ तक।

४. हनुमन्नाटक, ३/२०

यहाँ भी तुलसी ने जगदम्बा सीता द्वारा उक्त विनोद नहीं करवाया। किन्तु हनुमन्नाटक का चरण-धूलि विषयक उक्त परिहास उन्हें इतना रुचिकर लगा कि उसी से अनुप्रेरित उन्होंने केवट-प्रसंग के अन्तर्गत ठीक वे ही भाव अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किये हैं।[१]

निर्भयता

वाल्मीकि रामायण में अपहरण के समय रावण अपना परिचय देता हुआ कहता है कि "सीते ! जिसके नाम से देवता, असुर एवं मनुष्यों सहित तीनों लोक थर्रा उठते हैं—मैं वही राक्षसराज रावण हूँ।"[२] उस समय सीता अत्यन्त दृढ़ता एवं निर्भयता से रावण को फटकारती है कि—

"त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिदृच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥"[३]

"तू सियार है और मैं सिंहिनी हूँ। मैं तेरे लिए सर्वथा दुर्लभ हूँ। अरे ! जैसे कोई सूर्य की प्रभा पर हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकता।"

यही नहीं, वह वीर क्षत्राणी रावण को यह भी बतला देती है कि "श्रीराम और तुझमें उतना ही अन्तर है जितना वन में रहने वाले सिंह और सियार में, समुद्र और छोटी नदी में, अमृत और कांजी में होता है।"[४]

वाल्मीकि से प्रभावित होने पर भी तुलसी की सीता में स्त्री-सुलभ भीरुता के भी दर्शन होते हैं। रावण जब वास्तविक रूप दिखलाकर अपना नाम बतलाता है तब पहले वह भयभीत हो जाती है, फिर साहस बटोरकर उसे श्रीराम के आ जाने का भय दिखलाती है—

"तब रावण निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥"[५]

---

१. (अ) मानस, २/१००/२ से दो० १०० तक।
(ब) कवितावली, २/६-८

२. वा० रा०, ३/४७/२६

३. तदेव, ३/४७/३७

४. तदेव, ३/४७/४५

५. मानस, ३/२८/७

और यहाँ भी वाल्मीकि रामायण की भाँति वह कहती है कि जिस प्रकार सिंहिनी को एक तुच्छ खरगोश प्राप्त करने की अभिलाषा करता है, उसी प्रकार ऐ राक्षसराज ! मुझे प्राप्त करने की इच्छा करके तू वास्तव में मृत्यु के वश में हो गया है—

"जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा । भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥"[१]

परन्तु साकेत की सीता 'मानस' की सीता से भी अधिक भीरु एवं परवश है । उसमें वाल्मीकि की सीता की भाँति रावण को ललकारने का साहस नहीं है । बाज पक्षी जैसे कपोती को चंगुल में दबोच लेता है उसी प्रकार रावण उसे दबोचकर ले गया—

"शून्याश्रम से इधर दशानन, मानो श्येन कपोती को ।
हर ले चला विदेह सुता को, भय से अबला रोती को ॥"[२]

लंका ले जाकर जब रावण सीता से अपनी भार्या बन जाने का आग्रह करता है[३] तथा कहता है कि तुम मेरे अन्तःपुर की सभी रानियों की स्वामिनी बन जाओ[४] तब तिनके की ओट करके तेजस्विनी सीता रावण से कहती है कि तुम मेरी ओर से अपना मन हटा लो और अपनी ही पत्नियों पर प्रेम करो—

"तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ।
निर्वर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ॥"[५]

यही नहीं वह उसे फटकारती हुई कहती है कि ऐ राक्षसाधम दशानन ! राम और लक्ष्मण मायामृग मारने के लिए बन में गये हुए थे उस समय तूने सूना आश्रम पाकर मेरा अपहरण किया था—

"आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाधम ॥"[६]

---

१. मानस, ३/२८/८

२. साकेत, एकादश सर्ग, पृ० ४२४

३. वा० रा०, ५/२०/१६

४. तदेव, ५/२०/३१

५. तदेव, ५/२१/३

६. तदेव, ५/२१/३०

वाल्मीकि की भाँति मानस में भी रावण सीता से कहता है कि "हे सुमुखि ! यह मेरा प्रण है कि यदि मेरी ओर एक बार प्रेमपूर्वक देख लो तो मन्दोदरी आदि सभी रानियों को तुम्हारी दासी बना दूँगा ।"[१] तब सती सीता तिनके की ओट करके रावण को धमकाती है कि "रामरूपी सूर्य को छोड़कर मैं कमलिनी तथा तुम जैसे जुगुनू के प्रकाश से कभी विकसित हो सकती हूँ । रे दुष्ट ! क्या तुझे रघुबीर के बाण की खबर नहीं है ? तू मुझे सूने में हर लाया है । अरे अधम ! इस कृत्य पर क्या तुझे लज्जा नहीं आती ?"[२]

वाल्मीकि रामायण के समान केशवकृत रामचन्द्रिका में भी सीता का उग्र रूप दर्शनीय है । वह एक तिनके का बीच करके रावण को निर्भयतापूर्वक उत्तर देती है कि राम से द्रोह करके तो ब्रह्मा तथा इन्द्र भी नहीं बच सकते । तुझ राक्षसाधम का तो समूल ही नष्ट हो जायेगा—

"तृन बिच यह बोली सीय गंभीर बानी ।
दशमुख सठ को तू कौन की राजधानी ।।
दसरथ सुत द्वैषी रुद्र ब्रह्मा न भासे ।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै ।।"[३]

पुनश्च वह उसकी भर्त्सना करती है कि "हे अभागे रावण ! उठ यहाँ से । तब तक भागकर अपने प्राण बचा ले जब तक मेरे शीघ्रगामी बचनरूपी सर्प तुझे डँस नहीं लेते—

"उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौ लों अभागे ।
मम वचन बिसर्पी सर्प जौ लों न लागे ।।"[४]

इस प्रकार केशव की सीता वाल्मीकि की ही भाँति अमित तेजस्विनी एवं निर्भीक रूप में प्रकट हुई है ।

वाल्मीकि के भावों से अनुप्रेरित साकेत में भी जब रावण आत्मश्लाघा करता हुआ राम को तुच्छ बतलाता और सीता को अपनी रानी बन जाने का प्रस्ताव करता है[५] तब वह तृण की ओट में तो वात नहीं करती किन्तु यह अवश्य कहती है कि—

---

१. मानस, ५/६/२-३
२. तदेव, ५/६/३-५
३. रा० चं०, १३/६१
४. तदेव, १३/६३
५. "कहा मान अब भी हे मानिनि, बन इस लंका की रानी ।
कहाँ तुच्छ वह राम ? कहाँ मैं विश्वजयी रावण मानी ।।"
—साकेत, एकादश सर्ग, पृ० ४३२ ।

"भाषण करने में भी तुझसे, लग न जाय हा ! मुझको पाप ।
शुद्ध करूँगी मैं इस तनु को, अग्नि-ताप में अपने-आप ।।"[1]

वह अत्यन्त क्रुद्ध हो रावण को चोर, नीच एवं कायर आदि कह कर भर्त्सना करती है —

"मैं वह सीता हूँ सुनु रावण, जिसका खुला स्वयम्बर था ।
वर लाया क्यों मुझे न पामर, यदि यथार्थ ही तू नर था ?
वर न सका कापुरुष, जिसे तू, उसे व्यर्थ ही हर लाया ।
अरे अभागे इस ज्वाला को, क्यों तू अपने घर लाया ।।"[2]

---

१. साकेत, एकादश सर्ग, पृ० ४३३

२. तदेव, एकादश सर्ग, पृ० ४३२-४३३ ।

चतुर्थ अध्याय

भरत

भरत का पावन चरित कलंकहीन चन्द्रतुल्य निर्मल एवं उज्ज्वल है। वे अपने त्याग, कठोर तप, अटूट धैर्य, गाम्भीर्य, विनम्र स्वभाव एवं अहेतुक राम-प्रेम के कारण प्रसिद्ध रहे हैं। सम्पूर्ण रामकाव्य-परम्परा में उनके समान निश्छल, निःश्पृह एवं शुद्ध अन्तःकरणवाला अन्य साधु-चरित प्राप्त होना दुर्लभ है। वस्तुतः उनका निष्कलुष एवं आदर्श चरित मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार दशरथनन्दन भरत कैकेयी से उत्पन्न साक्षात् भगवान विष्णु के अंशावतार थे।[1] उनका जन्म पुष्य नक्षत्र तथा मीन लग्न में हुआ था। वे सदा प्रसन्न रहते थे —

"पुण्ये जातस्तु भरतो मीन लग्ने प्रसन्नधीः।"[२]

आनन्द रामायण में 'भरणाद्भरतश्चेति' के आधार पर प्रजा का भरण-पोषण करने में निपुण होने से भरत नाम पड़ना कहा गया है।[३] इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी वर्णित है कि गुरु वसिष्ठ ने संसार का भरण-पोषण करनेवाला होने से दूसरे पुत्र का नाम भरत रखा।[४] भरत के नामकरण का यही आधार तुलसी को भी प्रिय लगा। इसी कारण 'मानस' में गुरु वसिष्ठ संसार के भरण-पोषण में सक्षम दूसरे पुत्र का नाम भरत रखते हैं।

---

१. "भरतां नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
साक्षाद् विष्णौश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः॥" —वा० रा० १/१८/१३

२. तदेव, १-१८-१५

३ आनन्द रामायण, सारकांड २-११

४. "भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।"
—अध्यात्म० १-३-४१

"विश्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।"[१]

सूर ने पूर्णब्रह्म के चतुर्व्यूह में भरत को प्रद्युम्न का अवतार बतलाया है ।[२] केशव ने उनको भारत-भूमि का भूषणस्वरूप कहा है ।[३] इसी प्रकार 'साकेत' में 'भरतकर्त्ता माण्डवी उनकी क्रिया' कहकर मैथिलीशरण गुप्त ने उनके पालक रूप का ही स्मरण किया है ।[४]

पितृ-भक्ति

राम काव्य-परम्परा में यद्यपि भरत का पितृभक्ति सम्बन्धी विवरण अत्यल्प ही मिलता है, किन्तु यत्किंचित उल्लेख ही उनके पितृभक्ति की तरलता का मूल्यांकन करने के लिए पर्याप्त है ।

मातुल गृह में भरत पिता का मृत्यु-विषयक दुःस्वप्न देखकर अत्यन्त भयभीत एवं चिन्तित हो उठते हैं ।[५] मित्रगण भी उनकी चिन्ता दूर करने में सफल नहीं होते हैं—

'स तैर्महात्मा भरतः सखिभिः प्रियवादिभिः ।
गोष्ठीहास्यानि कुर्वीद्भर्न प्राहृष्यत राघवः ।।'[६]

अयोध्या से गये हुए दूतों से भरत सर्वप्रथम अपने पिता का ही कुशलक्षेम पूँछते हैं । 'कच्चित् स कुशलो राजा पिता दशरथो मम'[७] तथा अयोध्या पहुँचकर वे अत्यन्त व्यग्र हो कैकेयी से यही प्रश्न करते हैं कि "मैं पूँछता हूँ, बताओ, पिताजी कहाँ हैं ? मैं उनके पैर पकड़ूँगा—'पितुर्ग्रहीष्ये पादौ च तं, ममाख्याहि पृच्छतः ।'[८] वे कैकेयी से मृत्यु का समाचार सुनकर शोक से, 'हाय, मैं मारा गया' कहकर संज्ञाशून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं ।

---

१. मानस, १/१६७/४ ।

२. "संकर्षन-प्रद्युम्न, लक्ष्मन-भरत महासुखधाम ।"
—सूर रामचरितावली, पद २०१ (गीता प्रेस)

३. 'रामचंद्र भुवचन्द्र भरत भारतभुव भूषण'
—रा० चं० १/२२

४. साकेत सर्ग १, पृ० १८ ।

५. वा० रा०, २/६६/२-२१ ।

६. तदेव, २/६६/५ ।

७. वा० रा०, २/७०/७ ।

८. तदेव, २/७२/१३ ।

"पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्पितः ।
हा हतोऽस्मीति कृपणां दीनां वाचमुदीरयन् ॥"[१]

पुनश्च वे पिता के लिए अनेक प्रकार से करुण-क्रन्दन करते हुए[२] कहते हैं कि मैं सदा अपने प्रिय और हित में लगे रहने वाले पिता को नहीं देख रहा हूँ, इससे मेरा हृदय फटा जा रहा है ।[३]

वाल्मीकि से प्रेरित होते हुए भी तुलसी ने भरत के दुःस्वप्न का अपेक्षाकृत संक्षिप्त वर्णन किया है । वे भयानक स्वप्न देखकर अनेक दुष्कल्पनाएँ करते एवं अनिष्ट शान्ति का उपाय करते हैं । साथ ही माता-पिता एवं कुटुम्बीजनों का कुशलक्षेम मनाते हैं ।[४] यही नहीं, अयोध्या पहुँचकर वे सर्वप्रथम कैकेयी से पिता को ही पूछते हैं—

"कहु कहँ तात कहाँ सब माता ।"[५]

फिर कैकेयी से पिता की मृत्यु सुनकर वाल्मीकि रामायण की भाँति वे विषादयुक्त हो जाते हैं[६] तथा तात ! हा तात !! कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । वे विलाप करते हुए कहते हैं कि आपको चलते समय देख भी न सका—

"तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल व्याकुल भारी ॥"

तथा "चलत न देखन पायउँ तोही ।"[७]

वे कौशल्या के पास जाकर यही अनुनय करते हैं कि माता, पिताजी कहाँ हैं ? उन्हें दिखा दें ।"

"मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय राम लखनु दोउ भाई ॥"[८]

---

१. वा० रा०, २/७२/१६-१७ ।
२. तदेव, २/७२/१८-३५ ।
३. तदेव, २/७२/२८ ।
४. "अनरथु अवध अरमेउ जब तें । कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें ॥
देखहिं राति भयानक सपना । जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥
विप्र जेवांइ देहिं दिन दाना । सिव अभिषेक करहिं विधि नाना ॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई । कुसल मातु-पितु परिजन भाई ॥"
—मानस, २/१५७/३-४
५. मानस, २/१५६/४ ।
६. तदेव, २/१६०/१-२ ।
७. तदेव, २/१६०/२-३ ।
८. तदेव, २/१६४/२ ।

मैथिलीशरण गुप्त ने परम्परा-निर्वाह करते हुए भरत के दुःस्वप्न का संकेत-मात्र किया है।[१] अयोध्या आते समय मार्ग में भरत सूत से पिता के विषय में अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताएं अवश्य व्यक्त करते हैं।[२] वे अयोध्या आकर रथ से उतरते ही सचिव से सर्वप्रथम पिता का ही कुशलक्षेम पूछते हैं—

"तात कैसे हैं ? सचिव की उक्ति—
पा चुके वे विश्व-बाधा-मुक्ति।"[३]

यहाँ भी पिता का मरण सुनकर वे 'हा पिता !' का आर्त्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

"हा पितः ? सहसा चिहुँक चीत्कार।
गिर पड़े सुकुमार भरत कुमार॥"[४]

इसी प्रकार डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र कृत साकेत-सन्त में भी भरत के दुःस्वप्न का उल्लेख मिलता है। यहाँ भी वे अनिष्ट की आशंका से चिन्तित हो उठते हैं।[५] साथ ही अयोध्या पहुँचकर वे कैकेयी से सर्वप्रथम पिता के विषय में पूछते हैं—

"मां, कहाँ पिता हैं, कहाँ राम सुखदाई।
क्यों आज उदासी अवधपुरी में छाई॥"[६]

और पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर वे हा ! हा ! करते हुए गिर पड़ते हैं—

"हा ! हा ! कर भरत तुरन्त गिरे अवनीतल।"[७]

सूर एवं केशव आदि ने भरत के दुःस्वप्न का उल्लेख नहीं किया है, वे अयोध्या में ही पिता की मृत्यु पर शोक करते हैं।[८] परन्तु गोविन्दरामायण में दशरथ की मृत्यु का अशुभ-संदेश दूतों द्वारा भरत को उनकी ननिहाल में ही

---

१. साकेत, सर्ग ७, पृ० १८२।
२. तदेव, सर्ग ७, पृ० १८८।
३. तदेव, सर्ग ७, पृ० १९२।
४. साकेत, सर्ग ७, पृ० १९३।
५. साकेत-सन्त, २/७८-७९।
६. तदेव, ३-७।
७. तदेव, ३-९।
८. (अ) सूर रामचरितावली २-३५ (गीता प्रेस गोरखपुर)
(ब) रामचन्द्रिका, १०/४।

ज्ञात हो जाता है[६]; अतएव अवध आते ही वे क्रुद्ध होकर कैकेयी को धिक्कारने लगते हैं—

"धिगं मैया तोहिं। लाइ लाजा मोहिं।।"[१]

इस प्रकार हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख रामकथाकारों ने न्यूनाधिक मात्रा में वाल्मीकि से ही प्रेरणा ग्रहण कर भरत की पितृभक्ति का अपने ढंग से चित्र प्रस्तुत किया है।

भ्रातृ-प्रेम

भरत-चरित का सर्वाधिक उज्ज्वल पक्ष उनका भ्रातृ-प्रेम है। भ्रातृ-प्रेम का ऐसा निष्कपट एवं आदर्श चित्रण भारतीय इतिहास में अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। वस्तुतः उनके चरित के त्याग, तप, धैर्य, माधुर्य, तितिक्षा, शौर्य एवं गाम्भीर्य आदि समस्त दिव्यगुण इसी भ्रातृप्रेम पर ही केन्द्रित हैं। उनके समस्त सम्बन्ध एवं व्यवहार अपने भ्राता राम को ही लेकर हैं। उनकी राम के प्रति अटूट श्रद्धा एवं दृढ़ अनुराग है। राम का विरोधी उनका घोर शत्रु है और राम का प्रेमी चाहे वह समाज की दृष्टि में कितना ही निन्द्य, अस्पृश्य एवं त्याज्य क्यों न हो, उनका परम मित्र है। इसके दृष्टान्त क्रमशः कैकेयी एवं केवट के सन्दर्भ में उपलब्ध होते हैं।

कैकेयी कुकृत्यों से आहत भरत का हृदय क्षुब्ध हो उठता है तथा वह राम-विरोधिनी अपनी माता की कठोर शब्दों में भर्त्सना करता हुआ आत्मसंयम भी खो बैठता है। वाल्मीकि रामायण में आत्मग्लानि से पीड़ित भरत कैकेयी की भर्त्सना करता है कि—"तू इस कुल का विनाश करने के लिए काल-रात्रि बन कर आयी थी। मेरे पिता ने तुझे अपनी पत्नी क्या बनाया, दहकते हुए अंगार को हृदय से लगा लिया था। पापिनि! उनके महात्मा पुत्र को चीर और बल्कल पहनाकर तूने वन में रहने के लिए भेज दिया। फिर भी तुझे शोक क्यों नहीं हो रहा है? तेरा विचार बड़ा ही पापपूर्ण है। मैं तेरी इच्छा कदापि नहीं पूर्ण करूँगा। तूने मेरे लिए उस विपत्ति की नींव डाल दी है जो मेरे प्राण तक ले सकती है।"[३] भरत उसे भ्रूण-

---

१. "उच्चरे संदेश, ऊर्ध्वं गे औधेश।
पत्र बाँचे भल्ल, लाग संगे चल्ल।।
—गोविन्द रामायण, बनवास, पृ० ७० (प्रथम संस्करण)

२. गोविन्द रामायण, बनवास, पृ० ७० (प्रथम संस्करण)

३. "कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।
अङ्गारमुपगूह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान।।

हत्या करनेवाली, दुराचारिणी, पतिघातिनी तथा माता के रूप में अपना शत्रु बतलाकर उसकी उपेक्षा करते हैं।[२] वे यहाँ तक कहते हैं कि तू प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जा या स्वयं दण्डकारण्य में चली जा अथवा गले में रस्सी बाँधकर प्राण दे दे, इसके सिवा तेरे लिए दूसरी गति नहीं है—

"सा त्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान्।
रज्जुं बद्ध्वाथवा कण्ठे नहितेऽन्यत् परायणम्॥"[३]

उनका आक्रोश यहीं तक सीमित नहीं रहता, वे शत्रुघ्न से कहते हैं कि यदि मुझे यह भय न होता कि धर्मात्मा राम मातृघाती समझकर मुझसे घृणा करने लगेंगे तो मैं भी इस दुष्ट आचरण करने वाली पापिनी कैकेयी को मार डालता—

"हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥"[४]

अध्यात्म रामायण में भी भरत इसी प्रकार कहते हैं कि मैं क्या करूँ? मैं तो इस नाममात्र की माता कैकेयी को अभी मार डालता, किन्तु श्रीराम मुझ स्त्री-हत्यारे को क्षमा न करेंगे।[५]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित होकर भी तुलसी के भरत अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर एवं संयत हैं। वे इतने अधैर्यवान एवं उग्र नहीं हैं और न ही वे मातृवध की बात ही सोचते हैं। उनका आक्रोश मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करता। माता को कटुवचन एवं अपशब्द कहने से अधिक वे आत्मग्लानि से पीड़ित हैं, क्योंकि वे साधु-भरत हैं।[६] परन्तु राम का द्रोही उनकी दृष्टि में सर्वथा घृणा का पात्र एवं अक्षम्य है। वे आत्मग्लानियुक्त शब्दों में कैकेयी का तिरस्कार करते हैं

तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम्।
प्रस्थाप्य बनवासाय कथं पापे न शोचसे॥
न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये।
मया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम॥"

—वा० रा०, २/७३/४,११, २५

२. तदेव, २/७४/४,७

३. तदेव, २/७४/३३

४. तदेव २/७८/२२

५. अध्यात्म०, २/८/७-८

६. (अ) "भरतु कहे महुँ साधु सयाने" —मानस, २/२२७/३
(ब) "भरतु नीति रत साधु सुजाना"—तदेव, २/२२८/१

कि पापिनी ! तूने हर तरह से कुल को नष्ट कर दिया। यदि तेरी ऐसी ही दुर्भावना थी तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला—

> "धीरज धरि मरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुलनासा ॥
> जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोंही ॥"[१]

यही नहीं निर्बुद्धे ! ऐसे कुविचार उत्पन्न होने के साथ ही तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गये ? तुझे वरदान माँगते समय मन में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई ? तेरी जीभ क्यों नहीं गल गई तथा तेरे मुँह में कीड़े क्यों न पड़ गये ? संसार में ऐसा कौन प्राणी है जिसे श्रीराम प्राणों के समान प्रिय नहीं हैं। ये ही राम तुझे शत्रु तुल्य लगे ? मुझे सच-सच बता, तू कौन है ? तू जो है, सो है, अब मुँह में कालिख पोतकर मेरी आँखों से ओझल हो जा। तुझसे उत्पन्न मैं इस संसार में रामद्रोही सिद्ध हुआ। तुझे कुछ कहना व्यर्थ है; वस्तुतः मेरे समान पापी एवं दोषी दूसरा कोई नहीं है।"[२]

वाल्मीकि की भाँति सूर के भरत भी कैकेयी की भर्त्सना करते हैं; किन्तु तुलसी की भाँति वे भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते तथा न उसकी हत्या करने को ही सोचते हैं। यही नहीं, वे अपने को ही अपराधी मानते हैं। परन्तु राम-वनगमन का क्षोभ तो उन्हें है ही। वे कैकेयी से कहते हैं कि—"बता तो ? श्रीराम के वन जाते समय तेरा पत्थर के समान कठोर हृदय विदीर्ण न होकर बचा कैसे रहा ? मुझ पापी के प्रेम के कारण तूने श्रीराम को वनवास दे दिया—

> "श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसें, तेरौ पाहन-कठिन हियौ।
> माँ अपराधी के हित कारन, तैं रामहिं बनबास दियौ ॥"[३]

---

1. मानस, २/१६१/३-४
२. "जब तैं कुमति कुमति जियँ ठयऊ। खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ ॥
   वर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥
   × × ×
   अस को जीव-जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं ॥
   भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही ॥
   जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आंखि ओट उठि बैठहि जाई ॥
   राम विरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह विधि मोहि।
   मो समान को पातकी, बादि कहउँ कछु तोहि ॥"
   —मानस, २/१६१/१, ३-४
३. सूर रामचरितावली, पद ३७

श्रीराम के मुख-कमल को ही देखकर जीवित रहने वाले भ्रातृप्रेमी भरत को बिना राम के मार्मिक वेदना की अनुभूति होती है। वे कैकेयी से कहते हैं—"तेरे जन्म को धिक्कार है। तेरे जीवित रहने को धिक्कार है, जो तूने मुख से ऐसी कपट-पूर्ण बात कही। ब्रह्मा ने ऐसा विधान कब लिखा है कि सेवक को राज्य देकर स्वामी को वन भेज दिया जाय। जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा से अनुराग करता है, उसी प्रकार जिनका मुख-कमल देखकर हम जीवित रहते हैं उन श्रीराम् के बिना अयोध्या से हमारा क्या नाता—

> "धृग तव जन्म, जियत धृग तेरौ, कही कपट-मुख बाता।
> सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी बिधाता॥
> मुख-अरविंद देखि हम जीवत, ज्यों चकोर ससि राता।
> सूरदास श्रीरामचन्द्र बिनु कहा अजोध्या नाता॥"[1]

केशव ने भरत के मुख से कुछ गिने-चुने शब्दों में कैकेयी की भर्त्सना कराके परम्परा का निर्वाह मात्र किया है।[2]

परन्तु साकेत के भरत का क्रोध अधिक मुखर हो उठता है। वह कैकेयी को चण्डि, द्विरसने[3] आदि कहता हुआ उसकी तीव्र भर्त्सना करता है। वह कहता है कि तेरा क्षुधित पुत्र-स्नेह पतिदेह को भूनकर खा गया। अब मेरा भी भक्षण करके सन्तुष्ट हो जा—

> "धन्य तेरा क्षुधित पुत्र-स्नेह,
> खा गया जो भूनकर पति-देह,
> ग्रास करके अब मुझे हो तृप्त।"[4]

वह आत्मग्लानिवश अपने को कोसता है तथा कैकेयी से कहता है कि तू मेरा मुख नील से पुतवाकर मेरे अनुरूप गधे की सवारी मँगवा दे, जिससे सभी लोग देख लें कि यही राजा है—

> "नील से मुँह पोत मेरा सर्व, कर रही वात्सल्य का तू गर्व।
> खर मँगा, वाहन वही अनुरूप, देख लें सब है यही वह भूप॥"[5]

---

१. सूर रामचरितावली, पद ३८।

२. रा० चं०, १०-४-५।

३. साकेत, सर्ग ७, पृ० १६६।

४. तदेव, सर्ग ७, पृ० १६७।

५. साकेत, सर्ग ७, पृ० १६८।

और वे उसे धिक्कारते हुए कहते हैं कि तू वस्तुतः जननी नहीं वरन् हनन करने-वाली है—

> "री, हुआ तुझको न कुछ संकोच।
> तू बनी जननी कि हननी, सोच ॥"[१]

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र कृत साकेत-सन्त में भी भरत कैकेयी को आर्यवंश में उद्भूत अपनी माँ कहने में संकोच करते हैं तथा उसे राक्षसी, कुटिलता की मूर्ति एवं पितृ-घातिनी कहते हैं—

> "किस मुख से कह दूँ इसे कि मेरी माँ है,
> यह चोर राक्षसी-निशा कठोर अमा है।
> × × ×
> वात्सल्यमयी-सी गई कहाँ वह माता,
> उस आकृति में हूँ मूर्त कुटिलता पाता।
> × × ×
> भैया को कानन भेज पिता को मारा,
> कैसे कह दूँ वह आर्य-वंश की दारा।"[२]

भ्रातृ-प्रेमी भरत गोविन्द रामायण में भी कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि, "यह तूने कैसा बुरा काम किया ? ऐसा करते समय तुम्हें लज्जा न हुई ? अब तो मैं वहीं जाऊँगा जहाँ श्रीराम गये हैं—

> "का कियो कूकाज। कीनि जीना लाज ॥
> मोंह जैबै ताँहि। राम हेंगे जाँहि ॥"[३]

अस्तु हम देखते हैं कि इस प्रसंग में यद्यपि हिन्दी के प्रायः सभी राम-कथाकारों ने वाल्मीकि से ही प्रेरणा ग्रहण की है किन्तु भरत चरित को अधिक उदात्त एवं निष्कलुष बनाने के लिए उन्होंने बाल्मीकि की तरह मातृवध की कल्पना नहीं की।

आत्मग्लानि से पीड़ित भरत के हृदय को उस समय अधिक ठेस पहुँचती है जब उसकी ईमानदारी एवं निष्ठा के प्रति कौशल्या, गुह एवं भरद्वाज आशंका प्रकट करते हैं। इसके लिए भरत को स्थान-स्थान पर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करनी पड़ती है।

---

१. तदेव, सर्ग ७, पृ० २००

२. साकेत-सन्त, ३/२८, २९, ३०।

३. गोविन्द रामायण, बनवास, पृ० ७१ (प्रथम संस्करण)

वाल्मीकि रामायण में कौशल्या भरत से कहती है कि "तुम जिस राज्य के इच्छुक थे वह निष्कंटक राज्य तुम्हें प्राप्त हो गया, परन्तु दुःख है कि जल्दी में कैकेयी ने बड़े क्रूर कर्म करके इसे पाया है। मेरे पुत्र को चीरवस्त्र पहनाकर वन भेज देने में क्रूर दृष्टिवाली कैकेयी को क्या लाभ हुआ ?[१]

पुत्र-शोक विह्वल कौशल्या भरत से यहाँ तक कहती है कि तू स्वेच्छा से अब मुझे वहीं पहुँचा दे जहाँ मेरा पुत्र राम तपस्यारत है—

"कामं बा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि ।
यत्रासां पुरुषव्याघ्रस्तप्यते मे सुतस्तपः ॥[२]

भरत इन कठोर बातों से मर्माहत हो उठते हैं। उन्हें इतनी असह्य पीड़ा होती है मानो किसी ने घाव में सुई चुभो दी हो।[३] वे अत्यन्त व्यथित हो कौशल्या से अपने को निर्दोष बतलाते हुए कहते हैं, "आर्ये ! यहाँ जो कुछ हुआ है, इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं थी। मैं सर्वथा निरपराध हूँ तो भी मुझे आप क्यों दोष दे रही हैं ? आप तो जानती हैं कि रघुनाथ जी में मेरा कितना प्रगाढ़ प्रेम है—

आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मष ।
विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे ॥"[४]

इसके पश्चात् शोकसंतप्त भरत अनेक दुष्कर शपथों द्वारा अति विस्तार से अपनी सफाई देकर कौशल्या को आश्वस्त करते हैं।[५]

परन्तु अध्यात्म रामायण में कौशल्या को भरत पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। वह सारा दोष कैकेयी को देती हुई कहती है कि "वत्स ! तुम्हारे चले जाने पर जो-जो अनर्थ हुए हैं अपनी माता की वे सब करतूतें तुमने उसके मुख से सुन ली होंगी।[६]

---

१. "इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ।
सम्प्राप्तं वत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥
प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥
—वा० रा०, २/७५/ ११-१२

२. तदेव, २/७५/१५

३. वा० रा०, २/७५/१७

४. तदेव, २/७५/२०

५. तदेव, २/७५/२१-५६

६. अध्यात्म० २/७/४४

भरत को वह सर्वथा निष्पाप समझती है। उनके द्वारा अनेक शपथें लेने के उपरान्त वह कहती है कि "पुत्र ! मैं यह सब जानती हूँ, तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो।"[१]

रामचरितमानस की कौसल्या वाल्मीकि रामायण की तरह भरत के प्रति शंकालु एवं असहिष्णु नहीं है। तुलसी यहाँ अपेक्षाकृत अध्यात्म रामायण से ही अधिक प्रभावित हैं। वह आत्मभर्त्सनारत एवं शोकसंतप्त भरत को[२] गोद में उठा लेती हैं तथा उन्हें आश्वस्त करती हुई दैव को ही कोसती हैं।[३]

तुलसी को राममाता कौसल्या या साधुपुरुष भरत में इस प्रकार की चारित्रिक दुर्बलता दिखलाना अभीष्ट नहीं था। परन्तु यहाँ भरत अपने को निर्दोष एवं शुद्ध प्रमाणित करने के लिए जो सफाई देते हैं वह पूर्णतः वाल्मीकि रामायण से ही प्रभावित एवं अनुप्रेरित है।[४] इसके उपरान्त कौसल्या वाल्मीकि रामायण और मानस दोनों में ही भरत को सत्यप्रतिज्ञ, धर्मात्मा, निष्कलुष एवं रामानुरागी बतलाती है। उसे भरत पर पूर्ण विश्वास है।[५]

सूर की कौशल्या भी भरत के प्रति पूर्ण विश्वस्त है। वह कहती है कि जब तक भरत अयोध्या न आ जायँ, तब तक के लिए कोई जाकर राम को रोक लें, तथा वह भरत को लाने के लिये दूत भेजने को कहती है—

'रामहि राखौ कोऊ जाइ।
जब लगि भरत अयोध्या आवैं, कहति कौसिला माइ।
पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यो बिलखाइ॥[६]

---

१. तदेव, २/७/६१

२. "पितु सुरपुर बन रघुवर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहिं भयउ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥"
—मानस, २/१६३/४

३. तदेव, २/१६५/२-४।

४. (अ) तदेव, २/१६७/२ से दो० १६८ तक।
(ब) गीतावली, २/६२।

५. (अ) वा० रा०, २/७५/६२।
(ब) मानस, २/१६६/१-२।

६. सूर रामचरितावली, पद ३६ (गीता प्रेस, गोरखपुर)।

इसी प्रकार केशवकृत रामचन्द्रिका में भी कौशल्या को भरत की सद्भावना के प्रति किसी प्रकार की शंका नहीं है। वह भरत को देखते ही उसे गोद में उठाकर सिर सूँघने एवं बलैया लेने लगती है तथा कहती है कि पुत्र, तुम्हारी अनुपस्थिति में यह विपरीत घटना घटित हो गई।[१] साथ ही भरत द्वारा अनेक शपथें लेने पर[२] वह उन्हें ऐसा करने से रोकती हुई कहती है कि मैं तुम्हें साधु चरितवाला एवं राम के ही समान प्रिय-पुत्र जानती हूँ—

"जनि सौंह करो तुम पुत्र सयाने, अति साधु चरित्र तुम्हें हम जाने।
सबको सब काल सदा सुखदाई, जिय जानति हौं सुत ज्यों रघुराई॥"[३]

'साकेत' की कौशल्या को तो भरत के प्रति अगाध विश्वास है। भरत के यह कहने पर कि—"आ गया मैं—गृह कलह का मूल"[४], वह इसे मिथ्या बतलाती हुई तत्काल कह पड़ती है कि तू निष्पाप है, मैं इसकी साक्षी हूँ। पुनश्च वह विश्वासपूर्वक राम की शपथ लेकर कहती है कि इस षड्यंत्र में भरत का तनिक भी हाथ नहीं है—

"झूठ यह सब झूठ, तू निष्पाप, साक्षिणी तेरी यहाँ मैं आप।
भरत में अभिसन्धि की हो गन्ध, तो तुझे निज राम की सौगंध॥"[५]

यही नहीं, वह भरत को निष्कलंक मयंक कहती हुई उसे राम से अभिन्न मानती है—

"'वत्स रे आ जा जुड़ा यह अंक, भानुकुल के निष्कलंक मयंक।
मिल गया मेरा मुझे तू राम, तू वही है भिन्न केवल नाम॥"[६]

डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र कृत साकेत-सन्त में भी कौसल्या भरत द्वारा अनेक शपथें लेने के उपरान्त[७] उनको अक्षय निर्मल-शील-कोष एवं पूर्णतः निष्कलंक कहती हुई हृदय से लगा लेती है। राम और भरत में वह अभेददर्शन करती है।

---

१. रा० चं०, १०/६।
२. तदेव, १०/७-८।
३. तदेव, १०/६।
४. साकेत, सर्ग ७, पृ० २०४।
५. तदेव, सर्ग, ७, पृ० २०४-२०५।
६. तदेव, सर्ग ७, पृ० २०५।
७. साकेत-सन्त, ३/४२-४६।

"खींचा उनको, ले गोद, हृदय लिपटाया;
बोलीं—"तुमको पा पुनः राम को पाया।
बेटा ! तुम निर्मल-शील-कोष अक्षय हो,
तुम निष्कलंक हो पूर्ण, तुम्हारी जय हो।"[१]

इसी प्रकार हिन्दी की प्रायः सभी रामकथाओं में कौसल्या को भरत के प्रति किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। वे उनको पूर्णतः निष्कलंक एवं निर्दोष समझती हैं। अतएव प्रभाव की दृष्टि से ये इस प्रसंग में वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण के अधिक निकट हैं। हाँ, भरत की शपथ के सन्दर्भ में हिन्दी के सभी रामकथाकार वाल्मीकि के ही ऋणी हैं।

निषादराज गुह भी भरत को ससैन्य आता देखकर सशंकित हो उठता है तथा वह अपने बन्धु-बान्धवों को युद्ध के लिए सावधान करता हुआ कहता है कि कैकेयी का पुत्र भरत राजा दशरथ की दुर्लभ राजलक्ष्मी को अकेला ही हड़प लेने के विचार से श्रीराम को वन में मार डालने के लिए जा रहा है—

"सम्पन्नां श्रियमन्विच्छंस्तस्य राज्ञः सुदुर्लभाम्।
भरतः कैकेयी पुत्रो हन्तुं समधिगच्छति॥"[२]

यही नहीं, वह भरत से अपने मन के भाव व्यक्त कर ही देता है कि, "आप श्रीराम के प्रति कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं जा रहे हैं ? क्योंकि आपकी यह विशाल सेना मेरे मन में शंका उत्पन्न कर रही है—

"कच्चिन्न दुष्टोव्रजसि रामस्याक्लिष्ट कर्मणः।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे॥"[३]

अध्यात्म रामायण में भी गुह को भरत के प्रति सन्देह होता है और वह अपने सन्देह के निवारणार्थ भरत के पास जाता है; परन्तु वहाँ भरत की राम के प्रति प्रेमपूर्ण स्थिति को देखकर उसे उन पर विश्वास हो जाता है तथा किसी प्रकार की शंका प्रकट करने का अवसर ही नहीं उपस्थित होता।[४]

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी गुह भरत के प्रति शंकालु हो उठता है। वह सोचता है कि भरत के इस प्रकार ससैन्य वन जाने में कुछ छल, कपट एवं

---

१. तदेव, ३/५१।
२. वा० रा०, २/८४/५।
३. वा० रा०, २/८५/७।
४. अध्यात्म०, २/८/१५-२०।

कुटिलता अवश्य है । वे लक्ष्मण सहित राम को वन में मारकर निष्कंटक राज्य करना चाहते हैं। वस्तुतः भरत राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ हैं; कलंकित होने के उपरान्त उसे अब जीवन से भी हाथ धोना पड़ेगा । वस्तुतः राम अजेय हैं, उन्हें रण में जीतने वाला संसार में कोई नहीं है । वैसे भरत के इस कुकृत्य पर आश्चर्य भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि विष की बेलें कभी अमृतफल नहीं फलतीं।"[१]

युद्ध की पूरी तैयारी कर लेने के उपरान्त भी इसका आभास भरत को नहीं होने पाया। भरत के ग्लानि एवं सन्ताप भरे हृदय को तुलसी ने और अधिक कुरेदना उचित न समझा। अतएव वाल्मीकि के विपरीत यहाँ भरत से कुछ कहने के पूर्व ही गुह को छींक एवं शकुन द्वारा उनकी निष्ठा एवं निष्कलुषता के प्रति विश्वास हो जाता है।[२] उनकी परीक्षा में भी भरत खरे उतरते हैं।[३] वह संकेत से अपने परिजनों को वस्तुस्थिति का ज्ञान करा देता है।[४] इस प्रकार भावसाम्य की दृष्टि तुलसी वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण के अधिक निकट प्रतीत होते हैं।

तुलसी के भरत में राम के प्रति अटूट एवं अगाध अनुराग है । "गुह राम का सखा है"—वसिष्ठ द्वारा यह सुनते ही वे तुरन्त रथ त्यागकर पुलकित हो उसे प्रेम से गले लगा लेते हैं। उस समय का वह दिव्यप्रेम सर्वथा श्लाघ्य था।[५]

---

१. "कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं ।।
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।।
जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी ।।
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी ।।
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा ।।
का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं विष बेलि अमिअ फल फरहीं ।।
—मानस २-१८९-२/४

२. मानस, २-१९२-२-३ ।

३. तदेव, २-१९३-१ से दो० १९३ तक ।

४. "सनकारे सेवक सकल चले, स्वामि रुख पाइ।" —तदेव, २-१९७

५. "राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा ।।
भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ।।

× × ×

लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ।।
—तदेव, २/१९२/४; १९३/१-२

केवट के प्रति भरत की भावपूर्ण स्थिति का यह चित्रण भक्त-हृदय तुलसी की मौलिक उद्भावना है । मानस का गुह भरत की भायप भगति एवं राम प्रेम की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि श्रीराम आपको प्रिय हैं तथा आप श्रीराम को प्यारे हैं, यह निश्चित बात है यही नहीं, श्रीराम को आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है—यह मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ—

"राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं । यह निरजोस दोसु विधि वामहिं ।।

× × ×

तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतमु कहतु हौं सौहें किएँ ।"[1]

वाल्मीकि रामायण में गुह अवश्य भाई के लिए भरत के त्याग की प्रशंसा एवं उन्हें अद्वितीय धर्मात्मा बतलाता है ।[2] परन्तु उक्त स्थल पर तुलसी जैसा स्वाभाविक एवं तन्मयतापूर्ण प्रेम का निदर्शन किसी भी पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रंथ में नहीं हुआ है ।

सूर, केशव एवं मैथिलीशरण गुप्त ने इस प्रकार की परिस्थिति आने ही नहीं दी । हाँ, डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र कृत साकेत-सन्त में अवश्य वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की भाँति गुह भरत को ससैन्य देखकर चौंकता है—

"चौंका गुह, इसका मतलब क्या ?
होने को है आगे अब क्या ?
मिलना ही था तो मेला क्यों ?
सेना का बड़ा झमेला क्यों ?"[3]

उसे भरत के षड्यंत्र एवं दुर्भावना पर पूर्ण विश्वास हो जाता है, अतएव भरत से लोहा लेने एवं मरने-मारने को तैयार है—

"गुह बोला, "यह अन्याय अरे !
भाई-भाई को खाय अरे !
उस पार न भरत पहुँच जावें,
इस पार यहीं गंगा पावें ।"[4]

---

१. मानस, २/२००/४, छंद ।

२. वा० रा०, २-८५/१२ ।

३. साकेत-सन्त, ८/१२ ।

४. तदेव, ८/१८ ।

यही नहीं, उसके अनुयायी जोश में आगे बढ़कर भरत के सैनिकों से छेड़छाड़ भी कर बैठते हैं—

"बालक बुड्ढे भी जोश भरे। बढ़ गए तुरत ही रोष भरे॥
कुछ ने झट छेड़छाड़ कर दी। सेना में कुछ बिगाड़ कर दी॥"[१]

इस पर भरत के सैनिक प्रतिरोध करने के लिए आज्ञा माँगते हैं[२] किन्तु भरत उन्हें मना कर देते हैं।[३] तथा वे स्वयं ही गुह से मिलने के लिए उसके पास जाते हैं। भरत गुह के अनुयाइयों से भैया राम के पास जाने का मार्ग पूछते हैं—

"मैं भरत राम का दास खड़ा। मैं भरत तुम्हारे पास खड़ा।
भैया की राह बता दोगे? क्या उनसे मुझे मिला दोगे?"[४]

वे भरत के शान्त मुख में रामरूप का दर्शन करते हैं तथा उनकी सद्भावना का ज्ञान गुह को करा देते हैं—

"उनका मुख शान्त ललाम लखा। लोगों ने उनमें राम लखा॥'[५]'

फलतः गुह का विश्वास भरत पर जम जाता है और वह उपहार लेकर उनकी शरण में आता है।[६] रामसखा गुह का नाम सुनते ही भरत दौड़कर उससे आलिंगनबद्ध हो जाते हैं।[७]

इस प्रकार वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित होते हुए भी यहाँ कुछ मौलिक अंशों की उद्भावना हुई है।

वाल्मीकि रामायण में भरद्वाज को भी भरत के प्रति सन्देह है। वे भरत से कहते हैं कि "तुम तो राज्य कर रहे हो न? तुम्हें यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ गई। मुझे यह सब बताओ, क्योंकि मेरा मन तुम्हारी ओर से शुद्ध नहीं है। मुझे तुम पर विश्वास नहीं है। कहीं तुम निरपराध राम लक्ष्मण को मारकर

---

१. साकेत, ८-२५।

२. "बोले, 'कुमार' न विलम्ब करो। आज्ञा दो इनके दम्भ हरो॥"
—साकेत-संत, ८/२७/२८

३. "तुम प्रभु से मिलने जाते हो। या लड़ने-भिड़ने जाते हो?"
—तदेव, ८/३१

४. तदेव, ८/३५।

५. तदेव, ८/३३।

६. तदेव, ८/३६।

७. तदेव, ८/४१।

अकण्टक राज्य माँगने की इच्छा से तो नहीं आये हो ?"[१]

यह सुनकर भरत मर्माहत हो उठा। दुःख से उसके नेत्र अश्रुपूरित हो गये।[२] लड़खड़ाती वाणी में बोला कि, "भगवान ! यदि आप पूज्यपाद महर्षि भी मुझे ऐसा समझते हैं तब तो मैं हर तरह से मारा गया। श्रीराम के वनवास में मेरी ओर से कोई अपराध नहीं हुआ। आप मुझसे ऐसी कठोर बात न कहें—

"हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते।
मत्तो न दोषमाशङ्के मैवं मामनुशाधि हि॥"[३]

इस पर भरद्वाज ने कहा कि मैं तुम्हारे आन्तरिक भाव को जानता हूँ। तुम सर्वथा निष्कलुष हो। राम प्रेम में तुम्हारी निष्ठा और दृढ़ हो जाय तथा तुम्हारी कीर्ति का विस्तार हो—इसी कारण मैंने तुमसे यह बात पूछी थी।[४]

परन्तु अध्यात्म रामायण में भरद्वाज को भरत के प्रति कोई आशंका नहीं है। वे भरत से केवल यही पूछते हैं कि राज्य शासन करते हुए तुम आज यह वल्कलादि वस्त्र धारण किये इस तपोवन में कैसे आये हो—

"राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद्वल्कलादिकम्।
आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपिनं मुनिसेवितम्॥"[५]

भरत द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त बता देने एवं आर्त्तभाव से यह कहने पर कि "भगवान् ! आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं दोषी हूँ या निर्दोष"[६]—भरद्वाज ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि "वत्स, अपने ज्ञान-चक्षुओं से मैंने पहले ही ये होनेवाली बातें जान ली थीं। तुम शोक न करो, तुम तो लक्ष्मण की अपेक्षा भी राम के परमभक्त हो।"[७]

तुलसी यहाँ वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण से ही अधिक प्रभावित हैं। भरद्वाज को भरत के प्रति किसी प्रकार की शंका नहीं है। भरत के कुछ कहने

---

१. वा० रा०, २/९०/१०, १३।
२. तदेव, २/९०/१४।
३. तदेव, २/९०/१५।
४. तदेव, २/९०/२०-२१।
५. अध्यात्म०, २/८/४४।
६. "ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वाशुद्ध एव वा।"—तदेव, २/८/४८
७. अध्यात्म०, २/८/५३

के पूर्व ही वे उनसे कहते हैं कि हमें पहले ही सब कुछ ज्ञात हो चुका है; विधि के विधान पर कोई बश नहीं चलता। तुम मन में ग्लानि न करो। कैकेयी का भी कोई दोष नहीं है। सरस्वती ने उसकी बुद्धि कुंठित कर दी थी।[1]

साथ ही वे भरत को आश्वस्त करते हैं कि तुम श्रीराम के प्यारे भाई हो। श्रीराम के मन में तुम्हारे समान दूसरा कोई प्रेम-पात्र नहीं है। उस दिन सारी रात लक्ष्मण, श्रीराम और सीता अत्यन्त प्रेम के साथ तुम्हारी प्रशंसा करते रहे। यही नहीं, प्रयाग में स्नान करते समय मैंने उनका यह मर्म जाना। वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। तुम पर श्रीराम का उसी प्रकार अगाध स्नेह है जिस प्रकार एक विषयासक्त मूर्ख मनुष्य का भोगों के प्रति रागात्मक सम्बन्ध होता है।[2] भरत, मेरा तो यह मत है कि तुम मूर्तिमान राम-प्रेम ही हो—

"तुम्ह तो भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू।।"[3]

सूर, केशव एवं मैथिलीशरण गुप्त इस प्रसंग में नहीं उलझे हैं। साकेत-सन्त में भरद्वाज मुनि के बटु भरत को ससैन्य देखकर अवश्य आशंकित हो उठते हैं।[4] परन्तु भरद्वाज ध्यान के द्वारा भरत को निष्कपट जानकर उनका स्वागत करने के लिए शिष्यों को आज्ञा देते हैं—

"हुए मौन ध्यानी मुनि ज्ञानी। और तत्व की तह तक जानी।
बोले, करो रुचिर पहुनाई। भरत राम ही के हैं भाई।।"[5]

इस प्रकार प्रभाव एवं प्रेरणा की दृष्टि से साकेत-सन्त वाल्मीकि की अपेक्षा अध्यात्म रामायण एवं तुलसी के मानस के अधिक निकट है।

रामानुरागी

भरत का राम के प्रति अकृत्रिम एवं निश्छल प्रेम है। वे राम के उत्कर्ष एवं वैभव को अपनी उन्नति एवं समृद्धि मानते हैं। राम के सुख में उनकी प्रसन्नता

---

१. "सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। विधि करतब पर किछु न बसाई।।
तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति।।
—मानस, २/२०५/४ से दो० २०६ तक

२. तदेव, २/२०८/३

३. तदेव, २/२०८/४

४. "भरत राम से मिलने जायें, किन्तु सैन्य लेकर क्यों आयें ?"
—साकेत-सन्त, ६/१५

५. साकेत-सन्त, ६/१६

अन्तर्निहित है। पिता की मृत्यु पर विलाप करते हुए वे कहते हैं कि "मैंने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीराम का राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञानुष्ठान करेंगे--यही सोचकर मैंने बड़े हर्ष के साथ वहाँ से यात्रा की थी।"[१]

पुनश्च, वे शोकविह्वल हो कहते हैं कि जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं और जिनका मैं परमप्रिय दास हूँ, उन पराक्रमी श्रीराम को शीघ्र ही मेरे आने की सूचना दो। मैं उन पितृ-तुल्य भाई के चरणों में प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं—

"यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्ट कर्मणः॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥"[२]

तथा वे कैकेयी को फटकारते हैं कि "क्रूर हृदये! कौशल्यापुत्र श्रीराम मेरे बड़े भाई और पिता-तुल्य हैं।"[३] वास्तव में लोभ के कारण तुझे यह पता नहीं है कि मेरा श्रीराम के प्रति कैसा भाव है? इसी कारण तूने राज्य के लिए यह महान अनर्थ कर डाला—

"लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा।
तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वया नीतो महानयम्॥"[४]

यही नहीं, मैं वन से निष्पाप एवं स्वजनों के प्रिय श्रीराम को लौटा लाऊँगा तथा उनका दास बनकर स्वस्थचित्त से जीवन यापन करूँगा।[५] इसके उपरान्त कौशल्या के सन्देह करने पर वे कहते हैं कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। आप तो जानती हैं कि श्रीरघुनाथ में मेरा कितना प्रगाढ़ प्रेम है।[६]

मंत्रि-परिषद् जब भरत से राज्य स्वीकार करने का आग्रह करती है तब वे अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करते हैं कि श्रीराम हम लोगों के बड़े भाई हैं; अतः वे ही राजा होंगे। उनके बदले मैं ही चौदह वर्षों तक वन में निवास करूँगा।

---

१. वा० रा०, २/७२/२७
२. तदेव, २/७२/३२-३३
३. वा० रा०, २/७४/१३
४. तदेव, २/७३/१३
५ तदेव, २/७३/२६-२७
६. तदेव, २/७५/२०

"रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः ।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥"[१]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी भरत का राम के प्रति सहज अनुराग दृष्टव्य है। वे विलाप करते हुए कहते हैं कि राजा दशरथ मुझे राम के हाथों बिना सौंपे ही कहाँ चले गये—

"असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भोः ॥"[२]

वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित होकर भी मानसकार ने भरत की राम के प्रति जिस सहज प्रेमानुभूति के दर्शन कराये हैं, वस्तुतः उससे सम्पूर्ण हिन्दी-रामकाव्य रससिक्त हो उठा है। अध्यात्म रामायण की ही भाँति मानस में भी भरत पिता के लिए विलाप करते हैं कि हे तात ! मैं आपको चलते समय देख भी न सका तथा आपने मुझे श्रीराम को सौंपा भी नहीं—

"चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही ॥"[३]

और वे विक्षिप्त हो कौसल्या से कहते हैं कि माँ ! पिताजी कहाँ हैं ? उन्हें दिखा दें। सीता तथा मेरे दोनों भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं—

"मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय राम लखनु दोउ भाई ॥"[४]

कौसल्या को भी राम के प्रति भरत का प्रेम भलीभाँति ज्ञात है। इसी कारण वह अपना निश्चित मत प्रकट करती है कि चाहे ज्ञान हो जाने पर मोह न मिटे परन्तु तुम श्रीराम के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते—

"भएँ ग्यानु बरु मिटे न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥"[५]

वाल्मीकि रामायण की भाँति यहाँ भी राज्यग्रहण करने के अनुरोध पर भरत राज्य को अत्यन्त तुच्छ समझते हुए श्रीराम चरणों के दर्शन की अभिलाषा करते

---

१. वा० रा० २/७६/८
२. अध्यात्म०, २/७/६७
३. मानस, २/१६०/३
४. तदेव, २/१६४/२
५. तदेव, २/१६६/२

हैं। तथा अपना कल्याण सियपति की सेवकाई एवं सामीप्य में ही मानते हैं।[१] अपने को कोसते हुए भरत को कोई ग्लानि है तो यही कि उनके कारण सीता और राम को वन जाना पड़ा। यही नहीं, उन्हें आश्चर्य है कि राम रहित सूने घर को देखकर और संसार में उपहास करवाकर भी उनके शरीर में अभी प्राण कैसे टिके हुए हैं—

"मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥"

× × ×

"बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥"[२]

उन्हें अपने लोक-परलोक बिगड़ने की चिन्ता नहीं है, प्रत्युत उनका हृदय इसी एक दावाग्नि से कराह रहा है कि उनके कारण राम और सीता को दुःख उठाना पड़ा।[३] संसार पापी, नीच, कृतघ्न कुछ भी समझता रहे किन्तु उन्हें अपनी राम-भक्ति एवं रामप्रीति पर दृढ़ आस्था है। 'राम भी उन पर अविश्वास करेंगे'—यह मानने के लिए वे हरगिज तैयार नहीं हैं।

"परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥"[४]

उन्हें दृढ़ विश्वास है कि कुमाता से उत्पन्न एवं सदोष होने पर भी श्रीराम उन्हें अपना जानकर नहीं त्यागेंगे—

"जद्यपि जनमु कुमातु तें, मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि, रघुबीर भरोस॥"[५]

अतएव वे सबके समक्ष निष्कर्ष-स्वरूप अपना अभिमत व्यक्त करते हैं कि श्रीराम के चरणों के दर्शन किये बिना मेरे हृदय की जलन शान्त न होगी।[६]

---

१. "हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥

× × ×

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥

× × ×

जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू॥"

—तदेव, २/१७८/१-२,४

२. मानस, २/१७६/२-३

३. तदेव, २/१८२/३

४. तदेव, २/१८२/२

५. तदेव, २/१८३

६. "देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ।"

—तदेव, २/१८२

मंत्री एवं समस्त पुरजन भरत के इस राम-प्रेम पर विमुग्ध हो कहते हैं कि आप राम को प्राणों के समान प्रिय हैं—

"तात भरत अस काहे न कहहू । प्रान समान राम प्रिय अहहू ।।"[१]

शृंगबेरपुर में भरत रामसखा गुरु से राम के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि बड़े भ्राता श्रीराम मेरे पिता-तुल्य हैं, मैं उन्हें वनवास से लौटाने के लिए जा रहा हूँ—

"राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ।
तं निवर्तयितु यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् ।।"[२]

वे राम-प्रेम में उन्मत्त हैं । वनपथ पर राम से सम्बन्धित एवं सम्पर्कित प्रत्येक वस्तु प्रेम की सम्बल बन जाती है । वे निषादराज से पूछते हैं कि उस रात में मेरे भाई श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ यहाँ किस स्थान पर ठहरे थे ? उन्होंने क्या भोजन करके किस प्रकार के विस्तर पर शयन किया था ? यह सब मुझे बताओ—

"भ्राता मे क्वासद् रात्रौ क्व सीता क्व च लक्ष्मणः ।
अस्वपच्छयने कस्मिन् किं भुक्त्वा गुह शंस मे ।।"[३]

इस पर निषाद ने सम्पूर्ण बातें बतलाकर इंगुदी का वह वृक्ष और कुश का बिछौना दिखाया जहाँ श्रीराम और सीता दोनों ने शयन किया था ।[४] भरत ने सीता के वस्त्राभूषणों से गिरे सुवर्ण-कणों एवं रेशम के धागों को उस तृण-शय्या में उलझे हुए देखकर[५] घोर कष्ट का अनुभव किया और करुण-स्वर में कहा—"हाय ! मैं मर गया—मेरा जीवन व्यर्थ है । मैं बड़ा क्रूर हूँ, जिसके कारण सीता सहित श्रीराम को अनाथ की भाँति ऐसी शय्या पर सोना पड़ता है—

"हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत् सभार्यः कृतेमम ।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ।।[६]

---

१. मानस, २/१८४/३
२. वा० रा०, २/८५/१०
३. तदेव, २/८७/१३
४. तदेव, २/८७/१६-२२
५. तदेव, २/८७/१४-१५
६. वा० रा०, २/८८/१७

अध्यात्म रामायण में भी रात्रि में शयन किये हुए राम के कुशासन पर सीता के आभूषणों से झड़े हुए स्वर्ण-विन्दुओं को देखकर भरत को मर्मान्तक पीड़ा होती है तथा वे आत्मभर्त्सना करते हुए करुण विलाप करते हैं।[1]

इसी प्रकार रामचरितमानस में भरत प्रेमविह्वल हो सखा निषाद से कहते है कि मुझे वह स्थान दिखलाओ जहाँ राम, सीता और लक्ष्मण रात्रि को शयन किये थे। इस प्रकार मेरे नेत्र एवं मन की जलन कुछ ठंडी करो—

> "पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ।।
> जहँ सिय राम लखनु निसि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये ।।"[2]

गुह द्वारा निर्दिष्ट वह शयनस्थली बस्तुतः भरत की तीर्थस्थली बन गई। उन्होंने कुशों की सुन्दर साँथरी देखकर प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। श्रीराम के चरण-चिह्नों की रज नेत्रों में लगायी। उनकी उस समय प्रेमविह्वल स्थिति का चित्रण किया नहीं जा सकता। उन्होंने सीता के वस्त्राभूषणों के दो-चार स्वर्ण-विन्दु देखे तो उनको सीता के समान पवित्र समझकर सिर पर रख लिया—

> "कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ।।
> चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।।
> कनक विन्दु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे ।।"[3]

'साकेत-सन्त' में भी सीता के शयन-स्थल पर गिरे हुए कनक विन्दुओं का उल्लेख मिलता है।[4]

यहाँ भरत पश्चात्ताप एवं आत्मभर्त्सना करते हुए कहते हैं कि विधि का विधान अत्यन्त प्रबल है। क्योंकि जो सुखस्वरूप, आनन्द एवं मंगल के भाण्डार हैं वे रघुकुलमणि श्रीराम पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं। जिन श्रीराम ने कभी कान से भी दुःख का नाम नहीं सुना तथा राजा दशरथ जिनकी सार-सँभाल जीवनतरु सदृश किया करते थे, वही अब जंगलों में पैदल फिरते तथा कंदमूल एवं फलफूल का भोजन

---

१. अध्यात्म०, २/८/२५-३४
२. मानस, २/१९८/३-४
३. तदेव, २/१९९/१-२
४. साकेत-सन्त, १०/४६

करते हैं। वस्तुतः मुझ पापों के समुद्र और अभागे को धिक्कार है जिसके कारण ये सब उत्पात हुए।[1]

तब निषाद उन्हें आश्वस्त करता है कि आप व्यर्थ में विषाद कर रहे हैं। मेरी यह निश्चित धारणा है कि आपको श्रीराम प्रिय हैं और आप श्रीराम को प्यारे हैं —

"राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं।"[2]

श्रीराम के दुःख का मूल कारण अपने को मानते हुए भरत वाल्मीकि रामायण में प्रण करते हैं कि, "आज से मैं भी पृथ्वी पर अथवा तिनकों पर ही सोऊँगा। फल-मूल का ही भोजन करूँगा और सदा वल्कल वस्त्र तथा जटा धारण किये रहूँगा। वनवास में जितने दिन अवशिष्ट हैं उतने दिनों तक मैं ही राम के बदले वन में सुख-पूर्वक निवास करूँगा। ऐसा होने से आर्य राम की प्रतिज्ञा झूठी नहीं होगी।"[3]

परन्तु मानस में भरत का आत्मोत्सर्ग इससे भी कहीं बढ़ा-चढ़ा है। भरत को पैदल चलते देखकर सेवक बार-बार अनुरोध करते हैं कि आप अश्व पर सवार हो जायँ। तब वे कहते हैं कि राम तो पैदल गये और हमारे लिए रथ, हाथी तथा घोड़े सजाये गये हैं। मेरे लिए तो यही उचित है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊँ; क्योंकि सेवक का धर्म अत्यन्त कठिन होता है—

"कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥"[4]

---

१. "सुख स्वरूप रघुबंस मनि, मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि, विधि गति अति बलवान॥
राम सुना दुख कानन काऊ। जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ॥
× × ×
ते अब फिरत विपिन पदचारी। कन्दमूल फल फूल अहारी॥
× × ×
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सब उतपातु भयउ जेहिं लागी॥"
—मानस, अयोध्या० दो० २०० से २०१/१-३ तक।

२. तदेव, २/२०१/४

३. वा० रा०, २/८८/२६-२७

४. मानस, २/२०३/३-४

वस्तुतः भरत को पुरुषार्थ चतुष्टय की भी कामना नहीं है। वह अपना अयाचित क्षत्रिय स्वभाव भी त्यागकर तीर्थराज प्रयाग से श्रीराम चरणों में नित्य विवर्धित प्रीति की भिक्षा माँगता है—

"माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।।
× × ×
अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन।।
जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही।
सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।।"[१]

अध्यात्म रामायण में भरद्वाज भरत के प्रेम की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि तुम लक्ष्मण से भी अधिक राम के परमभक्त हो—

"मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि।"[२]

इस स्थल पर मानस के भरद्वाज भरत-प्रेम का गुणगान करते हुए नहीं अघाते। वे कहते हैं कि भरत ! सुनो हम उदासीन तपस्वी हैं, हम कभी असत्य भाषण नहीं करते। सब साधनों का फल हमें लक्ष्मण, श्रीराम और सीता का दर्शन प्राप्त हुआ, परन्तु उस महान फल का परमफल यह तुम्हारा दर्शन है—

"सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं।।
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा।।
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा।।"[३]

वस्तुतः तुम्हारे कीर्तिरूपी चन्द्रमा में श्रीराम का प्रेमरूपी मृग निवास करता है—

"कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम पेम मृग रूपा।।"[४]

भरत के रामानुराग का ऐसा मनोरम चित्रण तुलसी की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है।

भरत जैसे-जैसे चित्रकूट के निकट पहुँचते हैं उनकी मिलनोत्कंठा उतनी ही अधिक तीव्र होती जाती है। वे कहते हैं कि "जब तक अपने भ्राता राम के कमलदल सदृश नेत्रों वाले सुंदर मुखचंद्र का दर्शन न कर लूँगा तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी।

---

१. मानस, २/२०४/४ से २०५/१ तक।
२. अध्यात्म०, २/८/५३
३. मानस, २/२१०/२-३
४. तदेव, २/२१०/१

"यावन्न चन्द्रसंकाशं तद्द्रक्ष्यामि शुभाननम् ।
भ्रातुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ।।"[१]

और जब उन्हें तापस वेष में श्रीराम के दर्शन होते हैं तब वे मर्मान्तक पीड़ा से कराह उठते हैं। वे आत्मभर्त्सना करते हुए कहते हैं कि, "हाय ! जो सब प्रकार से सुख के योग्य हैं, वे श्रीराम मेरे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। मैं कितना क्रूर हूँ। मेरे इस लोकनिन्दित जीवन को धिक्कार है—

"मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः ।
धिग् जीवितं नृशंसस्य मम लोक विगर्हितम् ।।"[२]

भावातिरेक के कारण वे श्रीराम के चरणों तक पहुँचने के पूर्व ही रोते हुए हा आर्य ! कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर दुःख से वे कुछ बोल न सके—

अध्यात्म रामायण में भी भरत को इसी प्रेमविह्वल स्थिति में पाते हैं।[४]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित होकर भी तुलसी ने भरत की जिस अनुरागमयी स्थिति का चित्रण किया है, वह रामप्रेम का उच्चतम रूप कहा जा सकता है। भरत का यह अहैतुक प्रेम ही वस्तुतः तुलसी की आदर्श भक्ति है। राम-प्रेम में उन्मत्त भरत को पिता के मरण की भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि शरीर तो क्षणभंगुर है ही। परन्तु चिन्ता तो इस बात की है कि श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पैरों में बिना जूते के मुनिवेष बनाये जंगल-जंगल फिर रहे हैं। वस्तुतः इस दुःख की जलन से उनकी छाती निरन्तर जलती रहती है। न दिन में भूख लगती है, न रात को नींद आती है—

"राम बिरह तजि तनु छन भंगू। भूप सोचकर कवन प्रसंगू ।।
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि वेष फिरहिं बन बनहीं ।।

× × ×

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती ।।"[५]

चित्रकूट-पथ पर चलते हुए उन्हें जहाँ कहीं भी राम के निवास-स्थल मिलते हैं, उनके लिए वे तीर्थतुल्य हो जाते हैं। वे उन्हें प्रेमपूर्वक प्रणाम करके सीता-राम

---

१. वा० रा०, २/९८/७
२. तदेव, २/९९/३६
३. तदेव, २/९९/३७-३८
४. अध्यात्म०, २/९/४-७
५. मानस, २/२११/४; २/२१२/१

के चरणो में प्रेम होने का वरदान माँगते हैं।[१] यही नहीं, जो लोग यह बतलाते हैं कि हमने श्रीराम को सकुशल देखा है वे उनके लिए श्रीराम-लक्ष्मण के समान ही प्रिय हो जाते हैं—

"जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥"[२]

भरत जब श्रीराम-आश्रम के बिल्कुल निकट पहुँच जाते हैं तब उनके मन में बहुत बड़ा अन्तर्द्वन्द्व उठता है। माता की कुटिल करतूत उन्हें आगे बढ़ने से रोकती है, परन्तु जब राम के प्रति अपने प्रेम का स्मरण हो आता है तब मार्ग पर उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं।[३] कभी उन्हें आशङ्का होती है कि श्रीराम, लक्ष्मण और सीता मेरा नाम सुनकर कहीं अन्यत्र न चले जायँ।[४] परन्तु भरत तो श्रीराम को पूर्णतः आत्मसमर्पण कर चुके हैं। अब श्रीराम उन्हें मलिन मनवाला जानकर चाहे त्याग दें अथवा अपना सेवक समझकर अपना लें, वे उनको छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते। वे सारा दोष अपने सिर पर लेने को प्रस्तुत हैं।[५] वस्तुतः भरतरूपी गहरे समुद्र को श्रीराम के विरहरूपी मंदराचल से मंथन करने के उपरान्त ही यह दिव्य प्रेमरूपी अमृत प्रकट हुआ है—

"पेमु अमिअ मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर॥"[६]

भरत की इस प्रकार की अनुरागमयी स्थिति का निरूपण तुलसी की निजी विशेषता है।

वाल्मीकि अथवा अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी जिस समय भरत श्रीराम को वल्कलवस्त्र एवं जटा धारण किये मुनिवेष में देखते हैं,[७] उनके दुःख की

---

१. तदैव, २/२१६/४; २२१/१; २२४/२
२. तदैव, २/२२४/४
३. तदैव, २/२३४/३
४. तदैव, २/२३३/४
५. "जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौ सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरे सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनहीं॥"
—तदैव, २/२३४/१
६. मानस, २/२३८
७. तदेव, २/२३९/४

सीमा नहीं रहती। वे प्रेम-विह्वल हो, "हे नाथ ! रक्षा कीजिए, हे गुसाईं ! रक्षा कीजिए"—ऐसा कहकर पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर पड़ते हैं—

"पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ॥"[१]

'साकेत' में भी इसी प्रकार प्रेमाकुल भरत श्रीराम के चरणों में दण्ड के समान गिर पड़ते हैं।[२]

मिलने-भेंटने और कुशलक्षेम के उपरान्त चित्रकूट की सभा में भरत श्रीराम से राज्यग्रहण करने का अनुरोध करते हैं—"मैं इन समस्त सचिवों के साथ आपके चरणों में मस्तक रख कर यह याचना करता हूँ कि आप राज्य-ग्रहण करें। मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ। आप मुझ पर कृपा करें"—

"एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥"[३]

परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ राम के किसी प्रकार न मानने पर वे यहाँ तक कहते हैं कि "यदि इनके लिए पिता की आज्ञा का पालन करना और वन में रहना अनिवार्य है तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षों तक वन में निवास करूँगा"—

"यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्त्तव्यं च पितुर्वचः ।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥"[४]

अध्यात्म रामायण में भी वे इसी प्रकार का संकल्प सुनाते हुए राम से कहते हैं कि पिताजी के कथनानुसार मैं तो आपके समान चौदह वर्षों तक वल्कल धारण करके वन में रहूँगा और आप सुखपूर्वक राज्य भोगिए।[५]

इन्हीं भावों से भावित रामचरितमानस में भरत श्रीराम से प्रार्थना करते हैं कि राज्याभिषेक की समस्त सामग्री सजाकर लायी गई है। यदि आप सम्पत्ति दें तो उसका उपयोग करें। मुझे शत्रुघ्न सहित वन को भेज दीजिए तथा आप अयोध्या जाकर सबको सनाथ करें। यदि आप अवध जाने को किसी प्रकार तैयार नहीं हैं

---

१. मानस, २/२४०/१
२. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २४०
३. वा० रा०, २/१०१/१२
४. वा० रा०, २/१११/२६
५. अध्यात्म०, २/६/३७

तो लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ अथवा हम तीनों भाई बन को चले जायँ और आप सीता सहित घर लौट जायँ।[1]

'साकेत' में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते हुए भरत श्रीराम से घर लौट जाने और स्वयं वनवास का व्रत पालन करने की याचना करते हैं—

"तब भी है तुमसे विनय, लौट घर जाओ।
'इस जाओ' का क्या अर्थ, मुझे बतलाओ॥
प्रभु पूर्ण करूँगा यहाँ तुम्हारा व्रत मैं॥"[2]

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र के साकेत-सन्त में भरत लगभग यही अभिलाषा प्रकट करते हैं—

"प्रस्तुत हूँ मैं वन हेतु राम फिर जावें।
हम लोग यहीं बस जायँ यहीं सुख पावें॥[3]

गोविन्द रामायण में भरत राम से राज्य सँभालने और उनके चरणों की सेवा करने की याचना करते हैं—

"जाऊँ कहा पग भेट कहो तुम। लाज न लागत राम कहो मुह॥
मैं अति दीन मलीन बिना गत। राखहु राज विषै चरणागत॥"[4]

परन्तु दृढ़व्रती राम के स्नेहिल बचनों से जब भरत आश्वस्त हो जाते हैं तब आधार रूप दो चरणपादुकाएँ वे श्रीराम के चरणों से सम्पर्कित करके[5] तथा उन्हें प्रणाम करके कहते हैं कि, "वीर रघुनन्दन! मैं चौदह वर्षों तक जटा और चीर धारण करके फलमूल का भोजन करूँगा तथा आपके आगमन की प्रतीक्षा में नगर से बाहर ही रहूँगा। परन्तप! इतने दिनों तक राज्य का सारा भार आपकी इन चरण-

---

१. "देव एक विनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौ मनु माना॥
सानुज पठइय मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥
नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥"
—मानस, २/२६८/४/२६९/१

२. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २५७।

३. साकेत-सन्त, ११/७।

४. गोविन्द रामायण, वनवास, पृ० ७४।

५. वा० रा०, २/११२/२३-२५।

पादुकाओं पर ही रख कर मैं आपकी बाट जोहता रहूँगा।"[१] पुनश्च वे कहते हैं कि, यदि चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर नूतन वर्ष के प्रथम दिन ही मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा—

"चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥"[२]

अध्यात्म रामायण में भी भरत श्रीराम की चरण-पादुका लेकर इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते हैं।[३]

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी श्रीराम ने भरत को अनेक प्रकार से समझाया परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मन को तोष न हुआ। तब श्रीराम ने कृपा करके उन्हें अपनी खड़ाऊँ दे दी। भरत खड़ाऊँ पाकर कृतकृत्य हो गये। उन्हें मानो राम और सीता ही मिल गये।[४]

यही नहीं, सूर के प्रेम-विह्वल भरत भी श्रीराम की पाँवरी लेकर अयोध्या लौटते हैं—

"भरत गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमगि जल ढारे।
सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे॥"[५]

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में भी भरत "अवधि पार पाने" के लिए चरण-पादुका की याचना करते हैं।[६] इसी प्रकार 'साकेत-सन्त' में वे सम्बलस्वरूप चौदह

---

१. वा० रा० २/११२/२५-२६।

२. वा० रा०, २/११२/२५-२६।

३. "नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि।
ना गमिष्यसि चेद्राम प्रविशामि महानलम्॥"
—अध्यात्म रामायण, २/९/५२-५३।

४. "बन्धु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती, बिनु अधार मन तोषु न सांती।
× × ×
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
× × ×
भरत मुदित अवलम्ब लहेतें। अस सुख जस सिय रामु रहेतें॥"
—मानस, २/३१६/१-२,४

५. सूर रामचरितावली, पद ४३ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

६. साकेत, सर्ग ८, पृ० २६३।

वर्ष तक राज्य-सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के लिए श्रीराम के चरणपीठ की अभिलाषा करते हैं—

"चौदह वर्ष धरोहर सँभले। बल-संबल पाऊँ दुखहारी ।।
चरनपीठ करुणानिधान के। रहें सदा आँखों के आगे ।।
मैं समझूँगा प्रभुपद पंकज। ही हैं सिंहासन पर जागे ।।"[1]

'मानस' के राम को भरत की इस प्रतिज्ञा का स्मरण है। अतएव लंका-विजयोपरान्त विभीषण के आग्रह पर भी वे एक दिन रुकने को तैयार नहीं हैं। वे विभीषण से कहते हैं कि मुझे भरत की दशा का स्मरण करके एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहा है। कृशकाय भरत तापस वेष में निरन्तर मेरा स्मरण कर रहे हैं। यदि अवधि बीत जाने पर जाता हूँ तो भाई को जीवित न पाऊँगा। भरत की प्रीति का स्मरण करके श्रीराम का शरीर पुलकित हो गया।[2]

वाल्मीकि रामायण में चित्रकूट से अयोध्या लौटकर रामानुरागी भरत तपस्वी एवं कर्मयोगी का जीवन व्यतीत करते हैं। जटा एवं वत्कल धारण किये वे कविधर्म का पालन करते हैं।[3] साथ ही श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा में उनकी चरण-पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त करके नन्दिग्राम में रहने लगते हैं। राज्य-प्रबन्ध का समस्त कार्य उन्हीं चरण-पादुकाओं को निवेदन करके करते हैं।[4]

अध्यात्म रामायण में भी भरत वल्कल धारण किये इन्द्रियदमनपूर्वक ब्रह्मर्षि के समान जीवन बिताते एवं समस्त राजकार्य चरण-पादुकाओं के समक्ष निवेदन करके करते हैं।[5] पद्मपुराण के पातालखण्ड में भी वर्णित है कि, "उन दिनों भरत पृथ्वी

---

१. साकेत-सन्त, १३/६२-६३।

२. "तीर कोस ग्रह मोर 'सब, सत्य वचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहिं, निमिष कल्प सम जात ।।
तापस बेष गात कृस, जपत निरन्तर मोहिं।
देखौं बेगि सो जतनु करु, सखा निहोरउँ तोहि ।।
बीतें अवधि जाउँ जौं, जिअत न पावउँ वीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि-पुनि पुलक सरीर ।।"

—मानस, २/१६ क, ख, ग,

३. वा० रा०, २/११५/२३।

४. वा० रा०, २/११५/२४-२५

५. अध्यात्म०, २/६/७३-७४

में गड्ढा खोदकर उसी में शयन करते थे। मस्तक पर जटा एवं शरीर पर वल्कल धारण किये हुए ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते थे। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे बार-बार श्रीराम-चर्चा करते हुए उनके वियोग-दुःख से पीड़ित रहते थे"[1] तथा वे श्रीराम की पादुकाओं को राज्यसिंहासन पर स्थापित करके नित्य उनकी पूजा करते थे।[2]

महाभारत 'वनपर्व' में भी कहा गया है कि श्रीराम से विदा होकर भरत नन्दिग्राम में आ गये तथा पादुकाओं को सामने रखकर समस्त राज्य का पालन करने लगे—

"विसर्जितः स रामेण पितुर्वचनकारिणा।
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं पुरस्कृत्यास्य पादुके॥[3]

उपर्युक्त संस्कृत परम्परा से प्रभावित रामचरितमानस में भी भरत ने अच्छा मुहूर्त साध कर श्रीराम की चरण-पादुकाओं को निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासन पर बैठाया तथा स्वयं सिर पर जटाजूट एवं शरीर पर मुनियोचित वल्कलादि वस्त्र धारण किये। पृथ्वी को खोदकर उसके अन्दर कुश की आसनी बिछायी। भोजन, वस्त्र, बर्तन, व्रत, नियम—सभी बातों में वे कवियों के कठिन धर्म का आचरण करने लगे।[4] यहाँ भी वे नित्यप्रति प्रेम-विह्वल हो श्रीराम की पादुकाओं का पूजन करते हैं तथा उनसे आज्ञा लेकर राजकार्य करते हैं।

"नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
मागि-मागि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥"[5]

---

१. "गर्तशायी ब्रह्मचारी जटावल्कल संयुतः।
कृशाङ्गयष्टिर्दुःखार्तः कुर्वन रामकथां मुहुः॥"
—पद्मपुराण, पाताल०, १/३०

२. तदेव, उत्तर०, २६९/१९०-१९१

३. महाभारत, वन०, २७/७/३९

४. "सुनि सिस पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि॥
× × ×
जटाजूट सिर मुनि पटधारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन-बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥"
—मानस, २/३२३; ३२४/२

५. तदेव, २/२३६

मैथिलीशरण गुप्त के रामानुरागी भरत भी घर में ही वन का व्रत लेकर एक तपस्वी का सा जीवन व्यतीत करते हैं[१] तथा श्रीराम की चरण-पादुकाओं को पादपीठ पर स्थापित करके उनकी पूजा करते हैं।[२]

'साकेत-सन्त' में भी भरत नन्दिग्राम में कुटी बनाकर संयमित जीवन व्यतीत करते हुए दिखलाये गये हैं।[३] और सिंहासन पर चरण-पादुकाओं को प्रतिष्ठित करके उनकी पूजा-अर्चना में तन्मय रहते हैं।[४]

गोविन्द रामायण में भी भरत इसी प्रकार सिर पर जटाजूट धारण कर राम की पादुकाओं को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर देते हैं तथा दिन में राज्यकार्य करते और रात्रि को श्रीराम का स्मरण—

"सीस जटान कु जूट धरे वर। राज समाज दियो पउवा पर।
राज करे दिन होत उजारइ। रैन भए रघुराज सँभारइ॥"[५]

राम-प्रेम में निमग्न भरत का शरीर कठोर तप के कारण शुष्क एवं जर्जर हो गया —

"जर्जर भो झुर झंझर ज्यों तन। राखत श्री रघुराज विसै मन॥"[६]

लंकाविजयोपरान्त श्रीराम अपने आगमन का समाचार सुनाने के लिए हनुमान को भरत के पास भेजते हैं। हनुमान उन्हें राम-प्रेम में निमग्न तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए पाते हैं—

"ददर्श भरतं दीनं कृशमात्रमवासिनम्॥
मलपङ्क विदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्भरम्।
फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम्॥"[७]

अध्यात्म रामायण के उक्त भावों से अनुप्रेरित तुलसी के मानस में भी हनुमान इसी प्रकार जटाजूट धारण किये राम-प्रेम में निमग्न कृशगात भरत को कुशासन पर बैठे देखते हैं।

---

१. "भरत ने उनके अनुराग से,
भवन में वन का व्रत ले लिया।" —साकेत, सर्ग ६, पृ० २६८
२. तदेव, सर्ग ११/पृ० ३८६-३६०
३. साकेत-सन्त, १४/२/४
४. तदेव, १४/आ०, पृ० १८५
५. गोविन्द रामायण, वनवास, पृ० ७५
६. तदेव, वनवास, पृ० ७५
७. अध्यात्म०, ६/१४/५१-५२

"बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात।
राम-राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात॥"[१]

और जिस समय प्रेमी भरत अपने प्रेमास्पद प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं उस समय भरत की प्रेम-विह्वल स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण पद्मपुराणकार ने किया है—

"दृष्ट्वा समुत्तीर्णमिमं रामचन्द्रं स तैर्युतम्।
हर्षाश्रूणि प्रमुञ्चंश्च दण्डवत्प्रणनाम ह॥
उत्थापितोऽपि च भृशं नोदतिष्ठद्रुदन्मुहुः।
रामचन्द्रपदाम्भोजग्रहणासक्त बाहुभृत्॥"[२]

"उन सहायकों सहित श्रीराम को भूमि पर उतरे देख भरत हर्ष के आँसू बहाते हुए उनके सामने दण्ड की भाँति धरती पर पड़ गये। आरम्भ में भगवान के बारम्बार उठाने पर भी वे उठे नहीं अपितु अपने दोनों हाथों से श्रीराम के चरणारविन्दों को पकड़कर निरन्तर फूट-फूटकर रोते रहे।"

इसी से प्रभावित तुलसी ने अपने मानस में भरत की उसी प्रेमातिरेकपूर्ण स्थिति का वर्णन किया है—

"गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज॥
परे प्रेम नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥"[३]

भरत के इसी निश्छल एवं सहज प्रेम के कारण ही श्रीराम को उनकी चरित्रनिष्ठा पर स्वप्न में भी अविश्वास नहीं होता। वे वन में लक्ष्मण से भरत के विषय में चर्चा करते हुए कहते हैं कि, "भरत बड़ा धर्मात्मा है। वह माता-पिता को धर्म, अर्थ एवं काम के अनुकूल वचनों से ढाँढस बँधायेगा—

"भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे।
धर्मार्थकाम सहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति॥"[४]

भरत के प्रति अगाध विश्वास के कारण ही वे कहते हैं कि "लक्ष्मण! जब मैं भरत की कोमलता का ध्यान करता हूँ तब माता-पिता के विषय में सर्वथा

---

१. मानस, ७/१
२. पद्मपुराण, पाताल०, २/२६/३१।
३. मानस, ७/४/३-४।
४. वा० रा०, २/४६/७।

निश्चिन्त हो जाता हूँ।"[१] श्रीराम भरत के स्नेह एवं सौहार्द्र से अत्यन्त प्रभावित हैं। वे यहाँ तक कहते हैं कि "भरत के स्नेह से तप्त मेरी बुद्धि मूढ़ हो जाती है"—

"भरतस्नेह संतप्ता बालिशी क्रियते पुनः ॥"[२]

इसी विश्वास एवं प्रेम के बल पर ही 'मानस' में भरत की प्रशंसा करते हुए श्रीराम कहते हैं कि "तुम धर्म की धुरी धारण करनेवाले, लोक-वेद को जानने-वाले एवं प्रेम में प्रवीण हो तथा कर्म से, वचन से और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो"—

"तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक वेद विद प्रेम प्रवीना ॥

× × ×

करम वचन मानस विमल तुम्ह समान तुम्ह तात !"[३]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार जिस समय लक्ष्मण वृक्ष पर चढ़कर भरत को ससैन्य चित्रकूट की ओर आता देखते हैं एवं उन पर सन्देह व्यक्त करते हैं, उस समय श्रीराम उन्हें शान्त करके समझाते हैं कि वीर ! पुरुषप्रवर ! भरत बड़े भ्रातृ-भक्त हैं। वे मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। वे स्नेहयुक्त हृदय से हम लोगों से मिलने ही आये हैं। उनके आगमन का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं हो सकता।[४] साथ ही वे लक्ष्मण को सावधान करते हुए कहते हैं कि तुम भरत से कोई कठोर या अप्रिय बात न कहना। यदि तुमने उनसे कोई प्रतिकूल बात कही तो वह मेरे प्रति ही कही हुई समझी जायेगी।[५] यदि तुम राज्य के लिए ऐसी कठोर बात कहते हो तो मैं भरत से मिलने पर उन्हें कह दूँगा कि तुम यह राज्य लक्ष्मण को दे दो। लक्ष्मण ! यदि मैं भरत से यह बात कहूँ कि 'तुम राज्य इन्हें दे दो' तो वे 'बहुत अच्छा' कहकर अवश्य मेरी बात मान लेंगे—

"यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यस्मै प्रदीयताम् ॥
उच्चमानो हि भरतो मया लक्ष्मणः तद्वचः।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते ॥"[६]

---

१. वा० रा०, २/४६/८।
२. तदेव, ३/१६/३८।
३. मानस, २/३०३/४ ; दो० ३०४।
४. वा० रा०, २/६७/६-११।
५. तदेव, २/६७/१५।
६. वा० रा०, २/६७/१७-१८।

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी श्रीराम का भरत के प्रति अगाध विश्वास है। वे लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं कि "वास्तव में राज्य का मद सबसे कठिन होता है। किन्तु जिन्होंने साधु पुरुषों का सेवन नहीं किया वे ही नृपति राजमदरूपी मदिरा का पान करके मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण ! सुनो। भरत के समान उत्तम पुरुष की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया और न देखा ही गया है। अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है, विधि, हरि, हर-पद पाकर भी भरत को राज्य का मद होना सम्भव नहीं। क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीर समुद्र पट सकता है ?[1] लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी और पिताजी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है।"[2]

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में भी इसी प्रकार लक्ष्मण की शंका पर श्रीराम अत्यन्त विश्वासपूर्वक कहते हैं कि मुझे तो ऐसा लगता है कि भरत अयोध्या को सूनी करके राज्यलक्ष्मी से विमुख हो सम्पूर्ण प्रजासहित यहाँ आ रहे हैं—

> "भद्रे, न भरत भी उसे छोड़ आये हों,
> मातृश्री से भी मुँह न मोड़ आये हों।
> लक्ष्मण, लगता है यही मुझे हे भाई,
> पीछे न प्रजा हो पुरी शून्य कर आई ॥"[3]

शक्ति

रामकथा में भरत के शक्ति-प्रदर्शन के अधिक अवसर नहीं आये हैं। हाँ, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान द्वारा रात्रि में द्रोणगिरि ले जाते समय भरत की सतर्कता एवं शक्ति के दर्शन अवश्य होते हैं। अधिकांश हिन्दी-रामकथाकारों ने उक्त घटना का उल्लेक किया है किन्तु संस्कृत के प्रमुख रामकाव्यवाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण—इस सम्बन्ध में सर्वथा मौन हैं। वस्तुतः हिन्दी के रामकथा गायकों को

---

१. "कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबते कठिन राजमदु भाई ॥
जौ अचवंत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधु सभा जेहिं सेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥
भरतहि होइ न राजमदु, विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाई ॥"
मानस, २/२३१/३ से दो० २३१ तक

२. "लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहि भरत समाना ॥"
—तदेव, २/२३२/२

३. साकेत, सर्ग ८, पृ० २३८

इसकी प्रेरणा हनुमन्नाटक एवं आनन्द रामायण से मिली है। वहाँ उक्त घटना का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन मिलता है।

हनुमन्नाटक में भरत के वाण से आहत हनुमान, 'हा राम ! हा लक्ष्मण !! मैं कहाँ हूँ, कहकर पूँछ के अग्रभाग से द्रोणगिरि उठाये मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।[1] आनन्द रामायण के अनुसार हनुमान द्रोणगिरि को लेकर आकाशमार्ग से जा रहे थे कि रास्ते में भरत ने वाण मारकर उनके हाथ से वह पर्वत गिरा दिया। रामरूप से साम्य होने के कारण भरत को देखकर हनुमान घबड़ा गये। उन्हें भ्रम हुआ कि कहीं रावण से हारकर राम यहाँ तो भाग नहीं आये ? अतएव उन्होंने पूछा कि आप यहाँ कहाँ से और क्यों आ गए ? यह बात सुनकर भरत ने उन्हें राक्षस समझा तथा धनुष पर एक तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर मारने को उद्यत हुए। जब हनुमान को यह ज्ञात हुआ कि ये राम नहीं हैं तब उन्होंने कहा कि मैं राम का दूत हूँ, तुम मेरा पराक्रम देखो। अस्तु भरत आश्वस्त हुए। इस आख्यान में हनुमान लक्ष्मण को जीवित करके द्रोणगिरि को पुनः उसके स्थान पर रख आते हैं तथा भरत को लक्ष्मण के जीवित होने का शुभ समाचार भी सुनाते हैं।[2]

इसी प्रकार रामचरितमानस में रात्रि के समय हनुमान को पर्वत लिये आकाश मार्ग से गमन करते देखकर भरत उन्हें कोई राक्षस समझ बैठते हैं तथा बिना फलवाले वाण से मार कर गिरा देते हैं। जब हनुमान राम-नाम का उच्चारण करके मूर्च्छित हो जाते हैं, उस समय भरत उन्हें राम भक्त जानकर अत्यन्त व्यग्र हो उठते हैं। वे उन्हें हृदय से लगाकर अपने को अनेक प्रकार से धिक्कारते हैं। भरत के यह कहने पर कि यदि रघुनाथ मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर पीड़ा एवं श्रमरहित हो जाय। हनुमान श्रीराम की जय-जयकार करते हुए उठ बैठते हैं। कुशल-क्षेमोपरान्त विदा के समय भरत उनसे कहते हैं कि हे तात ! तुम्हें जाने में देर होगी और प्रातः होते ही काम बिगड़ जायेगा, अतएव तुम पर्वत सहित मेरे वाण पर चढ़ जाओ। मैं तुम्हें श्रीराम के पास शीघ्र ही भेज दूँ। यहाँ पर तुलसी ने यह मौलिक उद्भावना करके भरत की अतुल शक्ति का पुनः स्मरण कराया है। भरत के इन वाक्यों से हनुमान को अभिमान हुआ कि मेरे भार से वाण कैसे चलेगा। परन्तु श्रीराम

---

१. "पुंखावशेष भरतेषु ललाटपट्टो। हा राम लक्ष्मण कृतोहमिति ध्रुवाणः।
संमूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो। लांगूलशेखररुहेण सकेसरेण॥"
—हनु०, १३/२५

२. आनन्द रामायण, सारकाण्ड, ११/६२-६६।

के प्रभाव का स्मरण कर वे आश्वस्त हो गये।[1] इस प्रकार तुलसी ने भरत की अतुल शक्ति का श्रेय श्रीराम-प्रभाव को ही दिया।

मैथिलीशरण गुप्त ने किंचित परिवर्तन के साथ उक्त घटना का उल्लेख किया है। यहाँ हनुमान के संजीवन हेतु जाते समय ही भरत उन्हें राक्षस समझकर बाण से गिरा देते हैं।[2] हनुमान के मुख से हा लक्ष्मण ! हा सीते ! का आर्त्तनाद सुनकर भरत अत्यन्त व्यग्र हो उठते हैं। परन्तु अयोध्या में पहले से ही प्रतिष्ठित संजीवनी महोषधि के उपचार से वे स्वस्थ हो जाते हैं।[3] पुनः वे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करके कहते हैं कि मैं आज उन भरत के दर्शन करके धन्य हूँ जिनकी चर्चा करते समय श्रीराम के नेत्रों में सदैव प्रेमाश्रु भर आते हैं—

"धन्य भाग इस किंकर ने भी, उनके शुभ दर्शन पाये ॥
जिनकी चर्चा कर सदैव ही, प्रभु के भी आँसू आये ॥"[4]

हनुमान को संजीवनी हेतु द्रोणगिरि नहीं जाना पड़ता प्रत्युत वे अयोध्या से ही उक्त संजीवनी लेकर श्रीराम के पास लौट जाते हैं। इस प्रकार साकेतकार ने परम्परा का निर्वाह करते हुए भी घटनाक्रम में एक नवीन मोड़ दे दिया है।

डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र कृत साकेत-सन्त में भरत द्रोणगिरि से लौटते समय ही हनुमान को बाण से आहत करते हैं।[5] वे राम-नाम का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित हो जाते हैं, तब भरत दुःख से अत्यन्त व्यथित हो उठते हैं—

"मारा बाण, गिरे मारुत सुत, 'राम' यही बस बोले।
एक बोल ने किन्तु भरत के लाखों भाव टटोले ॥

कल न मिली जब तक वह जागृति फिर से लौट न आयी।"[6]

जब भरत को यह ज्ञात हुआ कि युद्ध-भूमि में लक्ष्मण मूर्च्छित पड़े हैं तथा उन्हें संजीवनी की तत्काल आवश्यकता है तो वे हनुमान से कहते हैं कि आप मेरे वाण

---

१. मानस, ६/५८/४ से ६०/ ४ तक
२. साकेत, सर्ग ११, पृ० ४१६।
३. साकेत, सर्ग ११, पृ० ४१७।
४. तदेव, सर्ग ११, पृ० ४१८।
५. साकेत-सन्त, १४/आ०, पृ० १९९।
६. तदेव, चतुर्दश सर्ग, पृ० २००।

पर चढ़ जाइए, यह वाण मंत्र की तरह क्षण भर में लंका पहुँचा देगा ।[१] परन्तु स्वस्थ होकर हनुमान यहाँ लघिमा सिद्धि द्वारा उड़ जाते हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त घटना के संदर्भ में भरत की अप्रतिम शक्ति का कुछ आभास मिल जाता है । वैसे उनके महत्व का कारण उनका पराक्रम नहीं वरन् उनका शीलाचरण एवं रामानुराग है । वास्तव में भरत के शीलाचरण के कारण ही उनका चरित इतना अधिक उज्ज्वल एवं उदात्त बन गया है कि वह राम के पावन चरित की तुलना में किसी प्रकार भी न्यून अथवा हीन नहीं कहा जा सकता । गोस्वामी तुलसीदास का तो यहाँ तक विश्वास है कि यदि कोई भरत के निष्कलुष एवं निर्मल चरित का नियमपूर्वक श्रवणमात्र कर ले तो वह संसार से विरक्त होकर श्रीराम-चरणों का अवश्य ही अनुरागी बन जायेगा—

"भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस विरति ।।"[२]

———

१. "संजीवन-इच्छुक सागर में । मूर्च्छित पड़ा लखन सा भाई ।।
भरत हुए विह्वल यह सुनकर । कहा बढ़ो इस शर पर चढ़कर ।।
पल में मंत्र सदृश लंका तक पहुँचा देगा शर सुखदाई ।।"
—साकेत-सन्त, चतुर्दश सर्ग, पृ० २०२

२. मानस, २/३२६ ।

पञ्चम् अध्याय

लक्ष्मण

□

संस्कृत एवं हिन्दी वाङ्मय के सभी राम कथाकारों ने लक्ष्मण को राम से प्रकृति एवं गुणों की दृष्टि से यद्यपि भिन्न रूप में चित्रित किया है किन्तु वस्तुतः वे दो शरीर एक प्राण थे। लक्ष्मण का व्यक्तित्व पूर्णतः राम में विसर्जित था। वे आजीवन राम के अनुगामी रहे। राम से एक क्षण का वियोग भी उन्हें असह्य था।[१] यहीं नहीं, जीवन की अन्तिम वेला में जिस समय राम ने उनका परित्याग किया, उन्होंने अपना अस्तित्व तत्क्षण समाप्त कर दिया।[२] अतएव राम से भिन्न एवं पृथक् उनके व्यक्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उनके बिना राम का चरित अधूरा ही रह जाएगा। उन्हें राम का पूरक कहना अनुपयुक्त न होगा। राम की कीर्ति-पताका को ऊँचा उठाने एवं उसे फहराने वाले दृढ़ दंड वस्तुतः लक्ष्मण ही रहे हैं।[३]

उनका चरित आद्यन्त शौर्य, पराक्रम एवं पौरुष से परिपूर्ण रहा है। यद्यपि रामकाव्य-परम्परा में लक्ष्मण-चरित एक आदर्श मानवरूप में चित्रित किया गया है किन्तु हिन्दी के सूर, तुलसी प्रभृति राम-कथाकारों ने अध्यात्म रामायण से प्रभावित होकर तात्विक दृष्टि से उन्हें शेषावतार रूप माना है।[४]

---

१. वा० रा०, १/१८/२९-३१।

२. तदेव, उत्तरकाण्ड, सर्ग १०६।

३. "रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका।"

—मानस १/१७/३।

४. (अ) अध्यातम रामायण

(१) "शेषस्तु लक्ष्मणोराजन् राममेवान्वपद्यत्।" —१/४/१७

(२) "असौ शेषस्तमन्वेतिलक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम्।।" २/५/१२

लक्ष्मण श्रीराम के बाह्य प्राण[१] ही नहीं अपितु उनके सुहृद, सचिव, भक्त, सेवक, सहोदर एवं पुत्र सभी कुछ थे।[२]

(ब) तुलसी

(१) "सेष सहस्र सीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर॥"

—मानस, १/१७/४

(२) "जौ सहस सीसु अहीसु महि धरु लखनु सचराचर धनी।"

—तदेव, अयोध्या०, सो० १२६ के पूर्व का छंद।

(३) "मेघनाद सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठै चले खिसियाइ॥"

—तदेव, ६/५४

(स) सूरदास

(1) "तीनों व्यूह संग लै प्रगटे पुरुषोत्तम श्रीराम।
संकर्षन-प्रद्युम्न, लक्ष्मन-भरत महासुखधाम।
शत्रुघ्नहिं अनिरुध कहियतु हैं, चतुर्व्यूह निजरूप।"

—सूर रामचरितावली, गीता प्रेस, पद २०१।

१. "लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिः प्राणः इवापरः।"

—वा० रा०, १/१८/३०

२. **(अ) तुलसी**

"बंदउ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥"

—मानस, १/१६/३

(ब) केशव

"बारक लक्ष्मण मोंहि बिलोको। मो कहँ प्राण चले तजि रोको।
हौं सुमिरौं गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे॥"

—रा० चं०, १७/४४।

(स) मैथिलीशरण गुप्त

"अनुज! मुझसे न तुम न्यारे कभी हो।
सुहृत सहचर, सचिव सेवक सभी हो॥"

—साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८७

रूप-सौन्दर्य

लक्ष्मण की जीवनचर्या आद्यन्त श्रीराम से अपृथक् एवं अभिन्न रही है। उन्होंने स्वयं को राम के व्यक्तित्व में इतना विसर्जित एवं विलीन कर दिया था कि उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं रह गया था।

अतएव चारित्रिक विशेषताओं के अतिरिक्त दोनों के रूप-सौन्दर्य का चित्रण भी अधिकांशतः सभी कवियों ने एक साथ ही किया है। राम से पृथक् लक्ष्मण की रूप-सुषमा का विवेचन अत्यल्प ही हुआ है।

लक्ष्मण का शरीर चम्पक, स्वर्णिम गौर वर्ण का था। मिथिला में जनक राम-लक्ष्मण के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर चकित हो जाते हैं तथा विश्वामित्र से कहते हैं कि—

"तनुश्रिया निर्जितचम्पकोत्पलौ।
सुवर्णनीलोत्पल कोशकोमलौ॥
अहो! दृशामुत्सवदानदक्षिणौ।
सुलक्षणौ लक्ष्मण-लक्ष्मणाग्रजौ॥"[१]

"शरीर की कान्ति से चम्पक और नीलकमल को जीतने वाले सुवर्ण और नीलकमल के भीतरी भाग के सदृश कोमल, नेत्रों के उत्सवदान में उदार और शुभ लक्षणों से सम्पन्न वे लक्ष्मण और उनके बड़े भाई राम हैं। आश्चर्य है।"

प्रसन्नराघव के उक्त स्थल से प्रेरित होते हुए भी तुलसी ने इस युगलजोड़ी का जो रूप-चित्रण किया है वस्तुतः वह अपेक्षाकृत कहीं अधिक आकर्षक एवं मनो-मुग्धकारी है। यही नहीं, विदेहजनक अपना सहज वैराग्य भूलकर चकोरवत् इस रूप-माधुरी के दर्शन में निमग्न हो जाते हैं। उन्हें विवश होकर कहना पड़ता है—

"कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा॥
सहज विराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

× × ×

इन्हहि विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा॥"[१]

विश्वामित्र भी उनकी बात स्वीकार करते हुए कहते हैं—

"राम लखनु दोउ बंधुवर, रूप सील बल धाम॥"[३]

---

१. प्रसन्नराघव, ३/२१।
२. मानस, १/२१६/१-३।
३ तदेव, १/२१६।

क्योंकि श्यामल एवं गौरवर्ण वाले दोनों भाई तो उनकी महानिधि ही बन चुके हैं—

"स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। विस्वामित्र महानिधि पाई॥"[१]

गीतावली में भी तुलसी ने लक्ष्मण को चम्पक पुष्प के समान गौरवर्ण का कहा है—

"बूझत जनक 'नाथ' ढोटा दोउ काके हैं ?
तरुन तमाल चारु चम्पक बरन तनु,
कौन बड़े भागी के सुकृत परिपाक हैं।"[२]

इसी प्रकार केशवकृत रामचन्द्रिका में भी जनक विश्वामित्र से पूछते हैं कि ये शोभायुक्त सुन्दर श्याम और गौरवर्ण वाले किसके पुत्र हैं ? मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि ये दोनों सहोदर या विष्णु और ब्रह्मा ही अवतरित हुए हैं—

"ये सुत कौन के शोभहिं साजे। सुन्दर श्यामल गौर बिराजे॥
जानत हौं जिय सोदर दोऊ। के कमला विमलापति दोऊ॥"[३]

इस पर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण का रूप-निरूपण करते हुए कहते हैं—

"सुन्दर श्यामल राम सु जानौं। गौर सु लक्ष्मण नाम बखानौ॥
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ। सूरज के कुलमण्डन दोऊ॥"[४]

वाल्मीकि रामायण में हनुमान सीता से लक्ष्मण की परिचयात्मक विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम के सौतेले भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। अनुराग, रूप और सद्गुणों की दृष्टि से भी वे श्रीराम के ही समान हैं। उन दोनों भाइयों में अन्तर इतना ही है कि लक्ष्मण के शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान गौर है और महायशस्वी श्रीराम का विग्रह श्याम-सुन्दर है।[५]

---

१. मानस, १/२०६/२।

२. गीतावली, १/६४/१।

३. रा० चं०, ५/२८।

४. तदेव, ५/२६।

५. "भ्राता चास्य च वैमात्रः सौमित्रिरीमतप्रभः॥
अनुरागेण रूपेण गुणेश्चापि तथाविधः॥
स सुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः॥"
—वा० रा०, ५/३५/२२-२३

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने भी गीतावली में राम के साथ-साथ लक्ष्मण के रूप एवं शारीरिक गठन का बड़ा मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है।[1]

यही नहीं, गीतावली के अनेक स्थलों पर लक्ष्मण के आकर्षक रूपसौंदर्य का चित्रण उपलब्ध होता है।[2]

सूर ने भी राम के साथ लक्ष्मण के सौन्दर्य का निरूपण करते हुए उन्हें खंजन एवं चंचल मृग के नेत्र तथा स्वर्णलता सदृश सुन्दर कटि एवं शरीरवाला कहा है।[3]

चपल एवं विनोदी स्वभाव

लक्ष्मण की प्रकृति का प्रथम एवं स्पष्ट रूप मिथिला में धनुषयज्ञ के अवसर पर मिलता है। वहाँ उनके बालसुलभ चपल एवं विनोदी रूप के दर्शन होते हैं।

प्रसन्नराघव में शिवधनु टूटने पर क्रुद्ध परशुराम को शान्त करते हुए जब राम यह कहते हैं कि हम ब्राह्मणों के प्रति शौर्य का प्रदर्शन नहीं करते तब इस बात से वे स्वयं को एवं ब्राह्मण जाति को अपमानित हुआ समझते हैं तथा कहते हैं कि तुम क्षत्रिय जाति पर गर्व कर ब्राह्मण जाति को तृणवत् तुच्छ समझ रहे हो।[4] इसके उत्तर में जब राम क्षत्रियों को ब्राह्मणों की अपेक्षा अल्प शक्तिवाला बताते हैं, तब लक्ष्मण भी व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि, "श्रीराम ने यह ठीक ही कहा, क्योंकि हम

---

१. "नील पीत नीरज कनक मरकत घन—
दामिनि-बरन तनु, रूप के निचोर हैं।
सहज सलोने, राम-लखन ललित नाम,
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं।
चरन सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीके कै निषंग कसे, कर कमलनि लसे,
बान-बिसिषासन मनोहर कठोर हैं।

—गीतावली, १/७३/२-३

२. गीतावली, १/७४, १/७६, १/७८, १/८३

३. देखो भाई ! राम लखन दोउ आवत।
मधुर चालि, दृग भले मनोहर, खंजन लोल कुरंग लजावत।
कनकलता सम विकट तरल मथि लोल पवन विचलावत॥"

—सूर रामचरितावली, गीता प्रेस १/६

४. प्रसन्नराघव, ४/२५

राजाओं के पास एक गुण (शिंजिनी) वाला यह धनुष ही है, परन्तु आप ब्राह्मणों के पास नौ गुण (सूत्र) वाले यज्ञोपवीत का परम बल होता है।"[१]

यह सुनकर जामदग्न्य चिढ़ जाते हैं। राम उन्हें शान्त करते हुए कहते हैं कि "भृगुपति ! इस दुधमुँहे बच्चे पर क्रोध न करके क्षमा कीजिए।[२]"

लक्ष्मण से अधिक चिढ़े हुए भार्गव कहते हैं कि यह दुधमुँहा अबोध बालक नहीं वरन् विषकंठ है।[३]

परशुराम के विषकंठ शब्द के साम्य पर लक्ष्मण भार्गव को शितिकंठ-शिष्य (महादेव का शिष्य) कहते हैं;[४] इस पर वे और भी अधिक खीझ उठते हैं। तब लक्ष्मण उन्हें और चिढ़ाते हुए कहते हैं कि मेरा आपको 'शितिकंठ-शिष्य' कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार शिव के मस्तक पर शीतल बालचन्द्र आरूढ़ रहने के कारण उन्हें क्रोध नहीं आता उसी प्रकार उन्हीं के शिष्य होने के कारण आपको भी मेरे प्रति क्षमा करनी चाहिए।[५]

पुनश्च परशुराम जब अपने पूर्व कृत्यों एवं बल-पौरुष की डींग हाँकते हुए कहते हैं कि मेरे द्वारा क्षत्रिय तरुणों के कंठों के रक्त से युद्ध-भूमि नीरेणुका (धूल-रहित या रेणुका रहित) हो गई। तब लक्ष्मण चुटकी लेते हुए उनका समर्थन करते हैं कि वास्तव में उनके परशु से भूमि रेणुका (परशुराम की माता) रहित हो गई। लक्ष्मण के इस व्यंग्य पर परशुराम मर्माहत हो उठते हैं तथा अत्यन्त क्रुद्ध हो लक्ष्मण का वध करने को उद्यत हो जाते हैं।[६]

तुलसी के मानस में लक्ष्मण-चरित का यह पक्ष वस्तुतः प्रसन्नराघव से ही अनुप्रेरित है, परन्तु तुलसी की प्रतिभा एवं कौशल ने उसे और भी अधिक मर्मस्पर्शी, प्रेरक किन्तु विस्तृत रूप प्रदान किया है।

---

१. "यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभृता।
यस्माकं, भवतां पुनर्नवगुणं यज्ञोपवीतंबलम् ॥"
—प्रसन्नराघव, अंक ४, श्लोक २५

२. "अलमिह क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया तत्क्षम्यताम् ॥"
—तदेव, अंक ४, श्लोक २६ के आगे।

३. "आः ! किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति। विषकण्ठः खल्वणौ।"
—तदेव, अंक ४, श्लोक २६ के आगे

४. तदेव, ४/२७

५. तदेव, अंक ४, श्लोक २७ के आगे।

६. प्रसन्नराघव, ४/२६-३०

प्रसन्नराघव की भाँति यहाँ भी क्रुद्ध परशुराम के प्रति जब राम अनेक बार 'विप्र' शब्द का प्रयोग कर उन्हें शांत करते हुए कहते हैं कि, "ब्राह्मणों के हृदय में दया होनी चाहिए, अतएव हम क्षम्य हैं तथा हम प्रत्येक प्रकार से हीन हैं।"[१]

प्रसन्नराघव से प्रभावित तुलसी ने वही बात लक्ष्मण के स्थान पर राम के मुख से कहलवायी है।[२]

यहाँ भी वे विप्र शब्द सुनकर अपना अपमान समझते हैं और अत्यधिक क्रुद्ध हो कहने लगते हैं—

"निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सनावउँ तोही॥"[३]

तुलसी के लक्ष्मण मानस में प्रसन्नराघव की अपेक्षा कुछ अधिक मुखर एवं वाचाल हैं।

परशुराम के बार-बार यह कहने पर कि शिव-धनुष तोड़नेवाला मेरा सहस्रबाहु के समान घोर शत्रु है। लक्ष्मण परशुराम की हँसी उड़ाते हुए कहते हैं कि "हे गोसाईं ! लड़कपन में मैंने बहुत सी धनुहियाँ तोड़ डालीं, किन्तु आपने कभी ऐसा क्रोध नहीं किया। क्या कारण है कि आपका इस धनुष के प्रति इतना अधिक ममत्व है?"[४] इस पर परशुराम का क्रोध भड़क उठता है, वे कहते हैं—

"रे नृप बालक कालबस, बोलत तोहि न संभार।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार॥"[५]

पुनश्च लक्ष्मण उस धनुष को सामान्य कोटि का बताते हुए कहते हैं कि, "पुराने धनुष को तोड़ने में क्या लाभ-हानि? हे मुनि ! श्रीराम ने इस जीर्ण धनुष को

---

१. "छमहु चूक अनजानत केरी। चाहिअ विप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहि तुम्हहि सरबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
—मानस, १/२८२/२-३

२. "देव एकु गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे॥"
—तदेव, १/२८२/४

३. मानस, १/२८३/१।

४. तदेव, १/२७१/२-४।

५. तदेव, १/२७१।

नवीन धनुष समझा तथा वह उनके स्पर्शमात्र से ही टूट गया; अतएव इसमें उनका कोई दोष नहीं है।"[१]

लक्ष्मण द्वारा उन्हें बार-बार मुनि कहने पर भार्गव ने अपने परशु की ओर देखकर कहा कि "अरे दुष्ट ! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना ? मेरे इस कराल परशु ने पृथ्वी को अनेक बार राजाओं से रहित कर दिया है तथा सहस्रबाहु की भुजाओं को काटनेवाला मेरा यह घोर परशु गर्भ के बच्चों का भी उन्मूलक है।"[२]

इस पर लक्ष्मण भी अमर्ष में भरकर व्यंग्य करते हैं कि "आप मुझे बार-बार कुल्हाड़ी दिखाकर फूंक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं। यहाँ कोई कुम्हड़े का बतिया (छोटा कच्चा फल) नहीं है जो तर्जनी उँगली को देखते ही मर जाता है। आपको वीरवेष में देखकर मैंने अभिमानपूर्वक कुछ क्षत्रियोचित बातें कहीं हैं। हाँ, आपको यज्ञोपवीतधारी एवं भृगुवंशी ब्राह्मण समझकर अपने क्रोध को रोक रहा हूँ; क्योंकि देवता, गौ और ब्राह्मण पर हम लोग शौर्य का प्रदर्शन नहीं करते। ब्राह्मण का वध या उससे पराजित होना—दोनों में ही अपना अकल्याण है। आपका तो वचन ही करोड़ों वज्रों के समान कठोर है, फिर आप व्यर्थ ही धनुष-वाण एवं परशु धारण किए हुए हैं।"[३]

इससे जब परशुराम के क्रोध की गंभीरता अधिक बढ़ जाती है तब वे कौशिक से उलाहना भरे स्वर में कहते हैं कि "यह बालक अत्यन्त धृष्ट, कुटिल, कुबुद्धि एवं कुलांगार है। यदि इसे मरने से बचाना चाहते हो तो इसे मेरा प्रताप, बल और क्रोध बताकर मना कर दो अन्यथा, मैं सबके समक्ष कहे देता हूँ कि फिर मेरा दोष न होगा।"[४] वस्तुतः यह खीझ की चरम सीमा है, परन्तु लक्ष्मण इतने पर भी चुप नहीं रहते। वे एक चुटकी लेते हुए कहते हैं कि "हे मुनि ! आपके रहते हुए दूसरा कौन आपका यश-पराक्रम वर्णन कर सकता है।"[५] इस प्रकार विवाद बढ़ जाता है। परशुराम अत्यन्त क्रुद्ध हो फरसा उठाकर विश्वामित्र से कहने लगते हैं कि "आपके संकोचवश मैं इसे छोड़ रहा हूँ अन्यथा इस कुठार से इसे काटकर गुरु से उऋण हो जाता।"[६]

---

१. मानस, १/२७२/१-२।
२. तदेव, १/२७२।
३. तदेव, १/२७३/१-४।
४. तदेव, १/२७४/१-२।
५. तदेव, १/२७४/३।
६. तदेव, १/२७५/४।

लक्ष्मण मानते नहीं, वे मार्मिक वाक्य से उन्हें आहत करते हुए उपर्युक्त प्रसन्नराघव की ही छायाभूमि में कहते हैं कि "आप माता-पिता से तो पहले ही उऋण हो गये, केवल गुरु-ऋण ही शेष बचा था, मानो वह मेरे ही मत्थे काढ़ा था। बहुत दिन बीत गये, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब किसी हिसाब करने वाले को बुला लाइए तो मैं तुरन्त थैली खोलकर दे दूं।"[1]

बात काफी बढ़ गई। परशुराम ने लक्ष्मण को मारने के लिए अपना फरसा सम्भाला। सारी सभा 'हाय-हाय' करके चिल्ला उठी। परन्तु काल से भी न डरने वाले रघुवंशी लक्ष्मण को ताव आ गया। वे कहने लगे कि हे "भार्गव! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं, आपको मैं केवल ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ। आपको कभी रण में कोई बलवान सुभट नहीं मिला, इसी कारण आप इतनी डींग हाँक रहे हैं। ब्राह्मण और देवता अपने घर में ही शेर होते हैं।"[2] परन्तु सबके अनुचित कहने और श्रीराम के संकेत पर लक्ष्मण शान्त हो गये।

तत्पश्चात् प्रसन्नराघव[3] की ही भाँति यहाँ भी श्रीराम शान्त एवं कोमल वाणी में भार्गव से लक्ष्मण को क्षमा कर देने के लिए कहने लगे कि "हे नाथ! इस दुधमुँहे बच्चे पर क्रोध न कीजिए—

"नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध-दूध मुख करिअ न कोहू॥"[4]

परन्तु इतने में ही लक्ष्मण के कुटिल हास्य से परशुराम के क्रोध का पारा पुनः चढ़ जाता है और वे प्रसन्नराघव[5] की भाँति कहते हैं कि "यह शरीर से गोरा है किन्तु हृदय का काला है, दुधमुँहाँ नहीं।"[6] इस पर लक्ष्मण कहते हैं कि "क्रोध पाप का मूल है और क्रोध करने से काम बनेगा भी नहीं। यदि आपको यह धनुष प्रिय है तो किसी गुणी कारीगर को बुलाकर इसके जोड़ने का उपाय करना चाहिए।"[7]

---

१. मानस, १/२७६/१-२।

२. तदेव, १/२७६/३-४।

३. प्रसन्नराघव, ४/२६-२७।

४. मानस, १/२७७/१।

५. "आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति। विषकण्ठः खल्वसौ॥"

—प्रसन्नराघव, अंक ४, श्लोक २६-२७

६. मानस, १/२७७/४।

७. तदेव, १/२७७/२ से २७७/२ तक।

लक्ष्मण की इस प्रकार की निर्भय किन्तु परशुराम के क्रोध को उद्दीप्त करने वाली वाणी को सुनकर मिथिला के सभी नर-नारी थर-थर काँप रहे हैं तथा जनक लक्ष्मण से चुप हो जाने का आग्रह करते हैं। अन्ततः राम के रोकने पर वे चुप होकर विश्वामित्र के पास चले जाते हैं। परन्तु राम-परशुराम-संवाद के मध्य भी लक्ष्मण कटूक्तियाँ एवं व्यंग्य करते रहते हैं। जब जामदग्न्य जनक से कहते हैं कि इस छोटे किन्तु खोटे राजपुत्र को मेरे नेत्रों के सामने से हटा दो तब लक्ष्मण व्यंग्य करते हैं कि आप आँखें मूँद लें फिर कहीं कोई नहीं दिखलाई देगा।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लक्ष्मण के चरित का यह पक्ष यद्यपि मूल-रूप से प्रसन्नराघव से ही विरासत में मिला है, किन्तु तुलसी ने अनेक उक्तियों एवं जनश्रुतियों द्वारा उसे और भी अधिक मार्मिक, स्वाभाविक, जनग्राह्य एवं विशद रूप प्रदान किया है।

रामचन्द्रिका में परशुराम के सन्दर्भ में लक्ष्मण का व्यंग्य-प्रधान चपल किन्तु उग्र रूप प्रसन्नराघव से प्रभावित होते हुए भी उतना मार्मिक एवं प्रखर नहीं हो पाया जितना रामचरितमानस के लक्ष्मण का। कारण यह है कि प्रसन्नराघव या रामचरितमानस में परशुराम का आगमन मिथिला की रंगशाला में होता है जहाँ राम के सहयोगी रूप में केवल लक्ष्मण ही हैं; अतः उन्हें बोलने का अधिक अवसर प्राप्त होता है। रामचन्द्रिका में वाल्मीकि रामायण की भाँति भार्गव बारात के लौटते समय मार्ग में मिलते हैं। यहाँ राम के साथ लक्ष्मण के अतिरिक्त भरत एवं शत्रुघ्न भी हैं तथा राम की सहायतार्थ तीनों ही भाई जामदग्न्य से युद्ध करते हैं। अतएव लक्ष्मण को बोलने का उतना अधिक अवसर नहीं मिलता, परन्तु यहाँ लक्ष्मण जो भी बोलते हैं वह प्रसन्नराघव से प्रभावित है।

रामचन्द्रिका में जब परशुराम राम के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहते हैं कि "हे राम! यह मेरा कुठार तुम्हारे ही गले का रक्त पीना चाहता है"[२] तब लक्ष्मण तिलमिला उठते हैं और प्रसन्नराघव[३] की ही भाँति ब्राह्मण को अवध्य बतलाते हुए कहते हैं कि "जिन ब्राह्मणों की कृपा सबके मंगल की वृद्धि करती है उनको दण्ड देने की बात चित्त में कैसे आ सकती है? जिनको संसार अच्छत-पुष्पादि से पूजता है उनके शरीर को कौन सक्षत (घायल) करेगा—

---

१. मानस, १/२८०/३-४

२. रामचन्द्रिका, ७/३१

३. प्रसन्नराघव, ४/२५

"जिनको सुअनुग्रह वृद्धि करे, तिनको किमि निग्रह चित्त परै ।
जिनके जग अच्छत सीस धरै, तिनको तन सच्छत कौन करै ।"[१]

इसी प्रकार जब परशुराम चारों भाइयों को ललकारते हुए कहते हैं कि तुम सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित क्षत्रिय होने पर भी मुझे देखकर मृत्यु से डरते हो किन्तु मैं तुम्हें अवश्य मार डालूँगा। तब लक्ष्मण 'प्रसन्नराघव'[२] की ही भाँति मातृहन्ता परशुराम के प्रति व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि "क्षत्रिय होकर हम लोग गुरुजनों की रक्षा करते हैं तथा उनके गुण-अवगुण की ओर भूलकर भी ध्यान नहीं देते परन्तु आपने अपनी माता को आनन्दित होकर मार डाला और आपके मन में तनिक भी ग्लानि नहीं हुई; अस्तु यदि हम आपको मार डालें तो हमें गुरु-हत्या का किंचित पाप न लगेगा।"[३]

इस प्रकार यहाँ लक्ष्मण को बोलने का जो यत्किंचित अवसर प्राप्त हुआ है उससे उनकी कटूक्तियों तथा चपल किन्तु उग्र प्रकृति का सहज अनुमान हो जाता है; वस्तुतः यह प्रसन्नराघव के प्रभाव का ही प्रतिफल है।

परन्तु 'गोविन्द रामायण' में लक्ष्मण-परशुराम-संवाद नहीं मिलता है। वहाँ परशुराम और राम में विवाद के साथ-साथ घोर युद्ध भी होता है तथा अन्त में राम विजयी होते हैं।[४]

रामानुरागी अनन्य सेवक

लक्ष्मण का अपने अग्रज श्रीराम में बाल्यकाल से ही प्रगाढ़ अनुराग था। वे लोकाभिराम श्रीराम का सदा ही प्रिय करते थे। बालमीकि के अनुसार वे मानो श्रीराम के बाह्य-प्राण थे। क्योंकि उनके बिना पुरुषोत्तम राम को निद्रा भी नहीं आती थी।[५]

---

१. रामचन्द्रिका, ७/३२

२. प्रसन्नराघव, ४/२६

३ रामचन्द्रिका, ७/३५

४. गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश।

५. "बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ॥
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः।
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिः प्राण इवापरः ॥
न च तेन बिना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥"
—वा० रा०, १/१८/२८-३०

लक्ष्मण सदैव श्रीराम का अनुगमन करते थे। जब श्रीराम घोड़े पर चढ़ कर शिकार खेलने के लिए जाते उस समय लक्ष्मण धनुष लेकर उनके शरीर की रक्षा करते हुए पीछे-पीछे जाते थे—

"यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः।
अयेनं पृष्ठतोऽभ्येति सधुनः परिपालयन ॥"[१]

आनन्द रामायण के अनुसार भी लक्ष्मण राम के साथ और शत्रुघ्न भरत के साथ खेलते हुए बढ़ने लगे—

"अथ ववृधिरे सर्वे लक्ष्मणौ राघवेण हि।
शत्रुघ्नौ भरतेनापि चकार क्रीडनादिकम् ॥"[२]

अध्यात्म रामायणकार भी इसी बात की पुष्टि करता हुआ कहता है कि लक्ष्मण सदैव सत्कारपूर्वक अपने बड़े भाई श्रीराम का अनुगमन करते थे—

लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम्।[३]

यही नहीं, मंथरा कैकेयी को उत्तेजितकरती हुई श्रीराम के प्रति लक्ष्मण के इसी अनन्य अनुराग की प्रशंसा करती हुई कहती है—

"गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः।
अश्विनोरिव सौभ्रात्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम् ॥[४]

लक्ष्मण सदैव राम की रक्षा करते हैं और श्रीराम उनकी। उन दोनों का श्रेष्ठ भ्रातृ-प्रेम दोनों अश्विनीकुमारों की भाँति तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने लक्ष्मण को श्रीराम में दृढ़ अनुराग रखनेवाले अनन्य सेवक रूप में चित्रित किया है। लक्ष्मण आजीवन श्रीराम के साथ रहे तथा बचपन से ही श्रीराम को अपना परम हितैषी स्वामी जानकर उनके चरणों में प्रीति जोड़ ली थी —

"बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी ॥"[५]

यही नहीं, 'साकेत-सन्त' के नायक भरत भी इसकी पूर्ति 'लक्ष्मण वह, जिसने एक राम को जाना'[६] कहकर करते हैं।

---

१. वा० रा०, १/१८/३१-३२
२. आनन्द, सारकांड, २/१२
३. अध्यात्म०, १/३/६१
४. वा० रा०, २/८/३१
५. मानस, १/१९८/२
६. साकेत-सन्त; ३/२६

मानस के जनक भी राम-लक्ष्मण के पारस्परिक अनुराग की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र से कहते हैं कि इनकी परस्पर की प्रीति अत्यन्त पवित्र, सुहावनी, लुब्धक साथ ही अवर्णनीय है। वस्तुतः इनमें ब्रह्म-जीव की तरह स्वाभाविक प्रेम है —

"इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि । कहि न जाइ मन भाव सुहावनि ।।
सुनहु नाथ कह मुदित विदेहु । ब्रह्मजीव इव सहज सनेहू ।।"[१]

राम के प्रति लक्ष्मण का अनन्य अनुराग उनके सेवाभाव में व्यक्त होता है। जनकपुर के प्रवासकाल में भी उन्हें अपने बड़े भाई की चरण-सेवा में रत पाते हैं। रात्रि में अनुरोध करने पर भी बिना पैर दबाये वे सोते नहीं तथा रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही उनसे पूर्व उठ जाते हैं—

"चापत चरन लखनु उर लाये। समय सप्रेम परम सचु पाये ।।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता ।।
उठे लखनु निसि बिगत सुनि, अरुन सिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति, जागे रामु सुजान ।।"[२]

राम द्वारा शिवधनु तोड़ने पर लक्ष्मण को जिस प्रकार की प्रसन्नता हुई उसका मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए तुलसी कहते हैं कि राम को लक्ष्मण किस प्रकार भावविभोर हो देख रहे हैं जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो—

"रामहि लखनु विलोकत कैसे । ससिहि चकोर किसोरकु जैसे ।।"[३]

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस की मंथरा को भी यह भलीभाँति ज्ञात है कि राम और लक्ष्मण में प्रगाढ़ प्रेम है। तभी तो वह विश्वास के साथ कैकेयी से कहती है —

"भरत बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेव।"[४]

साकेत में लक्ष्मण के एक वाक्य से ही उनका राम के प्रति दृढ़ अनुराग एवं सेवाभाव प्रतिबिम्बित होता है। वे उर्मिला से कहते हैं —

"भावती, मैं भार लूँ किस काम का ?
एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का ।।"[५]

---

१. मानस, १/२१७/२
२. मानस, १/२२६/४ ; दो० २२६
३. तदेव, १/२६३/४
४. तदेव, २/१६
५. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० ३८ (संस्करण सं० २०१४)

वनगमन के समय माता कौसल्या को रोती हुई देखकर लक्ष्मण श्रीराम के प्रति अपना दृढ़ अनुराग व्यक्त करते हुए शपथपूर्वक कहते हैं कि यदि श्रीराम जलती हुई आग में या घोर जंगल में प्रवेश करें तो मैं उनसे पहले उसमें प्रविष्ट हो जाऊँगा—

"अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्वतः ।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥"[१]

यही नहीं, राम के वनगमन के लिए दृढ़ निश्चय जानकर वे सब कुछ त्यागकर उनका अनुगमन करने के लिए व्यग्र हो उठे। भाई के विरह का दुःख उनके लिए असह्य हो गया। उन्होंने श्रीराम के दोनों पैर जोर से पकड़कर अम्बा सीता एवं राम से कहा कि यदि आपने सहस्रों वन्य पशुओं और हाथियों से भरे हुए वन में जाने का निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी धनुष लेकर आपके साथ ही आगे-आगे चलूँगा। मैं आपके बिना स्वर्ग में जाना, अमर होना तथा सम्पूर्ण लोकों का ऐश्वर्य भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता—

"स भ्रातुश्चरणौ गाढ़ं निपीड्य रघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम् ॥
यदि गन्तु कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् ।
अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥
न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया बिना ॥"[२]

श्रीराम भी अपने अनुज के अनन्य अनुराग से अपरिचित नहीं हैं।[३] वे कहते हैं कि लक्ष्मण तुम मेरे परम स्नेही, धर्मपरायण, वीर और सदा श्रेष्ठ मार्ग पर आरूढ़ रहने वाले हो। मुझे प्राणों के समान प्रिय हो तथा मेरे वश में रहने वाले, आज्ञापालक सखा हो।

---

१. वा० रा०, २/२१/१६-१७

२. तदेव, २/३१/२, ३, ५

३. "तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।
विक्रमं चैव सत्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥"

—तदेव, २/२१/३६

"स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्वधे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ॥"[१]

राम लक्ष्मण को अपने साथ वन में न चलने के लिए अनेक प्रकार से समझाते हैं, परन्तु लक्ष्मण साथ चलने का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि आपने तो मुझे पहले से ही अपने साथ रहने की आज्ञा दे रखी है, फिर इस समय मुझे क्यों रोकते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि आप मुझे अपना अनुचर बना लीजिए, ऐसा करने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और आपकी सेवा भी बनती रहेगी।[२]

अन्त में लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम विजयी होता है। राम उन्हें अपने साथ वन चलने की आज्ञा दे देते हैं।

यही नहीं, गंगा के उस पार विश्राम करते समय जब श्रीराम लक्ष्मण को माताओं की सेवा के लिए अयोध्या लौट जाने को कहते हैं तब लक्ष्मण अपने बड़े भाई से मार्मिक वाणी में कहते हैं कि, "रघुनन्दन ! आपके बिना सीता और मैं दोनों जल-विहीन मछलियों की भाँति दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते। आपके बिना आज मैं माता, पिता, भाई और स्वर्ग किसी को भी नहीं देखना चाहता।"[३]

वाल्मीकि से अनुप्रेरित एवं प्रभावित होते हुए इस स्थल पर तुलसी ने रामानुरागी लक्ष्मण की मनःस्थिति का उससे भी अधिक भावपूर्ण एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। राम-वनगमन के समाचार से लक्ष्मण विह्वल हो उठते हैं। उनका शरीर रोमांचित हो काँपने लगता है। नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं। तदुपरांत उन्होंने प्रेमातिरेक के कारण श्रीराम के चरण पकड़ लिये। वे अवाक् हो जड़वत् देखने लगे। उनकी जलविहीन मत्स्य की सी दयनीय स्थिति हो गई। वे सोचने लगे कि श्री रघुनाथ मेरे विषय में क्या निर्णय लेंगे। मुझे घर पर रखेंगे अथवा अपने साथ

---

१. वा० रा०, २/३१/१०

२. अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपि क्रियते मे निवारणम् ॥
कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते ।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते ॥ —तदेव, २/३१/७, २४

३. "न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव ।
मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥
नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परंतप ।
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना ॥"
—तदेव, २/५३/३१-३२

ले चलेंगे ? इस प्रकार शरीर एवं गृहादि सभी से तृणवत् सम्बन्ध तोड़ने वाले लक्ष्मण को अग्रज श्रीराम ने अपने समक्ष खड़े हुए देखा ।[१]

वाल्मीकि की भाँति तुलसी के राम भी उन्हें अनेक प्रकार से समझाते हुए घर पर ही रहने को कहते हैं । परन्तु लक्ष्मण इन बातों को सुनकर उसी प्रकार सूख जाते हैं जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है । प्रेमवश लक्ष्मण से कुछ उत्तर देते नहीं बनता । वे अत्यन्त व्यग्रता से श्रीराम के चरण पकड़कर कहते हैं कि 'नाथ ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं । आप मुझे छोड़ ही देंगे तो मेरा क्या वश है ? मैं तो आपके स्नेह में पालित आपका शिशु हूँ । मैं आप द्वारा निर्दिष्ट महान दायित्व का निर्वाह कैसे कर सकता हूँ ? नाथ ! आप विश्वास करें, मैं स्वभाव से कहता हूँ, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता किंबहुना मेरे तो सर्वस्व आप ही हैं । अतः मनसा-वाचा-कर्मणा जो आपके चरणों में अनुरक्त हैं, क्या वह भी त्यागने योग्य हैं ?''[२]

---

१. ''समाचार जब लछिमन पाए । व्याकुल बिलख बदन उठि धाए ।।
कंप पुलक तन नयन समीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ।।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीन जनु जल ते काढ़े ।।
सोचु हृदय विधि का हो निहारा । सब सुख सुकृतु सिरान हमारा ।।
मो कहुँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ।।
राम विलोकि बंधु कर जोरें । देह गेह सब सन तृनु तोरें ।।

—मानस, २/७०/१-३

२. ''रहहु तात असि नीति विचारी । सुनत लखनु भए व्याकुल भारी ।।
सिअरे वचन सूखि गए कैसें । परसत तुहिन तामरसु जैसें ।।
उतरु न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहुत काह बसाइ ।।

× × ×

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला । मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ।।
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ।।
मोरें सबइ एक तुम स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ।।
धरमनीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ।।
मन क्रम बचन चरन रत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ।।

—मानस, २/दो० ७१ से ७२ तक ।

परिणामतः प्रेमवश श्रीराम को अपने साथ चलने की आज्ञा देनी ही पड़ती है।

सूर ने भी लक्ष्मण की इसी प्रेमजन्य स्थिति का संक्षेप में हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है :—

"लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछु नहिं आयो, रहे चरन लपटाए।।
अन्तरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हें साथ।
सूरदास रघुनाथ चले बन, पिता वचन धरि माथ।।"[1]

वाल्मीकि से अनुप्रेरित केशवकृत रामचन्द्रिका में भी श्रीराम लक्ष्मण से अयोध्या में रुककर माताओं के दुःख-निवारण एवं उनकी सेवा करने के लिए कहते है। यहाँ राम भरत के प्रति भी आशंकित हैं तथा लक्ष्मण को शिक्षा देते हैं कि तुम भरत द्वारा दी गई यंत्रणा चुपचाप सह लेना—

"धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेवा करौ।
मातन के सुनि तात ! सुदीरघ दुःख हरौ।।
आय भरत्थ कहाँधौं करें जिय भाय गुनौ।
जो दुख देयँ तो लै उर गौ यह सीख सुनौ।।"[2]

इससे लक्ष्मण को मर्मान्तिक क्लेश होता है। वे कहते हैं कि आपकी आज्ञा तो पालन करूँगा ही, परन्तु जीवन धारण करना या न करना तो मेरे हाथ में है। यह कहाँ तक उचित है कि सेवक तो घर में रह कर आनन्द मनावे और स्वामी वन-वन भटकता फिरे—

"शासन मेंटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिए, घर सेवक बन नाथ।।"[3]

वाल्मीकि से अनुप्रेरित एवं तुलसी के समान साकेतकार के लक्ष्मण की भी लगभग यही स्थिति है। वे श्रीराम से करबद्ध हो सकते हैं कि मैं आपको छोड़कर कब अकेला रहा हूँ? क्या मैं आपको अकेला वन जाता हुआ देखूँ? मैं आप ही को

१. सूररामचरितावली (गीताप्रेस, गोरखपुर) अयोध्या०, पद २५।
२. रामचन्द्रिका, ६/२७।
३. तदेव, ६/२८।

अपना माता, पिता, भ्राता, भाग्य-विधायक एवं सर्वस्व समझता हूँ। यदि आप मुझे रुकने को कहते हैं तो मैं रुककर इस नरक-यंत्रणा को सहूँगा ही।[1]

लक्ष्मण का प्रेम वस्तुतः एकनिष्ठ है। यदि राम उन्हें छोड़ ही गये तो उनका वश ही क्या ? जब उनके सान्निध्य में अमृतपान किया है तो उनसे पृथक् रह कर लक्ष्मण विषपान भी करेगा ही—

"तुम्हीं हो एक अन्तर्वाह्य मेरे।
नहीं क्या फूल फल भी ग्राह्य मेरे॥
न रक्खो आज ही यदि साथ मुझको।
चले जाओ हटाकर नाथ ! मुझको॥
न रोकूँगा, रहूँगा जो जियूँगा,
अमृत जब है पिया, विष भी पियूँगा॥"[2]

अन्ततः राम उनके प्रेम की प्रशंसा करते हुए अपने साथ चलने की अनुमति दे देते हैं—

"अहो ! कातर न हो सौमित्र ! आओ,
सदा निज राम का अर्द्धांश पाओ।
× ×
अनुज मुझसे न तुम न्यारे कभी हो,
सुहृद् सहचर, सचिव, सेवक सभी हो।"[3]

'गोविन्द रामायण' में भी रामवन-गमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण किसी प्रकार घर पर रहने को तैयार नहीं हैं। श्रीराम की सेवा करने का ऐसा अवसर वे खोना नहीं चाहते—

---

१. "कहा सौमित्र ने कर जोड़कर तब—
रहा यह दास तुमको छोड़कर कब ?
रहे क्या आज जाता देख वन को ?
करो दोषी न इतना नाथ ! जन को।
तुम्हीं माता-पिता हो और भ्राता,
तुम्हीं सर्वस्व मेरे हो विधाता।
रहूँगा मैं, कहोगे तो रहूँगा,
नरक की यातना को भी सहूँगा।"

—साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८६

२. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८६-८७

३. तदेव, तृतीय सर्ग, पृ० ८७

"धाम रहौं नहिं साँचि कहौं इह बात गई फिर हाथ न ऐहै।।"[1]

इसके बाद लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा से आज्ञा लेने जाते हैं। सुमित्रा लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम से पूर्णरूपेण परिचित है। वह अपने पुत्र से कहती है कि "वत्स! तुम अपने सुहृद श्रीराम के परम अनुरागी हो, इसलिए मैं तुम्हें वनवास की आज्ञा देती हूँ। अपने बड़े भाई के वन में जाते समय तुम उनकी सेवा में प्रमाद न करना। ये संकट में हों या समृद्धि में, ये ही तुम्हारी परम गति हैं। निष्पाप लक्ष्मण! संसार में सत्पुरुषों का यही धर्म है कि सदैव अपने बड़े भाई की आज्ञा के अधीन रहे—

"सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्त सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति।।
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेण तवानघ।
एष लोके सतां धर्मा यज्ज्येष्ठवशगो भवेत्।।"[2]

यही नहीं, वह यहाँ तक कहती है कि वत्स! तुम श्रीराम को ही साक्षात् पिता दशरथ समझो और सीता को मेरे स्थान में अपनी माता समझो तथा वन को ही अयोध्या जानो। अब सुखपूर्वक यहाँ से प्रस्थान करो—

"रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्।।"[3]

वाल्मीकि से प्रभावित बिल्कुल ये ही भाव मानस की सुमित्रा ने व्यक्त किये हैं—

"तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।
जौं, पे सीय रामु वन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।"[4]

वह तो लक्ष्मण से यहाँ तक कहती हैं कि तुम्हारे ही भाग्य से राम वन को जा रहे हैं, क्योंकि वहाँ तुम्हें उनकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त होगा। वह अपने

---

१. गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश, पृ० ६२।

२. वा० रा०, २/४०/५-६।

३. तदेव २/४०/६।

४. मानस, २/७४-१-२

पुत्र को मनसा-वाचा-कर्मणा श्रीराम में अनुरक्त रह कर उनकी सेवा करने का उपदेश देती हैं।[१]

गोविन्द रामायण में भी सुमित्रा अपने पुत्र को लगभग इसी प्रकार का सदुपदेश देती हैं। वह लक्ष्मण से कहती हैं कि वन में सीता को अपनी माता और राम को अपना पिता मानना तथा उनकी सेवा करते हुए सदैव दास-भाव से रहना। वन के दुःखों को सुख मानकर झेलना। राम के बिना यह घर भी तुम्हारे लिए वन के समान है और राम के साथ वन भी घर ही है—

"दास को भाव धरे रहियो, सुत मात सरूप सिया पहिचानो।
तात के तुल्य सियापति को, करि के इह बात सही करि मानों ।।
जेतक कानन के दुख हैं, सब ही सुख केतन में अनुमानो।
रामु के पाँय गहे रहियो, वन कै घर को घर कै वन जानो ।।[२]

भ्रातृप्रेमी लक्ष्मण वस्तुतः राम के अनन्य सेवक भी हैं। पंचवटी-आश्रम में जब शूर्पणखा उनसे विवाह का प्रस्ताव करती है तब वे उससे कहते हैं कि मैं तो दास हूँ। अपने बड़े भाई के अधीन हूँ। कमलवर्णिनी! तुम मेरी पत्नी होकर दासी बनना क्यों चाहती हो?

"कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
साऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि ।।[३]

वाल्मीकि रामायण के इस स्थल से प्रेरित तुलसी के लक्ष्मण भी कहते हैं—
"सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा ।।
प्रभु समर्थ कोशलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ।।"[४]

श्रीराम की आज्ञा का पालन करना ही ऐसे अनन्य सेवक लक्ष्मण के जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गया था। यहाँ तक कि राम के विचारों से असहमत होते हुए

---

१. "तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।।
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू ।।
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ।।
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ।।
जेहिं न रामु वन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ।।
—मानस, २/७५/२-४

२. गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश, पृ० ६४ (प्रथम संस्करण)

३. वा० रा० ३/१८/९

४. मानस, ३/१७/७

भी उनकी आज्ञा पर ननु-नच नहीं करते थे। वे अपने हृदय को वज्रतुल्य कठोर बनाकर रामाज्ञापालन दृढ़ता से करते थे।

रावण विजयोपरान्त श्रीराम द्वारा सीता के सतीत्व पर सन्देह करने एवं कटुवाक्यों का प्रयोग करके मर्माहत करने पर सीता ने अग्नि-प्रवेशार्थ लक्ष्मण से चिता तैयार करने को कहा। लक्ष्मण को सीता का यह अपमान अच्छा नहीं लगा परन्तु राम का अभिप्राय जानकर लक्ष्मण ने चिता तैयार की :—

"एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा।
अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥
स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम्।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्यवीर्यवान् ॥"[1]

इसी प्रकार सीता-परित्याग के अवसर पर श्रीराम लक्ष्मण को यह हृदय-विदारक कठोर आज्ञा देते हैं कि "सुमित्राकुमार, कल प्रातः तुम सारथि सुमन्त्र के द्वारा संचालित रथ पर आरूढ़ हो सीता को भी उसी पर चढ़ाकर इस राज्य की सीमा से बाहर छोड़ दो। मेरी इस आज्ञा का पालन करो। सीता के विषय में मुझसे किसी तरह कोई दूसरी बात तुम्हें नहीं करनी चाहिए—

"श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमंत्राधिष्ठितं रथम्।
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ॥"

× × ×

शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरुष्व वचनं मम।
न चास्मि प्रतिवक्तव्यः सीतां प्रति कथंचन ॥"[2]

यह घोर एवं मर्मान्तिक तीक्ष्ण विष के समान राजाज्ञा लक्ष्मण को ही अपने गले से नीचे उतारनी पड़ी। परन्तु इसके कारण उनके मन में कितनी ग्लानि, कुंठा एवं असह्य पीड़ा थी उसका कुछ अनुमान सीता के प्रति कहे हुए उनके इन शब्दों से लगाया जा सकता है :—

"हृद्गतं मे महच्छल्यं यस्मादार्येण धीमता।
अस्मिन्निमित्ते वैदेहि लोकस्य वचनीकृतः ॥
श्रेयो हि मरणं मेऽद्य मृत्युर्वा यत्परं भवेत्।
न चास्मिन्नीदृशे कार्ये नियोज्यो लोकनिन्दिते ॥"[3]

---

१. वा० रा०, ६/११६/२०-२१

२. वा० रा०, ७/४५/१६-१९।

३. तदेव, ७/४७/४-५।

"विदेहनन्दिनी ! बुद्धिमान होकर भी श्रीराम ने मुझे यह कार्य सौंपा है, जिसके कारण लोक में मेरी बड़ी निन्दा होगी । इससे मेरे हृदय में बड़ा काँटा चुभ रहा है । इसकी अपेक्षा यदि मेरी मृत्यु हो जाती तो वह परम कल्याणकारक होती । इस लोकनिन्दित कार्य में मुझे लगाना उचित नहीं था ।"

लक्ष्मण की इस मानसिक वेदना की अनुभूति श्रीराम को थी । उनके लौटने पर श्रीराम ने कहा भी कि, "तुमने मेरे आदेश का पालन किया, इससे मुझे बड़ा संतोष है । ऐसे विकट समय में तुम्हारे जैसा बंधु मिलना अत्यन्त दुर्लभ है । सौम्य ! तुम बड़े बुद्धिमान हो और मेरे मन के अनुसार चलनेवाले हो ।"[१]

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में भी अग्नि-परीक्षा के समय श्रीराम के दुर्वाद[२] सुनकर सीता ने लक्ष्मण से कहा कि तुम मेरे धर्माचरण में सहायक बनो और शीघ्र ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर दो । यह सुनकर लक्ष्मण के नेत्र अश्रुपूरित हो गये । वे दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये, परन्तु श्रीराम से कुछ न कह सके । अन्ततः श्रीराम का रुख देखकर उन्होंने काष्ठ एकत्रित करके अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी । ऐसी कठिन आज्ञा का पालन करना लक्ष्मण का ही काम था—

"लछिमन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ।।
सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह बिबेक धरम निति सानी ।।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ।।
देखि राम रुख लछिमन धाए । पावक प्रगटि काठ बहु लाए ।।"[३]

इसी प्रकार सूर की सीता भी चिता बनाकर अग्नि प्रकट करने का दायित्व लक्ष्मण को ही सौंपती हैं :—

"लछिमन ! रचो हुतासन भाई ।।"[४]

सीता-परित्याग का दारुण-दृश्य तुलसी सदृश भावुक कवि को असह्य था । अतः अपने 'मानस' में उसे स्थान ही नहीं दिया । हाँ, गीतावली में इसका संक्षेप

---

१. "परितोषश्च मे वीर मम कार्यानुशासने ।

× × ×

दुर्लभस्त्वीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः ।
यादृशस्त्वं महाबुद्धिर्मम सौम्यमनोऽनुगः ।।"

—वा० रा०, ७/५२/१८, ७/५३/२

२. मानस, ६/१०८ ।

३. तदेव, ६/१०९/१-३ ।

४. सूर रामचरितावली, लंकाकांड, पद १८६ (गीता प्रेस, गोरखपुर)

में संकेत किया है। वाल्मीकि रामायण की भाँति ही सीता को वन में छोड़ते समय लक्ष्मण पश्चात्ताप करते हैं कि 'अहो ! मेरी कठोरता देखकर प्रीति भी लज्जित हो गई जो आज ऐसे अवसर पर भी मेरे प्राणों ने कूच नहीं किया। यही नहीं, वे ग्लानि में भरकर सोचते हैं कि मैंने प्रेमनिधि पिता को भरपेट कठोर वचन कहे थे। उस पाप के कारण ही आज यह दुःख सहना पड़ेगा—

"कहत हिय मेरी कठिनई, लखि गई प्रीति लजाइ।
आजु अवसर ऐसेहू, जौं न चले प्रान बजाइ॥

× × ×

प्रेमनिधि पितु को कहे मैं परुष बचन अघाइ।
पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ॥"[1]

इसी स्थल पर हनुमन्नाटक में लक्ष्मण विलाप करते हैं कि, "लंका के युद्ध में सुखपूर्वक मरे हुए मुझको हनुमान ने पुनर्जीवित किया था, इस प्रकार जनकनंदिनी को वन में छोड़ने और उनका विलाप सुनने के लिए जीवित कर मानो उन्होंने किसी बैर का बदला मुझसे लिया है।

'वने विमोक्तुं जनकस्य कन्यां।
श्रोतुं च तस्याः परिदेवितानि॥
सुखेन लंकासमरे हतं माम-
जीवयन्मारुतिरात्तवैरः ॥"[2]

'हनुमन्नाटक' के उक्त स्थल से प्रभावित तुलसीकृत 'गीतावली' में भी लक्ष्मण इसी प्रकार का पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं कि इस दुःसह दुःख को सहन करने के लिए मुझे हनुमान ने औषधि लाकर व्यर्थ ही जीवित कर दिया। मैं ही सीताहरण का कारण था और अब मैं ही उनके वनवास का हेतु हुआ।... मालूम होता है, वाम विधाता ने मुझे कठोर कर्त्तव्य करने के लिए कुटिलहृदय ही रचा है और इस बात को कृपानिधि श्रीराम जानते हैं।

---

१. गीतावली, ७/३०/२, ४।

२. हनुमन्नाटक, १४/६१।

"दुसह साँसति सहन को ज्यायो जाय ।
हेतु हौं सिय हरन को तब, अबहु भयो सहाय ।।
× × ×
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं विधि बाँयँ ।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय ।।"[1]

रामचन्द्रिका में भी लक्ष्मण इस दुष्कृत्य पर दुखी एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं—

"सुनि-मुनि लक्ष्मण नीत अति, सीता जू के बैन ।
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भरि आयो नैन ।।"[2]

संयमी लक्ष्मण

वाल्मीकि ने लक्ष्मण के संयमी रूप का जैसा उज्जवल पक्ष चित्रित किया है वैसा किसी भी पात्र के चरित्र में मिलना दुर्लभ है । जिस समय सुग्रीव सीता द्वारा गिराये हुए वस्त्राभूषण श्रीराम के समक्ष रखते हैं उस समय राम उन्हें पहचानने के लिए लक्ष्मण से कहते हैं । उन्हें देखकर लक्ष्मण कहते हैं कि, न मैं सीता के केयूर को जानता हूँ और न कुंडलों को पहचानता हूँ, परन्तु उनके नूपुर से अवश्य परिचय है क्योंकि मैं नित्य उनके चरणों में प्रणाम करते हुए नूपुरों को देखा करता था—

"नाहँ जानामि केयूरे नाहं जानाभि कुण्डले ।
नूपुरे त्वमिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।।"[3]

हनुमन्नाटक में भी लगभग यही श्लोक मिलता है । परन्तु सूर, तुलसी एवं मैथिलीशरण गुप्त आदि हिन्दी-राम कथाकार इस सम्बन्ध में मौन हैं । हाँ केशव के राम को यह भलीभाँति ज्ञात है कि लक्ष्मण को केवल नूपुरों की ही रख हैं अतएव सुग्रीव द्वारा प्रदत्त वस्त्र एवं नूपुर में से वे उन्हें नूपुर ही पहचानने को देते हैं—

"उठे राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ ।
सीता जी के पट सहित, नूपुर दीन्हें लाइ ।।

---

१. गीतावली, ७/३१/२-३,५ ।
२. रामचन्द्रिका, ३३/५१ ।
३. वा० रा०, ४/६/२२-२३ ।
४. "कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे ।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवंदनात् ।।"
—हनुन्मनाटक, ५/३६

रघुनाथ जबै पद नूपुर देखे । कहि केशव प्राण समानहिं लेखे ॥
अवलोकन लक्ष्मण के कर दीन्हें । आदर सो सिर लाइ कै लीन्हें ॥"[1]

इसी प्रकार सीता को वन में छोड़ते समय जब सीता लक्ष्मण से कहती हैं कि मेरी ओर से सारी बातें तुम श्रीराम से कहना और आज तुम भी मुझे देख जाओ । मैं इस समय ऋतुकाल का उल्लंघन करके गर्भवती हो चुकी हूँ—

"इति मद्वचनाद् रामौ वक्तव्यो मम संग्रहः ।
निरीक्ष्य माद्य गच्छ त्वमृतुकालातिवर्तिनीम् ॥"[2]

इस पर अत्यन्त दुखी होकर लक्ष्मण ने कहा कि "निष्पाप सीते ! मैंने पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा है । केवल आपके चरणों के ही दर्शन किये हैं । फिर आज यहाँ वन के भीतर श्रीराम की अनुपस्थिति में मैं आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ —

"दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानने ।
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने ॥"[3]

ऐसा कहना वस्तुतः संयमी लक्ष्मण के ही सामर्थ्य की बात थी ।

हिन्दी के प्रायः किसी रामकथाकार की दृष्टि इस मर्मस्पर्शी स्थल पर नहीं पहुंची ।

शौर्य एवं पराक्रम

लक्ष्मण की चारित्रिक विशेषताओं में उनका शौर्य, पराक्रम, साहस एवं पुरुषत्व अतुलनीय एवं श्लाघनीय है । वस्तुत वे रामशक्ति के मेरुदण्ड हैं । जीवन के-प्रारम्भ से ही उनमें निर्भयता एवं वीरत्व के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं । विश्वामित्र की यज्ञरक्षा में तत्पर राम जितने समय में मारीच एवं सुबाहु से युद्ध करते हैं उतने ही समय में हस्तलाघव दिखलाते हुए लघुवयस लक्ष्मण अन्य समस्त राक्षस-सेना को नष्ट कर देते हैं—

"तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयञ्छतयोजनम् ।
पातयामास जलधौ तद्भुतमिवाभवत् ॥
द्वितीयोऽग्निमयो वाणः सुबाहुमजयत्क्षणात् ।
अपरे लक्ष्मणेनाशुहतास्तदनुयायिनः ॥"[4]

---

१. रा० चं०, १२/६०-६१ ।
२. वा० रा०, ७/४८/१८-१९ ।
३. तदेव, ७/४८/२१-२२ ।
४. अध्यात्म रामायण, १/५/७-८ ।

"अध्यात्म रामायण" के उपर्युक्त भावों से प्रभावित तुलसी भी लिखते हैं—

"बिनु पर बान राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा ॥
पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निशाचर कटकु संघारा ॥"[१]

इसके उपरान्त लक्ष्मण की निर्भयता एवं साहस के दर्शन जनक की रंगशाला में होते हैं। 'हनुमन्नाटक' में जब श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं कि "शिव-धनुष तोड़ना तो दूर रहा, न कोई उसे तान सका, न टंकार-ध्वनि ही कर सका, न झुका सका और न इसे अपने स्थान से हटा ही सका। लगता है, यह पृथ्वी वीर-विहीन हो गई"[२]

'रामचरितमानस' में लगभग यही बात जनक के मुख से कहलवाई गई है, यथा—

"रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भर भूमि न सके छुड़ाई ॥
अब जति कोउ भाखै भटमानी। बीर विहीन मही मैं जानी ॥"[३]

इस पर "हनुमन्नाटक" में लक्ष्मण अपने प्रचंड भुजदण्डों के सामर्थ्य का प्रदर्शन करते हैं कि, "भगवान राम! आपसे और क्या कहूँ, मैं आपका दास हूँ। मैं तो सुमेरु आदि बड़े भूधरों को भी कुछ नहीं गिनता, तब इस पुराने पिनाक की क्या बिसात है? अच्छा तो आप मुझे आज्ञा दें और अपने दास का कौतुक देखें। मैं इस धनुष को अपने स्थान से उठा ही नहीं लूँगा, इस पर प्रत्यंचा चढ़ाऊँगा, इसे उठा ले चलूँगा और तोड़ भी दूँगा। यह सब कार्य जब आपका सेवक कर सकता है, तब आप स्वयं, जो सर्वसमर्थ हैं क्या नहीं कर सकते? आपने कहा कि वसुधा वीर-विहीन हो गई, यह बात समीचीन नहीं—

'देव श्रीरघुनाथ किं बहुतया दासोऽस्मि ते लक्ष्मणो।
मेर्वादीनपि भूधरान्न गणये जीर्णः पिनाकः कियान् ॥
तन्मामादिश पश्य पश्च च बलं मृत्थस्य यत्कौतुकं।
प्रौद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं नेतुं निहन्तुं क्षमः ॥"[४]

'हनुमन्नाटक' के उपर्युक्त भावों से प्रभावित 'रामचरितमानस' में जनक की बात को अनुचित बताते लक्ष्मण अमर्ष में भर कर श्रीराम से कहते हैं कि यदि आप मुझे आज्ञा दे दें तो मैं ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठा लूँ और उसे कच्चे घड़े की

१. मानस, १/२०६/२-३।
२. हनुमन्नाटक, १/१०।
३. मानस, १/२५२/१-२।
४. हनुमन्नाटक, १/११।

तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरु को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ। आपके प्रताप की महिमा से यह बेचारा धनुष क्या चीज है? धनुष को कमलनाल की तरह चढ़ाकर सौ योजन तक लिए दौड़ा जाऊँ तथा कुकुरमुत्ते की तरह उसे तोड़ दूँ।[1]

साकेत में भी जनक के यह कहने पर कि "वसुधा वीर-विहीन, दीन है" लक्ष्मण का पौरुष उसी प्रकार जागृत हो उठता है—

"कहता यह बात कौन है? सुनता सत्कुल जात कौन है?
शत कार्मुक इक्षु खण्ड हैं, मम शुण्डोपम वासु दण्ड हैं॥"[2]

राम का अपमान अथवा उनको किसी विपत्ति में देखना लक्ष्मण के लिए असम्भव था। उसके प्रतिकार के लिए वे बड़े से बड़ा बलिदान करने को समुद्यत रहते थे। 'वाल्मीकि रामायण' में राम-वनगमन के अवसर पर विलाप करती हुई कौशल्या से लक्ष्मण अत्यन्त ओजपूर्ण वाणी में कहते हैं कि, "पिता दशरथ की प्रकृति विपरीत हो गई है। एक तो वे वृद्ध हैं, दूसरे विषयों ने उन्हें वश में कर लिया है; अतएव काम के वशीभूत नरेश क्या नहीं कर सकते?"

"विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रर्थषितः।
नृपः किमिव न ब्रुयाच्चोद्यमानः समन्मथः॥"[3]

राम का विरोधी पिता, भाई, माता एवं गुरु कोई भी क्यों न हो उसका वध करने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। वे अपने पराक्रम की उद्घोषणा करते हुए कहते हैं कि—"रघुनन्दन! जब तक कोई भी मनुष्य आपके बनवास की बात

---

१. "रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।
कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू।
जौ तुम्हारि अनुशासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी।
तब प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरौ पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ।
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तब प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु हाथ॥"

—मानस, १/२५३/१ से दो० २५३ तक।

२. साकेत, दशम सर्ग पृ० ३७६-७७।

३. वा० रा०, २२/२१/३

को नहीं जानता है, तब तक ही आप मेरी सहायता से इस राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में लीजिए। रघुवीर ! जब मैं धनुष लिये आपके पास रहकर आपकी रक्षा करता रहूँ और आप काल सदृश युद्ध में तत्पर हो जाएँ, उस समय आपसे अधिक पौरुष प्रकट करने में कौन समर्थ हो सकता है ? नरश्रेष्ठ ! यदि नगर के लोग विरोध में खड़े होंगे तो मैं अपने तीक्ष्ण वाणों से सम्पूर्ण अयोध्या को मनुष्य-रहित कर दूँगा। जो भरत का पक्ष लेगा अथवा जो केवल उन्हीं का हित चाहेगा, उन सबका मैं वध कर डालूँगा। यदि कैकेयी के प्रोत्साहन पर पिताजी हमारे शत्रु बन रहे हैं तो हमें भी मोह-ममता त्यागकर उन्हें कैद कर लेना या मार डालना चाहिए।·········इस समय सभी लोग मेरे पराक्रम को देखें। जिस प्रकार सूर्य उदित होकर अंधकार का नाश कर देता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी शक्ति से आपके सब दुःख दूर कर दूँगा। कैकेयी में आसक्त, अतिवृद्ध एवं अविवेकी पिता को मैं अवश्य मार डालूँगा।"[१]

मर्यादावादी तुलसी को लक्ष्य द्वारा इस प्रकार के कटुवचन कहलवाना अभीष्ट नहीं था; अतएव उक्त अवसर पर लक्ष्मण मौन हैं। उनके मन का संचित क्रोध शृङ्गवेरपुर से अयोध्या लौटते हुए सुमंत्र के समक्ष व्यक्त हो ही जाता है, परन्तु तुलसी उसका संकेतमात्र करके रह जाते हैं—

"पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥"[२]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'बाल्मीकि रामायण' की ही भाँति अमित पराक्रमी लक्ष्मण के क्रोध की पूर्ण अभिव्यक्ति की है। कैकेयी के यह कहने पर कि मेरा बेटा भरत होता तो मैं बताती, लक्ष्मण का क्रोध भड़क उठता है। साकेतकार के ही शब्दों में—

"गई लग आग सी सौमित्र भड़के, अधर फड़के प्रलय-घन तुल्य तड़के।
अरे मातृत्व तू अब भी जताती, ठसक किसको भरत की है बताती।
भरत को मार डालूँ और तुमको, नरक में भी न रक्खूँ ठौर तुझको।
युधाजित् आततायी को न छोड़ूँ, बहन के साथ भाई को न छोड़ूँ।
बुला ले सब सहायक शीघ्र अपने, कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने।
सभी सौमित्र का बल आज देखें, कुचक्री चक्र का फल आज देखें ॥"[३]

---

१. मानस, २/२ १/८-१२, १८-१६

२. मानस, २/६६/२

३. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ७६ (संस्करण सं० २०११४

राम का विरोधी माता-पिता, बन्धु-बान्धव कोई भी क्यों न हो, उन सभी का एक साथ वध करने में अकेला लक्ष्मण ही सक्षम है ।[1]

इस प्रकार वाल्मीकि से अनुप्रेरित होते हुए भी साकेत के लक्ष्मण का आक्रोश घनत्व में उससे किसी प्रकार कम नहीं है ।

'गोविन्द रामायण' में भी लक्ष्मण राम-वनगमन के समाचार से क्षुब्ध हो कैकेयी तथा दशरथ की निन्दा करते हैं । वे अमर्ष में भरकर कहते हैं कि इस कुल में कौन ऐसा कुपुत्र उत्पन्न हुआ जिसने राम को वनवास दे दिया है—

"कौन कुपूत भयो कुल में जिन रामहिं दास बनै कहुँ दीने ।।"[2]

वे आगे कहते हैं कि वास्तव में कैकेयी मदारी रूप है जो कामदेव का दंड हाथ में लेकर राजा को बन्दर की तरह नचा रही है—

"काम को दंड लिये कर कैकइ बानर ज्यों नृप नाच नचावै ।।"[3]

लक्ष्मण का पुरुषार्थ अत्यन्त प्रबल है । प्रारब्ध को भी पलट देने की सामर्थ्य उनमें है । वन-गमन के समय जब श्रीराम ने प्रारब्ध को प्रबल कहकर उन्हें समझाने की चेष्टा की तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो कायर है, जिसमें पराक्रम का नाम नहीं है, वही दैव का भरोसा करता है । सारा संसार जिन्हें आदर की दृष्टि से देखता है, वे शक्तिशाली वीर-पुरुष दैव की उपासना नहीं करते । जो अपने पुरुषार्थ

---

१. "चलें वे भी कि जो हों विघ्नकारी । कहो तो लौट दूँ यह भूमि सारी ।।
खड़ा है पार्श्व में लक्ष्मण तुम्हारे । मरें आकर अभी अरिगण तुम्हारे ।।
अमरगण भी नहीं अनिवार्य मुझको । सुनूँ मैं कौन दुष्कर कार्य मुझको ।।
तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा । स्वयं सौमित्र ही आगे अड़ेगा ।।
मुझे आदेश देकर देख लीजे । न मन में नाथ ! कुछ संकोच कीजै ।।
इधर मैं दास लक्ष्मण हूँ तुम्हारा । उधर हो जाए चाहे लोक सारा ।।
नहीं अधिकार अपना वीर खोते । उचित आदेश ही हैं मान्य होते ।।
खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह । अनार्या की जनी हतभागिनी यह ।।
अभी विषदन्त इसके तोड़ दूँगा । न रोको तुम तभी मैं शांत हूँगा ।।
बने इस दस्युजा के दास हैं जो । इसी से दे रहे वनवास हैं जो ।।
पिता हैं वे हमारे या कहूँ क्या ? कहो हे आर्य ! फिर भी चुप रहूँ क्या ?"

—साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ७८-७९ (संस्करण सं० २०१४)

२. गोविन्द रामायण, अवध प्रवेश, पृष्ठ ६१ ।

३. तदेव, अवध प्रवेश, पृष्ठ ६१ ।

से दैव को दबाने में समर्थ है, वह पुरुष दैव के द्वारा अपने कार्य में बाधा पड़ने पर खेद नहीं करता। आज संसार के लोग देखेंगे कि दैव या पुरुषार्थ में कौन बड़ा है—

"विलवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते।
वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते।
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम्॥
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति॥
द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च।
दैवमानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति॥
अथ मे पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः।
यैर्दैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम्॥"[1]

यही नहीं, वे अमर्ष में भरकर कहते हैं कि 'समस्त लोकपाल' एवं तीनों लोकों के सम्पूर्ण प्राणी आज श्रीराम के राज्याभिषेक को नहीं रोक सकते, फिर केवल पिता की तो बात ही क्या है? मैं अकेला ही बलपूर्वक सभी विरोधी राजाओं को रोक रखने में समर्थ हूँ। यह मेरी दोनों भुजाएँ केवल शोभा के लिए नहीं हैं। मेरे इस धनुष का आभूषण नहीं बनेगा। यह तलवार केवल कमर में बाँध रखने के लिए नहीं है तथा वाणों के खम्भे नहीं बनेंगे।[2]

तुलसी के लक्ष्मण यद्यपि इस स्थल पर मौन हैं किन्तु वे दैववाद के घोर विरोधी हैं। इसका उद्घाटन उस समय होता है जब समुद्र-संतरण के लिए विभीषण श्रीराम को समुद्र से प्रार्थना करने की सम्मति देते हैं तथा राम उसका अनुमोदन भी करते हैं। परन्तु यह सम्मति लक्ष्मण को अच्छी नहीं लगती, उन्हें इससे कष्ट होता है। वे कहते हैं कि दैव पर निर्भर होना कायरों का कार्य है, आलसी लोग ही दैव की दुहाई देते हैं।

---

१. वा० रा०, २/२३/१६-१९

२. "लोकपालाः समस्तास्ते नाथ रामाभिषेचनम्।
न च कृत्स्नास्त्रयो लोका विहन्युः किं पुनः पिता॥

× × ×

अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात्।
न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः॥"

—तदेव, २/२३/२१, २९-३०

"मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम वचन सुनि अति दुख पावा।।
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिय सिंधु करिअ मन रोसा।।
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।"[1]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण की ही भाँति तुलसी के लक्ष्मण भी पुरुषार्थी हैं, भाग्यवादी नहीं।

यहीं नहीं, साकेतकार का लक्ष्मण भी राम के दैववाद को स्वीकार नहीं करता। वह पुरुषार्थ का ही प्रतिपादन करता है :—

"वही हो जो तुम्हें हो इष्ट मन में, बने नूतन अयोध्या नाथ वन में।
भले ही दैव का बल दैव जाने, पुरुष जो है न क्यों पुरुषार्थ माने?
हुआ कुछ भी नहीं मैं जानता हूँ, तुम्हें जो मान्य है सो मानता हूँ।।"[2]

चित्रकूट में भरत को ससैन्य आते देख लक्ष्मण उनके प्रति शंकालु हो उठते हैं। उनका पुरुषत्व एवं क्रोध जाग्रत हो उठता है। वे उत्तेजित हो श्रीराम से कहने लगते हैं कि "भैया! निश्चय ही यह कैकेयी का पुत्र भरत अयोध्या में अभिषिक्त होकर अपने राज्य को निष्कंटक बनाने की इच्छा से हम दोनों के वध हेतु आ रहा है।

"सम्पन्नं राज्यमिच्छस्तु व्यक्तं प्राप्यभिषेचनम्।
आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः।।"[3]

लक्ष्मण पुनः रोष में आकर कहते हैं कि आज मैं उस भरत को देखूंगा जिसके कारण आप राज्याधिकार से वंचित किये गये हैं। वस्तुतः यह भरत हमारा शत्रु है और सामने आ गया है; अतः सर्वथा वध्य है। भरत का वध करने में मुझे कोई दोष नहीं दीखता। ....यहीं नहीं, मैं कैकेयी का भी उसके स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों सहित वध कर डालूंगा। आज यह पृथ्वी कैकेयी-रूप महान पाप से मुक्त हो जाय। मानद! आज मैं अपने रोके हुए क्रोध और तिरस्कार को शत्रु की सेना पर उसी प्रकार छोडूंगा, जैसे सूखे घास-फूस के ढेर में आग लगा दी जाय।"[4]

---

१. मानस, ५/५०/१-२
२. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८१
३. वा० रा०, २/९६/१७
४. "अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत्।
त्वया राघव सम्प्राप्तं सीतया च मया तथा।
यन्निमित्तं भवान् राज्याच्च्युतो राघव शाश्वतात्।।

वाल्मीकि के इन्हीं भावों से प्रेरित तुलसी के लक्ष्मण भी भरत के ससैन्य आगमन एवं राम के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व को देखकर अत्यन्त क्षुब्ध हो उठते हैं तथा सानुज भरत एवं उनकी सम्पूर्ण सेना को मारने के लिए उद्यत हो जाते हैं। हाँ, मर्यादावादी तुलसी के लक्ष्मण मातृवध की बात नहीं करते। तुलसी ने इस स्थल पर लक्ष्मण की रोषयुक्त वीरोचित वाणी को वाल्मीकि की अपेक्षा अधिक विस्तार दिया है।[1]

वन में श्रीराम को एकाकी एवं असहाय समझकर उन्हें समूल नष्ट करने के लिए भरत ने ससैन्य आकर उनका तिरस्कार किया है—यह कहते-कहते क्रुद्ध लक्ष्मण आपे से बाहर हो जाते हैं।[2]

सम्प्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो बध्य एव हि।
भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव ॥
× × ×
कैकेयीं च वधिष्यामि सानुबन्धां सबान्धवाम्।
कलुषेणाद्य महता मेदिनी परिमुच्यताम् ॥
अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद।
मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् ॥"

वा० रा०, २/९६/२१-२३, २६, २७

१. मानस, २/२२७/१ दो० २३० तक।

२. "एतना कहत नीति रस भूला। रन रस विटपु पुलक मिस फूला ॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी ॥
अनुचित नाथ न मानव मोरा। भरत हमहिं उपचारन थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहित मन मारे। नाथ-साथ धनु हाथ हमारे ॥

क्षत्रि जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान ॥

उठि करजोरि रजायसु मागा। मनहु वीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा ॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥

इसी प्रकार साकेत के लक्ष्मण भी कहते हैं—

"पर कुशल है कि असमर्थ नहीं हैं हम भी।
जैसे को तैसे, एक बार हो यम भी॥"[1]

यह कहते-कहते लक्ष्मण उग्र हो उठते हैं। वे संकल्प करते हैं —

"आये होंगे यदि भरत कुमति वश वन में—
तो मैंने संकल्प किया है मन में।
उनको इस शर का लक्ष्य चुनूँगा क्षण में।
प्रतिषेध आपका भी न सुनूँगा रण में॥"[2]

गोविन्द रामायण में इस अवसर पर लक्ष्मण की कोई प्रतिक्रिया नहीं दृष्टि-गोचर होती। भरत की सेना को किसी शत्रु की सेना समझकर राम धनुष-वाण हाथ में उठा लेते हैं। परन्तु भरत अपनी सेना को पीछे छोड़कर राम के पास अकेले ही पहुँचते हैं।[3]

इसके उपरान्त लक्ष्मण के अत्यधिक उग्र एवं क्रुद्ध रूप के दर्शन उस समय होते हैं जिस समय प्रवर्षण गिरि पर वर्षाकाल समाप्त होने पर भी सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञानुसार सीतान्वेषण में तत्पर नहीं होता। राम को दुखी देख लक्ष्मण आगबबूला हो सुग्रीव को उचित शिक्षा देने के लिए किष्किधा नगरी को प्रस्थान करते हैं। वाल्मीकि लक्ष्मण की उस क्रुद्ध स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं —

शिलाश्च शकलीकुर्वन् पदभ्यां गज इवाशुगः।
दूरमेकपदं त्यक्त्वा ययौ कार्यवशाद् द्रुतम्॥
स दीर्घोष्णामहोच्छ्वासः कोपसंरक्तलोचनः।
बभूव नरशार्दूलः सधूम इव पावकः॥"[4]

शीघ्रगामी हाथी के समान अपने पैरों की ठोकर से शिलाओं को चूर-चूर करते और लम्बी-लम्बी डगें मारते हुए वे कार्यवश बड़ी शीघ्रता में चले। वे अत्यन्त

अति सरोष भाखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
समय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥"
—मानस, २/२२६/१ से दो० २३० तक

१. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २३७।
२. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २३७
३. गोविन्द रामायण, वनवास, पृ० ७२
४. वा० रा०, ४/३१/१५, २६

उष्ण एवं दीर्घ श्वास लेने लगे। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उस समय पुरुष-सिंह लक्ष्मण धूमयुक्त अग्नि के समान प्रतीत हो रहे थे।"

लक्ष्मण सुग्रीव के अन्तःपुर में बेरोक-टोक घुस गये। उन्हें क्रोध से भरा देख सुग्रीव की सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं —

"तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम्।
सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः॥"[१]

तथा वह तारा से कहता है कि सुन्दरी! तुम स्वयं जाकर क्रुद्ध लक्ष्मण को प्रसन्न करने का प्रयत्न करो —

"अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि।
वचनैः सान्त्वयुक्तैश्च प्रसादयितुमर्हसि॥"[२]

लक्ष्मण ने सुग्रीव को फटकारते हुए कहा कि "वानरराज! जो पहले मित्रों के द्वारा अपना कार्य सिद्ध करने के बदले में उन मित्रों का कोई उपकार नहीं करता है, वह कृतघ्न एवं सब प्राणियों के लिए बध्य है। गोहत्यारे, शराबी, चोर और व्रत-भंग करने वाले पुरुष के लिए सत्पुरुषों ने प्रायश्चित का विधान किया है, किन्तु कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नहीं है। यदि तुम महात्मा राम के किये हुए उपकार को नहीं समझोगे तो शीघ्र ही उनके तीक्ष्ण बाणों से मारे जाकर बाली के दर्शन करोगे। सुग्रीव! बाली मारा जाकर जिस रास्ते से गया है, वह आज भी बन्द नहीं हुआ है। अतएव तुम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहो। बाली के मार्ग का अनुसरण न करो।"[३]

इसी प्रकार 'रामचरितमानस' में भी लक्ष्मण हाथ में धनुष-बाण लेकर अत्यन्त क्रुद्ध हो किष्किन्धापुरी में प्रवेश करते हैं। उनके क्रुद्ध रूप को देखकर सभी

---

१. वा० रा०, ४/३४/१

२. तदेव, ४/३३/३५

३. "पूर्वं कृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः।
कृतघ्नः सर्वभूतानां स वध्यः प्लवगेश्वर॥
गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥
कृतं चेन्नातिजानीषे राघवस्य महात्मनः।
सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि वालिनम्॥
न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालि पथमन्वगाः॥

—तदेव, ४/३४/१०, १२, १७, १८

भयभीत हो उठते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्मण धनुष चढ़ाकर कहते हैं कि मैं अभी नगर को जलाकर राख कर दूँगा। तब अत्यन्त भयाकुल सुग्रीव तारा से क्रुद्ध लक्ष्मण को शांत करने के लिए कहता है —

"लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना। धनुष चढाइ गहे कर बाना।।"[१]

तथा—

"एहि अवसर लछिमन पुर आये। क्रोध देखि जहँ-तहँ कपि धाये।।"[२]

"धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
व्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार।।

× × ×

क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना।।
सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समझाउ कुमारा।।"[३]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी वाल्मीकि एवं तुलसी से प्रेरित होकर लक्ष्मण के इसी प्रकार के क्रुद्ध रूप की ओर से संकेत करते हुए लिखा है—

"भूल मित्र का दुःख शत्रु-सा, सुख भोगे वह कैसा मित्र?
पहुँचे पुर में प्रकुपित होकर धन्वी लक्ष्मण चारु-चरित्र।
तारा को आगे करके तब, नत वानरपति शरण गया।।"[४]

राम-रावण-युद्ध के समय लक्ष्मण का शौर्य, पराक्रम एवं पुरुषार्थ अपने सम्पूर्ण रूप में उभरकर पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वाल्मीकि ने उनके इस रूप का यथार्थ किन्तु विशद् चित्रण किया है।[५]

मेघनाद द्वारा माया सीता के वध किये जाने पर जब राम उनके दुःख से मूर्च्छित हो जाते हैं तब उन्हें सचेत करते हुए लक्ष्मण अपने पुरुषार्थ के विषय में कहते हैं—

"तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम्।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव।।"[६]

---

१. मानस, ४/१८/४
२. तदेव, ४/१९/४
३. तदेव, ४/१९, ४/२०/१-२
४. साकेत, एकादश सर्ग, पृ० ४३०
५. वा० रा०, ६/ सर्ग ८८-९०।
६. तदेव, ६/८३/४२।

"वीर रघुनन्दन ! आज इन्द्रजित ने हम लोगों को जो महान दुःख दिया है, उसे मैं अपने पराक्रम से दूर करूँगा; अतः चिन्ता छोड़कर उठिए।" उन्होंने श्रीराम के समक्ष प्रण करते हुए कहा—

"अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः।
विधिमिष्यन्ति भित्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥"[1]

इस विशाल धनुष से छूटे हुए मेरे बाण आज ही उस भयंकर राक्षस के शरीर को विदीर्ण करके उसे काल के गाल में डाल देंगे।

यही नहीं तीन दिन और तीन रात्रि निरन्तर घोर युद्ध करने के बाद[2] जब लक्ष्मण मेघनाद का वध करते हैं तो उनके अग्रज श्रीराम अत्यन्त भाव-विभोर हो उनकी प्रशंसा करते हैं—

"कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि ॥"[3]

"वीर ! तुमने अपने दुष्कर पराक्रम से परमकल्याणकारी कार्य किया है। रावण-पुत्र मेघनाद के मारे जाने से अब मैं रावण को युद्ध में मरा हुआ ही समझता हूँ। इस दुरात्मा शत्रु का वध हो जाने से मैं वास्तव में विजयी हो गया—

"त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे।
न दुष्प्राणा हते तस्मिञ्शक्रजेतरि चाहवे ॥"[4]

—लक्ष्मण ? इन्द्रजित इन्द्र को भी जीत चुका था। जब उसे भी तुमने युद्ध-भूमि में मार गिराया, तब तुम जैसे रक्षक औद सहायक के होते हुए मुझे सीता और भू-मण्डल के राज्य को प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

युद्धोपरान्त ऋषियों ने राम की वन्दना करते समय रावण-वध की अपेक्षा इन्द्रजित-वध को ही अधिक दुष्कर एवं कठिन कार्य बताया है।[5]

---

१. वा० रा०, ६/८५/२७।
२. तदेव, ६/९१/१६।
३. तदेव, ६/९१/१३-१४।
४. वा० रा०, ६/९१/१६।
५. तदेव, ७/१/२८-३१।

वाल्मीकि रामायण की ही भाँति रामचरितमानस में भी लक्ष्मण अपने अग्रज श्रीराम के समक्ष प्रण करते हैं—

"प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गंभीरा॥
जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥
जौ सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई॥"[1]

यहाँ भी तुमुल युद्ध के उपरान्त लक्ष्मण अतिमानवी पराक्रम दिखलाते हुए रावण-पुत्र मेघनाद का वध करने में सफल होते हैं।[2]

इसके उपरान्त देवताओं के उद्धारकर्त्ता लक्ष्मण की सभी लोग वन्दना करते हैं—

"जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि बिस्तारा॥"[3]

इसी प्रकार केशव ने इन्द्रजीत के साथ तुमुल युद्ध करते हुए लक्ष्मण के अमित पराक्रम का वर्णन किया है।[4] इन्द्रजीत-वध के उपरान्त इन्द्रादि देवता साधुवाद देते हुए उनकी वन्दना करते हैं।[5] उनके अग्रज श्रीराम भी अत्यन्त प्रसन्न हो उन्हें अपना मित्र, पुत्र एवं सहोदर कहकर हृदय से लगा लेते हैं और आभार

---

१. मानस, ६/७५/६-७।

२. "आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥
देखेसि आवत पवि सम बाना। तुरत भयउ खलअन्तरधाना॥"
"बिबिध वेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥
देखि अजयरिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥
सुमिरि कौसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा॥"

—मानस, ६/७६/५-८

३. तदेव, ६/७७/२।

४. रामचन्द्रिका, १८/३४।

५ तदेव, १८/३५।

प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि तुम निद्रा, भूख एवं विषयों का परित्याग न किये होते तो हमें सीता न प्राप्त होती—

"सुन मित्र पुत्र सुभ सोदर मेरे । कहि कौन-कौन सुमिरौं गुन तेरे ।।

नींद भूख अरु काम को जो न साधते वीर ।
सीतहि क्यों हम पावते सुनु लक्ष्मण रणधीर ।।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तप, त्याग, संयम, उत्साह एवं शौर्य-पराक्रम की मूर्ति लक्ष्मण अपने अग्रज राम के अनन्य अनुरागी थे । कुशल नीतिज्ञ एवं स्पष्ट-वादी होते हुए वे पुरुषार्थ के प्रबल समर्थक थे ।

---

१. रामचन्द्रिका, १८/३६-३७ ।

षष्ठ अध्याय

हनुमान

□

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में हनुमान अपनी अनन्य रामभक्ति एवं अप्रतिम शक्ति के कारण विख्यात हैं। उनमें कर्त्तव्यपरायणता, सेवा, स्वामिभक्ति, निरभिमानिता, निर्भयता, चातुर्य, बुद्धिकौशल प्रभृति गुण एक साथ विद्यमान हैं। वे सर्वशास्त्रनिष्णात, ज्ञानियों में अग्रगण्य, अतुल पराक्रमी, अदम्य उत्साही, शौर्य-वीर्य के आगार, आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी एवं इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हैं। अपने अपूर्व त्याग एवं अद्वितीय पुरुषार्थ के कारण ही वे लोक में महावीर नाम से प्रसिद्ध हैं।

नामकरण

महावीर हनुमान आञ्जनेय, मारुति, पवनपुत्र, केसरीनन्दन, शंकरसुवन प्रभृति अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं । वाल्मीकि के अनुसार 'हनुमान' नाम इंद्र प्रदत्त है। इन्द्र ने अपने वज्र द्वारा अबध्य होने का वरदान[1] देते हुए कहा कि "मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र द्वारा इस बालक की हनु (ठुड्ढी) टूट गई थी; अतएव इस कपिश्रेष्ठ का नाम 'हनुमान' होगा—

> "मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ।
> नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ।।"[2]

अञ्जना देवी के गर्भ से उद्भूत होने के कारण वे आञ्जनेय[3] एवं पिता केसरी के आधार पर केसरीनन्दन कहलाये।

> "स त्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः ।"[4]

---

१. वा० रा०, ७/३६/१२

२. तदेव, ७/३६/११

३. तदेव, ४/६६/१७-१८, २०

४. तदेव, ४/६६/२६

इसी प्रकार वायुदेव द्वारा अञ्जना देवी के साथ अव्यक्तरूप से आलिंगन एवं मानसिक रूप से समागम करने के कारण[१] वे वायुदेव के औरस पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए; अस्तु उनके पवनपुत्र, मारुति, मारुतसुत, वातात्मज, आदि अनेक नाम पड़े—

"मारुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चापि तत्समः ।"[२]

इसके अतिरिक्त वायुपुराण,[३] स्कंदपुराण[४] तथा शिवपुराण[५] में उन्हें रुद्र का अवतार कहा गया है। हनुमन्नाटक में जाम्बवान श्रीराम से मारुति को रुद्रावतार बतलाकर उनकी स्तुति करने को कहते हैं—

"देव रुद्रावतारोऽयं मारुतिः रुद्रस्तुतिः क्रियताम् ।"[६]

रावण भी उन्हें ग्यारहवाँ रुद्र बतलाता है।[७]

हनुमान के उपर्युक्त विविध नामों को तुलसी, सूर, केशव, मैथिलीशरण गुप्त तथा श्यामनारायण पाण्डेय इत्यादि सभी कवियों ने ग्रहण किया है। तुलसी ने हनुमान[८] नाम के अतिरिक्त पवनदेव से सम्बन्धित पवनसुत,[९] मारुतसुत,[१०] पवन-तनय,[११] प्रभंजन जाया,[१२] समीरसुनु,[१३] पवनपुत्र'[१४] एवं वात-संजात[१५] प्रभृति

१. वा० रा०, ४/६६/१८
२. तदेव, ४/६६/२९
३. "अञ्जनी गर्भसम्भूतो हनुमान पवनात्मजः ।
यदा जातो महादेवो हनुमान सत्यविक्रमः ॥"
—वायुपुराण, पूर्वार्घ, ६०/७३
४. "यो वे चैकादशो रुद्रो हनुमान स महाकपिः ।
अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः ॥"
—स्कंदपुराण, माहेश्वर केदार खंड, ८/९९-१००
५. शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता, अ० २०
६. हनुमन्नाटक, ६/३
७. तदेव, ६/२७
८. वा० रा० ४/३, ४/४, ४/३०/२, ५/१ तथा हनुमानबाहुक छंद सं० १५, १६, २६, ३५, ३६, ४४
९. मानस, ४/१९/१
१०. तदेव, ४/१९/२
११. तदेव, ४/३०/२
१२. तदेव, ५/१९/५
१३. कवितावली, सुन्दर० २८
१४. तदेव, लंका २३
१५. विनयपत्रिका, २८/१

अभिधानों का प्रयोग किया है। पिता केसरी के आधार पर उन्होंने केसरीकिशोर,[१] केसरीसुवन,[२] केसरीनन्दन,[३] आदि नामों का व्यवहार किया है तथा विनयपत्रिका में 'केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद' कहकर उनकी वन्दना की है।[४] माता अञ्जनी के नाम पर उन्हें अंजनीनन्दन,[५] अंजनीपुत्र,[६] अंजनीकुमार,[७] 'मरुदंजनामोद-मंदिर'[८] कहकर वायुदेव एवं अंजना देवी से सम्बद्ध किया है। किसी प्रकार "जवत्यंजनी-गर्भ-अंभोधिसंभूत विधु" से उन्हें अंजनी माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया है।[९] तुलसी ने 'दोहावली' में "रुद्रदेह तजि नेह बस वानर भे हनुमान" तथा "पुरुषा ते सेवक भये हर ते भे हनुमान" कहकर उन्हें रुद्रावतार माना है।[१०] इसी प्रकार विनय पत्रिका के कतिपय पदों में रुद्र अवतार, महादेव, कपाली, पुरारी एवं वामदेव प्रभृति शिवपरक नामों से उनकी स्तुति की है—

"जयति रणधीर रघुबीर हित, देवमणि रुद्र अवतार संसार त्राता।"[११]
"जयति मर्कटाधीश, मृगराज-विक्रम, महादेव, मुद-मंगलामय, कपाली।"[१२]
"जयति मंगलागार संसार भारापहर वानराकार विग्रह पुरारी।"[१३]
"सामगायक, भक्तकामप्रदायक, वामदेव, श्रीरामप्रिय प्रेमबंधो।"[१४]

---

१. हनुमानबाहुक, छंद सं० ६, १३, १५, २१, ३५
२. विनयपत्रिका, २६/१
३. हनुमानचालीसा—'संकरसुवन केसरीनन्दन'।
४. विनयपत्रिका, २५/१
५. हनुमानबाहुक, ८ तथा विनयपत्रिका २६/२
६. हनुमानचालीसा—'अंजनिपुत्र पवनसुत नामा'।
७. हनुमानबाहुक, १५
८. विनयपत्रिका, २७/२
९. विनयपत्रिका, २५/१।
१०. दोहावली, दो० १४२, १४३।
११. विनयपत्रिका, २५/३।
१२. तदेव, २६/१।
१३. तदेव, २७/१।
१४. तदेव, २८/५।

सूरसागर में भी हनुमान के उपर्युक्त कतिपय नामों का उल्लेख मिलता है। हनुमान श्रीराम को अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि मैं माता अंजना का पुत्र हूँ। वानरराज केसरी के कुल में पवन के सम्पर्क से यह शरीर उत्पन्न हुआ है—

"अंजनि को सुत, केसरि के कुल पवन-गवन उपजायो गात।"[१]

इसके अतिरिक्त उन्हें केसरि-सुत, हनुमंत, अंजनि-कुँवर, पवन सुत आदि नामों से भी सम्बोधित किया गया है।[२]

इसी प्रकार पं० श्यामनारायण पाण्डेय कृत 'जय हनुमान' में उन्हें केसरीनन्दन[३], मारुति,[४] पवनतनय,[५] पवननन्दन[६] पवनसुत[७] तथा वायुपुत्र[८] आदि नामों से अभिहित किया गया है।

रूप-चित्रण

गन्धमादन पर्वत पर कदलीवन में भीम द्वारा देखे गये महावीर हनुमान के विशाल रूप का वर्णन करता हुआ महाभारतकार कहता है कि उनका शरीर विन्ध्य-पर्वत सदृश अत्यन्त भयंकर एवं अद्भुत था—

"तमद्भुतं महारौद्रं विन्ध्यपर्वतसंनिभम्।"[९]

---

१. सूरसागर, ९/६९, तृतीय संस्करण, ना० प्र० सभा, काशी।

"या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत, जाहि नाम हनुमंत॥

—तदेव, ९/७४

× × ×

"अंजनि कुँवर राम कौ पायक, ताकैं बल गजंन्त।"

× × ×

"चिरजीवौ सुकुमार पवनसुत। गहति दीन ह्वै पाइ॥"

—सूरसागर ९/८३, तृतीय संस्करण, ना० प्र० सभा काशी।

३. जय हनुमान (प्रथम संस्करण), पृ० ७।

४. तदेव, पृ० ९।

५. तदेव, पृ० ११।

६. तदेव, पृ० ५४।

७. तदेव, पृ० ६८।

८. तदेव, पृ० ८७।

९. महाभारत, वन० १५०/१०।

उनकी अंगकान्ति विद्युत् के समान पीतवर्ण की थी तथा गर्जन वज्रपात के घोर रथ सदृश था।[1] उनका शरीर तेज से दीप्तिमान था।[2] ओष्ठ छोटे, जिह्वा एवं मुख ताम्रवर्ण तथा कान लाल रंग के थे। उनकी भृकुटि चंचल थी। खुले हुए मुख में तीक्ष्ण अग्रभाग युक्त उनके श्वेत दाँत एवं दाढ़ें थीं—

"ह्रस्वौष्ठं ताम्रजिह्वास्यं रक्तकर्णं चलदभ्रुवम्।
विवृत्तदंष्टादशनं शुक्लतीक्ष्णाग्रशोभितम्॥"[3]

उनकी ग्रीवा छोटी तथा मोटी थी जब कि शरीर का मध्य भाग एवं कटि प्रदेश पतला था[4] तथा ऊपर की ओर उठी हुई उनकी पूँछ ध्वजा के समान सुशोभित हो रही थी।[5] यही नहीं, वे अपने तेजोमय शरीर से प्रज्ज्वलित अग्नि के सदृश प्रतीत होते थे ओर अपने मधु के समान पीतवर्णा नेत्रों से इधर-उधर देख रहे थे—

"दीप्यमानेन पपुषा स्वर्चिष्मन्तमिवानलम्।
निरीक्षन्तममित्रघ्नं लोचनैर्मधुपिङ्गलैः॥"[6]

समुद्रोल्लंघन के समय वाल्मीकि ने उनके लगभग इसी रूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके नेत्र बड़े, गोल एवं पिंगलवर्ण के थे। लाल नासिका के कारण उनका मुख रक्तिम आभा से युक्त था। दाढ़ें सफेद तथा पूँछ गोलाकार मुड़ी हुई इन्द्र की ऊँची ध्वजा के समान जान पड़ती थी। उनके कमर के नीचे का भाग बहुत लाल था।[7] उस समय उनके पर्वताकार शरीर की छाया तीस योजन लम्वी और दस योजन चौड़ी थी।[8] उनका गर्जन मेघतुल्य गम्भीर था तथा वे अग्नि के समान तेजस्वी प्रतीत होते थे।[9]

अध्यात्मकार भी उनके उस अद्भुत एवं तेजस्वी रूप का चित्रण करता हुआ लिखता है कि, "उस समय समस्त प्राणियों को पवनपुत्र हनुमान महान पर्वततुल्य,

---

१. महाभारत, वन० १४६/७६।
२. तदेव, वन० १४६/८१।
३. महाभारत, वन० १४६/७९।
४. तदेव, वन० १४६/७७।
५. तदेव, वन० १४६/७८।
६. तदेव, वन० १४६/८२।
७. वा० रा०, ५/१/५९-६३।
८. तदेव, ५/१/७६।
९. तदेव, ५/१/३२।

विशालकाय, स्वर्णिम वर्ण के बालसूर्य के समान सुन्दर मुख एवं महान सर्पराज सदृश दीर्घ भुजाओं वाले दिखलाई देने लगे—

"महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ।
महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः ।।"[१]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों से प्रभावित एवं अनुप्रेरित तुलसी ने भी हनुमान के उस पर्वताकार स्वर्णिम रूप को भलीभाँति परखा है । जाम्बवान के यह कहते ही कि तुम्हारा अवतार तो रामकार्य के लिए ही हुआ है, हनुमान पर्वताकार विशाल शरीर वाले हो जाते हैं । उनका यह तेजोमय शरीर सुमेरुपर्वत सदृश स्वर्णिम रंग का हो गया तथा बार-बार सिंहगर्जना करने लगे ।[२] यही नहीं, 'मानस' में 'अतुलित बलधामं हेमशैलाभादेहं' कहकर उनकी स्तुति की गई है ।[३]

विनयपत्रिका में तुलसी महाभारतकार की भाँति ही उनके रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे विशाल बाहुओं से युक्त एवं लम्बी पूँछवाले हैं । उनका शरीर स्वर्ण-पर्वत सुमेरु के समान विशाल एवं तेजस्वी तथा रोमावली विद्युत-रेखा अथवा ज्वालमाला सदृश दीप्तिमान है । मुख उदयकालीन सूर्यतुल्य मनोहर तथा नेत्र पीले, भृकुटि टेढ़ी एवं सिर जटाजूट से युक्त है । दाँत और नख वज्रतुल्य सुदृढ़ हैं ।[४] लगभग इसी रूप का निरूपण उन्होंने हनुमानबाहुक में भी इस प्रकार किया है :—

---

१. अध्यात्म० ४/६/२६

२. "रामकाज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ।।
कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ।।
सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा ।।
—मानस, ४/३०/३-४

३. तदेव, सुंदर०, श्लो० ३

४. "जयति वात-संजात, विख्यात विक्रम, बृहद्बाहु, बल विपुल बालधि बिसाला ।
जात रूपाचलाकार विग्रह, लसल्लोम विद्युतल्लता ज्वालमाला ।।
जयति बालार्क वर-वदन, पिंगल नयन, कपिश-कर्कश जटाजूटधारी ।
विकट भृकुटी, वज्र दशन नख, वैरि मदमत्त कुंजरपुंज कुंजरारी ।।
—विनयपत्रिका, २८/१-२

"स्वर्न-सैल-संकास कोटि-रबि-तरुन-तेज-घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन ॥
पिंग नयन, भृकुटी कराल रसना दसनानन।
कपिस केस, करकस लंगूर, खलदल बलमानन ॥"[१]

अशोकवाटिका में सीता को विश्वस्त एवं आश्वस्त करने के लिए हनुमान ने अपना यही रूप दिखलाया था। अध्यात्मकार कहता है कि हनुमान ने उन्हें अपना पूर्व रूप दिखलाया जो मेरु के समान और मन्दर-पर्वत के समान अति विशाल एवं राक्षसों के लिए भयोत्पादक था —

"श्रुत्वा तद्वचनं पूर्वरूपमदर्शयत्।
मेरुमन्दरसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम् ॥"[२]

इसी प्रकार रामचरितमानस में सीता हनुमान के लघुरूप को देखकर कहती हैं कि "सभी वानर तुम्हारे ही समान छोटे होंगे किन्तु राक्षस महाबलवान हैं; अतएव मुझे अत्यन्त सन्देह है।" इस पर हनुमान ने अपना शरीर प्रकट किया जो सोने के सुमेरु पर्वततुल्य विशाल था तथा अत्यन्त बलयुक्त एवं युद्ध में भय उत्पन्न करने वाला था।[३]

सूरसागर में भी जब हनुमान अपना विशाल पर्वताकार रूप प्रकट करते हैं तब सीता उन्हें सच्चा वीर कह कर साधुवाद देती हैं—

"अरुन नैन, बिकराल मुख, पर्वत तुलिय सरीर।
'सूर' साधु सीता कहै, साँचौ हनुमत वीर ॥"[४]

कामरूपता

वस्तुतः हनुमान कामरूप हैं। वाल्मीकि के अनुसार किष्किंधा में जब प्रथम बार श्रीराम से मिलते हैं तब वे स्वयं कहते हैं कि, "मेरी जहाँ इच्छा हो, जहाँ जा सकता हूँ और जैसा चाहूँ, रूप धारण कर सकता हूँ। इस समय सुग्रीव का

---

१. हनुमानबाहुक, 2
२. अध्यात्म०, ५/३/६४
३. "हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना ॥
मोरे हृदय परम सन्देहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा ॥
—मानस, ५/१६/३-४
४. सूर रामचरितावली, पद १०१ (गीता प्रेस, गोरखपुर)।

प्रिय करने के लिए भिक्षुक के रूप में अपने को छिपाकर मैं ऋष्यमूक पर्वत से यहाँ आया हूँ—

"भिक्षुरूप प्रतिच्छन्नं सुग्रीव प्रियकारणात् ।
ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणाम् ॥"[१]

सुग्रीव के पास उन्हें ले जाते समय वे अपने उस भिक्षुक रूप को त्यागकर पुनः वानररूप धारण कर लेते हैं ।[२] परन्तु अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि रामायण से भिन्न बटुरूप का उल्लेख मिलता है[३], और इसी का अनुगमन मानसकार ने भी किया है । सुग्रीव हनुमान से बटुरूप धारण करके श्रीराम के पास जाने को कहते हैं—

"धरि बटुरूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ॥"[४]

इसी प्रकार नरसिंह पुराण में सुग्रीव उनसे तापसवेष धारण करके जाने को कहते हैं—

"हनुमन् पृच्छ शीघ्रंत्वं गच्छ तापसवेषधृक ।"[५]

केशवकृत रामचन्द्रिका में उनके द्विजरूप में जाने का उल्लेख है—

"द्विजवपु कै श्री हनुमत आये ।
बहुविधि दै आसिष मन भाये ॥"[६]

इसके अतिरिक्त लंका-प्रवेश के समय वे अत्यन्त लघुरूप धारण करते हैं । वाल्मीकि रामायण के अनुसार वे वृषदंश (बिल्ली) के समान छोटा रूप बना लेते हैं ।[७] अध्यात्म रामायण में केवल उनके सूक्ष्म शरीर धारण करने का उल्लेख है[८] जबकि हनुमन्नाटक में वे द्विदंश (वनमाखी) के आकार का अपना शरीर बना लेते हैं ।

"रजनिचरपुरीमालोक्य भूत्वा द्विदंशः ।"[९]

---

१. वा० रा०, ४/३/२३ ।
२. तदेव, ४/४/३४ ।
३. अध्यात्मरामायण, ४/१/११, १७ ।
४. मानस, ४/१/२ ।
५. नरसिंहपुराण, ५०/५ ।
६. रा० चं० १२/५२ ।
७. वा० रा०, ५/२/४९ ।
८. अध्यात्म रामायण, ५/१/४२, ४३ ।
९. हनुमन्नाटक, ६/१३ ।

हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित मानस में भी उनके मच्छर के समान (किन्तु मच्छर नहीं) छोटा रूप धारण करने का विवरण मिलता है—

"मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी॥"[१]

इसी प्रकार रामचन्द्रिका में भी वे डांस या मच्छर के समान रूप धारण करते हैं—

"कछु राति गये करि दंस दसासी। पुरमांझ चले वनराजि विलासी॥"[२]

इसी प्रकार अशोक वाटिका में सीता के सामने अत्यन्त लघु रूप धारण करके ही जाते हैं। अध्यात्मकार उनकी उस समय की रूपाकृति का परिचय देता हुआ कहता है कि अरुण मुख, पीत वर्ण और कलविंक (चटक) पक्षी के बराबर आकार वाले वानर रूप में धीरे से सामने आकर उन्होंने सीता को प्रणाम किया।[३] इसी प्रकार मानस में वे सीता के पास परमलघु एवं सौम्यरूप धारण करके ही जाते हैं[४] और इसी कारण जानकी को उनके शौर्य के प्रति सन्देह भी होता है।[५]

लंका-विजयोपरान्त भरत को रामागमन की सूचना देते समय भी उनके रूप-परिवर्तन का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में वे मानव रूप धारण करके अयोध्या जाते हैं।[६] तुलसी के मानस में भी हनुमान विप्ररूप में भरत के समक्ष उपस्थित होते हैं—

"विप्ररूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत॥"[७]

यह सब उनकी कामरूपता के कारण सम्भव हो सका है। हिन्दी-रामकाव्य में तो वे अष्टसिद्धि एवं नवनिधियों के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हैं ही।[८] इसके अतिरिक्त रामरहस्योपनिषद् में हनुमान ने अपने सौम्यरूप का ध्यान इस प्रकार बतलाया है—

१. मानस, ५/४/१।
२. रा० चं०, १३/४१।
३. अध्यात्म रामायण, ५/३/२०।
४ मानस, ५/८/३।
५. तदेव, ५/१६/३।
६. (अ) वा० रा०, ६/१२५/१९, ३५।
(ब) अध्यात्म रामायण, १/१४/४४-४५।
७. मानस, ७/१।
८. "अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता। अस वर दीन्ह जानकी माता॥"
—हनुमान चालीसा

"द्विभुजं स्वर्णवर्णाभं रामसेवापरायणम् ।
मौञ्जीकौपीन सहितं मां ध्यायेद् रामसेवकम् ।।[१]

"स्वर्णवर्ण की आभा से युक्त द्विभुज श्रीराम-सेवापरायण, कटि में मूंज की मेखला और कोपीन धारण करने वाले मुझ राम-सेवक का ध्यान करना चाहिए ।"

सर्वगुणसम्पन्न हनुमान

हनुमान समस्त शुभ लक्षणों से युक्त हैं । वस्तुतः वे अनन्त दिव्य गुणों के भाण्डार हैं । उनके जन्म के पूर्व ही वायुदेव ने अंजना को आश्वस्त करते हुए वरदान दिया था कि "तुम्हें बल-पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा । वह महान धैर्यवान, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारने में मेरे समान होगा ।"

"वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ।
महासत्वो महातेजा महाबल पराक्रमः ।।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मयासमः ।।"[२]

आदिकवि वाल्मीकि ने जन्मकाल में ही उन्हें उपर्युक्त समस्त श्रेष्ठ गुणों से युक्त बतलाया है । उनके अनुसार हनुमान वायुदेव के ऐश्वर्यशाली औरस पुत्र थे । उनका शरीर वज्रतुल्य सुदृढ़ था एवं वे गरुड़ के समान तीव्रगामी थे । यही नहीं, वे समस्त श्रेष्ठ वानरों में सर्वाधिक बलवान एवं बुद्धिमान थे—

"मारुतस्योरसः श्रीमान् हनुमान् नाम वानरः ।
वज्रसंहजनोपेतो वैनतेयसमो जवे ।।
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि ।"[३]

स्कन्दपुराण अवन्तीखण्ड में तो यहाँ तक कहा गया है कि पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, माधुर्य, नीति, गाम्भीर्य, चातुर्य, सुवीर्य एवं धैर्य किसी भी दृष्टि से हनुमान के समान इस विश्व में कोई भी प्राणी नहीं है—

"पराक्रमोत्साहमति प्रतापैः सौशील्य माधुर्य नयादिकेश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्य धैर्यैर्हनूमतः कोऽप्याधिकोऽस्ति लोके ।।"[४]

---

१. रामरहस्योपनिषद,३/१०६ ।
२. वा० रा०, ४/६६/१८-१९
३. तदेव, १/१७/१६-१७
४. स्कन्दपुराण, अवन्ती खण्ड, ७९/४२ ।

हिन्दी-रामकाव्य-परम्परा हनुमान के उपर्युक्त शुभ लक्षणों एवं श्रेष्ठ गुणों से पूर्णतः अभिज्ञ है। तुलसी के हनुमान तो ज्ञान एवं समस्त गुणों के सागर ही हैं।[१] वेद भी वन्दीजनरूप में उनकी प्रशस्ति का गायन करते हुए उन्हें पूर्णप्रतिज्ञ, श्रेष्ठ योद्धा तथा अत्यन्त यशस्वी बतलाते हैं। यही नहीं, उनकी गुण-गाथा का वर्णन श्रीराम स्वयं अपने मुख से करते हैं। वस्तुतः हनुमान के अतिशय पराक्रम के समक्ष अपार भवार्णव भी शुष्क एवं अस्तित्वहीन हो जाता है :—

"बाँकुरो वीर बिरुदेत बिरुदावली, बेद वंदी बदत पेज पूरो।
जासु गुनगान रघुनाथ कह, जासु बल बिपुल जल-भरित जग-जलधि झूरो॥"[२]

साथ ही वे करुणानिधान, बल-बुद्धि के आकर, आनन्द एवं महिमा के धाम तथा गुण-ज्ञान के भाण्डार हैं।

"करुणानिधान, बलबुद्धि के निधान, मोद-
महिमानिधान गुन-ज्ञान के निधान हो॥"[३]

रामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदास ने 'सकल गुण निधान' कहकर उनकी स्तुति की है।[४]

जीवन की उषा बेला में ही जिस समय हनुमान ने विद्याध्ययन के निमित्त सूर्याभिमुख हो आकाश-मार्ग में गमन किया उसे देखकर इन्द्रादि लोकपाल, विष्णु, रुद्र एवं ब्रह्मा भी आश्चर्यचकित हो गये तथा वे सोचने लगे कि क्या यह बल या वीर रस, धैर्य या साहस ही तो मूर्तिमान नहीं हुआ है अथवा इन सबका सार-तत्व ही शरीर तो नहीं धारण किये हुए हैं :

"बल कैधों वीर रस, धीरज के साहस के,
तुलसी शरीर धरे, सबनि को सार सौं।"[५]

तुलसी उनके गुणों पर रीझकर ज्ञानी, गुणवान, बलवान तथा सेवा-कार्य में सतत् सचेष्ट बतलाते हुए उनकी वन्दना करते हैं :—

"ज्ञान-गुनवान वलवान सेवा सावधान,
साहेब सुजान डर आनु हनुमान सो।"[६]

वे विनयपत्रिका में भी बाल्मीकि रामायण एवं संस्कृत-परम्परा के अन्य ग्रंथों से अनुप्रेरित

१. हनुमान चालीसा, चौ० १ 'जय हनुमान ज्ञान गुन सागर'।
२. हनुमानबाहुक, ३
३. तदेव, १४
४. मानस, सुन्दरकाण्ड, श्लोक ३
५. हनुमानबाहुक, ४
६. तदेव, ८

होकर[1] उन्हें गरुड़ के बल, बुद्धि एवं तीव्र वेग के गर्व को खंडित करनेवाला कह कर उनकी प्रार्थना करते हैं।[2]

वाल्मीकि रामायण में सीता की शोध में तत्पर हनुमान से सुग्रीव कहते हैं कि नीति-विशारद हनुमान एकमात्र तुम्हीं में बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकाल का अनुसरण एवं नीतियुक्त व्यवहार एक साथ विद्यमान हैं :

"त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित: ।।"[3]

सुग्रीव के इस कथन से श्रीराम को भी यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि हनुमान सीता की शोध करने में सर्वथा समर्थ हैं।[4] और इसी कारण वह उन्हें अपनी अँगूठी देते हुए उनके गुणों की प्रशंसा करते हैं कि, "वीरवर ! तुम्हारा उद्योग, धैर्य, पराक्रम एवं सुग्रीव का सन्देह—ये सब मुझे इस बात की सूचना-सी दे रहे हैं कि तुम्हारे द्वारा कार्य की सिद्धि अवश्य होगी तथा कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वायुपुत्र ! मुझे तुम्हारे बल का भरोसा है। जिस प्रकार भी सीता की प्राप्ति हो सके तुम अपने महान बल-विक्रम से वैसा ही प्रयत्न करो।"[5]

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस एवं रामचन्द्रिका में भी श्रीराम हनुमान को ही बल-बुद्धि, विक्रम से युक्त एवं सीतान्वेषण-कार्य में दक्ष जानकर मुद्रिका प्रदान करते हैं, क्योंकि उनके द्वारा कार्यसिद्धि में उन्हें पूर्ण विश्वास है। मानसकार के शब्दों में—

"पाछे पवनतनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं समझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।"[6]

केशव के राम की भी यही धारणा है :—

"बुधि बिक्रम व्यवसाय युत, साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनन्त हनुमंत के, मुँदरी दीन्ही हाथ।।"[7]

---

१. (अ) वा० रा०, १/१७/१६-१७
(ब) श्रीहनुमान अंक, पृ० ३६१-३६३ (गीता प्रेस, गोरखपुर)
२. "जयति विहगेश-बलबुद्धि बेगाति-मद मथन" ।
—विनय पत्रिका, २६/२
३. वा० रा०, ४/४४/७
४. वा० रा०, ४/४४/८-१२
५. तदेव, ४/४४/१४, १७
६. मानस, ४/२३/५-६
७. रा० सं०, १३/३२

जब हनुमान मार्ग में छाया ग्रह सिंहिका को बल, बुद्धि एवं युक्तिपूर्वक मारकर आगे बढ़ते हैं, उस समय आकाशचारी प्राणी उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वानरेन्द्र ! जिस पुरुष में तुम्हारे सदृश धैर्य, सूझ, बुद्धि एवं कुशलता ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं होती :

"यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥"[१]

इसी प्रकार केशवकृत रामचन्द्रिका में भी वे अपने बल एवं विवेक का आश्रय ले सुरसा तथा सिंहिका सदृश घोर बाधाओं को पार करते हैं :

"बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि ।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥[२]

यही नहीं, बाल्मीकि के अनुसार हनुमान में तेज, धृति, यश, चातुर्य, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम एवं उत्तम बुद्धि आदि सद्गुण सदैव विद्यमान रहते हैं :

"तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥"[३]

इसी प्रकार तुलसी ने भी हनुमान को बल, बुद्धि एवं चातुर्य से सम्पन्न बतलाया है । परीक्षोपरान्त सुरसा उनके बल-बुद्धि की प्रशंसा करती है तथा राम-कार्य में सफल होने का आशीर्वाद देती है ।[४]

अशोक वन में सीता भी उनके अद्भुत पौरुष एवं अप्रतिम तेज से प्रभावित हैं । वे कहती हैं कि "हनुमन् ! मैं तुम्हारी शक्ति-सामर्थ्य, बल-पराक्रम को जानती हूँ और मैं यह भी समझती हूँ कि तुम्हारी गति पवन के समान है एवं तेज अग्नितुल्य है :

"तव सत्वं बलं चैव विजानामि महाकपे ।
वायोरिव गतिश्चापि तेजश्चाग्नेरिवाद्भुतम् ॥"[५]

इस प्रकार तुलसी के मानस में भी जानकी हनुमान को बल-बुद्धि में निपुण देखकर मधुर फल खाने की आज्ञा देती हैं ।[६] परन्तु सूर की सीता को हनुमान के

---

१. वा० रा०, ५/१/२०१
२. रा० चं०, १३/४०
३. बा० रा०, ६/१२८/८२
४. मानस, ५/२
५. वा० रा०, ५/३७/४२
६. "देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरन हृदयँ धरि, तात मधुर फल खाहु ॥"—मानस, ५/१७

पराक्रम पर अभी उतना दृढ़ विश्वास नहीं हो पाया है । अतएव आज्ञा देते हुए कहती हैं कि पुत्र ! जाओ, तुम अपनी इच्छानुसार कार्य करो, फिर अच्छा हो या बुरा ।

"जाउ पुत्र मनसा फुरौ, भलौ होउ कै पोच ।[१]

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम हनुमान के सद्गुणों पर प्रकाश डालते हुए अगस्त मुनि से कहते हैं कि शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धि, नीति, पराक्रम एवं प्रभाव इन सभी सद्गुणों ने हनुमान के भीतर घर कर रखा है :

"शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालया ।।"[२]

यही नहीं, अगस्त भी उनके गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार में ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, माधुर्य, नय-अनय के विवेक, गाम्भीर्य, चातुर्य, उत्तम बल एवं धैर्य में हनुमान से बढ़ कर हो :

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-सांशील्यमाधुर्यनयानयेश्च ।
गाम्भीर्यं चातुर्य सुवीर्य धैर्यैर्हनूमतः कोऽप्याधिकोऽस्तिलोके ।।"[३]

हनुमान के दिव्य लक्षणों एवं अलौकिक कर्म से रावण भी आश्चर्यचकित एवं आतंकित है । सात मंत्रिकुमारों के वध से क्षुब्ध होकर वह अपने पाँच सेनापतियों को हनुमान से युद्ध करने की आज्ञा देता हुआ उनसे कहता है कि जब मैं उसके अलौकिक कर्म एवं स्वरूप पर विचार करता हूँ, तब वह मुझे वानर नहीं जान पड़ता है । वह सर्वथा कोई महान प्राणी है, जो महान बल से सम्पन्न है :

"न ह्यहं तं कपिं मन्ये कर्मणा प्रति तर्कयम् ।
सर्वथा तन्यहद् भूतं महाबल परिग्रहम् ।।"[४]

साथ ही वह उन्हें सावधान करता है कि "वानर समझ कर तुम्हें उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह धीर और पराक्रमी है ।"[५]

इसके अतिरिक्त रावण यह भी स्वीकार करता है कि उसके अपने जीवन में बालि, सुग्रीव, जाम्बवान, नील, द्विविद आदि जितने भी महान पराक्रमी वानर-भालु

---

१. सूर रामचरितावली, पद ६२ (गीता प्रेस, गोरखपुर)
२. वा० रा०, ७/३५/३
३. तदेव, ७/३६/४४
४. वा० रा०, ७/४६/६
५. "नावमन्यो भवद्भिश्च कपिर्धीरपराक्रमः ।"
तदेव, ७/४६/११

देखे हैं उनमें हनुमान-जैसा भयंकर वेग, तेज, पराक्रम, बुद्धि, बल, उत्साह तथा रूप-धारण करने की शक्ति नहीं है ।[1]

इसी प्रकार तुलसी का रावण भी हनुमान के अतुल पराक्रम एवं अपूर्व तेज से अत्यन्त आतंकित एवं भयभीत है । उनकी एक ललकार उस उद्भट एवं वीर शिरोमणि रावण के साहस रूपी शैल-शिखर को विदीर्ण करने के लिए वज्र की टाँकी तुल्य कठोर तथा भयावह है :

"मत्त-भट-मुकुट, दसकंठ- साहस-सहल ।
सृंग-बिद्दरनि जनु वज्र-टाँकी ।।"[2]

यही नहीं, वीरों के मुकुट एवं महा अभिमानी रावण के सामने ही हनुमान उसकी स्त्री मन्दोदरी के बाल खींचकर बाहर निकाल देते हैं । वह उनका किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं कर पाता । विनयपत्रिका तथा हनुमानबाहुक में कुछ इस प्रकार के संकेत मिलते हैं :

"जयति मंदोदरी-केश-कर्षण, विद्यमान दशकंठ भट-मुकुट मानी ।"[3]

तथा

"तोरि जमकातरि मन्दोदरि कढ़ोरि आनी ।
रावन की रानी मेघनाद महँतारी है ।।"[4]

हनुमान अपने कर्त्तव्य के प्रति अत्यन्त सजग हैं । मैनाक द्वारा विश्राम के आग्रह का प्रलोभन उन्हें अपने कर्त्तव्य-पथ से तनिक भी विचलित नहीं कर पाता । वे उससे कहते हैं कि मेरे कार्य का समय मुझे अत्यन्त शीघ्रता करने के लिए प्रेरित कर रहा है । यह दिन भी बीता जा रहा है । मैंने वानरों के समीप यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं यहाँ बीच में कहीं नहीं ठहर सकता :

"त्वरते कार्यकालो मे अदहश्चप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ।।"[5]

वाल्मीकि की भाँति अध्यात्म रामायण में भी वे यही भाव व्यक्त करते हैं कि "मुझे शीघ्र ही जाना है, अतएव विश्राम का अवकाश भी कहाँ है । साथ ही वे उस पर्वत का सम्मान करते हुए उसके शिखर को कराग्र से स्पर्श करके आगे बढ़ जाते हैं"—

---

१. वा० रा०, ७/४६/१२-१३
२. कवितावली, लंकाकाण्ड, ४४
३. विनयपत्रिका, २६
४. हनुमानबाहुक, २७
५. वा० रा०, ५/१/१३१

"विश्रामो वा कथं मे स्यादगन्तव्यं त्वरितं मया ।
हत्युक्त्वा स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः ।।"[१]

लगभग इसी प्रकार का वर्णन तुलसी के मानस में भी उपलब्ध होता है। वहाँ हनुमान उस पर्वतशिखर को हाथ से स्पर्श एवं उसे प्रणाम करके कहते हैं कि श्रीराम का कार्य किये बिना मुझे विश्राम कहाँ है :

"हनुमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ विश्राम ।।"[२]

केशवकृत रामचन्द्रिका में ऊपर उठते हुए मैनाक को तो वे केवल दृष्टि के पैर से स्पर्श करके (स्नेहपूर्वक देखकर) ही आगे बढ़ जाते हैं :

"उदधि नाकपति शत्रु को, उदित जान बलवन्त ।
अंतरिक्ष ही लच्छि पद, अच्छ छुओ हनुमंत ।।"[३]

इसी प्रकार जय हनुमान काव्य में भी राम-कार्य करने में तत्पर हनुमान को क्षणमात्र का रुकना असह्य प्रतीत होता है तथा वे मैनाक को केवल स्पर्श करके और भी अधिक ऊपर उड़ने लगते हैं :

"हनुमान का श्रम हरने मैनाक जलधि ऊपर आया ।
छूकर उसे और ऊपर उड़ने में कौशल दिखलाया ।।
रामकार्य में लगे भक्त को, था असह्य रुकना क्षणभर ।।"[४]

सूर भी हनुमान की कर्त्तव्यपरायणता के विषय में कहते हैं कि "श्रीराम का कार्य करने, सीता का समाचार लेने तथा अंगद के प्रिय कार्य का विचार करके हनुमान ने सम्पूर्ण लंका जला दी ।"[५]

हनुमान की नीतिकुशलता, बुद्धिचातुर्य एवं दूरदर्शिता के प्रत्यक्ष दर्शन वाल्मीकि रामायण में उस समय होते हैं जब शरणागत विभीषण के प्रति सुग्रीवादि

---

१. अध्यात्म०, ५/१/३३-३४
२. मानस, ५/१
३. रा० चं०, १३/३६
४. जयहनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० १५
५. लंका हनुमान सब जारी ।
रामकाज, सीता की सुधि लगि अंगद प्रीति बिचारी ।।"
—सूर रामचरितावली, पद १०० (गीता प्रेस, गोरखपुर),

प्रमुख वानर सन्देह व्यक्त करते हैं।[१] परन्तु हनुमान उनके सन्देह एवं शंका का बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करते हुए विभीषण को अपनाने का परामर्श देते हैं। वे कहते हैं कि पुरुषों की बाह्याकृति के द्वारा आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है। हृदय के भाव कभी छिप नहीं सकते। वे विभीषण के आगमन को देशकाल के अनुरूप बतलाते हैं।[२] साथ ही श्रीराम से वे अत्यन्त नीतियुक्त वचन कहते हैं कि "आपके उद्योग, रावण के मिथ्याचार, बालि के वध और सुग्रीव के राज्याभिषेक का समाचार जान-सुनकर राज्यप्राप्ति की इच्छा से यह समझ-बूझकर ही यहाँ आपके पास आया है।"[३]

इसी प्रकार तुलसी के मानस[४] एवं गीतावली[५] में भी प्रमुख वानरगण विभीषण की निष्ठा के प्रति शंकालु हैं, रामचरितमानस में तो हनुमान को अपने विचार व्यक्त करने का ही अवसर ही नहीं मिलता। वे शरणागतवत्सल राम के विचारों का ही प्रसन्नतापूर्वक समर्थन मात्र करते हैं।[६] गीतावली में वे श्रीराम से इतना अवश्य कहते हैं कि जिस प्रकार अन्धकार सूर्य के समक्ष नहीं ठहर सकता उसी प्रकार छली व्यक्ति भी आपके सामने नहीं आ सकता। यह भयभीत है, अतः अच्छा हो या बुरा, अब इसका स्नेह एवं आदरपूर्वक पालन कीजिए अथवा जो करणीय हो वह अपने धनुष-बाण से ही पूछ लीजिए :

"हौं बलि जाउँ और को जानै ? कही कपि कृपानिधान सों।
छली न होइ स्वामि सनमुख, ज्यों तिमिर सातहय जान सों॥
खोटो खरो सभीत पालिए सो सनेह सनमान सों।
तुलसी प्रभु कीजौ जो भली, सोइ भूमि सरासन-बान सों॥"[७]

---

१. वा० रा०, ७/१७/२८-२९,३८-४८
२. तदेव, ६/१७/६४-६५
३. "उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
वालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम्॥
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः।
एतावत् तु पुरस्कृत्य युज्यते तस्य संग्रहः॥
—तदेव, ६/१७/६६-६७
४. मानस, ५/४३/३-४
५. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद ३२
६. सुनि प्रभु वचन हरष हनुमाना। सरनागत वच्छल भगवाना॥"
—मानस, ५/४३/५
७. गीतावली, सुन्दरकाण्ड, पद ३३

अतएव हम देखते हैं कि तुलसी ने यद्यपि वाल्मीकि से प्रेरणा ग्रहण की है किन्तु जितने स्वतन्त्र एवं स्पष्ट विचार, जितनी दूरदर्शिता एवं नीतिकुशलता, जितना बुद्धिचातुर्य एवं विवेक वाल्मीकि के हनुमान में दृष्टिगोचर होता है उतना तुलसी के हनुमान में नहीं। तुलसी के हनुमान में वस्तुतः रामायण है। उनकी बुद्धि चातुरी एवं प्रतिभा का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वस्तुतः राम के विचार उनके विचार हैं और राम की आज्ञा का पालन ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है।

रावण की सभा में हनुमान द्वारा उसे समझाना उनकी वाक्‌पटुता, बुद्धिमत्ता एवं नीतिकुशलता का प्रबल प्रमाण है। वे अशोकवन-विध्वंस एवं राक्षसवध का अध्यात्म रामायण में अत्यन्त चतुरता से रावण को सकारण उत्तर देते हैं कि वानर-स्वभाव मैंने वन उजाड़ दिया तथा जब राक्षसों को धनुष-बाण से युक्त प्रहार करने के लिए उद्यत देखा तो अपनी शरीर रक्षा के लिए उनका वध किया। क्योंकि राजन्! अपना शरीर तो सभी देहधारियों को प्रिय होता है। पुनश्च यह मेघनाद नामक राक्षस मुझे ब्रह्मफाँस में बाँधकर यहाँ ले आया।[1]

इसी से प्रभावित 'मानस' में भी हनुमान कहते हैं कि भूख लगने के कारण मैंने फल खाये और वानर-स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़ डाले। राजन्! अपना शरीर समस्त जीवों को अत्यन्त प्रिय है। अतएव जिन राक्षसों ने मुझे मारा, मैंने भी उन्हें मारा। उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध भी लिया :

"खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सबकें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारगगामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाधेउँ तनयँ तुम्हारे॥"[2]

फिर हनुमान रावण को उसके उच्चकुलोद्भव का स्मरण दिलाकर उसके तप, ज्ञान एवं धर्म की प्रसंसा करते तथा उसे सीता को वापस करके बन्धु-बान्धवों सहित श्रीराम की शरण में जाने को प्रेरित करते हैं :

---

१. "दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागता।
न्मा हन्तुकामान् घृतचापसायकान्॥
मया हतास्ते परिरक्षितं वपुः।
प्रियोहि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो॥
ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मां ततः।
समागमन्मेघनिनाद नामकः॥
—अध्यात्म० ५/४/१२-१३

२. मानस, ५/२२/२-३

वाल्मीकि रामायण—"तद्भवान् दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतः परिग्रहः ।
परदारान् महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥[१]

अध्यात्म रामायण—"त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः ।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥[२]

वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण के उपर्युक्त स्थलों से अनुप्रेरित रामचरित-मानस में भी हनुमान रावण से सीता को वापस कर राम की शरण में जाने को कहते हैं। साथ ही उसे अपने निर्मल पुलस्त्यकुल को कलंकित करने से रोकते हैं :

"तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै । मोरे कहें जानकी दीजै ॥
प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि ।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ॥
× × ×
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥[३]

परन्तु रावण के न मानने पर उसे भयभीत एवं आतंकित करके एक कुशल दूत होने का प्रमाण उपस्थित करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में वे रावण से कहते हैं कि तीनों लोकों में कोई भी श्रीराम का अपराध करके सुखी नहीं रह सकता।[४] यही नहीं, देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब मिलकर भी युद्ध में उनके सामने टिक नहीं सकते।[५]

इसी प्रकार मानस में भी हनुमान रावण को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि रावण! सुनों, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामद्रोही की रक्षा में कोई भी समर्थ नहीं है। सहस्रों शंकर, विष्णु एवं ब्रह्मा भी तुझ श्रीरामद्रोही को नहीं बचा सकेंगे।[६] अतएव यह स्पष्ट है कि हनुमान साम, दाम, दण्ड, भेद—सभी नीतियों के पारंगत पंडित हैं।

---

१. वा० रा०, ५/५१/१७
२. अध्यात्म०, ५/४/१६, २३
३. मानस, सुन्दर०, दो० २२/५ से २३/१ तक
४. वा० रा०, ५/५१/२०
५. तदेव, ५/५१/४३
६. "सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी । बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
संकर सहस बिष्णु अज तोही । सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥"
—मानस, ५/२३/४

ज्ञानियों में अग्रगण्य

वस्तुतः हनुमान समस्त ज्ञानियों में अग्रगण्य, व्याकरण, छंद एवं शास्त्रादि के अद्वितीय विद्वान हैं। बाल्यावस्था में ही हनुमान को सूर्यदेव वरदान देते हुए उनके पिता वायुदेव से कहते हैं कि मैं इस बालक को शास्त्रों का ज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह अच्छा वक्ता होगा। शास्त्रवेत्ताओं में इसके समान कोई न होगा :

"तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।
न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्र दर्शने ॥"[1]

इसी प्रकार किष्किंधा में श्रीराम हनुमान की विद्वत्ता से प्रभावित होकर लक्ष्मण से कहते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद का अच्छा विद्वान हुए बिना कोई भी इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्त्तालाप नहीं कर सकता। निश्चितरूप से इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार स्वाध्याय किया है क्योंकि दीर्घ वार्त्तालाप में भी इनके मुख से कोई भी अशुद्ध उच्चारण नहीं हुआ :

"नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥"[2]

वाल्मीकि की भाँति अध्यात्म रामायण में भी श्रीराम उनके शास्त्रज्ञान की प्रशंसा करते हैं।[3] वाल्मीकि रामायण में वे उनकी अद्भुत वाणी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीनों स्थानों द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त होने वाली इस विचित्र वाणी को सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा। तलवार लेकर वध के लिए उद्यत शत्रु का हृदय भी इस अद्भुत वाणी से परिवर्तित हो सकता है। जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे शुभ गुणों से युक्त हों उसके सर्वार्थ की सिद्धि दूतों के वार्त्तालाप से ही हो जाती है।"[4] इसी कारण रामरक्षास्तोत्र में रामदूत वायुपुत्र की 'बुद्धिमत्तां वरिष्ठम्' कहकर वन्दना की गई है।[5] साथ ही महाभारत वनपर्व में भीम रामायण-प्रसिद्ध अग्रज हनुमान का परिचय देते हुए उन्हें बुद्धि, धैर्य, बल एवं ऐश्वर्यादि अनेक अनेक गुणों के कारण प्रशंसनीय बतलाते हैं।

---

१. बा० रा०, ७/३६/१४
२. बा० रा०, ४/३/२८-२९
३. अध्यात्म०, ८/१/१७-१८
४. बा० रा०, ४/३/३३-३४
५. "मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥"
— रामरक्षा स्तोत्र, ३३

"भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्वबलान्वितः ।
रामायणेऽति विख्यातः श्रीमान् वानर पुंगवः ॥"[१]

वाल्मीकि रामायण में समुद्रोल्लंघन के समय जाम्बवान उन्हें 'सर्वशास्त्रविदां वर' कहकर उत्साहित करते हैं।[२] अगस्त्यजी उनके शास्त्रज्ञान के विषय में कहते हैं कि इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह—इन सबका भलीभाँति अध्ययन किया है। सामान्य शास्त्रों के ज्ञान तथा छन्दशास्त्र के अध्ययन में भी इनकी समता में अन्य कोई विद्वान नहीं है :

"ससूत्रवृत्यर्थपदं महार्थं, ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्र ।
मह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे, वैशारदे छन्दगतौ तयेव ॥"[३]

वे उन्हें सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञान एवं तपविधान में बृहस्पति तथा नवव्याकरणार्थवेत्ताओं में ब्रह्मा के समान पूज्य बतलाते हैं।[४]

उपर्युक्त संस्कृत वाङ्मय से अनुप्रेरित एवं प्रभावित तुलसी ने अपने विभिन्न ग्रंथों में हनुमान के बुद्धि, ज्ञान, धैर्य, प्रतिभा, चातुर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। 'मानस' के प्रारम्भ में ही वे 'विशुद्ध ज्ञान सम्पन्न' कह कर उनकी स्तुति करते हैं।[५] वस्तुतः तुलसी के मत से तो वे समस्त ज्ञानवानों में अग्रगण्य हैं :

"दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।"[६]

विनयपत्रिका में वे हनुमान को ज्ञान-निधान एवं सर्वज्ञ बतलाते हैं[७] तथा उनको वेदान्तविद्, अनेक विद्याओं में विशारद, वेद-वेदांगों में निष्णात, ब्रह्मवादी एवं ज्ञान-विज्ञान तथा वैराग्य के पात्र कहकर स्तुति करते हैं :

"जयति वेदान्तविद विविध-विद्या-विशद, वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी ।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो, विमल गुण गनति शुक नारदादी ॥"[८]

---

१ महाभारत, वनपर्व, १४७/११
२. वा० रा०, ४/६६/२
३. तदेव, ७/३६/४६
४. तदेव, ७/३६/४७
५. "बन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ।"
—मानस, बाल०, श्लो० ४
६. तदेव, सुन्दर०, श्लोक ३
७. "तोसो ग्यान-निधान को सरवग्य पियारे ।"
—विनयपत्रिका, ३२/६
८. तदेव, २६/८

साथ ही उन्हें वेद, शास्त्र एवं व्याकरण के भाष्यकार, सामवेद के गायक तथा अनेक कलाओं में मर्मज्ञ कहते हैं।[१]

यही नहीं, उन्हें महानाटक के निर्माण में निपुण, करोड़ों कवियों में सर्वश्रेष्ठ एवं गायन विद्या का गर्व करने वाले गन्धर्वों के विजेता कह कर उनकी प्रशंसा करते हैं :

"महानाटक-निपुन, कोटि-कविकुल-तिलक, गानगुण-गर्व-गंधर्व जेता।[२]

उनकी प्रत्युत्पन्नमति एवं बुद्धिकौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण लंका जाते समय मार्ग में उपस्थित तीन प्रमुख बाधाओं से मुक्त होने में मिलता है। सर्वप्रथम देवताओं द्वारा प्रेषित नागमाता सुरसा उनके बल-बुद्धि के परीक्षण हेतु मार्ग में बाधक बनती हैं किन्तु हनुमान के बुद्धिकौशल, साहस एवं पराक्रम के समक्ष हतप्रभ हो उन्हें बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कह कर रामकार्य में सफल होने का आशीर्वाद देती है :

"गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वरा।"[३]

अध्यात्म रामायण के ही अनुकरण पर मानस में भी वह कहती है कि जिस लिए देवताओं ने मुझे भेजा था, तुम्हारे उस बुद्धि-बल का मर्म मैंने जान लिया। फिर वह हनुमान को बल-बुद्धि का भाण्डार कहती हुई राम-कार्य के सफलतापूर्वक करने का आशीर्वाद देती है :

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥
राम काजु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आशिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान॥"[४]

इसी प्रकार अपनी प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देते हुए 'जय हनुमान' काव्य में भी वे लघु रूप होकर सुरसा के विकराल मुख में प्रविष्ट होते तथा कर्णरन्ध्र से तत्काल बाहर निकल जाते हैं।[५] फिर राहु जननी सिंहिका छायाग्रह रूप में दूसरी

---

१. "जयति निगमागम व्याकरण करणलिपि, काव्यकौतुक कला-कोटि सिंधौ।
सामगायक, भक्त-कामदायक, वामदेव, श्रीराम-प्रिय-प्रेम बन्धौ॥"
—तदेव, २८/५

२. तदेव, २६/४

३. अध्यात्म० ५/१/२३

४. मानस, ५/२/६ तथा दो० २

५. "तब लघु तन बन गये पवनसुत, मन में कुछ कलबल आये।
मुँह में घुस कर कर्णरन्ध्र से, बाहर तुरत निकल आये॥"
—जय हनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० १७

बाधा बन कर आती है, परन्तु हनुमान अपने बुद्धिचातुर्य, धैर्य एवं सूझ-बूझ से राक्षसी के मुख में प्रवेश करके अपने तीक्ष्ण नखों से उसके मर्मस्थानों को विदीर्ण कर देते हैं :

"ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः ।"[१]

वाल्मीकि के उक्त श्लोक से अनुप्रेरित 'जय हनुमान' काव्यकार लिखता है :

"मुँह में घुसकर तीक्ष्ण नखों से,
पेट कररकर चीर दिया ।"[२]

उनके इस अद्भुत कार्य को देख आकाशचारी जीव उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "वानरेन्द्र ! जिस पुरुष में तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि एवं दक्षता ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं होती" :

"यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥[३]

इसी प्रकार स्त्री रूप में तृतीय बाधा भी लंकिनी बनकर उनके समक्ष उपस्थित होती है । यहाँ भी वे उसे परास्त कर अपने बल-बुद्धि का परिचय देते हैं । वह हनुमान से कहती है कि वानरेन्द्र ! मैं स्वयं लंकापुरी ही हूँ, आपने अपने पराक्रम से मुझे परास्त कर दिया :

अहं तु नगरी लंका स्वमेव प्लवङ्गम ।
निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ॥"[४]

वाल्मीकि के उक्त श्लोक के अनुरूप ही मानस में भी वह हनुमान के बुद्धि एवं पराक्रम से प्रभावित हो उन्हें नगर में प्रवेश करके रामकार्य में सफल होने का आशीर्वाद देती है ।[५]

हनुमान के कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य-विवेक की कठिन परीक्षा तब होती है जब वे अशोकवन में तरु-पल्लव की ओट से सीता को आत्मघात करने में प्रवृत्त देखते हैं। वाल्मीकि ने उनकी उस समय की प्रत्युत्पन्नमति एवं बुद्धिचातुरी का अत्यन्त

---

१. वा० रा०, ५/१/१६६
२. जय हनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० १८ ।
३. वा० रा०, ५/१/२०१
४. तदेव, ५/३/४५
५. "प्रविसि नगर कीजै सब काजा । हृदयँ राखि कोशलपुर राजा ॥"
—मानस, ५/५/१

मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। हनुमान के समक्ष अनेक समस्याएँ आती हैं। वे विचार करते हैं कि यदि मैं सीता को सान्त्वना नहीं देता हूँ तो वे निश्चित रूप से अपने जीवन का अन्त कर देंगी।[1] परन्तु राक्षसियों के समक्ष बात करना भी उपयुक्त न होगा।[2] साथ ही यदि द्विज की भाँति संस्कृत बोलूँगा तो सीता मुझे छद्म वेशधारी रावण समझ कर भयभीत हो जायेंगी तथा वह जोर-जोर से चिल्लाने लगेंगी जिससे समस्त राक्षसियों तदुपरान्त रावण को मेरे आगमन की सूचना हो जाने पर युद्ध प्रारम्भ हो जायेगा और इस प्रकार सीता को सन्देश सुनाकर समुद्र के उस पार जाना कठिन हो जायेगा।[3] अस्तु हनुमान के मन में महान अन्तर्द्वन्द्व उठ खड़ा होता है। उपर्युक्त कारणों से उन्हें उनसे बातचीत करना दोषयुक्त प्रतीत होता है परन्तु बातचीत न करने पर सीता का प्राणत्याग भी निश्चित ही है :

"एव दोषो महान् हिस्यान्मम सीताभिभाषणे।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे॥"[4]

उन्हें अपने इस कर्त्तव्य-निर्णय में विलम्ब नहीं होता। वे अपने विवेक से शीघ्र ही यह निश्चय कर लेते हैं कि सीता को आश्वस्त करने के लिए उन्हें संस्कृत के स्थान पर अयोध्या की क्षेत्रीय जनबोली का प्रयोग करना चाहिए।[5] सीता पर अपना विश्वास जमाने के लिए वृक्ष पर बैठे-बैठे ही वे इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ के वर्णन से प्रारम्भ करके उस समय तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाते हैं।[6] तदुपरान्त मुद्रिका देकर सीता के मन में अपने को श्रीराम-दूत होने की दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।[7] यह सब कार्य उनके अद्भुत बुद्धिकौशल का ही परिचायक है।

इस स्थल पर तुलसी ने वाल्मीकि का अनुगमन किया है किन्तु उनका वर्णन विस्तृत नहीं है। न ही हनुमान के मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति का उतना सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक निरूपण ही किया है। "सीता को विरह से अत्यन्त व्यथित देखकर हनुमान को एक क्षण कल्प के समान प्रतीत हुआ"—इतना ही कहकर तुलसी संतुष्ट

१. वा० रा०, ५/३०/१२
२. तदेव, ५/३०/११
३. तदेव, ५/३०/१८, २१, २२-२८
४. तदेव, ५/३०/३६
५. तदेव, ५/३०/१६
६. तदेव, ५/३१/२-१५
७. तदेव, ५/३६/२, १०

हो जाते हैं ।[१] इसके अतिरिक्त वाल्मीकि की भाँति तुलसी के हनुमान द्वारा आदि से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण कथा सुनाने का संकेत मात्र है, उस कथा का वर्णन नहीं है :

"रामचन्द्र गुन बरनैं लागा । सुनतहिं सीता कर दुख भागा ।।
लागी सुनैं श्रवन मन लाई । आदिहु तैं सब कथा सुनाई ।।"[२]

परन्तु वाल्मीकि के विपरीति तुलसी के हनुमान यहाँ तर्क-शक्ति एवं बुद्धि-कौशल की अपेक्षा अपनी भक्ति और श्रीराम की शपथ के द्वारा अपने को रामदूत सिद्ध करने में सफल होते हैं ।[३] हाँ, वाल्मीकि की भाँति यहाँ भी सीता नर-वानरों के संसर्ग का सम्पूर्ण वृत्तान्त हनुमान की प्रेमयुक्त वाणी द्वारा सुनकर ही पूर्ण आश्वस्त होती हैं :

"कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास ।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिंधु कर दास ।।"[४]

वाल्मीकि रामायण में राजनय नियुक्त हनुमान अपने बुद्धि-कौशल द्वारा ही राम कार्य से विमुख विषयासक्त सुग्रीव को उद्‌बुद्ध कर उन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान कराते एवं सीताकी शोध में प्रवृत्त करते हैं । वे सुग्रीव को स्मरण दिलाते हुए कहते हैं कि राजाओं की विजय-यात्रा का मुहूर्त आ गया है, परन्तु प्रमादवश आपको इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है । इसी कारण लक्ष्मण यहाँ आये हैं। श्रीराम अपनी पत्नी के अपहरण से अत्यन्त दुखी हैं; अतः यदि लक्ष्मण के द्वारा कुछ कठोर बचन भी सुनने पड़ें तो आपको चुपचाप सुन लेना चाहिए । क्योंकि इन्द्र सदृश तेजस्वी लक्ष्मण और श्रीराम की अलौकिक शक्ति का ज्ञान तो आपको है ही ।[५]

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में भी वायुपुत्र हनुमान ने यह विचार किया कि सुग्रीव ने रामकार्य को भुला दिया । अतएव उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर साम, दाम, दण्ड, भेद—इन चारों प्रकार की नीतियों का आश्रय ले उन्हें भलीभाँति

---

१. "देखि परम विरहाकुल सीता । सो छन कपिहि कलप सम बीता ।।"
—मानस, ५/१२/६

२. तदेव, ५/१३/३

३. "रामदूत मैं मातु जानकी ।सत्य सपथ करुनानिधान की ।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी ।दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहि दानी ।।"
—तदेव, ५/१३/५

४. तदेव, ५/१३

५. वा० रा०, ४/३२/१५, १६, २

समझाया, जिससे सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुआ तथा उसे अपने कर्त्तव्य का बोध हुआ।[1]

हनुमान अजस्र शक्ति के स्रोत हैं। वे अपने अतुलनीय पराक्रम, पौरुष, उत्साह, बल, धैर्य एवं गाम्भीर्य के कारण जगद्विख्यात हैं। वाल्मीकि रामायण में अगस्त्य मुनि उनकी अपराजेय शक्ति का दिग्दर्शन कराते हुए श्रीराम से कहते हैं कि संसार में हनुमान के समान पराक्रम, उत्साह, प्रताप, सुशीलता, माधुर्य, नय-अनय के विवेक, गाम्भीर्य, चातुर्य, उत्तम बल एवं धैर्य में कोई भी नहीं है :

> "पराक्रमोत्साह मतिप्रताप सौशील्यमाधुर्यनयानयेश्च।
> गाम्भीर्य चातुर्य सुवीर्य धैर्यैर्हनूमतः कोऽप्याधिकोऽस्तिलोके ॥"[2]

जगद्गुरु ब्रह्मा वासुदेव को वरदान देते हुए कहते हैं कि मारुत ! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओं के लिए भयकारक एवं मित्रों के लिए सौम्य होगा। यह युद्ध में सभी के लिए अपराजेय होगा :

> "अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः।
> अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥"[3]

वासुदेव ने अंजना देवी को वर देते हुए अपने भावी पुत्र के बल-पुरुषार्थ के विषय में कहा था कि वह महान धैर्यवान, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारने में मेरे समान होगा :

> "महासत्वो महातेजा महाबल पराक्रमः।
> लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः ॥"[4]

स्वयं श्रीराम अगस्त्य मुनि से हनुमान की अद्वितीय शक्ति के सम्बन्ध में कहते हैं कि निस्सन्देह बालि और रावण के बल की कहीं तुलना नहीं थी, परन्तु मेरा ऐसा मत है कि इन दोनों का बल भी हनुमान के बल की समता नहीं कर सकता था। शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, ज्ञान, नीति, पराक्रम एवं प्रभाव—इन सभी सद्गुणों ने हनुमान के भीतर घर कर रखा है।

---

१. "इहाँ पवनसुत हृदयँ विचारा। रामकाजु सुग्रीवँ बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ॥
सुनि सुग्रीव परम भयमाना। विषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ वानर जूहा ॥"
—मानस, ४/१६/१-२

२. वा० रा०, ७/३६/४४

३. तदेव, ७/३६/२३

४. तदेव, ४/६६/१६

"अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च ।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ।।
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालया ।।"[१]

वाल्मीकि रामायण में वे यहाँ तक कहते हैं कि "युद्ध में हनुमान के जो पराक्रम देखे गये हैं वैसे कर्म न तो काल, न इन्द्र, न विष्णु और न वरुण के ही सुने जाते हैं ।"[२]

यही नहीं, वे उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहते हैं कि मैंने तो इन्हीं के बाहुबल से विभीषण के लिए लंका, शत्रुओं पर विजय, अयोध्या का राज्य तथा सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनों को प्राप्त किया है । वास्तव में यदि मुझे सुग्रीव सखा हनुमान न मिलते तो जानकी का पता लगाने में कौन समर्थ हो सकता था :

"एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ।।
हनूमान यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा ।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तु जानक्याः शक्तिमान् भवेत् ।।"[३]

श्रीराम का तो यह मत है कि हनुमान को अपने बल का पता ही नहीं था, इसी कारण वे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय वानराधिपति सुग्रीव को कष्ट उठाते देखते रहे ।[४]

सीता की खोज में तत्पर हनुमान को सुग्रीव उनके पराक्रम का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं कि "कपिश्रेष्ठ ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, देवलोक अथवा जल में भी तुम्हारी निर्बाध गति देखता हूँ । इस पृथ्वी पर कोई भी प्राणी तुम्हारे तेज की समानता करने वाला नहीं है; अतएव जिस प्रकार भी सीता की प्राप्ति हो वह उपाय तुम्हीं सोचो"—

"न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये ।
नाप्सु वा गतिसङ्ग ते पश्यामि हरिपुंगव ।।
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते ।
तद् यथा लभ्यते सीता तत्वमेवानुचिन्तय ।।"[५]

---

१. तदेव, ७/३५/२-३
२. तदेव, ७/३५/८
३. वा० रा०, ७/३५/९-१०
४. तदेव, ७/३५/१२
५. तदेव, ४/४४/३, ६

इसी प्रकार पं० श्यामनारायण पांडेय कृत 'जय हनुमान' काव्य में सुग्रीव के स्थान पर अंगद उनके अप्रमेय पौरुष एवं बल की प्रशंसा करते हैं।[१]

वाल्मीकि की ही भाँति तुलसी के राम भी हनुमान के बल-विक्रम का वर्णन करते हुए नहीं अघाते। इसके स्पष्ट संकेत मानस के वन्दना-प्रकरण में मिलते हैं :

"महावीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥"[२]

इसी प्रकार कवितावली में भी द्रोणगिरि एवं भरत का समाचार लाते हुए हनुमान को देखकर वे उनके पौरुष की सराहना करते एवं स्वयं को उनका ऋणी मानते हैं :

"बेगु, बलु, साहसु सराहत कृपाल रामु,
भरत की कुसल, अचलु ल्यायौ चलिकै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सील सिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥"[३]

तुलसी अपने सम्पूर्ण साहित्य में स्थान-स्थान पर अतुलित एवं अपरिमित शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। 'मानस' में वे दैत्यरूपी वन को भस्म करने के लिए अग्निरूप, स्वर्णाभ, पर्वताकार, ज्ञानियों में अग्रगण्य हनुमान की वन्दना करते हैं :

"अतुलित बलधामं हेमशैलाभ देहं, दनुजवन कृशानुंज्ञानिनामग्रगण्यम्॥"[४]

वाल्मीकि के राम की तरह तुलसी भी स्वीकार करते हैं कि हनुमान के पराक्रम के कारण ही वानरों की विजय एवं रावण सहित समस्त राक्षसों का विनाश सम्भव हुआ। यही नहीं, उनके बल के कारण श्रीराम ने देवताओं के सब कार्य पूर्ण किये। वे हनुमान बाहुक में उनका यशोगान करते हुए लिखते हैं :

"तेरे बल बानर जिताये रन रावन सों,
तेरे घाले जातुधान भये घर-घर के।
तेरे बल रामराज किये सब सुरकाज,
सकल समाज साज साजे रघुबर के॥"[५]

---

१. जय हनुमान, सप्तम सर्ग, पृ० १०१
२. मानस, १/१७/५
३. कवितावली, लंका०, ५५
४. मानस, सुन्दर०, श्लोक ३
५. हनुमान बाहुक, ३३

सूर के राम को भी हनुमान के अतुल पराक्रम का पूर्ण ज्ञान है। हनुमान के कहने पर कि यदि आपकी थोड़ी भी आज्ञा पा जाऊँ तो रावण के दसों मस्तक काट कर शीघ्र ही सीताजी को ले आऊँ।[१] इस पर राम उनके शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "हनुमन् ? तुम काल के समान बलवान, शूरवीर एवं धैर्यवान हो, परन्तु भूख से काँपते हुए अपने बाण को मैंने बहुत दिनों से निमन्त्रण दे रखा है :

"तू बलवीर धीर अतंक सम, अरु सबहीं विधि लायक।
राख्यौ न्यौति बहुत दिन ते यह, छुधा कंप यह सायक॥"[२]

इसी प्रकार केशवकृत रामचन्द्रिका में भी श्रीराम हनुमान के अलौकिक पराक्रमयुक्त कार्यों से प्रसन्न हो उनकी प्रशंसा करते हैं कि "तुम वानर नहीं वरन् बाण के समान अमोघ शक्ति से सम्पन्न हो; तुम महाबलवानों के मध्य प्रशंसित एवं बल-बुद्धि से सम्पन्न वेद की समस्त शाखाओं के ज्ञाता हो। हे हनुमंत ! तुम साधु हो, बलवान हो और कीर्तिमान हो, एक काम के लिए गये थे, अनेक कार्य कर आये।"[३]

यही नहीं, तुलसी के शब्दों में वे सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवं संहार में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की भाँति समर्थ हैं तथा जीवित करने में अमृत, धारण करने में पृथ्वी, अंधकार को विदीर्ण करने में सूर्य, शोषक रूप में अग्नि, पोषण करने में चन्द्र-सूर्य की तरह सक्षम एवं पराक्रमी हैं :

"रचिबे को विधि जैसे, पालिबे को हरि, हर।
मीच मारिबे को, ज्याइबे को सुधापान भो॥
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को।
सोखिबे कृसानु, पोषिबे को हिम-भानु भो॥"[४]

तुलसी उनके असीम बल एवं पौरुष को संलक्ष्य कर विनयपत्रिका में कहते हैं कि जिसे केसरी किशोर हनुमान का ही भरोसा है उसकी ओर कोई क्रोधभरी दृष्टि से देख नहीं सकता। उनके तमाम भक्तों को आनन्दित, शत्रुओं का विनाश एवं दुष्टों

---

१. सूर राम चरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद सं० ११५
२. तदेव, पद सं० ११५
३. "वानर नहीं हौ तुम मेरे वानरस सम।
वलीमुख सूर बलीमुख निजु गाये हो॥
साखामृग नाहीं बुद्धि बलन के साखामृग।
कैधों वेद साखामृग केशव को भाये हो॥
साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम।
गये एक काज को अनेक करि आये हो॥"—रा० चं०, १४/३२
४. हनुमान बाहुक, ११

का मुख तोड़ने वाला बड़ा बलवान संसार में कोई नहीं है। उनका पुरुषार्थ वेदों एवं पुराणों में प्रकट है। वे समस्त शूरवीरों के शिरोमणि हैं। वे सुग्रीव, विभीषणादि राज्यबहिष्कृतों को पुनर्स्थापित एवं बालि, रावणादि राज्याधिकारियों को राज्यच्युत करने वाले हैं। देवताओं को बन्धनमुक्त करना, समुद्रोल्लंघन करके लंका को भस्म करना एवं दुर्द्धर्ष राक्षसों का बल विनष्ट करना उनके ही सामर्थ्य की बात है।[1]

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय हनुमान की शौर्य-गाथा से आपूरित है। खेल-खेल में शतयोजन विस्तारवाले क्षारसमुद्र को लाँघ जाना, सुरसा, सिंहिका, लंकिनी आदि दुर्दमनीय बाधाओं से पराभूत न होना, अशोकबन-विध्वंस एवं रावणपुत्र अक्षयकुमार सहित दुर्द्धर्ष राक्षसी-सेना को विनष्ट करके सबके देखते-देखते लंकादहन करना तथा पुनः समुद्रोल्लंघन करके सीता का समाचार श्रीराम को सुनाना हनुमान के ही सामर्थ्य की बात थी। साथ ही अकम्पन,[2] देवान्तक,[3] निकुम्भ[4] और कालनेमि सदृश अजेय राक्षसों का वध तथा लक्ष्मण-शक्ति के समय रातोरात द्रोणगिरि लाकर संजीवनी औषधि से उन्हें जीवन प्रदान करना[5] हनुमान के अलौकिक पुरुषार्थ की अभूतपूर्व घटनाएं हैं। हनुमत-स्तवन का एक प्रसिद्ध श्लोक उनके जीवन की उक्त कुछ शौर्यपूर्ण घटनाओं की ओर संकेत करता है :

"गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृत राक्षसम्।
रामायण महामालारत्नं बन्देऽनिलात्मजम्॥
अञ्जनानन्दनं वीरं जानकी शोकनाशनं।
कपीशयक्षहन्तारं वन्दे लङ्का भयंकरम्॥

---

१. "ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोर को॥
जन-रंजन अरिगन-गंजन मुख-भंजन खल बरजोर को।
वेद-पुरान-प्रगट पुरुषारथ सकल सुभट-सिरमोर को॥
उथपे-थपन, थपे उथपन पन, विबुधवृन्द बंदिछोर को।
जलधि लाँघि दहि लंक प्रबल बल दलन निशाचर घोर को॥"
—विनय पत्रिका, ३१

२. बा० रा०, युद्धकांड, सर्ग ५६

३. तदेव, युद्धकांड, सर्ग ७०

४. तदेव, युद्धकांड, सर्ग ७७

५. अध्यात्म०, युद्धकांड, सर्ग ६-७

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं ।
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ॥
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां ।
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥"[1]

संस्कृत वाङ्मय से अनुप्रेरित तुलसी, सूर, केशव, पं० श्यामनारायण पाण्डेय प्रभृत्ति हिन्दी-रामकाव्यकारों ने अपने-अपने ढंग से हनुमान के जीवन की उक्त पराक्रमपूर्ण घटनाओं के अत्यन्त लोमहर्षक चित्र प्रस्तुत किये हैं :

तुलसी विनयपत्रिका में हनुमान के उपर्युक्त शौर्यपूर्ण कार्यों का यशोगान करते हैं—

"जलधि-लंघन सिंह सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर नगर-उत्पात केतू ।
जयति भूनन्दिनी-शोच-मोचन विपिन-दलन घननादवश विगत शंक ॥
लूमलीलाऽनल ज्वालमालाकुलित, होलिकाकरण लंकेश लंका ॥

× × ×

जयति दशकंठ घटकर्ण-वारिद-नाद-कदन-कारन, कालनेमि हंता ।
अघटन घटना-सुघट सुघट-विघटन विकट, भूमि-पाताल-जल गगनगंता ॥"[2]

इसी प्रकार सूर भी उनके अप्रतिम पराक्रम के विषय में कहते हैं कि जिस रावण में ऐसी शक्ति थी कि तीनों लोकों में कोई भी उसकी आज्ञा टाल नहीं सकता था, उस रावण के रहते हुए उसके पुत्र अक्षयकुमार को सेनासहित उन्होंने मार डाला :

"जा रावन की सकति तिहूँ पुर, कोउ न आज्ञा टारी ।
ता रावन के अछत, अक्षयसुत-सहित सैन संहारी ॥"[3]

महाभारत, वनपर्व में ऐसा वर्णन आता है कि गन्धमादन पर्वत पर कदलिवन में विश्राम करते हुए हनुमान की पूँछ बहुत प्रयत्न करने पर भी महाबली भीम टस से मस न कर सके :

"न चाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः ।"[4]

---

१. हनुमत-स्तवन (हनुमान चालीसा के साथ संयुक्त, गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित ग्रंथ)

२. विनयपत्रिका, २५/४, ५, ८

३. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १००

४. महाभारत, वनपर्व १४७/१६

वहीं पर हनुमान ने उन्हें आश्वासन दिया कि "जिस समय तुम शक्ति और बाणों से व्याप्त शत्रु की सेना में प्रवेश कर सिंहनाद करोगे उस समय मैं अपनी गर्जना से तुम्हारे सिंहनाद को बढ़ा दूँगा तथा अर्जुन की ध्वजा पर बैठकर मैं ऐसी भीषण गर्जना करूँगा जो शत्रुओं के प्राण हरण करने वाली होगी और तब तुम उन्हें सुगमतापूर्वक विनष्ट कर दोगे।"[1]

महाभारत के उक्त स्थल से प्रभावित गोस्वामी तुलसीदास हनुमान बाहुक में कहते हैं कि "महाभारत-युद्ध में पार्थ के रथ की ध्वज पर कपिराज हनुमान ने गर्जन किया, जिसे सुनकर कुरुराज दुर्योधन की सेना में घबराहट उत्पन्न हो गई। द्रोण और भीष्म ने कहा कि ये महाबली पवन कुमार हैं, जिनका बल वीररस समुद्र का जल है—

"भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज,
गाज्यौ सुनि कुरुराज दल हलबल भो।
कह्यौ द्रोन भीषम समीरसुत महाबीर,
वीररस वारि-निधि जाको बलजल भो॥"[2]

इसी प्रकार तुलसी की कवितावली में हनुमान की भयंकर ललकार एवं गर्जना का अमित प्रभाव वर्णित है। युद्ध में हनुमान की ललकार वीर-शिरोमणि रावण के साहसरूपी शैल को विदीर्ण करने में वज्र की टाँकी सदृश है। यही नहीं, उनकी भयंकर गर्जना को सुनकर दिग्गज, कच्छप एवं शेष व्याकुल हो जाते हैं तथा शिव को भी असमय में प्रलय होने का भ्रम हो जाता है। उस तीक्ष्ण ध्वनि से ब्रह्मा बधिर और व्यग्र हो उठते हैं तथा निश्चरियों के गर्भपात होने लगता है।[3] यही नहीं, पितामह भीष्म भी हनुमान के अतुल पराक्रम को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि मेरी समझ में हनुमान के समान अत्यन्त बलवान तीनों काल और तीनों लोक में कोई नहीं हुआ :

---

१. "चमू विगाह्य शत्रूणां शरशक्तिसमाकुलाम्।
यदा सिंहरवं वीर करिष्यसि महाबल॥
तदाहं बृंहयिष्यामि स्वरवेण रवं तव।
विजयस्य ध्वजस्थश्च नादान् मोक्ष्यामि दारुणान्॥
शत्रुणां ये प्राणहराः सुखं येन हनिष्यथ॥"
—महाभारत, वनपर्व १५१/१६-१८

२. हनुमान बाहुक, ५

३. "मत्त-भट-मुकुट, दशकंठ-साहस-सइल—

"भीष्म कहत मेरे अनुमान हनुमान—
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो।"[1]

इसी प्रकार महाभारत एवं आनन्द रामायण आदि ग्रन्थों के आधार पर तुलसी ने अपनी विनय-पत्रिका में उन्हें भीमसेन[2] अर्जुन,[3] और गरुड़[4] के गर्व को हरने वाले तथा अर्जुन के रथ की पताका पर बैठकर[5] उनकी रक्षा करने वाला बतलाया है :—

"जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहर, धनंजय-रथ-त्राण-केतु।"[6]

हनुमान का पौरुष अथाह एवं अगाध है। बाल्यावस्था में वे उदित होते हुए अरुणाभ सूर्य को मधुर फल समझकर उसके भक्षण हेतु आकाश में छलाँग लगाते हैं -

"अभ्युत्थितं ततः सूर्यं बालो दृष्ट्वा महावने।
फलं चेति जिघृक्षुस्त्वमुत्प्लुत्याभ्युत्पतो दिवम्॥"[7]

वाल्मीकि के अनुसार उनके इस अप्रतिम पुरुषार्थ को देखकर देवता, दानव, यक्ष सभी आश्चर्यचकित हो उनकी सराहना करने लगे कि हनुमान के सदृश तीव्र गति वायु, गरुड़ एवं मन की भी नहीं है।[8] उन्होंने अनुमान लगाया कि यदि बाल्यावस्था में ही इस शिशु का ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवन का बल पाकर इसका वेग कैसा होगा ?

सृंग-विद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
.... ॥
रजनिचर-धरनि धर गर्भ-अर्भक स्रवत।
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥"

१. हनुमानबाहुक, ७
२. महाभारत, वनपर्व, १४७/१६-२०
३. आनन्द रामायण, मनोहरकांड, अध्याय १८ (हनुमताशरसेतुभंग)
४. श्रीहनुमान-अंक, पृष्ठ ३६१-३६३ (गीता प्रेस, गोरखपुर)
५. महाभारत वनपर्व, १५१/१६-१८
६. विनयपत्रिका, २८/३
७. वा० रा०, ४/६६/२१

"यदि तावच्छिशोरस्य ईदृशो गतिविक्रमः ।
यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति ।।"[१]

उनके पराक्रम से सूर्य, राहु एवं इन्द्र भी भयभीत हो उठते हैं ।[२]

इसी को संलक्ष्य कर तुलसी विनयपत्रिका में हनुमान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि तुमने बालकेलि में ही उदयकालीन प्रचंड सूर्य के मंडल को निगल लिया और राहु, सूर्य, इन्द्र तथा वज्र का गर्व चूर्ण कर दिया :

"जयति जय बालकपि केलि-कौतुक उदित-चंडकर मंडल-ग्रासकर्त्ता ।
राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरण शरण-भयहरण जय भुवन-भर्त्ता ।।"[३]

इसी प्रकार हनुमान बाहुक में भी उक्त घटना की ओर संकेत किया गया है ।

तेरो बालकेलि वीर सुनि सहमत धीर,
भूलत सरीर सुधि सक्र-रवि-राहु की ।"[४]

वस्तुतः हनुमान स्वयं रावण-वध करने में समर्थ थे । महाभारत में उन्होंने भीम को बतलाया भी है कि वह राक्षसाधम रावण मेरे समान बलवान नहीं था परन्तु यदि उस लोककण्टक को मैं मार डालता तो श्रीराम को कीर्ति न मिलती । इसी कारण मैंने उसकी उपेक्षा कर दी :

"भीमसेन न पर्याप्तौ मनासौ राक्षसाधमः ।
मया तु निहते तस्मिन रावणे लोककण्टके ।।
कीर्तिनस्येद्राघवस्य तत एतदुपेक्षितम् ।"[५]

इसी प्रकार सूरसागर में हनुमान सोचते हैं कि सीता को मेरी शक्ति का पता नहीं है, क्योंकि उनके मन में मेरे द्वारा समुद्र पार करने में सन्देह हो रहा है । यदि मेरे ऊपर प्रभु की मर्यादा का बन्धन न होता तो मैं पूरी लंका को उखाड़ फेंकता :

"माता मरम न जानई, मोहि दिखावत सिंधु ।
सबहि लंक उतपाटतौ, जौ न होत साबंध ।।"[६]

---

१. वा० रा०, ७/३५/२७
२. तदेव, ७/३५/३१-३२, ३६
३. विनयपत्रिका, २५/२
४. हनुमान बाहुक, २८
५. महाभारत, वनपर्व, १५०/१८-१९
६. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १०१

यही नहीं, लंका से लौटने पर वे श्रीराम को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि आप चिन्ता त्याग दें। रावण, कुम्भकर्ण एवं उनकी सेना किस गिनती में है। आप कहें तो राक्षस रावण को अपनी पूँछ में लपेट लूँ या उसे नखों से विदीर्ण कर डालूँ।[1] सूरसागर में ही उनके पौरुष के विषय में जाम्बवान कहते हैं कि "इस दल में केसरीनन्दन हनुमान प्रत्यक्ष ही हमारे सामने बैठे हैं, वे क्षण भर में सीता का पता लगाकर लौट आयेंगे। उन्हें तीनों लोकों का प्रताप प्राप्त है तथा उनके बल की कोई थाह नहीं है। यदि वे मन कर लें तो एक दिन में कई बार लंका को क्षण भर में जाकर वहाँ से वापस लौट आवें। वे पवनसुत अत्यन्त बलवान हैं, उनका शरीर वज्र तुल्य है, भला उन्हें कौन रोक सकता है।"[2]

पं० श्यामनारायण पाण्डेय कृत 'जय हनुमान' में भी जाम्बवान हनुमान को उनके पौरुष का स्मरण दिलाकर उत्साहित करते हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारी सम्पुष्ट भुजाओं में गरुड़ के पंख सदृश शक्ति और सुदृढ़ पैरों में वायुदेव-जैसी तीव्र गति है। तुम शैशव में ही सूर्यलोक तक हो आये हो तथा इन्द्र का वज्र भी सहन कर लिया था। फिर यह तुच्छ समुद्र क्या चीज है :

"गरुड़ पंख में जो बल है, वह वल है पुष्ट भुजाओं में।
पवनदेव के सदृश वेग है, कठिन तुम्हारे पाँवों म॥
यह समुद्र क्या शैशव में ही, सूर्यलोक हो आये हो।
इंद्र वज्र सह लिया मगर, यह अपनी हनु खो आये हो॥"[3]

---

१. "राघो जू! कितिक बात, तजि चित!
केतिक रावन-कुंभकरन-दल, सुनिये देव अनंत॥
× × ×
कहौ तौ असुर लंगूर लपेटौं, कहौ तौ नखनि विदारौं।"
—वही, पद १११

२. "या दल मध्य प्रगट केसरिसुत, जाहि नाम हनुमंत।
वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन में, अरु आइहै तुरंत॥
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ, वाके बलहि न अन्त।
जो मन करै एक बासर में, छिन आवै छिन जाइ॥
× × ×
पवनसुत बलवंत बज्रतनु कापै हटक्यो भाइ॥"
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद ६५

३. जय हनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० ६

हनुमान के इसी अद्भुत पराक्रम एवं शक्ति के कारण जाम्बवान को उन पर अगाध विश्वास एवं पूर्ण भरोसा था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जिस समय इंद्रजीत के ब्रह्मास्त्र से राम-लक्ष्मण सहित सम्पूर्ण वानरसेना मूर्च्छित हो जाती है[१] उस समय विभीषण रात में मशाल लेकर ढूंढते हैं कि कोई बचा है या नहीं। उन्हें देखते ही जाम्बवान पूछते हैं कि "राक्षसराज ! जिनसे माता अंजनी पुत्रवती और वायुदेव पुत्रवान बने, वे वानरश्रेष्ठ हनुमान जीवित हैं या नहीं ?" इस पर विभीषण ने जिज्ञासा प्रकट की कि जैसा स्नेह हनुमान में दिखाया है वैसा प्रगाढ़ प्रेम आपका न तो सुग्रीव में, न श्रीराम में और न अंगद में ही है।[२] तब उनकी शंका का समाधान करते हुए जाम्बवान ने कहा कि महावीर हनुमान के जीवित रहने पर इस सेना को मरकर भी जीवित समझो और हनुमान के न रहने पर हम लोगों को जीते हुए भी मृत समझो :

"अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् ।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम् ।।"[३]

वाल्मीकि रामायण के ये ही भाव हनुमन्नाटक में भी व्यक्त किये गये हैं।[४]

जाम्बवान समुद्रोल्लंघन के समय भी हनुमान को उत्साहित करते हुए कहते हैं कि "वानरश्रेष्ठ हनुमान ! उठो और उस महासागर को लाँघ जाओ, क्योंकि तुम्हारी गति सभी प्राणियों से बढ़ कर है :

"उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् ।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव ।।"[५]

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी वे हनुमान के बल-बुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे तात ! संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जिसके करने में तुम समर्थ नहीं हो।

---

१. वा० रा०, युद्धकांड, सर्ग ७३

२. तदेव, ६/७४/१८-२०

३. तदेव, ६/७४/२२

४. हनुमन्नाटक, १३/६-८

५. वा० रा०, ४/६६/३६

"कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि सब अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा ॥"[1]

जाम्बवान से उत्साहित हो हनुमन्नाटक में वे समुद्र सुखा डालने, रावण सहित लंका को वहीं लाकर उपस्थित करने या केवल सीता को ही लाने की आज्ञा माँगते हैं।[2] वाल्मीकि रामायण में तो वे अपनी शक्ति के विषय में यहाँ तक कहते हैं कि मैं वेग में वायु एवं गरुड़ के समान हूँ। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि इस समय मैं दस सहस्र योजन तक जा सकता हूँ। जब मैं यहाँ से छलाँग मारूँगा उस समय संसार में मेरे वेग को कोई धारण नहीं कर सकेगा :

"मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे।
अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः ॥

× × ×

ततश्च हरिशार्दूलस्तानुवाच वनौकसः ।
कोऽपिलोके न मे वेगं प्लवने धारयिष्यति ॥"[3]

अध्यात्म रामायण में अपने पौरुष का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं समुद्र को लाँघकर लंका को भस्म कर डालूँगा और रावण को उसके कुलसहित मारकर जानकी को ले जाऊँगा :

"लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् ।
रावणं सकुलं हत्वानेष्ये जनकनन्दिनीम् ॥"[4]

---

१. मानस, ४/३०/२-३

२. हनुमन्नाटक, ६/५

३. वा० रा०, ४/६७/२७, ३५

४. अध्यात्म०, ४/६/२२/२३

उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों से मानसकार भी पूर्णतः प्रभावित है। यहाँ भी हनुमान सिंहनाद करके कहते हैं कि मैं इस क्षारसमुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ तथा सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ :

"सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥"[1]

इसी प्रकार सूरसागर में हनुमान लंका से लौटने पर अपने पुरुषार्थ का वर्णन करते हुए श्रीराम से कहते हैं कि "यदि आपकी आज्ञा हो तो रावण जैसे करोड़ों राक्षसों को खेल-खेल में मार दूँ अथवा आज्ञा दें तो जानकी को यहाँ ले आऊँ या सम्पूर्ण राक्षसों को मारकर लंका को ध्वस्त एवं भस्म कर डालूँ।"[2]

यही बात वे 'जय हनुमान' में भी जाम्बवान एवं अन्य वानरवीरों से कहते हैं कि यदि आप लोगों की सम्मति हो तो लंका को ही यहाँ उठा लाऊँ अन्यथा आज्ञा दें तो लंका में आग लगा दूँ :

"सबकी सम्मति हो तो मैं, लंका को यहीं उठा लाऊँ।
और नहीं तो आज्ञा दें, लंका में आग लगा आऊँ॥"[3]

यही नहीं, अशोक वन में वे सीता से कहते हैं कि मुझे लघुशरीर वाला देखकर आप निर्बल न समझें। मैं वायु की तरह अत्यन्त बलवान हूँ, मुझे राक्षसों का कोई भय नहीं है। उनका विनाश करने के लिए मैं कालाग्नि एवं कापालिक रुद्रतुल्य दुर्द्धर्ष हूँ :

"लघु तन से मत निर्बल समझें, वायु सदृश बलशाली हूँ।
माँ, न राक्षसों की चिन्ता है, मैं कालाग्नि कपाली हूँ॥"[4]

---

१. मानस, ४/४/३०/४-५

२. "रावन से गहि कोटिक मारौं।
जौ तुम आज्ञा देहु कृपानिधि, तौ यह परिहस सारौं॥
कहौ तौ जननि जानकी ल्याऊँ, कहौ तौ लंक बिदारौं।
कहौ तौं अबहीं पैठि सुभट हति, अनल सकल पुर जारौं॥"
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद ११२

३. जय हनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० १३

४. जय हनुमान, तृतीय सर्ग, पृ० ५४

लंकादहन के समय हनुमन्नाटककार ने उनके अत्यन्त दुर्द्धर्ष एवं रौद्ररूप का चित्र उपस्थित किया है। अग्नि की विकराल लपटों से युक्त उनकी भयावह पूँछ का वर्णन करता हुआ वह कल्पना करता है कि "क्या बड़वानल से शोभित यह समुद्र है, क्या सूर्य बिंब से सुशोभित आकाश है, क्या विद्युत्युक्त मेघमंडल है या तृतीय नेत्र-वाले शिव हैं अथवा क्षयकारक अग्निवाला महाकाल है या इन्द्रधनु से शोभित मेघ है अथवा ध्रुवमंडलयुक्त सुमेरु पर्वत है या धधकती पूँछवाले पवनपुत्र हनुमान ही आकाश में सुशोभित हो रहे हैं।"[1]

हनुमन्नाटक के उपर्युक्त स्थल से पूर्णरूपेण प्रभावित तुलसी ने कवितावली में हनुमान की जलती हुई पूँछ का बड़ा भयानक रूप चित्रित किया है।[2]

'जय हनुमान' काव्य में भी इसी प्रकार उसकी प्रज्ज्वलित पूँछ का अत्यन्त लोम-हर्षक चित्र प्रस्तुत किया गया है :

"अरे कपीश-पुच्छ का, कृशानु है कि काल है ?
प्रचण्ड बाडवाग्नि है कि रुद्रनेत्र ज्वाल है ?

× × ×

प्रदीप्त काल अग्नि है, त्रिनेत्र का त्रिशूल है।"[3]

लंका से लौटने पर अपने अतिमानवीय कार्यों का विवरण देते हुए हनुमान अध्यात्म-रामायण में श्रीराम से कहते हैं कि "मैंने रावण की चौथाई सेना मार डाली और लंकापुरी को जलाकर उसका प्रासाद नष्ट कर दिया। संक्रमों एवं तोपों (शत-घ्नियों) को मैंने तोड़ डाला। हे देव ! आपकी दृष्टि पड़ते ही लंका भस्मीभूत हो जायेगी।"[4]

---

१. हनुमन्नाटक, ६/२८

२. "बालधी बिसाल बिकराल ज्वालजाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
केधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस वीर तरवारि सो उघारी है।
तुलसी सुरेस चापु, केधौं दामिनी-कलापु,
केधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखें जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं,
काननु उजार्‌यो अब नगरु प्रजारि है॥"
—कवितावली, लंकाकांड, ५

३. जय हनुमान, षष्ठ सर्ग, पृ० ८६

४. अध्यात्म०, ६/१/२४-२५

अध्यात्म रामायण से प्रभावित होने पर भी मानस के हनुमान अपने पुरुषार्थ का सारा श्रेय अपने आराध्य श्रीराम को ही दे डालते हैं। उन्हें अपने पराक्रम के वर्णन में संकोच अधिक है। अतएव वे संकेतमात्र करते हैं कि मैंने जो समुद्र लाँघकर सोने का नगर जलाया और राक्षसगण को मारकर अशोकवन का विध्वंस किया वह सब आपही का प्रताप है, इसमें मेरी कोई प्रभुता नहीं है :

"नाथ सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा।।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।"[१]

इसी प्रकार सूरसागर में श्रीराम के पूछने पर कि "कपिराज ! लंका नगरी जली कैसे ? तुमने अपने को बचाकर बड़े-बड़े राक्षसों का संहार कैसे किया ?" इस पर बड़ी विनम्रता से हनुमान कहते हैं कि "प्रभु ! आपके क्रोध और जानकी के शाप से लंका के भवनों को हमने दूर से जलते देखा था। जगदीश्वर, मैं आपसे क्या कहूँ, आपके बल और प्रताप से सब कुछ हुआ है"[२] :

"तुम्हरें क्रोध श्राप सीता कैं, दूरि जरत हम देखे।
हौं जगदीश, कहा कहौं तुम सौं, तुम बल तेज मुरारी।।"[३]

रामचन्द्रिका में भी जब श्रीराम भावविह्वल हो हनुमान का आलिंगन करने को उठते हैं तब वे बड़ी विनम्रता से यह कह कर कि महाराज, मैंने कौन-सा बड़ा काम किया है जो आप इतना सम्मान दे रहे हैं तथा वे अपना मस्तक उनके पैरों पर टेक देते हैं।[४]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की भाँति तुलसी के मानस में भी हनुमान के अमित पराक्रम को देखकर उस समय सभी लोग दंग रह जाते हैं, जिस समय शक्तिपात से विमूर्च्छित लक्ष्मण को कोई भी उठाने में समर्थ नहीं होता; जबकि हनुमान अत्यन्त सरलतापूर्वक उन्हें उठाकर श्रीराम के पास ले जाते हैं। यहाँ अन्तर केवल इतना ही है कि उक्त संस्कृत ग्रंथों में लक्ष्मण रावण की शक्ति से मूर्च्छित होते हैं और वह स्वयं

---

१. मानस, ५/३३/५

२. "कैसे पुरी जरी कपिराइ ?
बड़े दैत्य कैसों कै मारे, अन्तर आप बचाई।।"
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १०६

३. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १०६

४. "रघुनाथ पै जबहीं गये, उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करनी करी, सिर पायँ की धरनी धरी।।"
—रा० चं०, १४/२२

उन्हें उठाने का प्रयास करता है परन्तु मानस में वे मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित होते हैं तथा मेघनाद सदृश शतकोटि योद्धा उन्हें उठाने में असमर्थ हो जाते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त हनुमान श्रीराम से अपना अद्भुत पराक्रम स्पष्ट करते हुए हनुमन्नाटक में कहते हैं कि "आपकी आज्ञा हो तो मैं पाताल से अमृत ले आऊँ, चन्द्रमा को निचोड़कर अमृत चुआ लूं या कि प्रचंड किरणमाली सूर्य को रोक दूं अथवा यमराज के पाश को चूर-चूर कर दूं"—

"पातालतः किमु सुधा रसमानयामि।
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि॥
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि।
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥"[2]

उपर्युक्त भावों से भावित तुलसी की गीतावली में हनुमान ठीक ये ही बातें श्रीराम से कहते हैं :

"जो हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
भेद भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥

× × ×

पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों, सबहि को पापु बहावौं।"[3]

हनुमन्नाटक के उक्त स्थल से अनुप्रेरित सूरदास के हनुमान भी श्रीराम को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि "मेरे देखते लक्ष्मण कैसे मर सकते हैं? आप मुझे आज्ञा तो दें। आप कहें तो मैं सूर्य को उदय ही न होने दूं, जिससे प्रत्येक दिशा में अन्धकार बढ़ता रहे अथवा आज्ञा दें तो यमलोक जाकर यमराज को उनके दूतों सहित भक्षण कर डालूं या स्वयं काल को काटकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूं।

---

१. (अ) वा० रा०, ६/५६/११३, ११८-११६
(ब) अध्यात्म०, ६/६/१५
(स) मानस, ६/५४; ६/५५/३
२. हनुमन्नाटक, १३/१६
३. गीतावली, लंकाकांड, ८/१-३

अथवा आप कहें तो आकाश से चन्द्रमा को लाकर लक्ष्मण के मुख में निचोड़ दूँ या पाताल जाकर अमृत ले आऊँ और उसे समुद्र में घोल दूँ।''[१]

हनुमन्नाटक में वे श्रीराम से संजीवनी लाने की आज्ञा माँगते हुए अपने पराक्रम एवं वेग के सम्बन्ध में कहते हैं कि यहाँ से साठ लाख योजन पर दुहिणाचल स्थित है। खौलते हुए तेल में सरसों रखी जाय और जब तक उसका शब्द होता रहे, मैं उतने ही समय में वहाँ से वापस लौट सकता हूँ :

''लक्षाणां षष्टिरास्ते दुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमां-
स्तैलाग्नैः सर्षपस्य स्फुटनखपरस्तत्र गत्वात्रचैमि ॥''[२]

हनुमान के इसी वेग एवं त्वरा को संलक्ष्य कर तुलसी ने कवितावली में उनके द्वारा पर्वत लेकर आकाश-मार्ग से दौड़ने का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया है। उनकी उस तीव्र गति के समक्ष वायु, मन एवं गरुड़ का वेग भी लज्जित-हो गया। यह वेग इतना अधिक तीव्र था कि आकाश में पर्वत की केवल एक रेखा सी खिंचती हुई दिखाई पड़ी :

''...मानों प्रतच्छ परब्बत की नभ,
लीक लसी, कपि यों धुकि धायो।''[३]

---

१. ''रघुपति ! मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यों मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै ॥
कहौ तो सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि दिसि बाढ़े ताम।
कहौ तो गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ न राम ॥
कहौ तो कालहिं खंड-खंड करि, टूक-टूक करि काटौं।
कहौ तो मृत्युहि मारि डारि के, खोदि पतालहिं पाटौं ॥
कहौ तो चंद्रहि लै अकास तैं, लछिमन मुखहिं निचोरौं।
कहौ तो पैठि सुधा के सागर, जल समस्त में घोरौं ॥''
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १६८

२. हनुमन्नाटक, १३/२०

३. कवितावली, लंकाकांड, ५४

शत्रु रावण भी महावीर हनुमान के पराक्रम से आतंकित है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह अशोकवन में युद्ध को जाते हुए मेघनाद को सावधान करता हुआ कहता है कि "तुम्हें अपने साथ सेना नहीं ले जानी चाहिये, क्योंकि वे सेनाएँ समूह की समूह या तो भाग जाती हैं या मारी जाती हैं। इसी प्रकार अधिक तीक्ष्ण एवं कठोर वज्र लेकर जाना भी व्यर्थ है। उस वायुपुत्र हनुमान की गति अथवा शक्ति की कोई सीमा नहीं है। वह अग्नितुल्य तेजस्वी वानर किसी साधन विशेष से नहीं मारा जा सकता।"[1]

इसी प्रकार तुलसी का रावण भी हनुमान के अद्वितीय पौरुष से पूर्ण परिचित है। वह अंगद से रामसेना के समस्त वीरों को नगण्य एवं तुच्छ बतलाता है किन्तु हनुमान के सम्बन्ध में स्वीकार करता है कि हाँ, एक वानर—जो पहले आया था और जिसने लंका जलायी थी—अवश्य महान बलवान है।

"......है कपि एक महाबलसीला।
आया प्रथम नगरु जेहिं जारा...... ॥"[2]

गीतावली में भी वह दूतों से कहता है कि राम तो सीता-वियोग से क्षीण है, लक्ष्मण अभी बालक है, बालिपुत्र अपने ही कुल का घातक अतएव नगण्य है; जाम्बवान जलरहित मेघ के सदृश निस्सार है, सुग्रीव निकम्मा है। यही नहीं, सम्पूर्ण वानर-समाज कायर है। हाँ, मेरे हनुमान से इन बानरों में एक हनुमान अवश्य शूरवीर है।[3]

सूरसागर में रावण उनके बलिष्ठ भुजदंड को देखकर भयभीत हो उठा, उसके शरीर से पसीना निकलने लगा। हनुमान द्वारा श्रीराम की जय-जयकार करते ही ब्रह्मास्त्र के बन्धन टूट गये, जिससे मेघनाद का भी गर्व चूर हो गया :

---

१. "न वीर सेना गणशो च्यवन्ति।
न वज्रपादाय विशालसारम्॥
न मारुतस्यास्ति गतिप्रमाणं।
न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम्॥"
—वा० रा०, ५/४८/११

२. मानस, ६/२३/३

३. गीतावली, सुंदरकांड, २३/२

"देखत कपि-बाहु-दंड तन प्रस्वेद छूटे।
जै-जै रघुनाथ कहत, बंधन सब टूटे॥
देखत बल दूरि कर्‍यौ, मेघनाद गारौ।
आपुन भयो सकुचि सूर बंधन तैं न्यारौ॥"[१]

हनुमान की बलिष्ठ भुजाओं में इतनी अद्‌भुत शक्ति है कि युद्ध में उनके एक ही मुष्टिक प्रहार से अत्यन्त पराक्रमी योद्धा भी धराशायी हो जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में जाम्बवान उनकी बलिष्ठ भुजाओं के बल-पराक्रम की समता पक्षिराज गरुड के पंखों की अपरिमित शक्ति से करते हैं।[२] इसके अतिरिक्त समुद्र-लंघन करते समय आकाश में फैली हुई उनकी दोनों भुजाएँ पर्वत से निकले पाँच फनवाले दो सर्पों के समान दृष्टिगोचर होती थीं।[३]

इसी प्रकार रघुराज सिंह ने 'रामस्वयंवर' में हनुमान की बलिष्ठ एवं विशाल भुजाओं का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है।[४]

यही नहीं, सूर के अनुसार सीता ने हनुमान की भुजाओं में अमित बल होने का वरदान देते हुए कहा था :

"चिरजीवौं सुकुमार पवनसुत गहति दीन ह्वै पाइ।
बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारें ये अमृत फल खाहु॥"[५]

साथ ही वे उनके शौर्य, पराक्रम की प्रशंसा करती हैं कि बल के पारखी श्रीरघुनाथ धन्य हैं और तुम्हारी माता अंजना देवी धन्य हैं। ऐसे समर्थ दूत के बिना भला लंका-विजय सदृश कार्य कैसे सम्भव था ?

---

१. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद ९५
२. वा० रा०, ४/६६/६
३. तदेव, ५/१/५६
४. "बल की अथाहें वीर महि में मजाहें करें,
हठि युद्ध चाहें रनसिंह अवगाहे हैं।
कपिन पनाहें सर्वदा है रामजीत की,
धुजा हैं करि राहें बहु लंक गढ़ ढाहे हैं।
दासन गुनाहें नहिं गुनत छमा हैं छई,
वीरता नसाहें फोरें अंडह कटाहें हैं।
रघुराज छाहें करें सगुन को दाहें उत,
साहन उमाहें भरी हनुमन्त बाँहें हैं।"
—रामस्वयंवर, २३वाँ प्रबन्ध।
५. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद ७७

"धनि राघव बल परसि हैं, धनि अंजनी सुभाइ।
ऐसे समरथ दूत बिनु, कैसें काज सिराय॥"[१]

तुलसी ने भी हनुमान बाहुक में उन्हें विशाल एवं अत्यन्त बलवान भुजाओं वाला कहा है :

"भुज विशाल मूरति कराल कालहु को काल जनु॥"[२]

× × ×

"उर विशाल, भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन॥"[३]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म आदि संस्कृत रामकाव्यों में वर्णित है कि हनुमान का मुष्टिक प्रहार वज्रतुल्य था। उनके एक मुक्के से महाबली रावण मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। सचेत होने पर वह हनुमान की अद्भुत बल की प्रशंसा करता है।[४] वे भूधराकार कुम्भकर्ण को भी एक मुष्टिक प्रहार से धराशायी कर देते हैं।[५] लंकिनी उनके बायें हाथ के मुष्टिक प्रहार से रुधिर वमन करने लगती है।[६] कालनेमि को तो उनका एक मुष्टिक प्रहार घातक ही सिद्ध होता है :

"जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार सः॥"[७]

उक्त संस्कृत साहित्य से तुलसी, केशव प्रभृति हिन्दी रामकाव्यकारों ने भी हनुमान के अद्भुत मुष्टिक प्रहार का दिग्दर्शन कराया है।

वाल्मीकि और अध्यात्म रामकाव्यों की भाँति तुलसी के मानस में हनुमान के वज्रवत मुष्टिक प्रहार से पर्वत सदृश महाबली रावण मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है, फिर सचेत होने पर उनके बल की प्रशंसा करता है। परन्तु उसके जीवित बचे रहने पर हनुमान अपने पुरुषार्थ को धिक्कारते हैं :

---

१. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १०३
२. हनुमान बाहुक, छंद १
३. तदेव, छंद २
४. (अ) वा० रा०, ६/५६/५३-७४
   (ब) आध्यात्म०, ६/६/१३-१४
५. वा० रा०, ६/६७/६३-६६
६. अध्यात्म०, ५/१/४६
७. तदेव, ६/७/३३

"मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ।।
मुरुछा गै बहोरि सो जागा । कपि बल बिपुल सराहन लागा ।।
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही । धों तैं जियत रहेसि सुरद्रोही ।।"[१]

इसी प्रकार कुम्भकर्ण भी उनके एक मुक्के से व्याकुल हो जाता है :

"तब मारुतसुत मुठिका हन्यो । पर्‌यो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो ।।"[२]

यही नहीं, मायावी मेघनाद भी क्षण भर के लिए मूर्च्छित हो जाता है :

"मुठिका मारि चढ्यो तरु जाई । ताहि एक छन मुरछा आई ।।"[३]

लंका-प्रवेश के समय ही लंकिनी उनके एक मुक्के से रुधिर वमन करती हुई पृथ्वी पर लोट-पोट हो जाती है :

"मुठिका एक महाकपि हनी । रुधिर वमन धरनी ढनमनी ।।"[४]

पं० श्यामनारायण पाण्डेय कृत 'जय हनुमान' काव्य में भी हनुमान के थप्पड़ का यही प्रभाव होता है :

"तो मुझसे भी कुछ ले ले, कह कपि ने झापड़ मारा ।
वह गिरी धरा पर मुँह से, बह चली रक्त की धारा ।।"[५]

केशवकृत रामचन्द्रिका में तो उनके थप्पड़ मारने से उसका रूप-परिवर्तन ही हो जाता है :

"हनुमन्त बली तेहि थापर मारी । तजि देह भई तब ही वर नारी ।।"[६]

यही नहीं, उनकी जाँघों एवं पैरों में अतुलित बल है । समुद्रोल्लंघन के अवसर पर वाल्मीकि रामायण में वे स्वयं कहते हैं कि मेरे ऊरु एवं जाँघों से यह वरुणालय विक्षुब्ध हो उठेगा तथा अनेक महाग्राह ऊपर आ जायेंगे ।

---

१. मानस, ६/८४/१-२
२. तदेव, ६/६५/४
३. तदेव, ५/१६/४
४. मानस, ५/४/२
५. जय हनुमान, द्वितीय सर्ग, पृ० २४
६. रा० चं०, १३/४४

"ममोरुजङ्घावेगेन भविष्यति समुत्थितः ।
समुत्थितमहाग्राहः समुद्रोवरुणालयः ॥"[१]

और उनके दोनों पैरों से दबा हुआ वह महान महेन्द्र पर्वत सिंह से आक्रान्त हुए महान मदमत्त गजराज की भाँति चीत्कार करने लगा ।[२]

इसी प्रकार 'मानस' में भी वर्णन है कि जिस पर्वत पर से हनुमान पैर रख कर कूदे वह तत्काल पाताल में धँस गया :

"जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता । चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥"[३]

नैष्ठिक ब्रह्मचारी

हनुमान के अपूर्व तेज, ओज एवं अद्भुत शक्ति का मूल कारण वस्तुतः उनका आत्मसंयम और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य है । उनकी ब्रह्मचर्य निष्ठा कितनी उच्च तथा उनका मन कितना निष्कलुष एवं पवित्र था इसका सहज अनुमान वाल्मीकि रामायण के उस स्थल से लगाया जा सकता है जब वे रात्रि के समय सीता को रावण की सोती हुई स्त्रियों के मध्य ढूँढ़ते हैं । वहाँ वे चिन्तित हो उठते हैं कि प्रगाढ़ निद्रा में सोई हुई स्त्रियों का दर्शन तो मेरे धर्म का विनाश कर डालेगा ।[४] परन्तु शीघ्र ही इस बात से आश्वस्त हो जाते हैं कि स्त्रियों को देखकर भी मेरे मन में कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ :

"कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावण स्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ॥"[५]

उन्होंने विचार किया कि "समस्त इन्द्रियों के शुभ-अशुभ प्रवृत्तियों का कारण मन ही है तथा मेरा मन सर्वथा निर्विकार है । साथ ही सीता को अन्यत्र ढूँढ़ा भी नहीं जा सकता, क्योंकि स्त्रियों को स्त्रियों के मध्य ही ढूँढ़ा जाता है । खोई हुई युवती स्त्री को हरिनियों के बीच में नहीं ढूँढ़ा जा सकता ।"[६]

१. वा० रा०, ४/६७/१३
२. तदेव, ४/६७/४३
३. मानस, ५/१/४
४. वा० रा०, ५/११/३८
५. तदेव, ५/११/४१
६. तदेव, ५/११/४२-४४

पद्मपुराण के अनुसार हनुमान अपने अखंड ब्रह्मचर्य के कारण शत्रुघ्न को पुनर्जीवन प्रदान करते हैं :

"यथहं ब्रह्मचर्यं च जन्मपर्यन्तमुपद्यत: ।
पालयामि तदा वीर: शत्रुघ्नौ जीवतु क्षणात् ।।"[१]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रन्थों की भाँति ही केशव के हनुमान संयमी, सच्चरित्र और धर्मभीरु हैं। रावण के पूछने पर कि तू बन्दी क्यों हुआ, वे उत्तर देते हैं कि तेरी स्त्री को सोते समय नेत्र से देखा है, इसी पाप से बन्दी होना पड़ा :

"कैसे बँधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो ।।"[२]

तुलसी ने भी विनयपत्रिका में उन्हें "ब्रह्मलोक तक के समस्त भोग-ऐश्वर्यों में वैराग्यवान" कहा है[३] तथा कामदेव के नाशक ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी कह कर उनकी वन्दना की है :

"जयति विहगेश-बल-बुद्धि-बैगाति-मद-मथन, मनमथ-मथन ऊर्ध्वरेता ।"[४]

अनन्य सेवक एवं परमभक्त हनुमान

हनुमान का श्रीराम के प्रति दृढ़ अनुराग है। श्रीराम-भक्ति एवं सेवा ही उनके जीवन का पुरुषार्थ है। वस्तुत: वे राम से अभिन्न हैं।

वाल्मीकि रामायण में वानरों की विदाई के समय वे श्रीराम से इसी वर की याचना करते हैं कि "आपके प्रति मेरा परमस्नेह सदैव बना रहे। आप में ही मेरी भक्ति दृढ़ रहे। आपके अतिरिक्त मेरा आन्तरिक अनुराग अन्यत्र न हो। यही

---

१. स्कंदपुराण, अवन्तीखंड, रेवाखंड, ८३/३३
२. रा० चं०, १४/१
३. विनयपत्रिका, २६/२
४. तदेव, २६/३

नहीं, इस पृथ्वी पर जब तक रामकथा प्रचलित रहे तब तक निःसन्देह मेरे प्राण इस शरीर में ही बसे रहें।[१]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में वे कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! मेरा अभिलाषित वर यही है कि जब तक संसार में आपका नाम रहे तब तक मेरा शरीर भी रहे :

"यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्।
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकांक्षितः ॥"[२]

आनन्द रामायण में भी वे निवेदन करते हैं कि संसार में जहाँ-जहाँ रामकथा का प्रचार हो वहाँ-वहाँ मैं उपस्थित रहूँ :

"यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा।
तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थे सदैव हि ॥"[३]

इसी अनन्य प्रेम एवं भक्ति के कारण तुलसी के राम ने तो मारुति के हृदय-रूपी घर में अपना स्थायी निवास ही बना लिया है :

"जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।"[४]

मानस में शंकर पार्वती से यहाँ तक कहते हैं कि "हनुमान के समान कोई भी सौभाग्यवान एवं श्रीराम चरणों का प्रेमी नहीं है। उनकी प्रीति और सेवा की स्वयं श्रीराम ने बार-बार प्रशंसा की है" :

"हनुमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार-बार प्रभु निज मुख गाई ॥"[५]

---

१. "स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥
यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः ॥
—वा० रा०, ७/४०/१६-१७

२. अध्यात्म०, ६/१६/१३-१४

३. आनन्द रामायण, सारकांड, १२/१४३

४. मानस, १/१७

५. मानस, ७/५०/४-५

कूर्मपुराण में भी उन्हें श्रीराम का प्रिय सेवक कहा गया है :

"वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा।[1]

इसी प्रकार तुलसी ने विनय पत्रिका में समीर सुवन हनुमान को राघवेन्द्र का प्रिय एवं उनका सेवक बतलाया है :

"समरथ सुवन समीर के, रघुवीर-पियारे।

× × ×

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे।[2]

हनुमान चालीसा में "सदा रहौ रघुपति के दासा" कह कर उनकी वन्दना की गई है। हनुमान बाहुक में तुलसी ने उन्हें श्रीराम की सेवा में सजग एवं सावधान बतलाया है :—

"ज्ञान-गुनवान-बलवान-सेवा-सावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो।[3]

इसी प्रकार सूरसागर में भी राम-सेवक के रूप में उनका स्मरण स्थान-स्थान पर किया गया है। अशोकवन में वे सीता को अपना परिचय देते हुए स्वयं कहते हैं कि मैं श्रीराम का सेवक हनुमान हूँ, प्रभु ने आपका समाचार जानने के लिए मुझे भेजा है।[4] रावण से भी वे कहते हैं :

"सीतापति-सेवक तोहि देखन कौं आयो।[5]

रामचरितमानस में जाम्बवान "रामकाज लगि तव अवतारा"[6] कहकर उन्हें स्मरण दिलाते हैं कि राम-कार्य के अतिरिक्त तुम्हारे जन्म का और कोई प्रयोजन ही नहीं है। इसी कारण हनुमान मैनाक से कहते हैं कि राम-कार्य किये बिना मेरे लिए विश्राम करना सम्भव नहीं है।

---

१. कूर्मपुराण पूर्व० २१/३५
२. विनयपत्रिका, ३३/१, ७
३. हनुमान बाहुक, ८
४. "हौं हनुमंत, राम का सेवक, तुम सुधि लेन पठायौ।

× × ×

जानकी हौं रघुपति कौ चैरौ।"

— सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद ८०, ८२

५. तदेव, पद ९५
६. मानस, ४/३०/३

"राम काजु कीन्हें बिनु, मोहिं कहाँ विश्राम।"[1]

इसी प्रकार सूर के हनुमान भी एक कर्त्तव्यनिष्ठ सेवक हैं। वे सोचते हैं कि रावण को भयभीत करने के लिए लंका दुर्ग जला दूँ, अन्यथा यह कोई कैसे जानेगा कि यहाँ श्रीराम का कोई सेवक आया था :

"जारौ गढ़ आजु जैसे रावण भै मानै।
सीतापति-सेवक मुहि-आयौ कौ जानै॥[2]

हनुमान के इस निश्छल सेवाभाव और अनन्त प्रेम के कारण ही श्रीराम उनके चिरऋणी एवं कृतज्ञ हैं।

सीता-शोधोपरान्त लंका से लौटने पर श्रीराम भावविह्वल हो उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अध्यात्म रामायण में कहते हैं कि "हनुमन्! तुमने जो कार्य किया है वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मैं नहीं जानता कि इसके बदले मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ" :

"हनुमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥"[3]

वे यही भाव वाल्मीकि रामायण में भी व्यक्त करते हैं[4] तथा कहते कि इस समय इन महात्मा हनुमान को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करता हूँ क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है :

"एव सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥"[5]

इसी प्रकार तुलसी ने अपने मानस में भी उस समय श्रीराम सदृश सुजान और समर्थ स्वामी एवं हनुमान-जैसे अनन्य भक्त के प्रेमपूर्ण मिलन का अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रभु के श्रीचरणों पर गिरे हुए हनुमान को उनसे पृथक होना नहीं माना। श्रीराम का वरद हस्त उनके सिर पर है, उस भावपूर्ण स्थिति का स्मरण करके वीतराग शंकर भी प्रेममग्न हो जाते हैं :

---

१. मानस ५/१
२. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद ६८
३. अध्यात्म०, ५/५/६०
४. वा० रा०, ६/१/११-१२
५. तदेव, ६/१/१३

"बार-बार प्रभु चहँइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥"[१]

अध्यात्म रामायण में श्रीराम कहते हैं कि हनुमान ने जो कार्य किया है वह देवताओं के लिए भी दुष्कर है। पृथ्वी-तल पर और कोई तो उसका मन से भी स्मरण नहीं कर सकता।[२] यही नहीं, वे उनसे कहते हैं कि इसके पहले तुम्हारा क्या कार्य करूँ—यह नहीं जानता :

"उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः।"[३]

वाल्मीकि रामायण में वे यहाँ तक कहते हैं कि "कपे ! तुमने जो उपकार किये हैं उनमें से एक-एक के लिए मैं अपने प्राण-न्यौछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारों के लिए तो मैं ऋणी ही रह जाऊँगा :

"एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवान् ऋणिनोवयम् ॥"[४]

उक्त ग्रंथरत्नों से प्रभावित होते हुए तुलसी के मानस में श्रीराम कहते है कि कपे ! तेरे समान मेरा उपकार करनेवाला देवता, मनुष्य या मुनि कोई भी देहधारी नहीं है। तेरा प्रत्युपकार करना तो दूर, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता। पुत्र ! मैंने मन में भलीभाँति विचारपूर्वक देख लिया कि मैं तुझसे कभी उऋण हो ही नहीं सकता :

"सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं ॥"[५]

इसी प्रकार 'जय हनुमान' काव्य में भी श्रीराम उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं :

---

१. मानस, ५/३३/१
२. "कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम्।
मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले ॥"
—अध्यात्म०, ६/१/२
३. तदेव, ५/५/६०
४. वा० रा०, ७/४०/२३
५. मानस० ५/३२/३-४

"मैं न उऋण हो सकता तुम तो 'देवों' के वरदान बने।
मेरे प्राणों के रक्षक तुम कपिदल के अभिमान बने ।।
पुरस्कार क्या दे सकता हूँ, आओ गले लगो साथी।
मेरी प्रिया मुझे मिल जाये, ऐसा पुनः जगो साथी ।।"[१]

हनुमान द्वारा संजीवनी औषधि लाकर लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने पर भी श्रीराम उनके प्रति आभार व्यक्त करते हुए अध्यात्म रामायण में कहते हैं कि, "हे महाकपे ! आज तुम्हारी कृपा से ही मैं अपने भ्राता लक्ष्मण को सकुशल देख रहा हूँ।"[२]

तुलसी के मानस में भी संजीवनी पाकर श्रीराम हनुमान के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ होते हैं।[३] सूर के राम लक्ष्मण के लिए संजीवनी लाने के कारण हनुमान को भाई भरत की तरह विपत्ति-बँटाने वाला एवं विभिन्न आपदाओं का निवारक बतलाते हैं। साथ ही कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं कि तुम सेवक हो और तुम्हारे बल से ही हम स्वामी हैं। तुम्हें छोड़कर हमारा कोई सहायक नहीं है। तुम्हारे कारण हमारी दुश्चिन्ताएँ मिट गईं और हम निश्चिन्त होकर सोते हैं। वस्तुतः तुम्हारे ही कारण पिता की मृत्यु का सारा दुःख हमें भूल गया है।"[४]

---

१. जय हनुमान, सप्तम सर्ग, पृ० १०६

२. "मारुतिं प्राह वत्साय त्वत्प्रसादान्महाकपे।
निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम ।।"
—अध्यात्म०, ६/७/३६

३. "हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना ।।"
—मानस, ६/६२/१

४. "श्रीमुख आपुन करत बड़ाई।
तू कपि आज भरत की ठाहर, जिहिं मिलि विपति बटाई ।।
लछिमन हेत मूरि लै आयो, लाँघत अगनित घाटी।
दसहूँ दिसा भयो हम कारन, बौछाहर की टाटी ।।

आनन्द रामायण में ब्रह्मा हनुमान को अमरत्व, बज्रदेहत्व, अबाधिगति एवं हरिभक्ति का वरदान देते हैं।[1]

वाल्मीकि रामायण में भी उनके सेवाभाव एवं अनन्य भक्ति के प्रभावित हो सीता उनके सद्गुणों की प्रशंसा करती हुई अपना बहुमूल्य हार उन्हें समर्पित कर देती हैं।[2] अध्यात्म रामायण में भी वे उन्हें आशीर्वाद देती हैं कि "मारुते ! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे वहाँ मेरी आज्ञा से तुम्हारे पास सम्पूर्ण भोग उपस्थित हो जायेंगे :

"स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया।"[3]

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी सीता हनुमान को श्रीराम का प्रियपात्र समझकर अजर, अमर एवं बल, बुद्धि, शील आदि सद्गुणों से सम्पन्न होने का आशीर्वाद देती हैं :

"आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥"[4]

तू सेवक, स्वामी तोही बल, तो तजि और न मेरे।
निधरक भए, मिटी दुचिताई, सोवत पहरैं तेरे ॥

× × ×

पिता मरन कौ दुःख हमारो तौ होते सब भूल्यो ॥"
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १७७

१. "तदा ददौ वरान् ब्रह्मा मारुतिं पुरतः स्थितम्।
भविष्यामि त्वनरो बज्रदेहो वरान्मम् ॥
ते कुंठिता गतिर्माऽस्तु कुत्राप्यंजनिसंभव।
भविष्यति हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥"
—आनन्द रामायण, १/१३/१७६-१७७

२. वा० रा० ६/१२८/८१-८२

३. अध्यात्म०, ६/१६/१६

४. मानस, ५/१७/१-२

राम राज्याभिषेक के उपरान्त वाल्मीकि रामायण में हनुमान सुग्रीव के साथ किष्किंधा लौट जाते हैं[१] तथा श्रीराम के सरयू-प्रवेश के समय ही अयोध्या आते हैं।[२] परन्तु रामचरितमानस में हनुमान श्रीराम की सेवा हेतु अयोध्या में ही रुक जाते हैं। सुग्रीव किष्किंधा जाते समय हनुमान से कहते हैं कि "पवनपुत्र ! तुम पुण्य-पुञ्ज हो। जाकर कृपाधाम श्रीराम की सेवा करो" :

"पुन्यपुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥"[३]

निरभिमानिता

यह सब होने पर भी हनुमान में अभिमान का लेशमात्र भी नहीं है। लंका से लौटने पर जब श्रीराम उनसे पूछते हैं कि दशानन रावण के रहते हुए तुमने अजेय लंकापुरी कैसे जला दी, तब वे हनुमन्नाटक में बड़े सौम्यभाव से कहते हैं कि "भगवन् ! वह लंका तो जानकी के श्वासों एवं आपकी क्रोधाग्नि से पहले ही भस्म हो चुकी थी। मैं तो उसमें निमित्तमात्र बन गया। वानर का पराक्रम तो इतना ही होता है कि वह इस डाल से उस डाल पर चला जाता है। प्रभो, मैंने जो समुद्र का सन्तरण किया वह आपके प्रताप का प्रभाव था" :

"निःश्वासेनैव सीताया राजन्कोपानलेन ते।
दग्धपूर्वा तु सा लंका निमित्तमभवत्कपिः ॥
शाखामृगस्य शाखायः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लंघितोम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव ॥"[४]

हनुमन्नाटक के यही भाव तुलसी अपने 'मानस' में इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

"कहु कपि रावन पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका ॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोले बचन विगत अभिमाना ॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई ॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन वधि विपिन उजारा ॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ॥"[५]

---

१. वा० रा०, ६/१२८/८५-८६

२. तदेव, ७/११८

३. मानस, ७/१९/५

४. हनुमन्नाटक, ७/४३-४४

५. मानस, ५/३३/३-५

सूर के हनुमान भी श्रीराम से कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते हैं कि आपके क्रोध और जानकी के शाप की अग्नि से लंका को हमने दूर से जलते देखा। यह सब आपके बल और प्रताप से ही सम्भव हुआ है। आप जगदीश्वर हैं, मैं आपसे क्या कहूँ :

"तुम्हरें क्रोध स्राप सीता कें दूरि जरत हम देखे।
हौ जगदीश, कहा कहौं तुमसौं, तुम बल तेज मुरारी ॥"[१]

इसी प्रकार केशवकृत रामचन्द्रिका में भी उनकी निरभिमानिता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। वे अत्यन्त विनम्र हो सकते हैं कि अक्षयकुमार को मारा किन्तु वह तो अत्यन्त निर्बल बालक था। फिर शत्रु मुझे बाँध ले गया। मैंने जो वृक्ष तोड़ वे तो अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण एवं तुच्छ थे; अतएव मैंने कोई प्रशंसनीय विक्रम नहीं किया :—

"अति हत्यो बालक अच्छ, लै गयो बाँधि विपच्छ।
जहु बृच्छ तोरे दीन, मैं कहा विक्रम कीन ॥"[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हनुमान में अतुल पराक्रम, अदम्य उत्साह, निर्भयता, बुद्धिकौशल के साथ-साथ अपूर्व त्याग एवं निरभिमानिता के गुण भी विद्यमान हैं।

---

१. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस, गोरखपुर), पद १०६
२. रा० चं०, १४/३४

सप्तम् अध्याय

रावण

सम्पूर्ण रामकाव्य-परम्परा में रावण प्रतिनायक के रूप में चित्रित हुआ है। उसमें एक आदर्श प्रतिनायक के समस्त लक्षण पूर्णतः विद्यमान थे।[1] वह अमित पराक्रमी, अटूट साहसी, अदम्य उत्साही, अचल धैर्यवान एवं अप्रतिम शौर्य-सम्पन्न योद्धा था। घोर उद्यमी और कठोर तपस्वी होने के साथ ही वह एक कुशल प्रशासक एवं राजनयनिपुण सम्राट भी था। दुराचरण एवं अहंभाव के कारण यदि वह अपनी बौद्धिक प्रतिभा, अपरिमित शक्ति एवं विपुल वैभव का दुरुपयोग न करता तो उसका जीवन निस्सन्देह देवपुरुषों के लिए भी स्मरणीय होता। उसके लोकनिन्दित क्रूरता-पूर्ण निष्ठुर कार्यों के कारण ही समस्त संसार संत्रस्त रहता था। वाल्मीकि के अनुसार यदि रावण में प्रबल अधर्म न होता तो वह इंद्र सहित समस्त देवलोक का संरक्षक हो सकता था :

> "यद्यधर्मो न बलवान स्यादयं राक्षसेश्वरः।
> स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥"[2]

वस्तुतः सम्पूर्ण विश्व को रुलाने वाले उस रावण पर विजय प्राप्त करने के कारण ही राम-चरित इतना उदात्त, उत्कर्षपूर्ण एवं महान बन सका है।

वाल्मीकि एवं अध्यात्मरामायण अथवा महाभारत के रामपरक कथानकों में रावण के पूर्वजन्म में शापित होने एवं राक्षस-योनि में उत्पन्न होने के वृत्तान्तों का सर्वथा अभाव है। हिन्दी रामकाव्य, वह भी प्रमुखतः तुलसी के मानस में, रावण अपने पूर्वजन्म में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा शापित होने के कारण राक्षस-योनि में जन्म धारण करता है। गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक युगों में उत्पन्न होने वाले विभिन्न रावणों के जन्म का कारण किसी न किसी प्रकार का शाप बताया है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक कल्प में रामावतार के साथ रावण का प्रादुर्भाव भी निश्चित है :

---

१. दशरूपक, २/६

२. वा० रा०, ५/४६/१८

"हरि प्रेरित जेहि कल्प जोइ, जातुधान पति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल-समेत बस सोइ॥"[१]

उनके मानस में रावण-जन्म विषयक चार प्रमुख स्रोतों का उल्लेख मिलता है—प्रथम कारण विष्णु-पार्षदों जय-विजय का सनकादि द्वारा अभिशप्त होकर रावण-कुम्भकर्ण होना;[२] द्वितीय जलंधर की सती स्त्री के शाप के कारण विष्णु का रामावतार स्वीकार करना और जलंधर का वहाँ रावण-रूप में जन्म लेना[३] तथा तृतीय शिव के दो गणों द्वारा नारद का उपहास करने पर उनसे शापित होकर रावण-कुम्भकर्ण रूप में उत्पन्न होना,[४] और चतुर्थ कारण विप्र-शाप से कैकय नरेश प्रतापभानु का रावण-रूप में जन्म धारण करना कहा गया है।[५]

जन्म धारण करने के सन्दर्भ में मानस में सनकादि द्वारा जय-विजय को तीन बार राक्षस-योनि में जन्मने का शाप एवं इस प्रकार दूसरे जन्म में उनका रावण-कुम्भकर्ण होना निश्चित रूप से भागवतपुराण पर आधारित है।[६] वहाँ वे दूसरे जन्म में विश्रवा द्वारा केशिनी के गर्भ से सम्पूर्ण लोकों को संतप्त करने वाले रावण और कुम्भकर्ण रूप में उत्पन्न होते हैं :

"ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ।
रावणः कुंभकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ॥"[७]

जलंधर के रावण होने की कथा शिवपुराण और पद्मपुराण में मिलती है, परन्तु मानस का यह प्रसंग मुख्यतः शिवपुराण के अधिक निकट है।[८]

मानस के नारद-मोह-प्रसंग में दो शिवगण नारद का उपहास करते हैं; फलतः नारद द्वारा शापित होने के कारण वे अपने अगले जन्म में रावण और कुम्भकर्ण होते हैं। यह कथा मुख्यतः शिवपुराण पर ही आधारित है।[९]

---

१. मानस, १/१७८-ख
२. तदेव, १/१२२/२ से दो० १२२ तक।
३. तदेव, १/१२३/३ से दो० १२४/१ तक।
४. तदेव, १/१३५
५. तदेव, १/१७३ तथा १/१७६/१-३
६. भागवत पुराण, ७/१/३८-४५
७. तदेव, ७/१/४३
८. शिवपुराण द्वितीय रुद्र संहिता, पंचम युद्ध-खंड, अध्याय २३
९. तदेव, रुद्रसंहिता, सृष्टि खंड, अध्याय ३-४

प्रतापभानु के विप्रशाप से रावणरूप में उत्पन्न होने का प्रसंग यद्यपि मानस के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता, साथ ही डॉ० सरनामसिंह शर्मा इसे भागवत के सौदास उपाख्यान से अनुप्रेरित बताते हैं।[1] परन्तु अधिक सम्भावना यही है कि तुलसी को उक्त विस्तृत वृत्तान्त अपने वास्तविक रूप में कहीं न कहीं लिखित अथवा मौलिक परम्परा से अवश्य प्राप्त हुआ होगा।

सूर ने भागवत से अनुप्रेरित हो केवल जय और विजय के विप्रशाप से रावण-कुंभकर्ण होने की ओर संकेत किया है।[2] अन्य प्रसंगों के सम्बन्ध में वे मौन हैं। इसके अतिरिक्त केशव, मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति अन्य हिन्दी राम-कथाकारों ने इस विषय में कोई अभिरुचि नहीं दिखाई है।

रूप-चित्रण

वाल्मीकि ने रावण के अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रभावशाली रूप का चित्रण किया है। रावण-सभा में हनुमान उसके इसी ऐश्वर्ययुक्त एवं अद्‌भुत रूप का दर्शन करके आश्चर्यचकित हो कहते हैं—"इस राक्षस का कैसा अद्‌भुत रूप है! कैसा अनोखा धैर्य है! कैसी अनुपम शक्ति है और कैसा आश्चर्यजनक तेज है! इसका सम्पूर्ण राजोचित लक्षणों से युक्त होना कितने आश्चर्य की बात है"—

"अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥"[3]

इस विचित्र शोभा से युक्त रावण के नेत्र रक्तिम एवं भयावह, दाढ़ें बड़ी, तीखी एवं चमकीली तथा ओंठ लम्बे-लम्बे थे। दस मस्तकों वाला उसका शरीर काले कोयले के ढेर की भाँति काला था और वक्षस्थल चमकीले हार से विभूषित था। वह पूर्ण चन्द्र के समान मनोहर मुख द्वारा प्रातःकाल के सूर्य से युक्त मेघ की भाँति शोभा पा रहा था। केयूर एवं चन्दन से सुशोभित उसकी भयंकर भुजाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं मानो वह पाँच सिरवाले अनेक सर्पों से सेवित हो रहा हो।

---

१. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, पृ० ३३, संस्करण प्रथम।

२. "जय अरु विजय पारषद दोइ, बिप्र सराप असुर भये सोइ।
एक बराह रूप धरि मार्‌यो, इक नरसिंह रूप संहार्‌यौ॥
रावण कुंभकरन सोइ भये, राम जनम तिनके हित लये।"
—सूर रामचरितावली (गीता प्रेस), पद १

३. वा० रा०, ५/४६/१७

"विचित्रं दर्शनीयेश्च रक्ताक्षैर्भीमदर्शनैः ।
दीप्ततीक्ष्णमहादंष्ट्रं प्रलम्बं दशनच्छदैः ॥
शिरोमिर्दशामिर्वीरो भ्राजनानं महोजसमं ।
नाना व्यालसमाकीर्णैः शिखरैरिव मंदरम् ॥
नीलांजनचय प्रख्यं हारेणोरसि राजता ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रेणा सबालार्कमिवाभ्बुदम् ॥
बाहुभिर्बद्ध केयूरेश्चन्दनोत्तम रुषितेः ।
भ्राजनानांगदैर्भीमैः पंच शीर्षेरिवोरगेः ॥"[१]

मानस का अंगद भी रावण के दरबार में उसके लगभग इसी रूप का दर्शन करता है। वह रावण को सजीव कज्जलगिरि के सदृश देखता है। भुजाएँ वृक्षों तथा सिर पर्वत-शिखरों के समान हैं। रोमावली लताओं तथा मुख, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कंदरा एवं गह्वरों के सदृश हैं :

"अंगद दीख दसानन वैसे। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसे ॥
भुजा विटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना ॥"[२]

वाल्मीकि रामायण में सीता की शोध में तत्पर हनुमान शयन किये हुए रावण की अंगकान्ति, शारीरिक गठन एवं रूपसज्जा का दिग्दर्शन करते हैं।[३] वाल्मीकि उसकी बलिष्ठ, सुगठित एवं विशाल भुजाओं के प्रति विशेष आकृष्ट हो उनका विशद चित्रण करते हैं।[४] यहाँ उसकी केवल दो विशाल एवं भयावह भुजायें होने का ही उल्लेख मिलता है।[५] यही नहीं, वाल्मीकि रामायण में सर्वत्र उसके दस मस्तक एवं बीस भुजाओं का ही वर्णन मिलता है।[६] अध्यात्म रामायण में जन्मकाल में ही उसके

---

१. वा० रा०, ५/४६/५-८।
२. मानस, ६/१६/२-३।
३. वा० रा०, ५/१०/७-११।
४. तदेव, ५/१०/१५, १७, १८।
५. "ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तो महाही रुषिताविव ॥
ताम्यांस परिपूर्णाम्यामुमाम्यां राक्षसे प्रवरः।
शुशुमेऽचल संकाशः श्रंगाभ्यामिव मन्दरः ॥"
—तदेव, ५/१०/२१-२२
६. वा० रा०, ३/४६/८ तथा ३/३५/६।

दस सिर एवं बीस भुजाओं के होने का उल्लेख मिलता है। साथ ही उसके जन्म लेते ही पृथ्वी काँपने लगती है :

"इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम् ।
रावणं विंशतिभुजं दशशीर्षं सुदारुणम् ॥
तद्रक्षोजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा ॥"[१]

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी जन्म के समय से ही उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह अत्यन्त प्रचंड शूरवीर था :

"दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा ॥"[२]

वाल्मीकि के अनुसार रावण का स्वाभाविक रूप काल-सदृश अत्यन्त विकराल था। सीता-हरण के समय जब वह सौम्य रूप को त्यागकर अपने इसी स्वाभाविक रूप में आता है तब सीता अत्यन्त भयभीत हो जाती हैं। इस समय उसके नेत्र रक्तवर्ण के हो जाते हैं तथा महान क्रोध से अभिभूत हो नीलमेघ के समान काला दिखाई पड़ता है। वह दस मुख एवं बीस भुजाओं से युक्त हो जाता है :

"सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः ।
स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥
संरक्त नयनः श्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ।
क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसंनिमः ॥
दशास्यो विंशति भुजो बभूव क्षणदाचरं ।
स परिव्राजकच्छद्म महाकायो बिहायतत् ॥"[३]

तुलसी रावण के उक्त वास्तविक रूप का संकेतमात्र करते हैं।

"तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा ॥"[४]

वह अत्यन्त मायावी एवं कामरूप था। वाल्मीकि रामायण में सीता-हरण के समय वह सीता से कहता है कि काम एवं रूप से उन्मत्त नारी ! तू मेरी ओर देख। मैं इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हूँ :

"कामरूपेण उन्मत्ते पश्य मां कामरूपिणम् ।"[५]

---

१. अध्यात्म०, ७/१/५६-५७।
२. मानस, १/१७६/१।
३. वा० रा०, ३/४६/६-८।
४. मानस, ३/२८/७।
५. वा० रा०, ३/४६/४।

मानस के रावण का तो मायिक एवं कामरूप ही प्रमुख है। युद्ध के अवसर पर वह अनेक रूप धारण करके शत्रु-सेना के सभी योद्धाओं से एक साथ लड़ता है :

"अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रकटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥
देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥"[१]

इसी प्रकार वह माया के अनेक भूत, बेताल, पिशाच एवं असंख्य हनुमान भी उत्पन्न कर देता है।[२]

हिन्दी-रामकाव्य-परम्परा में रावण की रूपाकृति के सम्बन्ध में इससे और पृथक एवं विशिष्ट विवरण नहीं मिलता।

पराक्रम

रावण ने उग्र तप के द्वारा अमित शक्ति का संचयन किया। वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण के अनुसार वह दस सहस्र वर्षों तक घोर तप करता है। प्रत्येक सहस्र वर्ष की समाप्ति पर अपना एक शीश काटकर अग्नि में हवन कर देता है। इस प्रकार जब दसवाँ सहस्र वर्ष पूर्ण हुआ और वह अपना दशम् मस्तक काटने को उद्यत हुआ तब उससे ब्रह्मा ने वर माँगने को कहा।[३]

वाल्मीकि रामायण में रावण ब्रह्मा से अमरत्व का वरदान माँगता है, जिसे ब्रह्मा अस्वीकार कर देते हैं तथा अन्य वरदान माँगने को कहते हैं।[४] तदुपरांत वह मनुष्य को छोड़कर गरुड़, नाग, पक्षी, दैत्य, दानव, राक्षस, देवता एवं अन्य प्राणियों से अबध्य होने का वरदान माँगता है।[५] अतएव यहाँ ब्रह्मा को अस्वीकार नहीं करना पड़ता है।[६] अध्यात्म रामायण में प्रारम्भ में ही वह यह वरदान माँगता है। रामचरितमानस इस दिशा में अध्यात्म रामायण का ही अनुवर्ती है, परन्तु यहाँ संक्षेप में

---

१. मानस, ६/६५/१-२।
२. तदेव, ६/१०१/छंद।
३. (अ) वा० रा०, ७/१०/१०-१२।
   (ब) अध्यात्म०, ७/२/१०-११।
४. वा० रा०, ७/१०/१६-१७।
५. तदेव, ७/१०/१६-२०।
६. अध्यात्म०, ७/२/१२-१५।

रावण के कठोर तप का उल्लेख मात्र है।[1] वह वानर एवं मनुष्य इन दो जातियों को छोड़कर अन्य से अबध्य होने का वरदान प्राप्त करता है :

"हम काहू के मरहिं न मारे। वानर मनुज जाति दुइ बारे ॥"[2]

शक्ति-अर्जन के उपरान्त वह दिग्विजय के लिए निकलता है। वाल्मीकि के अनुसार सर्वप्रथम उसने यक्षों को हराया,[3] पुनः कुबेर को पराभूत करके पुष्पकयान छीन लिया।[4] अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में सर्वप्रथम वह कुबेर को लंकापुरी से निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लेता है।[5] फिर उसकी नयी बसायी हुई नगरी अलकापुरी पर आक्रमण करके पुष्पकयान छीन लेता है।[6] इसके पश्चात् वह स्वर्ग, पाताल, वरुण आदि लोकों पर आक्रमण करके इन्द्र, वरुण, यम आदि देवों को परास्त कर देता है।[7] परन्तु वाल्मीकि ने रावण की इन विजयों का जो विशद वर्णन किया है, हिन्दी रामकथाकारों ने उसका उसी रूप में चित्रण नहीं किया। इस सन्दर्भ में वे अध्यात्म रामायण की संक्षेपवृत्ति के ही अनुवर्ती रहे हैं।[8] अध्यात्म रामायण की ही भाँति मानसकार ने संक्षेप में संकेत कर दिया है कि रावण सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, काल, यम आदि सब अधिकारी तथा किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभी के पीछे हठपूर्वक पड़ गया। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्मसृष्टि ही उसके अधीन हो गई :

"रवि ससि पवन बरुन धन धारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी ॥"[9]

---

१. मानस, १/१७७/१।
२. तदेव, १/१७६/२।
३. वा० रा०, ७/१४/८-३०।
४. तदेव, ७/१५/३७-३८।
५. (अ) अध्यात्म०, ७/२/३४।
   (ब) मानस, १/१७९/१-३।
६. (अ) अध्यात्म०, ७/२/४९।
   (ब) मानस, ४/१७९/४।
७. वा० रा०, ७/२३/४८-४९, ५४;७/२९/३०-४२।
८. अध्यात्म०, ७/२/५०।
९. मानस, १/१८२/५-६।

यही नहीं, जहाँ जो भी बलवान एवं शूरवीर मिला, उसी से वह जा भिड़ा। समस्त विश्व में उसका कोई प्रतिस्पर्धी ही नहीं रहा। वाल्मीकि लिखते हैं कि राक्षस हो या मनुष्य जिसको भी वह बल में बढ़ा-चढ़ा सुनता था, उसी के पास पहुँचकर अभिमानी रावण उसे युद्ध के लिए ललकारता था :

"राक्षसं व मनुष्यं वा श्रृणुतो यं बलाधिकम्।
रावणस्तं समासाथ युद्धे ह्वयति दर्पितः॥"[१]

रामचरितमानस में तो रण के मद में प्रमत्त वह अपनी जोड़ी का योद्धा खोजता हुआ जगत भर में दौड़ता फिरता है, परन्तु उसे कभी कोई योद्धा मिलता ही नहीं :

"रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।"[२]

उसका इतना आतंक है कि अमर्षपूर्ण आते सुनकर सभी देवगण एवं लोकपाल अपना निवास-स्थान सूना छोड़कर भाग जाते हैं। जब वह किसी योद्धा को नहीं पाता तो उन्हें ललकार-ललकार कर गालियाँ देता है :

"रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥
दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि-पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥"[३]

विजयोन्मत्त रावण ने क्रम से सम्पूर्ण लोकों को जीतकर अपनी परिधि के समान विशाल भुजाओं से कैलास पर्वत को उठा लिया :

"रावणो विजयी लोकान्सर्वान जित्वा क्रमेण तु।
कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः॥"[४]

अध्यात्म रामायण की ही भाँति रामचरितमानस में भी वह खिलवाड़ ही में इस प्रकार कैलास को उठा लेता है मानो अपनी भुजाओं का बल तोल रहा हो :

"कौतुकही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तोलि निज बाहुबल, चला बहुत सुख पाइ॥"[५]

---

१. वा० रा०, ७/३४/२।
२. मानस, १/१८२/५।
३. मानस, १/१८२/३-४।
४. अध्यात्म०, ७/२/५५।
५. मानस, १/१७९।

दिग्विजय के समय रावण ने अनेक देव, नाग, यक्ष, राक्षस, असुर एवं मनुष्यों की कन्याओं का अपहरण कर लिया। वह जिस भी रूपवती स्त्री को देखता, उसके रक्षकों का वध करके अपने विमान पर बैठा लेता :

"दर्शनीयां हि्यां रक्षः कन्यां स्त्री वाथ पश्यति ।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः ॥
एवं पन्नग कन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ।
यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोऽध्यारोपयत् ॥"[१]

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में भी देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा अनेक सुंदरी एवं उत्तम स्त्रियों को उसने अपने बाहुबल से जीतकर ब्याह लिया :

"देव जच्छ गंधर्व नर, किन्नर नाग कुमारि ।
जीति बरी निज बाहुबल, बहु सुंदर वर नारि ॥"[२]

इस प्रकार वीर योद्धाओं के मध्य वह महाबलवान् रावण उसी प्रकार अपनी प्रभा से प्रकाशित होता है जैसे वसुओं के बीच में वज्रधारी इंद्र देदीप्यमान होते हैं :

"स रावणः सस्त्रभृतां मनस्विनां महाबलानां समितौ मनस्वी ।
तस्यां सभायां प्रभया चकाशे, मध्ये वसूनामिव वज्रहस्तः ॥"[३]

वाल्मीकि रामायण की भाँति ही मानस का रावण भी सम्पूर्ण विश्व को अपनी भुजाओं के बल से वश में करके सार्वभौम सम्राट बन जाता है :

"भुजबल विस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥"[४]

अपनी शक्ति से मदोन्मत्त वह आत्मश्लाघा करता 'हनुमन्नाटक' में अंगद से कहता है कि मेरा भाई कुम्भकर्ण प्रलयतुल्य शत्रुहन्ता है, इंद्र को भी परास्त करने वाला मेघनाद मेरा पुत्र है। चंद्रहास नामक मेरा खड्ग रणक्षेत्र में शत्रुओं का मस्तक

---

१. वा० रा०, ७/२४/२-३ ।

२. मानस, १/१८२-ख

३. वा० रा०, ६/११/३१ ।

४. मानस, १/१८२-क ।

काटने में निपुण है तथा राक्षस योद्धा जिसके सहायक हैं वही त्रिभुवन विजयी देवशत्रु मैं रावण नामक प्रसिद्ध राजा हूँ ।[१]

हनुमन्नाटक की ही छाया में मानस का रावण उपर्युक्त ढंग से गर्वोक्ति करता है :

"कुंभकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि, जितुउँ चराचर झारि ॥"[२]

तुलसीकृत 'गीतावली' में भी रावण इसी प्रकार अपने पराक्रम की प्रशस्ति करता है ।[३]

सूर का रावण भी अहंकार में कम नहीं है । वह मंदोदरी से इसी प्रकार की दर्पोक्ति करता हुआ कहता है कि मेरे दस मस्तक और बीस भुजाएँ हैं । समुद्र-जैसी सौ योजन की खाई है । मेघनाद सदृश महाबलवान पुत्र तथा कुंभकर्ण-जैसा अमित पराक्रमी भाई है :

"दस मस्तक मेरे बीस भुजा हैं सौ योजन की खाई ।
मेघनाद से पुत्र महाबल कुंभकरन से भाई ॥"[४]

महाप्रतापी रावण से चराचर सृष्टि आतंकित एवं प्रकम्पित है । 'हनुमन्नाटक' में वरिष्ठ देवगण भी उससे भयभीत हैं । रावण का प्रतिहार डाँटता हुआ कहता है, "अरे ब्रह्मा ! अभी वेदपाठ का समय नहीं है, बाहर जाकर चुपचाप बैठो । बृहस्पति धीरे-धीरे बोलो, यह इन्द्र की सभा नहीं है । नारद ! स्तोत्र पाठ छोड़ो । अरे तुम्बुरु ! स्तुतिकथा बन्द करो । इस समय सीता की सिंदूर-रेखा रूप भाले से बिंधा हुआ हृदय होने से लंकाधिपति रावण स्वस्थ नहीं हैं :

"ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयतां ।
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जड़मते नैषा सभा वज्रिणः ॥
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकथलापेरलं तुम्बुरो ।
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थौ न लंकेश्वरः ॥"[५]

---

१. हनुमन्नाटक, ८/३३ ।

२. मानस, ६/२७ ।

३. गीतावली, लंकाकांड, पद-संख्या ३ ।

४. सूर रामचरितावली (गीता प्रेस), पद-संख्या १६० ।

५. हनुमन्नाटक, ८/४५ ।

हनुमन्नाटक के उक्त श्लोक से पूर्णरूपेण प्रभावित रामचन्द्रिका में भी प्रतिहार ठीक वही बात कहता है —

"पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर के कहीं न यज्ञ भीर मंडि रे॥
दिनेश जाय दूर बैठि नारदादि संगही।
न बोलु चन्द मन्द बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥"[१]

वाल्मीकि रामायण में राम-सेना से युद्ध करते समय रावण का एक अमित पराक्रमी दुर्द्धर्ष योद्धा के रूप में विशद चित्रण हुआ है। वह रणभूमि में एक बार हनुमान,[२] नील[३] एवं सुग्रीव आदि अन्य सभी प्रमुख वानर[४] वीरों को परास्त कर देता है। परन्तु तुलसी ने इसका संक्षिप्त वर्णन ही किया है।[५] तुलसी वाल्मीकि की भाँति रावण के प्रति उतने सहृदय नहीं हो सके हैं। पराक्रम में भी वाल्मीकि के रावण की अपेक्षा उनका रावण कुछ हीन ही लगता है। हाँ, वह मायामय युद्ध करने में अधिक कुशल है।[६] अध्यात्म रामायण की भाँति उनका रावण हनुमान के पराक्रम से अत्यधिक भयभीत है। इसी प्रकार हनुमान के एक मुष्टिक प्रहार से ही वह मूच्छित हो जाता है।[७]

अध्यात्म रामायण में विभीषण पर चलाई हुई रावण की प्रबल शक्ति को लक्ष्मण झेलते एवं मूच्छित होते हैं।[८] परन्तु इससे अनुप्रेरित होने पर भी मानस में लक्ष्मण के स्थान पर स्वयं राम ही उस शक्ति को सहन करते तथा थोड़े समय के लिए अचेत हो जाते हैं।[९] तुलसी ने रावण का अन्त अध्यात्म रामायण की पद्धति पर ही किया है। अध्यात्म रामायण में विभीषण कहता है कि इसके नाभि-देश में कुंडलाकार से अमृत रखा हुआ है उसे आप आग्नेयास्त्र से सुखा डालिये, तभी इसकी मृत्यु होगी।

---

१. रा० चं०, १६/२।
२. तदेव, ६/५६/६८-६९।
३. तदेव, ६/५९/८५-९०।
४. तदेव, ६/५९/४१-४४।
५. मानस, ६/९८/३, ६।
६. तदेव, ६/१०० १०१।
७. (अ) अध्यात्म०, ६/११/५-८।
   (ब) मानस, ६/८४/१।
८. अध्यात्म०, ६/६/६-८।
९. मानस, ६/९४/१-२।

"नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुंडलाकार संस्थितम् ।
तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत् ।।"[१]

मानस में भी विभीषण कहता कि इसके नाभिकुंड में अमृत स्थित है, उसी के बल पर रावण जीवित है :

"नाभिकुंड पियूष बस याकें । नाथ जिअत रावनु बल ताकें ।।"[२]

यही नहीं, मृत्यु के समय अध्यात्म रामायण की ही भाँति मानस में भी रावण के शरीर से एक प्रकाश ज्योति निकलकर राम में प्रविष्ट हो जाती है :

"रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ।
प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ।।"[३]

तथा

"तासु तेज समान प्रभु आनन । हरषे देखि संभु चतुरानन ।।"[४]

केशव ने इसके विपरीत वाल्मीकि रामायण से प्रभाव ग्रहण किया है। वाल्मीकि की भाँति उनके रावण के नाभि-प्रदेश में न तो अमृत कुंड है और न मृत्यु के समय उसके शरीर से कोई प्रकाश-ज्योति ही निकलकर राम के शरीर में प्रविष्ट होती है ।[५] सूर का एवं साकेतकार का रावण भी ऐसी किसी विशेषता से शून्य सामान्य रीति से वीरगति प्राप्त करता है ।[६]

शील निरूपण

शील निरूपण के अन्तर्गत रावण के अहंकारी, हठी, कामुक एवं वाक्पटुरूप के साथ-साथ उसके राजनय निपुण आदर्श पिता, भ्रातृ एवं पतिरूप के भी दर्शन होते हैं ।

हिन्दी रामकाव्य-परम्परा में रावण के अहंकारी, वाक्पटु रूप के दर्शन सर्वप्रथम जनक के धनुषयज्ञ प्रकरण में होते हैं । केशवकृत रामचन्द्रिका के रावण-चरित का यह अंश पूर्णरूपेण प्रसन्नराघव से प्रभावित है । प्रसन्नराघव में विष्कंभक के मंजीरक तथा

---

१. अध्यात्म०, ६/११/५३-५४ ।
२. मानस, ६/१०२/३ ।
३. अध्यात्म०, ३/११/८८-७६ ।
४. मानस, ६/१०३/५ ।
५. (अ) वा० रा०, ६/१०८ ।
(ब) रा० चं०, १६/५२ ।
६. (अ) सूर रामचरितावली (गीता प्रेस), पद-संख्या १७६, १८२ ।
(ब) साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४६१, संस्करण सं० २०१४ ।

नूपुरक ही वस्तुतः केशव के सुमति एवं विमति हैं। यहाँ गर्वोक्ति एवं कटूक्तियों से युक्त रावण का चरित वाण-रावण-संवाद के रूप में विकसित होता है। रावण आते ही सुमति से कहता है कि मुझे शम्भु का धनुष दो जिसके मैं तीन खंड कर डालूं और राजपुत्री सीता को लंका ले जाऊँ।[१] प्रसन्नराघव में भी रावण 'कथमद्यापि नानीयते जानकी' कहकर जानकी को उपस्थित करने की त्वरा करता है।[२] इस पर वाण हँसकर रावण से कहता है कि ऐसा वीरदर्प है तो शिव धनु उठाकर ही क्यों नहीं सीता को ले आते हो :"

"यदीदृशं वीरडम्बरं, तत्किमारोप्येव हर कार्मुकं नानीयते सीता ?"[३]

यही बात रामचन्द्रिका में भी बाण रावण से कहता है कि पर्वत से भारी शिवधनु को चढ़ाकर यश ले घर को जा।[४] इस पर वाक्पटु रावण प्रसन्नराघव[५] की भाँति ही गर्वोक्ति करता है कि इस कमलनाल सदृश अत्यन्त कोमल धनुष के तोड़ने में इंद्र, वरुण आदि को पराजित करने वाले मेरे इन प्रबल भुजदंडों के लिए अत्यन्त लज्जा की बात होगी।[६] जिस प्रकार प्रसन्नराघव में बाण रावण से कहता है कि बहुत मुख होना तो बहुत बकवाद करने का कारण है। वास्तव में बहुत बाहु होना ही पराक्रम का कारण है।[७] ठीक उसी प्रकार रामचन्द्रिका में भी बाणासुर कहता है—"वहुत वदन जाके, विविध वचन ताके" इस पर रावण वक्रोक्ति करता है कि हाँ—"बहुभुज युत जोई, सबल कहिए सोई।"[८] तथा कहता है कि क्या तुम इन अत्यन्त बलहीन भुजाओं के भार पर ही बली कहलाना चाहते हो ? "अति असार भुजमार ही बली होहुगे बाण।"[९] लगभग यही बात रावण ने प्रसन्नराघव में भी कही है[१०] तब बाणासुर अपनी भुजाओं का पराक्रम बतलाता है कि "जब मैं अपने पिता बलि के पवित्र चरणों की वंदना करने को पाताल जाता तो मैं सातों रसातलों के निवासियों में अपने

१. रा० चं०, ४/४।
२. प्रसन्न०, १/४८।
३. तदेव, १/४८, पृ० ७१।
४. रा० चं०, ४/६।
५. प्रसन्न०, १/४८।
६. रा० चं०, ४/६।
७. "अये ! बहुमुखता नाम बहु प्रलापितायाः कारणाम्। विक्रमस्य बहुबाहुतेव ॥"
—प्रसन्न०, १/४६।
८. रा० चं०, ४/१०।
९. तदेव, ४/११
१०. "आ : कथरे ! पलालभार निस्सारेण भुजमारेण वीरम्मन्योऽसि।"
—प्रसन्न०, १/४६।

समकक्ष किसी को बली नहीं पाता। न जाने कितनी बार मैंने पृथ्वी अपने हाथों पर उठाकर शेषनाग के फनों को दम लेने की फुर्सत दी है। मैं समस्त पृथ्वी-मंडल को अपने भुजदंडों पर छत्रवत् तान लेता हूँ। फिर इस धनुष को उठाना कौन बड़ी बात है।"[१]

रामचन्द्रिका के बाण की यह गर्वोक्ति प्रसन्नराघव की छाया मात्र है जहाँ वह रावण से कहता है कि क्या तुम नहीं जानते हो कि पिता बलि के चरण-कमलों के प्रणाम करने में शीघ्रता करने से गर्वयुक्त चित्तवाले मैंने पाताल में जाकर समस्त भू-मंडल को सहस्रबाहुओं पर रखकर शेषनाग के फण-समूह को पृथ्वी के भार से कई बार शून्य नहीं किया ?[२]

दोनों में अधिक विवाद बढ़ जाने पर प्रसन्नराघव का बाण कहता है कि मिथ्या-भाषण करके व्यर्थ कलह करने की आवश्यकता नहीं, हम दोनों के बल का निर्णय शिवधनुष ही करेगा,[३] परन्तु यही बात रामचन्द्रिका में रावण के मुख से कहलायी गई है :

"हमहिं तुमहिं नहिं बूझिये, विक्रमवाद अखंड।
अबही यह कहि देहगो, मदन कदन कोदंड॥"[१]

प्रसन्न राघव का बाण मंजीरक से कहता है कि वह सीता से विवाह करने नहीं आया है वरन् शिवधनुष उठाकर अपने बाहुओं का पराक्रम दिखाने आया है।[४] रामचन्द्रिका का बाणासुर भी विमति से कुछ ऐसा ही कहता है कि "मैं तो यहाँ शूरवीरों से भेंट करने आया था परन्तु यहाँ अविचारी रावण से भेंट हो गई और व्यर्थ का विवाद बढ़ गया। मैं तो यह धनुष अपने कीर्ति के लिए उठाता हूँ। मेरा राजकुमारी से कोई प्रयोजन नहीं। वह मनमाना राज्य करे।"[५] केशव का रावण प्रसन्नराघव[६] की ही भाँति कैलास पर्वत को उठाने वाले अपने बाहुओं की प्रशंसा करता हुआ धनुष को बिना उठाये ही युद्ध करके सीता से विवाह करने की हठधर्मी करता है तथा कहता है कि इस सभा के राजाओं को मैं तृणवत् समझता हूँ परन्तु पहले राजकुमारी को देख लूँ तब धनुष को देखूँगा :

"राज सभा तिनुका करि लेखौं, देखि कै राजसुता धनु देखौं।"[७]

---

१. रा० चं०, ४/१२।
२. प्रसन्न०, १/५१।
३. रा० चं०, ४/१६।
४. प्रसन्न०, १/५१।
५. रा० चं०, ४/१६।
६. प्रसन्न०, १/५२, १/५५।
७. रा० चं०, ४/२०।

प्रसन्नराघव में धनुष का उठाना कठिन समझ कर रावण बाण से कहता है कि पहले तुम्हीं धनुष उठाओ, क्योंकि नवागन्तुक होने से तुम हम लोगों के माननीय हो।[1] परन्तु रामचन्द्रिका में बाणासुर ही रावण से कहता है कि तू अधिक बातें क्यों सुनाता है, शीघ्र ही धनुष को चढ़ा। बिना धनुष तोड़े सीता-विवाह का तेरा मनोरथ पूर्ण नहीं होगा।[2] वस्तुतः दोनों ही शिवधनु की गुरुता से परिचित हैं; अतः उसे बिना उठाये ही व्यर्थ की डींग हाँकते हैं। प्रसन्नराघव में वाण तो इंद्र को जीतकर एवं नन्दनकानन को उखाड़कर उसे अपने क्रीड़ोद्यान में आरोपित करने के बहाने वहाँ से खिसक जाता है। रावण भी कहता है कि मैं सीता का हठपूर्वक हरण किये बिना तब तक नहीं हट सकता जब तक अपने किसी अनुचर का आर्त्तनाद नहीं सुनूँगा। इतने में ही आकाशचारी मारीच के रुदन की ध्वनि की कल्पना करके वहाँ से निकल जाता है।[3] प्रसन्नराघव पर आधारित होते हुए भी यहाँ रामचन्द्रिका के रावण में यह विशेषता है कि वह आकर धनुष में हाथ लगाता है तथा अपने को असमर्थ पाकर वाण से कहता है कि मैं तो इस धनुष को पलमात्र में उठा लूँगा, तनिक तुम भी तो उठाकर देखो।[4] इस पर बाणासुर चतुराई से कहता है कि यह धनुष तो मेरे गुरु शिवजी का है और सीता मेरी माता है; अतएव दोनों प्रकार से असमंजस है, यह कहकर बाण चला जाता है।[5] इस तरह केशव के बाण में प्रसन्न राघव के बाण से वाक्चातुरी अधिक है, यद्यपि भावसाम्य की दृष्टि से दोनों एक हैं। रामचन्द्रिका का रावण भी प्रसन्नराघव की ही भाँति हठपूर्वक सीता को ले जाने की बात करता है तथा वह भी यही कहता है कि मैं यहाँ से तब तक न हटूँगा जब तक अपने सेवक की आर्त्त पुकार न सुनूँगा। इतने में ही आकाश में किसी असुर का आर्त्तनाद सुनकर वह स्वयंवर-भूमि छोड़कर चला जाता है।[6]

अतएव हम देखते हैं कि केशवकृत रामचन्द्रिका के रावण चरित का यह अंश प्रसन्नराघव की छायामात्र ही है।

इसी प्रकार रावण के दम्भी एवं वाक्पटु रूप के दर्शन अंगद-रावण-संवाद के अवसर पर भी होते हैं। हनुमन्नाटक में रावण गर्वोक्ति करता हुआ अंगद से कहता है कि रामचन्द्र तो अपनी स्त्री के वियोग में जर्जर हो रहा है, लक्ष्मण की भी वही दशा है। सुग्रीव और अंगद परस्पर फूट के कारण नदी के तटवर्ती निर्मूल वृक्ष सदृश हैं तथा विभीषण की क्या गिनती है; क्योंकि वह शत्रु की दया और दीनता

१. प्रसन्न०, १/५५।
२. रा० चं०, ४/२१
३. प्रसन्न०, १/६०-६१।
४. रा० चं०, ४/२७।
५. तदेव, ४/२८।
६. तदेव, ४/२९-३०।

का भिखारी बना हुआ है। हाँ, लंकावासियों को भयाक्रान्त करने में चतुर, बस एक हनुमान नामक वानर का ही मुझे वध करना है :

"रामः स्त्री विरहेण हारित वपुस्ताच्चिन्तया लक्ष्मणः ।
सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः ॥
गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपौः कारुण्य दैन्यातिथि-
लंकातङ्कविटंक पावक पटुर्बध्यो ममैकः कपि ॥"[1]

ठीक उसी प्रकार उक्त श्लोक से पूर्णरूपेण प्रभावित मानस का रावण भी अहं को व्यक्त करता हुआ कहता है :

"तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिलिप कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। .... ॥[2]

रावण राम को अत्यन्त निर्बल एवं कायर बताता हुआ अंगद से अपने पुरुषार्थ की डीग हाँकता है : -

"भग्नं भस्ममुमापतेरजगवं वालीक्षतः सूक्ष्मत—
स्तालाः सप्तहता हताश्च जलधिर्बद्धश्च बद्धश्च सः ।
आः किं तेन सशैल सागरधरा धारोरगेन्द्राङ्गदं ॥
सार्द्रि रुद्रमुदस्यतां निज भुजांजानात्यसौ रावणः ॥"[3]

राम ने शिव के घुने हुए धनुष को तोड़ा, छिपकर बालि को मारा। टूटे सात तालों को काटा और समुद्र को बाँधा तो इसमें कौन-सा बड़ा पराक्रम हुआ ? अरे मैं तो अपने इन भुजदंडों के पराक्रम को जानता हूँ. जिन्होंने अनेकानेक पर्वतों और समुद्रों को सिर पर धारण करने वाले शेषनाग का बाजूबन्द पहनने वाले शिव को उनके पर्वत कैलास सहित उठा लिया था।"

हनुमन्नाटक के उक्त स्थल से अनुप्रेरित रामचरितमानस में भी रावण गर्वोक्ति करता हुआ कहता है कि, "मैं वही बलवान रावण हूँ जिसकी भुजाओं की लीला कैलास पर्वत जानता है। जिसका शौर्य उमापति शंकर जानते हैं जिन्हें अपने सिर-रूपी पुष्प चढ़ाकर मैंने पूजा था —"

---

१. हनु०, ८/६

२. मानस; ६/२३/१-३

३. हनु०, ८/१३

"सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥"[1]

तथा

"पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलिन्ह पर कर बास ।
सोभित भयउ मराल इव, संभु सहित कैलास ॥"[2]

इसी तरह हनुमन्नाटक से प्रभावित केशवकृत रामचन्द्रिका में भी रावण राम को अत्यन्त भीरु तथा निर्बल बतलाता हुआ अपने पौरुष का बखान करता है।[3] यही नहीं, रावण अपने प्रताप एवं आतंक का वर्णन करते हुए हनुमन्नाटक में अंगद को फटकारता है कि, "रे वानराधम ! कटुभाषी ! देख, मृत्यु मेरा पैर दबाने वाला भृत्य है, सूर्य मेरे यहाँ अँगीठी तपाने का काम करता है, आठों दिक्पाल मेरे भय से घबड़ाकर मेरे चरणों की धूलि को प्रणाम करते हैं। मेरे चंद्रहास को देखकर देवांगनाओं और नागपत्नियों के गर्भ चू जाते हैं तो फिर निर्लज्ज तापस वानरों को मेरे पास भेजकर सीता को कैसे पा सकते हैं :

"मृत्युः पादान्त भृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रे ।
प्यष्टौते लोकपाला मम भयवकिताः पादरेणुं ववन्दुः ॥
दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो ।
निर्लज्जौतापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलापित्वा ॥"[4]

रावण कुछ इसी प्रकार की गर्वोक्ति रामचरितमानस में करता हुआ कहता है कि मैंने दिक्पालों तक से जल भरवाया है। यदि तेरा स्वामी वीर योद्धा है तो सन्धि करने के लिए दूत क्यों भेजता है, लज्जा नहीं आती ? कैलास को मंथन करने वाली मेरी भुजाओं को देख, फिर ऐ मूर्ख वानर ! अपने स्वामी की प्रशंसा करता है :

"दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहिं सुनावा ॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हरिगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥"[5]

---

१. मानस, ६/२५/१
२. तदेव, ६/२२
३. रा० चं०, १६/२५, २७
४. हनु०, ८/१९
५. मानस, ६/२८/३-४

इसी प्रकार गीतावली में भी रावण को अपने आतंक एवं प्रभाव का दम्भ है।[१]

हनुमन्नाटक के उक्त श्लोक से केशव पूर्णरूपेण प्रभावित हैं। रामचन्द्रिका में रावण अपने प्रभुत्व का वर्णन करता हुआ ठीक उसी प्रकार गर्वोक्ति करता है—

"महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै। प्रतीहार है के कृपा सूर जोवै॥
कृपानाथ लीन्हें रहैं छत्र जाको। करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥
सका मेघमाला शिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके॥"[२]

गोविन्द रामायण में भी रावण इसी प्रकार की गर्वोक्ति करता हुआ अंगद से कहता है कि अग्नि स्वयं मेरा भोजन पकाता है, वायु मेरे दरवाजे पर झाड़ू लगाता है। चन्द्रमा मेरे लिए चँवर एवं सूर्य छत्र धारण कराते हैं। ब्रह्मा मेरे समक्ष खड़े होकर वेद-पाठ करता है, वरुण पानी भरता है, कुबेर मुझे कर देता है।[३]

रावण अंगद से अपने अमित प्रभाव पर गर्व करता हुआ कहता है :—

"परिमित महिमानं क्षुद्रेमनं समुद्रं
क्षितिधर घटनाभिः कोयमुत्तीर्य गर्वः॥
अकलित महिमानः सन्ति दुष्प्राप पारा।
दशवदन भुजास्ते विंशतिः सिन्धुनाथाः॥"[४]

स्वल्प प्रभाव वाले इस छोटे से समुद्र में पर्वतों से पाटकर पुल बनाया और पार हुए तो इसमें गर्व की क्या बात हुई? अरे! अभी तो अमित प्रभावशाली दशानन के बीस दुष्पार बाहु-समुद्र विद्यमान ही हैं। इन्हें पार करो तब जानें।"

हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित तुलसी के मानस में भी रावण कहता है कि राम ने वानरों की सहायता से पुल बाँध लिया, बस यही उसकी प्रभुता है। समुद्र को तो

१. गीतावली, लंकाकांड, पद ३
२. रा० चं०, १६/२२-२३
३. "अगनि पाक कहुँ करै पवन मुर बार बुहारै।
चँवर चंद्रमा धरै सूर छत्रहिं सिर ढारै॥
मद लक्ष्मी पियाव वेद मुख ब्रह्म उचारत।
वरुण बारि नित भरै और कुलदेव जुहारत॥
निज कहत सुबल दानव प्रबल देत धनद जछ मोहि कर।
वे युद्ध जीतने जाहिंगे कहाँ दोइ ते तीन नर॥"
—गोविन्द रामायण, लंका-गमन, पृ० १०७
४. हनु, ८/३१

अनेक पक्षी लाँघ जाते हैं परन्तु वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते। बलरूपी जल से पूर्ण मेरे भुजा रूपी समुद्र में अनेक शूरवीर देवताओं और मनुष्यों का विलीनीकरण हो चुका है। ऐसा कौन योद्धा है जो मेरे इन बीस भुजारूपी अगाध समुद्रों की थाह पा सके :

"सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ।।
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं तै सुनु सब कीसा ।।
मम भुज सागर बल जलपूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ।।
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा ।।"[१]

केशवकृत रामचन्द्रिका में रावण के स्थान पर यही बात मेघनाद कहता है कि राम ने सप्तताल वेध एवं समुद्र बाँधकर कौन-सा बड़ा पराक्रम कर दिखाया, यह तो धोखे का चमत्कार मात्र है :

"ताल बिधे अरु सिंधु बंध्यो, यह चेटक विक्रम कौन कियौ।"[२]

इसी प्रकार रावण आत्मश्लाघा करता है कि "युद्ध में जब ऐरावत के मूसल समान दाँत मेरे वक्षस्थल में लगे तो उसके सब दाँत खंडित हो गये तथा मेरा वक्ष-स्थल अक्षत रहा। जब मैंने खेल में ही कैलास उठाया तो पर्वत हिलने से पार्वती भयभीत हो शिव से चिपक गईं। इससे शिवजी बड़े प्रसन्न हुए। ऐसी स्थिति में राम की तो बात ही क्या है। हाँ दूसरा कोई मुझसे भी अधिक शक्ति वाला शत्रु हो तो उसके सम्बन्ध में विचार करूँ :

"सर्वेर्यैस्य समं समेत्य कठिनां वक्षस्थलीं संयुगे।
निर्मग्नं मुखमेव दन्तमुसलैरेरावतस्यौन्नतैः ।।
हेलोत्क्षिप्त महीध्रकम्पजनितत्रासांगनालिंगन।
प्राप्तानन्द हर प्रसाद मुदितश्चिन्त्यः सः मेऽन्यो रिपुः ।।"[३]

मानस का रावण भी अपने पराक्रम का इसी प्रकार दंभ करता है कि "दिग्गज मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जब-जब मैं उनके भयानक दाँतों से जबरदस्ती भिड़ा वे मेरी छाती को क्षतिग्रस्त न कर सके प्रत्युत मेरी छाती से लगते ही वे मूली की तरह टूट गये। जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मस्त हाथी के चढ़ते समय छोटी नौका। मैं वही जगतप्रसिद्ध रावण हूँ। यही नहीं, कैलास का मंथन करने वाली मेरी भुजाओं को देख, फिर अपने स्वामी की सराहना करना :

१. मानस, ६/२८/१-२
२. रा० चं०, १६/१३
३. हनु०, ८/३५

"जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ।।
जिन्ह के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ।।
जासु चलत डोलत इहि धरनी । चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ।।
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी । ……………………..।।"[१]

तथा

"हरगिरि मथन निरखु मम बाहू । पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ।।"[२]

इसी प्रकार हनुमन्नाटक में अंगद से अपने पौरुष एवं निर्भयता के प्रति गर्वोक्ति करता है कि "वीरों में प्रथम गणनीय उस महाबीर रावण से भला कौन शत्रुता कर सकता है, जिसने स्वयं अपने सिर काटकर अग्नि-कुंड में डाल शिव को प्रसन्न किया था । उस समय अग्नि में से फूटकर बाहर फैलने पर सिरों में दैव द्वारा लिखा 'रामार्पण' अर्थात् राम के हाथों मृत्यु देखकर सावधान मन से पहले से भी अधिक निष्ठापूर्वक शिव को संतुष्ट किया था ।[३]

हनुमन्नाटक के उक्त स्थल से प्रभावित तुलसी के मानस में भी रावण की आत्मप्रशस्ति का ठीक इसी प्रकार वर्णन मिलता है—

"सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस ।
हुने अनल अति हरष बहु, बार साखि गौरीस ।।

"जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला । बिधि के लिखे अंक निज माला ।।
नर के कर आपन बध बाँची । हँसेउ जानि विधि गिरा असाँची ।।
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे । लिखा बिरंचि जरठ मति मोरे ।।"[४]

अभिमानी रावण अपने समक्ष सभी प्राणियों को तृणवत् तुच्छ समझता है । सीता-हरण करते समय जब जटायु उसका मार्ग अवरुद्ध कर देता है तब वह सोचता है कि मेरा मार्ग रोकने वाला क्या यह सक्षम मैनाक है परन्तु उसमें इतनी शक्ति कहाँ, वह तो इन्द्र के वज्र-प्रहार से भयभीत है । तब क्या गरुड़ है ? परन्तु वह भी अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे पराक्रम से परिचित है । हाँ, अब मालूम हुआ, यह तो बृद्ध जटायु है जो मुझे मारना चाहता है :

१. मानस, ६/२५/३-४
२. तदेव, ६/२८/४
३. हनु०, ८/४३
४. मानस, ६/२८, ६/२९/१-२

"मैनाकः किमथं रुराद्धि पुरतो मन्मार्गभ व्याहतं ।
शक्तिस्यस्यकुतः स वज्र पतनाद्भीतो महेंद्रादपि ।।
तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणं ।
हा ज्ञातः स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वांछति ।।"[१]

किंचित परिवर्तन के साथ हनुमन्नाटक के ये ही भाव मानस में भी मिलते हैं। वहाँ भी रावण इसी प्रकार अनुमान लगाता हुआ कहता है कि यह या तो मैनाक पर्वत है अथवा पक्षियों का स्वामी गरुड़, परन्तु वह तो विष्णु सहित मेरी शक्ति से अभिज्ञ है। फिर रावण उसे पहचानकर कहता है कि अरे, यह तो जरठ जटायु है ! यह मेरे हाथ रूपी तीर्थ में अपने शरीर को छोड़ेगा।

"की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ।।
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ।।"[२]

इसी प्रकार अहंकारी रावण अपने भुजबल की प्रशंसा करता हुआ मंदोदरी से कहता है :—

"किं ते भीरुमिया निशाचरपतेर्नासौ रिपुर्मे महान ।
यस्याग्रे समरोपतस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः ।।"[३]

"अरी भयशीले ! तू व्यर्थ भय क्यों करती है ? मुझ राक्षसराज रावण का, जिसके समक्ष युद्ध में इंद्रादि देवता भी नहीं ठहरते, यह (राम) कोई बड़ा शत्रु नहीं है।"

हनुमन्नाटक की ही भाँति मानस का रावण भी डींग हाँकता हुआ मंदोदरी को सान्त्वना देता है कि लोकपाल भी जिसके भय से काँपते हैं उसकी स्त्री भयभीत होती हो यह बहुत हँसी की बात है :

"कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा ।।"[४]

यही नहीं, चाटुकार मंत्रिगण उसके अहं की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि आपने देवताओं और राक्षसों को जीत लिया तब तो कुछ श्रम नहीं हुआ फिर मनुष्य और वानर किस गणना में हैं ?

---

१. हनु०, ४/६
२. मानस, ३/३०/७
३. हनु०, ६/६
४. मानस, ५/३७/२

"जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर वानर केहि लेखे माहीं ॥"[१]

मंदोदरी के समझाने का प्रभाव सूर के रावण पर भी नहीं पड़ता। वह गर्वोक्ति से कहता है कि मैं उन दोनों तपस्वी भाइयों को तो तीनों लोकों से पकड़ मँगाऊँगा। वे कहीं भागकर नहीं जा सकते :

"तीनि लोक तें मँगाऊँ वे तपसी दोउ भाई ॥"[२]

इसी प्रकार वह रामचन्द्रिका में भी अहंकार भरी बातें करता है कि कुंभकर्ण सदृश बलवान देवर, इन्द्रजित के समान पुत्र तथा रावण-सदृश प्रतापी पति पाकर मंदोदरी को किससे भय करना चाहिये :"

"देवर कुम्भकरन्न सो, हरि-अरि सो सुत पाइ।
रावण सो प्रभु कौन को, मंदोदरी डराइ ॥"[३]

गोविन्द रामायण में रावण आत्मप्रशंसा करता हुआ मंदोदरी से कहता है कि "भला राम किस गिनती में हैं। इन्द्र को पराजित किया, यक्षराज कुबेर को धन से खाली कर दिया फिर युद्ध में सीता को जीतते क्या देर लगेगी? चाहे स्वर्ग, पाताल, आकाश सब भस्म हो जायँ किन्तु राम मुझसे बच न सकेगा।[४]

निर्भयता एवं हठवादिता

दशानन रावण निर्भीक होने के साथ-साथ अत्यन्त हठी भी है। पत्नी, बन्धु-बांधव एवं मंत्रिगण के बार-बार समझाने पर भी वह सीता को वापस करने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नहीं होता। अध्यात्म रामायण में विभीषण रावण को समझाता है कि आप सीता को शीघ्र ही वापस कर दीजिए अन्यथा राम द्वारा आपका विनाश अवश्यंभावी है।[५]

हनुमन्नाटक में भी विभीषण राम का पराक्रम बतलाते हुए जानकी को वापस करने की सलाह देता है।[६]

---

१. मानस, ५/३७/५
२. सूर राम चरितावली (गीता प्रेस), पद सं० १६०
३. रा० चं०, १८/१६
४. "इन्द्र जीत्यौ करौ जच्छ रीतो धनं नारि सीता-वरं जीत जुद्धै।
स्वर्ग पाताल आकाश ज्वाला जरै बाँचिहै राम का मोर क्रुद्धै ॥"
—गोविन्द रामायण, लंकादहन, पृ० ११०
५. अध्यात्म०, ६/२/२२-२६
६. हनु०, ७/८-१०

ठीक इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी विभीषण राम की अतुल शक्ति का निरूपण करता हुआ[1] रावण से सीता को चौथ के चन्द्रमा की तरह त्याग देने को कहता है—

"सो परनारि लिलार गोसांई। तजउ चउथि के चंद की नाईं॥"[2]

अध्यात्म रामायण में कुम्भकर्ण भी रावण से कहता है कि आपने जो आरम्भ किया है वह केवल आपका नाश करने के लिए है। राम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् अव्यय-नारायण देव हैं :

"आरब्धं यत्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम्।
रामो न मानुषो देवः साक्षात्नारायणोऽव्ययः॥"[3]

उक्त स्थल से ही अनुप्रेरित मानस में भी कुंभकर्ण बिलखकर कहता है कि "अरे मूर्ख ! जगन्माता जानकी का हरण करके अब तू कल्याण चाहता है ? हे रावण ! जिनके हनुमान सदृश सेवक हैं वे राम क्या मनुष्य हैं ? अब भी अभिमान छोड़कर राम को भजो तो कल्याण होगा" :

"सुनि दसकंधर के वचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥
हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥"[4]

इसी प्रकार रामचन्द्रिका में कुंभकर्ण रावण से राम को साक्षात् विष्णु बतलाता हुआ सीता को वापस करके फिर राम से युद्ध करने को कहता हैं, परन्तु रावण उस पर क्रुद्ध हो जाता है।[5]

हनुमन्नाटक में अंगद भी रावण को फटकारता हुआ कहता है कि अरे राक्षस-राज ! तू देवी मैथिली को शीघ्र लौटा दे। तू अपने पुरुषार्थ की बेकार में बड़ाई क्यों करता है ?

---

१. मानस, ५/३८/३ से दो० ३६ तक।
२. मानस, ५/३८/३।
३. अध्यात्म०, ६/२/१४-१५।
४. मानस, ६/६२, ६३/१-२।
५. रा० चं०,१८/११-१२।

"रे रे राक्षसराज मुंचं सहसा देवीमिमां मैथिली।
मिथ्या किं निज पौरुषस्य घटनाप्रागल्भ्यमारम्यते ।।"[१]

हनुमन्नाटक से प्रभावित मानस में भी अंगद रावण से सीता को वापस करने एवं राम की शरण में जाने को कहता है ।[२]

यही नहीं, रावण-पत्नी मंदोदरी तो उसे बार-बार समझाती है। हनुमन्नाटक में वह एकान्त में रावण से कहती है कि यह ठीक है कि आपने शिवगिरि को अपनी भुजाओं से उठा लिया था। आपका भाई कुम्भकर्ण संसार का भक्षक है। यह भी ठीक है कि आपका पुत्र मेघनाद पराक्रमी है, इसने इंद्र को जीत लिया था; परन्तु बालि विजयी राम रणकुशल और बली हैं; अतएव हरण की हुई उनकी पत्नी सीता को आप वापस कर दें :

"त्वं बाहूद्धत चन्द्रशेखर गिरिर्भ्राता जगद्भक्षकः।
पुत्रः शक्रजयीत्यवेत्य रण धीर्नूनं बली वालिजित् ।।
तद्राजन्नबला बलादपहृता देयास्य सा जानकीं।
लंकायां रहसीत्युवाच वचनं मंदोदरी मन्दिरे ।।"[३]

इसके अतिरिक्त भी हनुमन्नाटक में कुम्भकर्ण वधोपरान्त, फिर उसके सब पुत्रों के वध के पश्चात् दो बार मन्दोदरी रावण को समझाती है। वाल्मीकि में यह प्रसंग नहीं है। अध्यात्म रामायण में अंगद द्वारा उसकी चोटी खींची जाने पर वह रावण की भर्त्सना करती है ।[४]

अध्यात्म रामायण की ही भाँति रामचन्द्रिका में भी अंगद मन्दोदरी के केश पकड़कर खींचता है, जिससे उसका शरीर अस्त-व्यस्त हो जाता है।[५] कंचुकी

---

१. हनु०, ८/५८

२. मानस, ६/२०/३ से दो० २० तक।

३. हनु०, ६/५

४. अध्यात्म०, ६/१०/२६-३२

५. रा० चं०, १६/३०

के फट जाने पर उसके कंचुकीरहित उरोज के वर्णन में केशव की वृत्ति अधिक रमी है।[१] यहीं मन्दोदरी अत्यन्त दुखी हो रावण की भर्त्सना करती है कि तुमने तो परस्त्री सीता के अपमान की चेष्टा मात्र की, परन्तु उसके बदले मेरी दुर्दशा तो वास्तव में हो गई :

"सीतहि दीन्यो दुख वृथा, साँचो देखौ आजु।
करै जु जैसी त्यौं लहै, कहा रंक कह राजु ॥"[२]

हनुमन्नाटक से अनुप्रेरित होते हुए मानसकार ने इस प्रसंग का विस्तार से बार-बार वर्णन किया है। प्रथम बार मन्दोदरी रामसेना के समुद्रतट पर आगमन की सूचना पाकर एकान्त में पति रावण के चरणों पर गिर कर अपने कुलरूपी कमलवन के लिए दुःखदायिनी शीतनिशारूपी सीता को वापस करने का आग्रह करती है।[३] दूसरी बार सेतुबन्ध के उपरान्त रामसेना के लंका आगमन पर वह रावण का हाथ पकड़कर भवन में ले जाकर समझाती है कि राम के चरण कमलों में सिर झुकाकर उनको जानकी सौंप दीजिये तथा पुत्र को राज्य देकर आप वन में जाकर राम का भजन कीजिए।[४] तीसरी बार रामवाण द्वारा उसके कर्णपूर एवं रावण के छत्रमुकुट कुंडल गिरने पर अत्यन्त चिंतित हो राम के विराट रूप का वर्णन करती हुई रावण से अनुरोध करती है कि प्रियतम ! आप राम से विरोध त्याग दीजिए। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए।[५] चौथी बार अंगद द्वारा रावण के मानमर्दन के पश्चात् व्याकुल रावण को राम के अलौकिक कार्यो एवं अपरिमित शक्ति का स्मरण दिलाती हुई उनसे विरोध का परित्याग करने को कहती है।[६]

मानस की भाँति सूरसागर में भी बार-बार वह राम एवं उनके दूत हनुमान के अलौकिक कार्यों का स्मरण दिलाती है। परन्तु यहाँ अविनीत एवं कटु शब्दों में वह सीता को लौटाकर राम से युद्ध न करने की आग्रह करती है।[७] साथ ही वह कहती है कि तुमने पहले कभी ऐसा दारुण हठ नहीं किया था। राम की सेना समुद्र की भाँति गम्भीर है; अतएव ऐ मूर्ख, तू अपने बल का गर्व छोड़ दे।

---

१. रा० चं०, १६/३१-३२
२. तदेव, १६/३४
३. मानस, ५/३६/२ से दो० ३६ तक।
४. तदेव, ६/६/३ से दो० ६ तक।
५. तदेव, ६/१४/३ से दो० १५ तक।
६. तदेव, ६/३६/१ से दो० ३७ तक।
७. सूर रामचरितावली, पद १०४, १२०-१२६, १६०

"सिंधु गंभीर दस छाँड़ि दे मुग्धबल,
तैं न कीनी कहूँ टेक गाढ़ी ॥"[१]

रामचन्द्रिका के कई छंदों में मन्दोदरी राम के अमित पराक्रम का वर्णन करके उन्हें सर्वशक्तिमान ईश्वर का अवतार बतलाती है तथा सीता को लौटाकर फिर सन्धि या युद्ध न करने की सलाह देती है ।[२]

इसी प्रकार हनुमन्नाटक में उसका मन्त्री विरूपाक्ष उसे अनेक प्रकार से समझाता और सीता को वापस करने का आग्रह करता है ।[३] महोदर भी स्पष्ट शब्दों में कहता है कि राजन् ! मीठी बातें भला किसे प्यारी नहीं लगतीं, किन्तु विपत्ति के समय इन बातों से दुःख दूर नहीं हो सकता :

"राजन्मुख सुखा वाचो मधुराः कस्य न प्रियाः ।
तव क्षोदक्षमाः किन्तु नेता व्यसन संगमे ॥"[४]

हनुमन्नाटक के ये ही भाव मानस में प्रहस्त व्यक्त करता है कि संसार में ऐसे मनुष्य प्रभूत मात्रा में हैं जो मुँह पर मीठी लगने वाली बातें ही सुनते और कहते हैं; परन्तु सुनने में कठोर और परिणाम में हितकारी वचन कहने-सुनने वाले मनुष्य कम होते हैं । नीति की बात यह है कि पहले आप दूत भेजिए फिर सीता को देकर राम से सन्धि कर लीजिए :

"प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
वचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती । सीता देइ करउ पुनि प्रीती ॥"[५]

अध्यात्म रामायण में शुक नामक दूत भी रावण से सीता को समर्पित करके राम की शरण में जाने का आग्रह करता है :

"राममेव परात्मानं भक्तिभावेन सर्वदा ।
सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ॥"[६]

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी शुक रावण से कहता है कि आप अपने अभिमानी स्वभाव को छोड़िए तथा राम से बैर त्यागकर जानकी को उन्हें समर्पित कर दीजिए । इतना मेरा कहना मानिए :

---

१. सूर रामचरितावली, पद १२१
२. रा० चं०, १८/१४-१७, १५
३. हनु०, ६/६
४. तदेव, ६/१४
५. मानस, ६/६/४-५ ।
६. अध्यात्म०, ६/४/५४ ।

"कह सुकनाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी ॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥
जनक सुता रघुनाथहिं दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥"[1]

अध्यात्म रामायण में हनुमान रावण को समझाते हुए कहते हैं कि सीता को आगे करके अपने पुत्र और बंधु-बांधवों सहित राम की शरण में जाकर उन्हें नमस्कार करो, इससे तुम भयमुक्त हो जाओगे :

"सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो। रामं नमस्कृत्य विमुच्यते भयात् ॥"[2]

इसी प्रकार मानस के हनुमान भी रावण से चराचर जगत एवं कालभक्षक राम से विरोध-परित्याग करने तथा सीता को वापस कर उनकी शरण में जाने को कहते हैं :

"जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बयरु कबहु नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै ॥"

"प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ॥"[3]

अभिमानी रावण कुंभकर्ण, विभीषण, मंदोदरी, विरूपाक्ष, महोदर, शुक एवं अंगद, हनुमान आदि अपने पक्ष एवं विपक्ष के किसी भी व्यक्ति की बात पर ध्यान नहीं देता, प्रत्युक्त किसी को खरी-खोटी सुनाता है, किसी का तिरस्कार करके पाद-प्रहार कर बैठता है और किसी की बात अनसुनी कर देता है। वह अपने हठ का पक्का है।

यही नहीं, सीताहरण के पूर्व भी मारीच रावण को राम की अतुल शक्ति का परिज्ञान कराता हुआ उसे सीता-अपहरण एवं राम के साथ विरोध करने से मना करता है।[4] इस पर निर्भीक एवं हठी रावण उससे कहता है कि यदि मुझे भयभीत करने के लिए अब और कुछ कहोगे तो निश्चय ही मैं अभी इस खड्ग से तुम्हें मार डालूंगा :

"अतः परं चैद्यत्किंचितद्भावसे मद्विभीषणम्।
हनिष्याम्यसिनानेन त्वामत्रैव न संशयः ॥"[5]

---

१. मानस, ५/५७/२, ४।
२. अध्यात्म०, ५/४/२३।
३. मानस, ५/२२/५, दो० २२।
४. अध्यात्म०, ३/६/१६-३३।
५. तदेव, ३/६/३४-३५।

अध्यात्म रामायण में इन्हीं भावों से अनुप्रेरित तुलसीकृत मानस में भी मारीच रावण से राम को साक्षात् ब्रह्म बतलाता हुआ कहता है कि हे तात ! उनसे बैर न कीजिए। क्योंकि सबका जीवन-मरण उन्हीं के अधीन है। फिर उनके अतिमानवीय कार्यों का वर्णन करता तथा कहता है कि अपने कुल की कुशल विचारकर आप घर लौट जाइए। यह सुनकर रावण जल उठा और दुर्बचन कहते हुए उसे फटकारा कि मूर्ख ! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है। बता तो, संसार में मेरे समान योद्धा कौन है ?[1] इस प्रकार यहाँ भी वह मारीच को मारने के लिए उद्यत दिखलाई पड़ता है :

"उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना।"[2]

इसी प्रकार रामचन्द्रिका में भी मारीच रावण को समझाता है कि हे रावण ! राम को मनुष्य मत समझो वरन् उन्हें चौदहों भुवनों में व्याप्त समझो।[3] तब रावण उसे डाँटता है कि शठ ! तू मुझे सिखाता है। मैंने अपने हठ से सब लोकों को वश में कर लिया है। बस उत्तर मत दे, जल्दी चल। केवल शिव को छोड़कर अन्य सभी देवगण मेरे दास हैं :

"तू अब मोहि सिखावत है सठ। मैं बस लोक करे अपनी हठ ॥
बेगि चलै अब देहि न ऊतरु। देव सबै जन एक नहीं हरु ॥"[4]

यहाँ भी मारीच अपनी मृत्यु दोनों प्रकार से निश्चित जानकर रावण के साथ चलने को प्रस्तुत होता है :

"जानि चल्यो मारीच मन, मरन दुहूँ विधि आसु ॥"[5]

इस प्रकार अतिशय अभिमानी एवं दम्भी रावण अपने हठ के आगे किसी की बात भी नहीं सुनता, साथ ही वह इतना निर्भीक एवं निःशंक है कि सब की अवहेलना करके अकेला राम-सेना से लोहा लेने को प्रस्तुत हो जाता है।

मानस में भी उसे अपने प्रबल पुरुषार्थ पर दृढ़ विश्वास है। वह कहता है—

---

१. मानस, ३/२५/२ से २६/१ तक।

२. तदेव, ३/२६/३।

३. "रामहिं मानुष के जनि जानौ। पूरन चौदह लोक बखानौ ॥"
—रा० चं०, १२/६

४. तदेव, १२/१०।

५. तदेव, १२/११।

"निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा । देहउँ उत्तर जो रिपु चढ़ि आवा ।।"[१]

यही नहीं, सभा में अकस्मात् मुकुट गिरने पर वह निःशंक एवं निर्भय रहता है । उसकी निश्चित धारणा है कि जिसके सिर गिरने पर सदैव कल्याण होता है उसके मुकुट गिरने पर अपशकुन कैसे सम्भव है :

"सिरउ गिरे संतत सुभ जाही । मुकुट परे कस असगुन ताही ।।"[२]

कामुक रावण

उग्र तपस्या से प्राप्त अमित शक्ति का दुरुपयोग रावण बलात्कार एवं विलासिता में करता है । वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह ब्रह्मर्षि-कन्या वेदवती से अपनी कामुकता का परिचय देता हुआ कहता है कि भद्रे ! मैं लंका का राजा हूँ । मेरा नाम दशग्रीव है, तुम मेरी भार्या हो जाओ और सुखपूर्वक उत्तम भोग भोगो :

"अहं लंकापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ।
तस्य मे भव भार्यात्वं भुङ्क्ष्व भोगान् यथासुखम् ।।"[३]

कामी रावण द्वारा अपने केश पकड़ लिये[४] जाने पर वह उसे शाप देकर अग्नि में प्रवेश कर जाती है ।[५] फिर वह रंभा के साथ बलात्कार करता है, जिससे नल-कूबेर उसे शाप देते हैं कि यदि वह कामपीड़ित होकर उसे न चाहनेवाली युवती पर बलात्कार करेगा तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे :

"यदा ह्यकामांकामार्तो धर्मयिष्यिति योषिताम् ।
मूर्धातु सप्तघातस्य शकलीभविता तदा ।।"[६]

इसी प्रकार दिग्विजय के समय अनेक दानव, मानव, ऋषि एवं देव-कन्याओं का अपहरण करता है । वह जिस कन्या अथवा स्त्री को दार्शनिक, रूपसौन्दर्य से युक्त देखता, उसके बंधुजनों का वध करके उसे विमान पर बिठाकर रोक लेता था :

---

१. मानस, ६/७८/३ ।
२. तदेव, ६/१४/२ ।
३. वा० रा०, ७/१७/२३ ।
४. तदेव, ७/१७/२७-२८ ।
५. तदेव, ७/१७/३४ ।
६. तदेव, ७/२६/४०, ५५-५६ ।

"दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति ।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोथ सः ॥"[१]

वाल्मीकि रामायण की ही भाँति रामचरितमानस में भी मंडलीक रावण अपनी भुजाओं के बल से देव, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर एवं नागों की कन्याओं तथा अनेक सुंदर स्त्रियों को जीतकर ब्याह कर लेता है ।

"देव जच्छ गन्धर्व नर, किन्नर नाग कुमारि ।
जीति बरीं निज बाहुबल, बहु सुंदर बर नारि ॥"[२]

शूर्पणखा उसके इस अतिशय कामुक रूप से भलीभाँति परिचित है । खर-दूषण वधोपरान्त वह रावण "पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्र लक्ष्यसे"[३] कहकर उसके कामी रूप की ओर ही संकेत करती है । इसके इस दौर्बल्य का लाभ उठाती हुई वह रावण को उत्साहित करती है कि राम की विशाललोचना भार्या रूप-सौंदर्य में साक्षात दूसरी लक्ष्मी ही है । हे राजन ! देव, गन्धर्व, नाग, मनुष्य आदि में से किसी की भी स्त्री ऐसी रूपवती न देखी है और न सुनी है । वह शुभलक्षणा अपनी कान्ति से संपूर्ण वन को प्रकाशित कर रही है । मैंने उसे तुम्हारी पत्नी बनाकर लाने का प्रयत्न किया था, इसी से राम के भाई लक्ष्मण ने मेरी नाक काट डाली :

"तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा ।
देव गन्धर्व नागानां मनुष्याणां तथाबिधा ॥
न दृष्टा न श्रुता राजन्द्योतयन्ती वनं शुभा ॥
आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ ।
लक्ष्मणोनाम तद्भ्राता विच्छेद मम नासिका ॥"[४]

अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित मानस में भी वह रावण से कहती है कि शोभाधाम राम के साथ एक तरुणी सुंदरी है । ब्रह्मा ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि शतकोटि रति उस पर न्यौछावर हैं :

"सोभाधाम राम अस नामा । तिन्हके संग नारि एक स्यामा ॥
रूप राशि बिधि नारि सँवारी । रवि सत कोटि तासु बलिहारी ॥"[५]

---

१. वा० रा०, ७/२४/१-२ ।
२. मानस, १/१८२ (ख)
३. अध्यात्म०, ३/५/४२ ।
४. अध्यात्म०, ३/५/४८-५० ।
५. मानस, ३/२२/४-५ ।

रावण को काममोहित करने के लिए ही शूर्पणखा रामचन्द्रिका में भी सीता के रूप-लावण्य के समक्ष मंदोदरी, शची, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सप्तद्वीप, लोक एवं रसातल की रमणियों के सौंदर्य को तुच्छ बतलाती है[1] तथा कहती है कि ऐसी रूपवती स्त्री तुमने कभी सुनी न होगी। उसे जाकर प्रत्यक्ष देखो।[2]

वाल्मीकि रामायण में कामाग्नि-विदग्ध रावण सीता को प्रलोभन देता हुआ कहता है कि विशाललोचने ! मैं तुम्हें चाहता हूँ। समस्त संसार का मन मुग्ध करने वाली सर्वांगसुंदरी प्रिये ! तुम भी मुझे विशेष आदर दो। चन्द्रमा के समान मुखवाली सुमध्यमे ! मैं तुम्हारे जिस-जिस अंग को देखता हूँ, उस-उस अंग में मेरे नेत्र उलझ जाते हैं। मनोहर मुस्कान, सुन्दर दन्तावलि तथा रमणीय नेत्रोंवाली विलासिनि ! भीरु ! जैसे गरुड़ सर्प को उठा ले जाते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे मन को हर लेती हो :

> "कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये।
> सर्वांग गुणसम्पन्ने सर्वलोक मनोहरे ॥
> यद्यत् पश्यामि ते गात्रं शीतांशु सदृशानने।
> तस्मिंस्तस्मिन पृथु श्रोणी चक्षुर्ममषिध्ययते ॥
> चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि।
> मनोहरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥[3]

इसी प्रकार कामी रावण अध्यात्म रामायण में भी सीता से प्रणय-याचना करता है कि मैं राक्षस श्रेष्ठ तुझपे अत्यन्त प्रेम करता हूँ; अतः तू मुझे ही अंगीकार कर। यदि तू मेरे अधीन रहेगी तो देव, गंधर्व, यक्ष, नाग और किन्नर आदि की स्त्रियों का शासन करेगी।"

> "त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तम ॥
> देवगन्धर्वनागानां यक्षकिंनर योषिताम्।
> भविष्यसि नियोक्त्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे ॥"[4]

हनुमन्नाटक में भी कामवाणों से बिद्ध रावण सुन्दरियों के साथ अशोक वाटिका में सीता के हृदय में कामविकार उत्पन्न करने जाता है तथा कहता है कि

---

१. रा० चं०, १२/५।

२. "मय की सुता थौं को है मोहनी है मोहै मन।
आजु लौं न सुनी सुतौ नैनन निहारिये ॥"
—तदेव, १२/५।

३. वा० रा०, ५/२०/३, १५, २९

४. अध्यात्म०, ५/२/२९-३०

मेरी ये सुन्दरियाँ तुम्हारे पद-पद्मों की भ्रमरी बनने के लिए प्रस्तुत हैं। तुम्हें तो अभी ही तुम्हारे पतिव्रत धर्म का फल प्राप्त हो गया। हे सीते ! देखो, हमारे ये सिर पहले शिव अपने शिर पर धारण किया करते थे, वही इस समय मैं तुम्हारे पैरों पर चढ़ाना चाहता हूँ, तब तुम इन्हें स्वीकार क्यों नहीं करती—

"एतास्त्वत्पदपद्मषट् पद वधू प्रायाः पुरन्ध्रयो ध्रुवं।
सीते सम्प्रति संगतं तव सती चारित्र्यवल्लीफलम्॥
सीते पश्य शिरांसि यानि शिरसा धत्ते महेशः पुरा।
तानि त्वत्पदसंश्रितानि सुभगे कस्मादवज्ञायसे॥"[1]

कामाभिभूत दशानन कहता है कि "हे मैथिलि ! मेरे प्राणों की रक्षा करो। हे मृगाक्षि, हे मन्मथतरंगिणी, हे प्राणेश्वरि ! मुझे बचाओ। राम तो तुम्हारे अधरामृत का पान एक मुख से ही करते हैं, मैं तुम्हें अनेक मुखों से चूमूँगा ! अतएव तुम अपने हठ को त्याग दो"—

"मुग्धे मैथिलि चन्द्र सुन्दरिमुखि प्राणप्रयाणौषधि।
प्राणान् रक्ष मृगाक्षि मन्मथनदि प्राणेश्वरि त्राहिमाम्॥
रामश्चुम्बति ते मुखं च सुमुखेनैकेन चाहं पुन-
श्चुम्बिष्यामि तवाननं बहु विधैर्मुंचा ग्रहं मानिनि॥"[2]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रन्थों से अनुप्रेरित होते हुए तुलसी ने यद्यपि रावण के कामुक रूप का चित्रण किया है, किन्तु जगज्जननी सीता के संदर्भ में उन्होंने मर्यादावश संक्षेप में संकेत मात्र किया है। मानस में वह सीता से निवेदन करता है कि हे सुमुखि, हे सयानी, सुनो। मन्दोदरी आदि सब रानियों को मैं तुम्हारी दासी बना दूंगा। यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही—

"कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मन्दोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।"[3]

सूर का रावण भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त करता हुआ सीता से कृपादृष्टि की याचना करता है। चौदह सहस्र किन्नरियों की स्वामिनी बना देने का संकल्प करता है—

---

१. हनुमन्नाटक, १०/१०-११
२. तदेव, १०/१५
३ मानस, ५/६/२-३

"जनक सुता, तू समुझि चित्त में, हरषि मोहि तन हेरी।
चौदह सहस किन्नरी जेती, सब दासी हैं तेरी॥[1]

इसी प्रकार केशवकृत रामचन्द्रिका में रावण प्रणय-याचना करता हुआ सीता से कहता है कि देवि ! मुझ पर कुछ तो कृपादृष्टि करो। राम के लिए इतना सोच मत करो। पत्नीरूप से मेरे महलों में चल कर और मेरे घर जो राक्षसियाँ व नर-कन्याएँ मेरी पत्नी हैं उन सबकी रानी बनो। यही नहीं, सरस्वती, सती और पार्वती भी तुम्हारी सेवा करेंगी :

"सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै, इतौ सोच कौ राम काजै न कीजै।
अदेवी नृदेवीन की होहु रानी, करैं सेव बानी मघौनी मृडानी॥[2]

राजनयनिपुण सम्राट

रावण में एक राजनयनिपुण चक्रवर्ती के सम्पूर्ण गुण विद्यमान हैं। उसने अपने पुरुषार्थ से ही राज्य-विस्तार एवं धन-सम्पत्ति का अर्जन किया।[3] उसकी राजधानी लंका स्वर्गलोक के समान वैभवसम्पन्न थी।[4] उसका राज्यैश्वर्य इन्द्र के समान था :

"स: रावणः शस्त्रभृतां मनस्विनां महाबलानां समितौ मनस्वी।
तस्यां सभार्यां प्रभया चकाशे, मध्ये वसूनामिव बज्रहस्तः॥[5]

वह प्रजापालक था। प्रजा उसके अनुकूल एवं प्रसन्न थी।[6] वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस का रावण भी एक ऐश्वर्यशाली चक्रवर्ती सम्राट है। अपने पुरुषार्थ से उसने सम्पूर्ण सृष्टि को ही अपने अधीन कर रखा है। समस्त प्रजा उसके अनुशासन में है :

"ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दस मुख बसवर्ती नर नारी॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहि आइ नित चरन बिनीता॥

---

१. सूर रामचरितावली, पद ७०।

२. रा० चं०, १६/५७, ६०

३. वा० रा०, ७/सर्ग १३-१५ तथा सर्ग २१, २३, ३०

४. तदेव, ५/४/२१-३०

५. तदेव, ६/११/३१

६. तदेव, ५/सर्ग ११

"भुजबल बिस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ।।"[१]

उसकी प्रसिद्ध राजधानी लंका नागलोक की भोगावतीपुरी एवं इन्द्र की अमरावती से भी अधिक आकर्षक एवं सुंदर है :

"भोगावति जसि अहिकुल बासा । अमरावति जसि सक्र निवासा ।।
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका । जग बिख्यात नाम तेहि लंका ।।"[२]

वह अपनी प्रजा की हितैषी एवं साम्यवादी विचारधारा का पोषक प्रतीत होता है । दिग्विजय से अर्जित संपत्ति का वह अपनी प्रजा में यथोचित विभाजन कर देता है :

"जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हें । सुखी सकल रजनीचर कीन्हें ।।"[३]

वह एक व्यवहारकुशल, वाक्पटु राजनीतिज्ञ है । उसके मंत्रिमंडल में माल्यवान्, महोदर, विरुपाक्ष, प्रहस्त, विभीषण प्रभृति उचित सम्मति देने वाले कुशल मंत्री हैं । वह मंत्रियों की सम्मति का आदर करता तथा कार्य करने के पूर्व मंत्रिमंडल के साथ परामर्श करता है । यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण में वह खरदूषण वधोपरांत[४] लंकादहन के पश्चात्[५] एवं युद्ध की तैयारी के समय[६] सभासदों से बार-बार परामर्श करता है । साथ ही कुशल एवं गुणज्ञ मंत्रियों के लक्षण उसे ज्ञात हैं ।[७] वह विभीषण के कहने पर हनुमान के वध से विरत हो जाता है ।[८] युद्ध के अवसर पर एक कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति वह अपने सैनिकों एवं सेवकों को प्रोत्साहित करता हुआ अभयदान[९] एवं आभूषणादान[१०] करता है ।

---

१. मानस, १/१८२/६ से दो० १८२ तक ।
२. तदेव, १/१७८/४ ।
३. तदेव, १/१७९/४ ।
४. वा० रा०, ६/३५/१ ।
५. तदेव, ६/सर्ग ६ ।
६. तदेव, ६/सर्ग १२ ।
७. तदेव, ५/सर्ग ५२ ।
८. तदेव, ३/३१/५० ।
९. तदेव, ३/३१/९ ।
१०. तदेव, ६/१०४/२६ ।

रामचरितमानस में भी वह मंत्रियों से बार-बार परामर्श करता है। विभीषण के कहने पर यहाँ भी वह हनुमान के वध का विचार त्यागकर अंग-भंग करने का आदेश देता है।[1] परन्तु वाल्मीकि रामायण में मानस की अपेक्षा वह अधिक नीतिज्ञ एवं व्यवहारकुशल सम्राट है। तुलसी के मानस में दंभ के आधिक्य के कारण उसका विवेक कुंठित हो गया है। इसी कारण मंत्रियों एवं सुहृदों की शुभ सम्मति का वह अनादर कर बैठता है। यद्यपि वह मंत्रिमंडल से बार-बार परामर्श करता रहता है तथा शत्रु-सेना के समुद्र पार आने की सूचना पर मंत्रियों से उचित सलाह पूछता है, परन्तु मंत्रिगण उससे आतंकित हैं; अतएव वे उसकी चाटुकारिता करते एवं उचित परामर्श नहीं दे पाते :

"बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥"[2]

इसके विपरीत जो उसे उचित एवं सत्परामर्श देता है, अपने अहं के कारण उस पर ध्यान नहीं देता तथा वह उसके द्वारा तिरस्कृत होता है। यही कारण है कि अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी माल्यवान एवं प्रहस्त[3] सदृश हितैषियों की सलाह उसे अप्रिय लगती है। वह दुर्वचन कहता है। शुक[4] और विभीषण पर पाद-प्रहार करता है। परन्तु अध्यात्म रामायण में वह शुक[5] और विभीषण[6] पर पाद-प्रहार नहीं करता, केवल दुर्वचन कहता व धिक्कारता है।

युद्ध के समय वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में वह योद्धाओं को पुरस्कृत करके उत्साहित नहीं करता प्रत्युत अपने कठोर वचनों से उन्हें आतंकित एवं भयभीत करके युद्ध के लिए प्रेरित करता है—

---

१. मानस, ५/२४/४-५।
२. तदेव, ५/३७/४-५।
३. (अ) मानस, ६/४८/२।
   (ब) अध्यात्म० ६/५/३६।
४. मानस, ६/६/५ से ६/१०/२ तक।
५. अध्यात्म०, ६/५/२-४।
६. तदेव, ६/२/३१।

"जो रन विमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना।
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये बल्लभ प्राना।।
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने।"[१]

रावण कुशल नीतिज्ञ भी है। वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में वह अशोक वाटिका में आत्मश्लाघा और राम की निन्दा करता हुआ साम, दाम, दंड और भेद के द्वारा सीता को अपने प्रति आकृष्ट करने का प्रयास करता है।[२] इसी प्रकार रामचरितमानस में भी सीता को प्रलुब्ध करने के लिए साम, दाम, भय, भेद आदि नीतियों का आश्रय लेता है।[३] अध्यात्म रामायण की भाँति ही रामचन्द्रिका में भी वह राम को कृतघ्न एवं गुणहीन कहकर सीता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है।[४] यही नहीं, हनुमन्नाटक में भेद नीति के द्वारा वह अंगद को राम की ओर से विमुख करके अपने पक्ष में सम्मिलित करने का प्रयत्न करता है। वह कहता है कि अंगद! तुझे धिक्कार है। जिसने अहंकार में आकर तेरे पिता को मारा तू उसी का दूत बनकर आया है। तेरा यह व्यवहार वीरों के आचरण के सर्वथा विपरीत है :

"धिग्धिगङ्गद मानेन येन ते निहतः पिता।
निर्माना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतस्वभागतः।।"[५]

इसी से प्रभावित तुलसी के मानस में रावण अंगद की भर्त्सना करता है कि अरे अंगद! तू बालि का ही पुत्र है। अरे कुलांगार! तू तो अपने कुलरूपी बाँस के लिए अग्निरूप ही पैदा हुआ। गर्भ में ही क्यों न नष्ट हो गया? तू व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया :

"अंगद तुहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंश अनल कुल घालक।।
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु।।"[६]

---

१. मानस, ६/४१/४-५
२. (अ) वा० रा०, ५/सर्ग २०
(ब) अध्यात्म०, ५/२/२५-३०
३. मानस, ५/६/२
४. रा० चं०, १३/५८-५६
५. हनुमन्नाटक, ८/२६
६. मानस, ६/२१/३

हनुमन्नाटक से प्रेरित केशवकृत रामचन्द्रिका में भेद नीति के द्वारा रावण अंगद को अपने पिता का बदला लेने के लिए उकसाता है तथा उसे धिक्कारता है कि तुझ जैसे पुत्र से तो बालि निपूता ही अच्छा था। यदि तू अकेला डरता है तो मेरी समस्त सेना ले जाकर आज ही अपने बाप के हत्यारे को क्यों नहीं मारता? और फिर कहता है कि जो पुत्र अपने बाप के शत्रु से बदला नहीं लेता वह जीवित ही मुर्दा समझा जाता है :

> "तोसे सपूतहि जाय के बालि अपूतहि की पदवी पगु धारे।
> अंगद संग ले मेरी सबै दल आजुहि क्यों न हते बपु मारे॥
>
> जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकाश।
> तासों जीवित ही मर्‌यो, लोग कहैं तजि आस॥"[1]

रावण एक सहृदय पिता

रावण में एक सहृदय पिता के गुण विद्यमान हैं। उसका अपने ज्येष्ठ एवं आज्ञापालक पुत्र इंद्रजीत के प्रति अपार स्नेह है। वाल्मीकि रामायण में मेघनाद के वध का समाचार सुनकर वह अचेत हो जाता है, तो पुत्र-शोक से विह्वल हो हाहाकार करता हुआ करुण क्रन्दन करता है[2] तथा सीता का वध करने को उद्यत होता है।[3] परन्तु सुपार्श्व नामक मन्त्री के रोकने पर मानता है।[4] इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी पुत्र की मृत्यु पर वह शोक से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है, फिर उठकर विलाप करता है :

> "रावणः पतितौ भूमौ मूर्च्छितः पुनरुत्थितः।
> विललापातिदीनात्मा पुत्र शोकेन रावणः॥"[5]

यहाँ भी सीता के वध से उसे सुपार्श्व नामक मन्त्री विरत करता है।[6]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित तुलसी के मानस के रावण को भी अपने ज्येष्ठ पुत्र पर अधिक विश्वास है। वह अभिमानी रणधीर देवताओं को कैद करने की आज्ञा अपने इस पुत्र को ही देता है तथा वह पुत्र भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करता है :

---

१. रा० चं०, १६/१५-१६
२. वा० रा०, ६/९२/४-६
३. तदेव, ६/९२/४४
४. तदेव, ६/९२/६८
५. अध्यात्म०, ६/९/५९
६. तदेव, ६/९/६७

"जो सुर समर वीर बलवाना। जिन्ह के लरिबे कर अभिमाना॥
तिन्हहिं जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुशासन काँधी॥"[१]

मानस में भी रावण पुत्र-वध पर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है,[२] परन्तु वाल्मीकि अथवा अध्यात्म रामायण की भाँति उसे पुत्र शोक करने का अवकाश नहीं है। वह स्वयं दूसरों को ज्ञानोपदेश करता है। यहाँ उसके पुत्र-शोक का उतना मार्मिक चित्रण नहीं किया गया है। वाल्मीकि रामायण की भाँति रामचन्द्रिका में भी रावण हाहाकार करता हुआ करुण-क्रन्दन करता है[३] तथा शोक-विह्वल हो कहता है कि अब मैं बन्धु और पुत्र के बिना शरीर धारण नहीं करना चाहता।[४]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की भाँति मानस तथा रामचन्द्रिका में वह सीता का वध करने को उद्यत नहीं होता। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में भी पुत्र-स्नेही रावण मेघनाद की मृत्यु सुनकर रणभूमि में ही रथ पर मूर्च्छित हो जाता है।[५]

भ्रातृ प्रेम

रावण एक श्रेष्ठ भ्राता है। उसका अपने बन्धुओं के प्रति पुत्रवत् स्नेह है। उसे उनके निवास एवं योगक्षेम का सदैव ध्यान रहता है। वाल्मीकि के अनुसार लङ्का का सम्राट होने के अनन्तर वह अपने भ्राताओं कुम्भकर्ण व विभीषण का विवाह करता है।[६] कुंभकर्ण के लिए एक दिव्य एवं सुखद शयनागार का निर्माण कराता है।[७] भ्राता खर को जनस्थान का अधिनायक नियुक्त करता है।[८] जब उसे अपने भाई खर की मृत्यु एवं बहन शूर्पणखा के कुरूप होने का समाचार मिलता है तब वह क्रोध में

---

१. मानस, १/१८२/१-२

२. सुत बध सुना दसानन जबहीं। मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं॥
—तदेव, ६/७७/३

३. रा० चं०, १६/१-२

४. तदेव, १६/६

५. "मेघनाद क्या मरा, मरा रावण ही मानी,
सारी लङ्का आज रो रही है सिर धुनकर।
रावण मूर्च्छित हुआ घुमे रथ में ही सुनकर॥"
साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४८६ (संस्करण संवत् २०१४)

६. वा० रा०, ७/१२/२२-२५

७. तदेव, ७/१३/२-६

८. तदेव, ३/३६/२

बौखला उठता है। वह प्रतिशोध की भावना से सीता-हरण की योजना बनाता है।[१] अध्यात्म रामायण में भी खर-दूषणादि राक्षसों की मृत्यु का समाचार सुनकर क्रोध से उद्विग्न हो शूर्पणखा से कहता है कि इन राक्षसों को मारने वाला राम कौन है, मुझे विस्तारपूर्वक बता। मैं उसका मूलोच्छेद कर डालूंगा :

"को वा रामः किमर्थं वा कथं तेनासुरा हताः।
सम्यक्कथय मे तेषां मूलघातं करोम्यहम् ॥"[२]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की भाँति रामचरितमानस में भी रावण अपने भाइयों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रदान करता है तथा उनके विवाहादि करता है।[३] यहाँ भी खरदूषण के वध से वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है तथा उसी चिन्ता में उसे रात भर नींद नहीं आती :

"खरदूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ॥
सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नींद परइ नहिं राति ॥"[४]

विरोधी विचारधारा होने पर भी विभीषण को लंका में ही एक दिव्य भवन में रखता है।[५] यही नहीं, दूत का वध अनुचित बताने पर[६] वह अपने छोटे भाई विभीषण की मंत्रणा से सहमत हो हनुमान को मृत्यु-दण्ड नहीं देता है :

"निशाचराणामधिपोऽनुजस्य विभीषणस्योत्तम वाक्यमिष्टम्।
जग्राह बुद्धया सुरलोक शत्रुर्महाबलो राक्षसराज मुख्यः ॥"[७]

वाल्मीकि रामायण की ही भाँति मानस में भी रावण विभीषण की सम्मति का आदर करके हनुमान-वध से निरत हो जाता है।[८]

---

१. वा० रा०, ३/२६/८-१४
२. अध्यात्म०, ३/५/४५
३. मानस, ६/१७८/२
४. मानस, ३/२१/६, दो० २२।
५. तदेव, ५/५/४।
६. वा० रा०, ५/५२/५।
७. तदेव, ५/५२/२८।
८. मानस, ५/२४/४-५।

परन्तु लंकादहन के उपरान्त राम से विरोध बढ़ जाने पर एवं अहंभाव के कारण विभीषण के दोबारा समझाने पर वह उसका तिरस्कार करता है।

वाल्मीकि रामायण में रावण विभीषण को धिक्कारता हुआ कहता है कि यदि तेरे सिवा अन्य कोई ऐसी बातें कहता तो उसे इसी मुहूर्त में अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता :

"योऽन्यस्त्वेवविधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत् त्वां तु धिक् कुलपांसन॥"[१]

रावण इसी प्रकार के कठोर वाक्य अध्यात्म रामायण में भी कहता है,[२] परन्तु मानस का रावण वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण की अपेक्षा अपने भाई विभीषण के प्रति अधिक असहिष्णु है। वह दुर्वचन के साथ-साथ उस पर पाद-प्रहार भी कर बैठता है।[३] रामचन्द्रिका में भी रावण विभीषण को धिक्कारता हुआ उसके सिर पर पदाघात करता है।[४]

इसके विपरीत रावण का अपने भाई कुंभकर्ण के प्रति इतना अधिक विश्वास एवं प्रेम है कि वह उसकी मृत्यु का समाचार सुनता है तो शोक से संतप्त एवं मूर्च्छित होकर तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ता है :

"श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च॥"[५]

फिर होश में आने पर वह करुण-क्रन्दन करता है।[६] यही नहीं, वह विलाप करता हुआ यहाँ तक कहता है कि इस समय मैं अवश्य ही नहीं के बराबर हूँ, क्योंकि मेरी दाहिनी भुजा कुंभकर्ण धराशायी हो गया, जिसका भरोसा करके मैं देवता और असुर किसी से नहीं डरता था।

---

१. वा० रा०, ६/१६/१६।
२. अध्यात्म०, ६/२/३१।
३. मानस, ५/४१/३।
४. रा० चं०, १५/१३।
५. वा० रा०, ६/६८/६।
६. तदेव, ६/६८/९-११।

"इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितौ भुजः।
दक्षिणोऽयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात॥"[1]

अध्यात्म रामायण में भी रावण कुंभकर्ण को मारा गया सुनकर शोकाकुल हो मूर्च्छित हो जाता है।[2]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से प्रभावित मानस में भी रावण अपने भाई कुंभकर्ण की मृत्यु पर बहुत विलाप करता है तथा बार-बार उसका सिर अपने हृदय से लगाता है :

"बहु विलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि-पुनि उर धरई।"[3]

इसी प्रकार रामचन्द्रिका में रावण उसकी मृत्यु पर शोक-विह्वल हो उठता है।[4] साकेत में तो उसके भ्रातृस्नेह को देखकर राम भी उसकी सराहना करते हैं :

"हाय ! किन्तु इसके पहले ही,
मूर्च्छित हुआ निशाचर राज।
प्रभु भी यह कह गिरे—"राम से
रावण ही सहृदय है आज॥"[5]

पतिरूप

रावण एक आदर्श पति है। वह अपनी मन्दोदरी का सम्मान करता है। क्रोधी एवं अहंकारी प्रकृति का होते हुए भी मन्दोदरी के बार-बार परामर्श पर वह क्षुब्ध एवं रुष्ट नहीं होता। वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में मन्दोदरी के मना करने पर वह सीता-वध का विचार त्याग देता है।[6] इसी प्रकार रामचरितमानस में भी मयतनया के नीतियुक्त वचनों से सीता के वध से अपने को रोकता है।[7] हनुमन्नाटक में मन्दोदरी रावण को एकान्त में ले जाकर समझाती है कि यद्यपि आपके

---

१. वा० रा०, ३/६८/१२।
२. अध्यात्म०, ६/८/५३-५४।
३. मानस, ६/७२/२
४. रा० चं०, १८/२८
५. साकेत, ११ सर्ग, पृ० ४४६
६. गोवि० रा०, प्रहस्त युद्ध, पृ० १२७
७. (अ) वा० रा०, ५/२२/३६-४६
(ब) अध्यात्म०, ५/२/३८-४०

भाई कुंभकर्ण एवं पुत्र इंद्रजीत महान पराक्रमी हैं, किन्तु बालि-विजेता राम के समक्ष युद्ध में आप ठहर नहीं सकते । क्योंकि सुग्रीव का सेवक एक वानर बाटिका को उजाड़ एवं नगर को जलाकर यहाँ से चला गया; आपके योद्धा उसका कुछ न बिगाड़ पाये, अतएव आप सीता को वापस कर दें ।[१] हनुमन्नाटक से प्रेरित होने पर भी मानस की मन्दोदरी अपने प्रियतम को समझाती हुई उससे कहीं दृढ़ता एवं कठोर स्वरों में सीता को लौटा देने को कहती है ।[२] यही नहीं, वह सूर्यरूप राम के समक्ष अपने पति को जुगनू-सदृश तुच्छ बताती है ।[३] इस प्रकार मानस में बार-बार राम के समक्ष उसे हीन बताने पर भी रावण[४] अपनी पत्नी पर क्रुद्ध नहीं होता । उसके बाण सदृश तीखे वचन सुनकर भी वह बिना किसी प्रतिक्रिया के चुपचाप चला जाता है :

"नारि बचन सुनि विसिख समाना । सभाँ गयउ उठि होत बिहाना ।"[५]

परन्तु सूर की मन्दोदरी अपने पति के प्रति अपमानजनक कटु शब्दों का प्रयोग करती हुई कहती है कि अरे मूढ़ ! अब भी मन में विचार कर । ओ मंदबुद्धि ! मेरा कहना मान और राम से जाकर मिल ।[६] वह रावण से यहाँ तक कहती है कि हे दशानन ! दाँतों में तिनके दबा और गले में पगहा डालकर राम की शरण में जा अन्यथा उनके आने पर लङ्का चौपट हो जाएगी ।[७] और जब वह कहती है कि तुमने खोटी बुद्धि का संग्रह किया है तब वह खीझकर अविनीत हो उठता है तथा मन्दोदरी को फटकारता है कि अरी स्त्री, चुप रह, बहुत बकवास न कर । तू राम की बड़ाई क्या करती है ?

---

१. मानस, ५/१०/४
२. हनुमन्नाटक, ६/५, ७
३. मानस, ५/३५/३-५
४. तदेव, ६/१४//३ से दो० १५ तक; ६/३६/१ से दो० ३७ तक ।
५. तदेव, ६/३८/१
६. "अजहुँ मन समझि कै, मूढ़ मिलि राम सौं ।
 सूर मति-मंद कह्यो मान मेरौ ।।"
 —सूर रामचरितावली, पद-संख्या १०४
७. "कहति मन्दोदरि सुनु पिय रावन मेरी बात अगा ।
 तून दसननिनि ले मिलि दसकंधर कंठनि मेलि पगा ।
 सूरदास प्रभु रघुपति आए, दह पट होइ लङ्का ।।"
 —तदेव, पद-संख्या १२० ।

"कहति मंदोदरि सुनि पिय रावन, तैं कहा कुमति कमाई।

× × ×

रहि-रहि अबला बोल न बोलै उनकी करत बड़ाई ॥"[१]

इस तरह सूर के रावण एवं मंदोदरी का दाम्पत्य-जीवन उतना मधुर नहीं है।

इसके विपरीत केशवकृत रामचन्द्रिका में रावण अपनी पत्नी के प्रति विनम्र एवं क्षमाशील है। मंदोदरी रावण को अनेक तरह से समझाती है तब वह बड़े शिष्ट ढंग से उत्तर देता है कि यदि मैं तुम्हारे कहने से अपना प्रण छोड़कर राम से मेल भी चाहूँ तो वे मेरे किये हुए नवीन अपराधों को क्षमा नहीं करेंगे :

"हौं सतु छाँड़ि मिलौं मृगलोचनि, क्यों छमिहै अपराध नये।"[२]

इसके विपरीत गोविन्द रामायण में रावण अपनी पत्नी के प्रति अभद्र व्यवहार करता है। मंदोदरी के समझाने पर वह कर्कश एवं कटु शब्दों का प्रयोग करता है। वह क्षुब्ध हो उससे कहता है कि "अरी बावरी राँड़! क्या कहती है। तूने राम जैसे रंक व्यक्ति की बात छेड़ रखी है :

"बावरी रांड़ क्या भांड बातें बके, रंक से राम का छोड़ रासा ॥"[३]

यही नहीं, वह अपनी पत्नी की एक बात पर भी ध्यान नहीं देता तथा क्रोधवश उसकी ओर से मुँह फेर लेता है :

"कोटि बातें गुनी एक कै ना सुनी कोपि मुँही धुनी पुत्र पट्ठे।"[४]

इस प्रकार केवल रामकथाओं को छोड़कर अधिकांशतः सर्वत्र रावण आदर्श पति रूप में चित्रित किया गया है।

धार्मिकता

अनेक दोषों के होते हुए भी रावण शिव का परम भक्त था। उसकी शिव में दृढ़ निष्ठा थी। शिवार्चन में वह कभी प्रमाद न करता था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार

---

१. सूर रामचरितावली, पद १६०।

२. रा० चं०, १८/१८।

३. गोविन्द रा०, लंकागमन, पृ० ११२।

४. तदेव, लंकागमन, पृ० ११३।

दिग्विजय के समय भी वह शिव की पूजा किया करता था।[१] वह जहाँ भी जाता, वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिंग अपने साथ ले जाता था :

"यत्र यत्र च याति स्मरावणो राक्षसेश्वरः ।
जम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥"[२]

यही नहीं, शिवलिंग की स्थापना करके पुष्पादि से पूजन करता तथा हाथ फैलाकर भाव-विह्वल हो नृत्य-गान किया करता था।[३] उस महान वीर ने शिव को प्रसन्न करने के लिए स्वयं अपने हाथों अपने सिर काटकर चढ़ाये। हनुमन्नाटककार लिखता है :

"वीरोसौकिपु वर्ण्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं ।
यः पूजार्थं समुत्सुको घटयितुं देवस्य खट्वांगिनः ॥[४]

हनुमन्नाटक में इसी प्रकार उसके द्वारा अपने सिर काटकर अग्निकुंड में हवन करके भोगैश्वर्य एवं नवीन मस्तकों की प्राप्ति का अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है।[५] कालिदासकृत रघुवंश में भी रावण द्वारा मस्तक काटकर शिव की आराधना करने का उल्लेख हुआ है।[६] इस प्रकार शिव की उग्र तपस्या से शक्तिमान होकर ही वह त्रिलोकी में सम्पूर्ण प्राणियों के लिए अपराजेय हो गया था, परन्तु हनुमन्नाटक, अध्यात्म रामायण आदि ग्रंथों के अनुसार इस पराक्रम के कारण उसे इतना अहंकार हो गया था कि प्रायः वह अपने आराध्य देव शिव को भी कैलास पर्वत सहित उठा लेने की धृष्टता कर बैठता है।[७]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रन्थों से प्रभावित होने के कारण हिन्दी-रामकाव्य-परम्परा में भी रावण एक उद्दंड शिव-भक्त के रूप में चित्रित हुआ है। रामचरितमानस में अहंकारी रावण अपने पराक्रम की प्रशस्ति में अनेक बार अपने मस्तक काटकर शिव

---

१. वा० रा०, ७/३१/३८-४१ ।

२. तदेव, ७/३१/४२ ।

३. तदेव, ७/३१/४३-४४ ।

४. हनुमन्नाटक, ८/४४ ।

५. तदेव, ७/१४, ८/४३, ५२, ५३

६. रघुवंश, १०/४१ ।

७. (अ) हनु०, ८/३५, ३८, ५६ ।
   (ब) अध्यात्म०, ७/२/५५ ।

को अर्पण करने एवं शिवशैल उठाने की बात करता है। "हर गिरि मथन निरखु मम बाहू"[1] तथा "सोभत भयउ मराल इव, संभु सहित कैलाश।"[2] यही नहीं, "सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस। हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस।"[3]

केशवकृत रामचन्द्रिका में भी वह शंकर का एकनिष्ठ भक्त कहा गया है। रावण रुद्र को सर्वोच्च देव मानता हुआ गर्वोक्ति करता है कि, "समस्त संसार तो मेरे पैरों पड़ता है, फिर मैं रुद्र को छोड़कर अन्य किस देव की आराधना करूँ?"[4] यही नहीं, वह मारीच को डाँटता हुआ कहता है कि मुझे उत्तर मत दे, शीघ्र चल। एक शिव को छोड़कर और सब देवता तो मेरे दास हैं :

"बेगि चले अब देहि न ऊतरु। देव सबै जन एक नहीं हरु।"[5]

गोविन्द रामायण में रावण युद्ध के समय अपने दसमुखों से भिन्न-भिन्न कार्य करता हुआ चित्रित किया गया है, जिसमें वह प्रथम मुख से 'शिव-शिव' का उच्चारण करता है :

"शिव शिव शिव मुख एक उचारं। द्वितिय प्रभा जानकी निहारं॥[6]

रावण को राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान

वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अधिकांशतः अन्य सभी राम-भक्तिपरक संस्कृत-ग्रंथों में रावण को राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान है, परन्तु व्यामोह एवं अहंकारवश उसे कभी-कभी उनके ब्रह्मत्व पर संदेह भी हो जाता है। वह राम से इसी कारण बैर ठानता है जिससे उनके हाथों मर कर सरलता से भवार्णव पार कर सके।

---

१. मानस, ६/२८/४।

२. तदेव, ६/२२।

३. तदेव, ६/२८।

४. "चारि बाहें धरे विष्णु रक्षा करें, बात साँची यहै बेद बानी कहै॥
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेश स्यों, विष्णु ब्रह्मादि दे रुद्रजू संहरै॥
ताहि हौं छोड़िकै पायँ काके परौं, आज संसार तो पायँ मेरे परै॥"
—रा० चं०, १६/१०

५. तदेव, १२/१०।

६. गोविन्द रामायण, युद्ध, पृ० १६६।

"राम मनुष्य है अथवा ब्रह्म"[१], अध्यात्म रामायण में इसी द्विविधात्मक स्थिति में पड़ा हुआ वह विचार करता है, "यदि मैं परमात्मा द्वारा मारा गया तब तो बैकुंठ का राज्य भोगूंगा अन्यथा चिरकाल पर्यन्त राक्षसों का राज्य तो भोगूंगा ही" :

"वध्यो यदिस्यां परमात्मनाहं बैकुंठ राज्यं परिपालयेऽहम् ।
नो चेदियं राक्षसराज्यमेव, मोक्ष्ये चिरं राममतौ ब्रजामि ।।"[२]

हनुमन्नाटक में उसे राम के ईश्वरत्व पर पूर्ण विश्वास है । वह कहता है कि, "मैं जनकपुत्री सीता को जानता हूँ, मधु दैत्य के विनाशक विष्णु के अवतार राम को जानता हूँ । मैं उनके हाथों अपना वध भी निश्चित मानता हूँ । फिर भी मैं उन्हें सीता वापस नहीं कर सकता :

"जानामि सीतां जनक प्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च ।
वधं च जानामि निजं दशास्यस्तथापि सीतां न समर्पयामि ।।"[३]

तुलसी इस सम्बन्ध में अध्यात्म रामायण से प्रभावित हैं । मानस के रावण के मन में भी संशय-विपर्यय का द्वन्द्व चल रहा है । वह विचार करता है कि खर-दूषन तो मेरे ही समान बलवान थे । उन्हें भगवान के अतिरिक्त और कौन मार सकता है ? यदि देवताओं को आनन्दित एवं पृथ्वी को भारविहीन करने के लिए भगवान ने अवतार लिया है तब मैं जाकर उनसे हठपूर्वक बैर ठानूंगा और उनके द्वारा मरकर भवसागर से उत्तीर्ण हो जाऊँगा । क्योंकि इस तामस शरीर से भजन सम्भव नहीं है । और यदि वे ब्रह्म नहीं हैं, कोई मानव-रूपधारी राजकुमार मात्र हैं तब उन्हें रण में जीतकर उनकी स्त्री को हर लूंगा ।[४]

---

१. अध्यात्म०, ३/५/५८-५९ ।
२. तदेव, ३/५/६० ।
३. हनुमन्नाटक, ७/११ ।
४. "खर दूषन मोहि सम बलवन्ता । तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवन्ता ।।
सुर रंजन-भंजन महि भारा । जो भगवन्त लीन्ह अवतारा ।।
तो मैं जाइ बैर हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।।
होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ।।
जौ नर रूप भूप सुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ।।"
मानस, ३/२३/१-३

रामचन्द्रिका में भी रावण राम को विष्णु का अवतार मानता है। मंदोदरी के इस कथन पर कि राम ने तुम्हारे ही वध के लिए अवतार धारण किया है,[1] रावण कहता है कि मैं उनके स्वभाव से परिचित हूँ। वे मेरे अपराधों को कभी क्षमा नहीं करेंगे। इन्हीं विष्णु ने वामनरूप से तीन पग पृथ्वी माँगी थी तथा बालि ने चौदहों लोक दे दिये। तब भी थोड़े से बैर के कारण इस छलिया विष्णु ने उसे बाँधकर पाताल भेज दिया[2] :

सूर के रावण को भी राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान है। क्योंकि वह मंदोदरी से स्वयं कहता है :—

> "मोहिं गवन सुरपुर कौं कीबे, अपने काज कौं मैं हरि आनी।
> सूरदास स्वामी केवट बिन, क्यों उतरै रावन अभिमानी॥"[3]

सभी प्रमुख राज्यों के संहार के उपरान्त वह अकेला रह जाता है तब राम के पराक्रम को देखकर अध्यात्म रामायण में भी उसे दृढ़ निश्चय हो जाता है कि मैं उनके हाथ से मरकर परम पद की प्राप्ति करूँगा।"[4]

इस प्रकार दंभी, दुस्साहसी एवं दुराग्रही होते हुए भी रावण में उपर्युक्त अनेक गुण भी विद्यमान थे।

— —

---

१. रा० चं०, १८/१६।

२. हौं सतु छाँड़ि मिलौं मृगलोचनि क्यों छमिहैं अपराध नये।
नारि हरि सुत बाँध्यो तिहारे हैं कालिहि सोदर साँग हये॥
वामन माँग्यो त्रिपेग धरा दछिना बलि चौदह लोक दये।
रंचक बैर हुतो, हरि बंधक बाँधि पताल तऊ पठये॥
—रा० चं०, १८/१८

३. सूर रामचरितावली, पद १३० (गीता प्रेस)।

४. अध्यात्म, ६/१०/५५-५८।

अष्टम् अध्याय

अन्य पुरुष पात्र

दशरथ

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पिता महाराज दशरथ एक चक्रवर्ती सम्राट हैं। 'वाल्मीकि रामायण' में वे स्वयं कैकेयी से कहते हैं कि जहाँ तक सूर्य का चक्र घूमता है वहाँ तक सारी पृथ्वी मेरे अधिकार में है। द्रविड़, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र—दक्षिण भारत के सारे प्रदेश तथा अड्ग्ग, बड्ग्ग, मगध, मत्स्य, काशी और कौसल इन सभी समृद्धशाली देशों पर मेरा आधिपत्य है :

"यावदावर्तते चक्रं तावती मैं वंसुधरा।
द्राविडाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
वङ्गाङ्गमगधा मत्स्या समृद्धाः काशिकोसलाः।"[1]

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं के नरेश दशरथ की देवराज इन्द्र के समान उपासना एवं सेवा किया करते थे।[2] स्वयं मनु द्वारा निर्मित उनकी राजधानी अयोध्या अमरावती सदृश समस्त भोगेश्वर्य से सम्पन्न थी।[3]

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी दान पाकर याचकगण चक्रवर्ती दशरथ के चारों पुत्रों को चिरंजीवि होने की मङ्गल कामना करते हैं :

"चिरंजीवहुँ सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ के।"[4]

१. वा० रा०, २/१०/३६-३७।

२. तदेव, २/३/२६-२७।

३. तदेव, २/५/६-६।

४. मानस, १/२६५।

अन्य सभी नृपति एवं लोकपाल-गण उनकी कृपा-दृष्टि की आकांक्षा किया करते हैं। वस्तुतः उन राजा दशरथ के समान ऐश्वर्यवान तीनों भुवनों एवं तीनों कालों में कोई नहीं है।[1]

श्रृंगवेरपुर में सीता सुमन्त्र से कहती हैं कि मेरे ससुर कौसलराज चक्रवर्ती राजा हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में विख्यात है। उन्हें देवराज इन्द्र भी बैठने के लिए अपना अर्ध-सिंहासन प्रदान करते हैं :

"ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।।
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई।।"[2]

केशव की रामचन्द्रिका में भी सम्राट दशरथ के दरबार में देवराज इन्द्र के समान सातों द्वीपों के नृपतिगण उपस्थित रहते हैं :

"शोभत बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दशरथ लसे, देव देव अनुरूप।।"[3]

विश्वामित्र दशरथ को 'राजन में तुम राज बड़े अति' कहकर उनसे राम-लक्ष्मण की याचना करते हैं।[4]

मैथिलीशरण गुप्त कृत साकेत में भी वीरव्रती दशरथ को इन्द्र एवं उनकी पूरी अयोध्या को अमरावती सदृश ऐश्वर्ययुक्त बताया गया है।

"है अयोध्या अवनि की अमरावती, इन्द्र हैं दशरथ विदित वीरव्रती।"[5]

दशरथ के गुण

वाल्मीकि रामायण के अनुसार दशरथ दूरदर्शी, महान तेजस्वी, धर्मनिष्ठ, सत्य-संध, जितेन्द्रिय, प्रजापालक एवं त्रैलोक्य विख्यात अतिरथी वीर थे। वे महार्षियों के समान दिव्य गुणसम्पन्न राजर्षि थे।[6] इसी प्रकार तुलसी ने उन्हें धर्म धुरंधर,

---

१. "नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें।।
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं।।"
—तदेव, २/२/२

२. तदेव, २/६८/२।

३. रा० चं०, २/६।

४. तदेव, २/१९।

५. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २२।

६. वा० रा०, १/६/१-५।

ज्ञानवान, गुणों के भांडार, चौदहों भुवनों में विख्यात, भूत, भविष्य, वर्तमान में अद्वितीय व्यक्तित्वसम्पन्न एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र तथा दिक्पालों द्वारा प्रशंसित गुणोंवाला कहा है।[१] यहीं नहीं, दशरथ के अपरिमित गुणों का वर्णन किया ही नहीं जा सकता। वस्तुतः संसार में उनकी समता करने वाला कोई है ही नहीं :

"दशरथ गुन-गन-बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग माहीं।।"[२]

इसी प्रकार केशव तथा मैथिलीशरण गुप्त के दशरथ में भी न्यूनाधिक मात्रा में उपर्युक्त गुण विद्यमान हैं।[३]

राजनयनिपुण सम्राट

दशरथ एक राजनीति-निपुण सम्राट हैं। अपनी वृद्धावस्था का विचार कर वे अपने शरीरपात के पूर्व ही योग्य एवं ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्याधिकारी बनाने का संकल्प करते हैं :

"महीमहमिमां कृत्स्नामधिष्ठिन्तमात्मजम्।
अनेन वयसा दृष्ट्वा यथा स्वर्गमवाप्नुयाम्।।"[४]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार दशरथ को उस समय महान अपशकुन एवं दुःस्वप्न हो रहे थे[५] तथा ज्योतिषियों ने उनका जन्म-नक्षत्र दारुण ग्रहों से आक्रान्त बताया :

"अवष्टव्यं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः।।"[६]

अतः उन्होंने सोचा कि मेरे सचेत रहते हुए राम का राज्यतिलक हो जाय।[७] इसी कारण राजा ने अतिशीघ्रता की। फलतः वे कैकयराज एवं जनक को भी बुला न सके।[८]

---

१. मानस, १/१८८/४, २/१७२/३-४।
२. तदेव, २/२०६/४।
३. (अ) रा० चं०, २/१०।
(ब) "नीतियों के साथ रहती रीतियाँ।
पूर्ण हैं राजा प्रजा की प्रीतियाँ।।" —साकेत, सर्ग १, पृ० २४
४. वा० रा०, २/१/४०।
५. तदेव, २/१/४३, २/४/१७-१६।
६. तदेव, २/४/१८।
७. तदेव, २/४/२०।
८. तदेव, २/१/४८।

अध्यात्म रामायण में भी राजा अपनी वृद्धावस्था का विचार करके अपने सर्वगुण-सम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र राम का राज्याभिषेक करने की इच्छा व्यक्त करते हैं।[1]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों से अनुप्रेरित तुलसी के मानस में भी दशरथ अपनी वृद्धावस्था के कारण राम को युवराज-पद देने का विचार करते हैं। कालिदास के रघुवंश की भाँति मानस के दशरथ को भी ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रवणसमीप श्वेत केश उन्हें जरठपन की सूचना एवं राम को राज्यलक्ष्मी सौंपने की मंत्रणा दे रहे हों :

तं कर्ण मूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।''[2]

''श्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुवराज राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥''[3]

वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में वे अपने जीवन-काल में ही स्वनेत्रों से पुत्र राम का राज्याभिषेक देख लेना चाहते हैं, जिससे फिर शरीर के रहने या चले जाने का पश्चात्ताप न हो :

''मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥

× × ×

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछे पछिताऊ॥[4]

यही बात गीतावली में भी वे गुरु वसिष्ठ से कहते हैं :

''तुम्हरी कृपा असीस नाथ मेरी सबै महेश निबाही।
राम होहिं जुवराज जियत मेरे यह लालच मन माहीं॥
बहुरि मोहिं जियबे मरिबे की चित चिंता कहु नाहीं॥''[5]

वाल्मीकि रामायण में राम के प्रति दशरथ के इस कथन—''जब तक भरत इस नगर के बाहर अपने मामा के यहाँ निवास करते हैं तभी तक तुम्हारा अभिषेक हो जाना मुझे उचित प्रतीत होता है''[6] से उपर्युक्त कारणों तथा उनकी नीयत पर

---

१. अध्यात्म रामायण, २/२/३।
२. रघुवंश, १२/२।
३. मानस, २/२/४।
४. तदेव, २/४/२-३।
५. गीतावली, २/१।
६. ''विप्रोवितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तायदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥'' —वा० रा०, २/४/२५

सन्देह अवश्य होता है। साथ ही उनके द्वारा की हुई किसी पूर्व प्रतिज्ञा का आभास होता है किन्तु मानसकार तथा हिन्दी के अधिकांश रामकथाकारों ने इससे प्रभाव नहीं ग्रहण किया है। वे प्रथम कारण का ही समर्थन करते हैं। गोविन्द रामायण में अवश्य यह उल्लेख मिलता है कि कैकेयी ने विवाह के समय ही दशरथ से दो वरदान माँग लिये थे।[1] सम्भवतः उन्हीं के भय से दशरथ ने राम को राज्यतिलक देने में इतनी शीघ्रता की हो।

लोकमत के समर्थक

इतने प्रतापी एवं महान होते हुए भी दशरथ निरंकुश सम्राट नहीं हैं, वे लोकमत का आदर करते हैं। वे राम-राज्याभिषेक का प्रस्ताव मंत्रिमंडल के समक्ष रखते तथा उसका जो भी निर्णय हो उसे स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं। इसी कारण वे कहते हैं कि यदि इसके अतिरिक्त भी कोई सर्वहितकारी बात हो तो आप लोग उसे सोचें :

"यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं व करवाण्यहम्॥
यद्यप्येवा मम प्रीतिर्हितमन्यद् विचिन्त्यताम्॥"[2]

तुलसी के मानस में भी वे मंत्रियों से अपना अभिमत व्यक्त करते हैं कि यदि आप सब पंचों को यह मत अच्छा लगे तो हर्षित मन से राम का राज्यतिलक करें :

"जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥"[3]

पुत्र राम के प्रति अगाध अनुराग

अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में भी दशरथ पूर्व-जन्म में कश्यप तथा कौशल्या अदिति थे। उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने उनके यहाँ पुत्ररूप में जन्म ग्रहण करने का वर दिया था।[4] मानसकार ने उनके एक पूर्व-जन्म का उल्लेख और किया है जहाँ वे मनु तथा शतरूपा थे। इसकी प्रेरणा मानसकार को भागवत के अष्टम् स्कन्ध के प्रथम अध्याय से मिली प्रतीत होती है। यहाँ वे विश्ववास[5]

---

१. "तिह ब्याहत माँग लिए दुवरं। जिह तें अवधेशन प्राण हरं॥"
—गोविन्द रामायण, रामावतार, पृ० ४

२. वा० रा०, २/२/१५-१६।

३. मानस, २/५/२।

४. (अ) अध्यात्म०, १/४/१४-१७
(ब) मानस, १/१८७/२-३

५. मानस, १/१४६/४

भगवान को पुत्ररूप में प्राप्त करने[1] एवं उनसे रहित होने पर जीवित न रखने का वरदान प्राप्त करते हैं।[2]

वित्त एवं लोकेषणा से सन्तुष्ट होते हुए भी दशरथ पुत्रैषणा से अत्यधिक संतप्त थे। वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में वे मंत्रियों एवं महर्षियों के समक्ष दुखी होकर कहते हैं कि सदैव मैं पुत्र के लिए विलाप करता रहता हूँ। उसके बिना इस राज्य आदि से मुझे सुख नहीं मिलता :

"मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम् ॥"

× × ×

मम तातप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वै सुखम् ॥[3]

"पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते।"[4] इसी प्रकार रामचरित-मानस में भी पुत्र न होने के कारण उन्हें ग्लानि होती है :

"एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं।"[5]

फिर वसिष्ठ द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञ कराने पर जब उन्हें पुत्र-प्राप्ति होती है तब उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती। दशरथ के उस आनन्द एवं हर्षोल्लास के वर्णन में तुलसी एवं सूर अध्यात्म रामायण के ऋणी हैं।[6]

दशरथ को यद्यपि अपने चारों पुत्रों पर अत्यधिक स्नेह था, किन्तु उनमें भी राम सर्वाधिक प्रिय थे। वे उन्हें अपनी आँखों से ओट भी नहीं रखना चाहते थे। वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र की याचना पर वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्मप्राण राम मेरे चारों पुत्रों में ज्येष्ठ हैं, उन पर मेरा सर्वाधिक प्रेम है; अतः आप राम को न ले जायँ।

---

१. "चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ।" —तदेव, १/१४९

२. "मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।" —तदेव, १/१५१/३

३. वा० रा०, १/८/८/, १/१२/८

४. अध्यात्म०, १/३/३

५. मानस, १/१८९/१

६. (अ) अध्यात्म०, १/३/३६
   (ब) मानस, १/१९३/२-३
   (स) सूर सागर, ९/१६

"चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ।
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि ।।"[१]

तुलसी के मानस में भी दशरथ को विश्वामित्र की याचना अत्यन्त अप्रिय एवं कष्टकर प्रतीत होती है ।[२] वाल्मीकि की भाँति वे भी कहते हैं कि सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं, परन्तु उनमें भी राम को तो किसी भी प्रकार देते नहीं बनता :

"सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं । राम देत नहिं बनत गोसाईं ।।"[३]

इसी प्रकार रामचन्द्रिका में दशरथ को विश्वामित्र के वचन-वाण-सदृश लगते हैं ।[४] वे सम्पूर्ण धन, सम्पत्ति एवं प्राण तक देने कोप्रस्तुत हैं, परन्तु राम का दिया जाना उनके लिए असम्भव है :

"प्राण दिये धन जाहि दिये सब ।
केशव राम न जाहि दिये अब ।।"[५]

अन्त में वसिष्ठ के बहुत समझाने पर किसी प्रकार राम-लक्ष्मण को देने के लिए वे तैयार होते हैं । अध्यात्म एवं वाल्मीकि रामायण के इस विस्तृत प्रसंग से अनुप्रेरित होकर भी मानसकार संक्षेपवृत्ति का ही आश्रय लेता है ।[६]

राजा दशरथ के पुत्र-स्नेह एवं पितृभाव के स्पष्ट दर्शन उस समय होते हैं जब उन्हें जनकपुर से अपने प्रवासी पुत्र के समाचार प्राप्त होते हैं । अध्यात्म रामायण में वे रामचन्द्र के अद्भुत कृत्य को सुनकर परमानन्द में निमग्न हो जाते हैं ।[७] इस स्थल पर मानसकार का वर्णन विस्तृत, मार्मिक एवं अधिक भावपूर्ण है ।

---

१. वा० रा०, १/२०/११-१२

२. मानस, १/२०८/१-२

३. तदेव, १/२०८/३

४. "यह बात सुनी नृपनाथ जबै, सर से लगै आखर चित्त सबै ।"
—रा० चं०, २/१६

५. रा० चं०, २/२०

६. (अ) अध्यात्म०, १/४/१२-२०
(ब) वा० रा०, १/२०
(स) मानस, १/२०८/४

७. अध्यात्म०, १/६/३५

दूतों से चिट्ठी पाकर राजा आनन्दमग्न हो जाते हैं, प्रेम-विह्वलता के कारण वे कुछ बोल नहीं पाते।[1] फिर धैर्य धारण कर दूतों से बड़े स्नेहपूर्वक पूछते हैं कि भैया कहो, मेरे दोनों बच्चे कुशल से तो हैं? तुमने अपनी आंखों से उन्हें अच्छी तरह देखा है न? मुनि विश्वामित्र के साथ गए हुए धनुष-तरकस लिए श्यामल, गौर, किशोर वपु वाले मेरे लाड़लों को यदि तुम पहचानते हो तो मुझे उनका स्वभाव बताओ।

"भैया कहहु कुसल दोउ बारे, तुम्ह नीकें निज नयन निहारे।
स्यामल गौर धरें धनु माथा, बय किशोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ, प्रेम विवस पुनि-पुनि कह राऊ।"[2]

दशरथ को राम प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कैकेयी की वरयाचना एवं दशरथ का उससे राम को घर में रहने देने के अनुनय-विनय प्रसंग से मिलता है। अध्यात्म रामायण में वे कहते हैं कि मेरे प्राणों को हरने वाले तुम यह क्या वचन बोल रही हो? कमलनयन राम ने तुम्हारा क्या अपराध किया है? राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। मैं उन्हीं की शपथ करके कहता हूँ कि तुम्हें जो कुछ प्रिय हो मैं वही करूँगा।

"किमिदं भाषसे भद्रे मम प्राणहरं वचः।
रामः कमपराधं ते कृतवान्कमलेक्षणः॥"[3]

"मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः।
तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम॥"[4]

साथ ही वे कैकेयी से अनुनय करते हैं कि तुम अपने पुत्र के लिए राज्य ले लो किन्तु राम को घर ही रहने दो।

"राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे।
अनुगृहणीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव॥"[5]

---

१. "बारि विलोचन बांचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥
राम लखन उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥"
—मानस, १/२९०/२-३

२. तदेव, १/२९१/२-३

३. अध्यात्म०, २/३/२५-२६

४. तदेव, २/३/१४

५. तदेव, २/३/२८

कृपा की भिक्षा मांगते हुए वे उसके पैरों पर भी गिर पड़ते हैं।[१]

अध्यात्म रामायण से प्रेरित तुलसी के मानस में दशरथ इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते हुये कहते हैं कि मैं शुभ मुहूर्त देखकर भरत को राज्य दे दूँगा। राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका अत्यधिक प्रेम है।[२] मछली चाहे बिना पानी के और सर्प चाहे बिना मणि के जीवित रह जाए किन्तु राम के बिना मेरा जीवन धारण करना सम्भव नहीं हैं।[३] यही नहीं वे अत्यन्त दैन्यभाव से कहते हैं कि तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ, किन्तु राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी प्रकार से हो तू राम को रख ले।"

"मागु माथ अबहीं देउं तोही, राम विरह जनि मारसि मोही।
रामु राम कहुं जेहि तेहि भांती।"[४]

राम के प्रति दशरथ के इस आत्यंतिक प्रेम का परिज्ञान मानस की मंथरा को भी है। इसी कारण वह कैकेयी से कहती है कि राजा जब राम की शपथ लें तभी तुम उनसे वर मांगना।

"भूपति राम शपथ जब करई, तब मागेहु जेहिं बचन न टरई।"[५]

वाल्मीकि रामायण में वह राजा को सत्य की शपथ पर विश्वास करने को कहती है।[६]

यही नहीं वाल्मीकि रामायण में दशरथ कैकेयी के समक्ष भी यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करते कि वे उसे राम के अतिरिक्त और सभी से अधिक प्यार करते हैं।

"अवलिप्ते न जानासि स्वतः प्रियतरो मम।
मनुजो मनुजव्याघ्राद रामादन्यो न विद्यते॥"[७]

---

१. तदेव, २/३/२६
२. मानस, २/३१ से दो० ३१
३. तदेव, २/३३/१
४. मानस, २/३४/४
५. तदेव, २/२२/४
६. वा० रा०, २/६/२६
७. तदेव, २/११/५

वे बार-बार राम की शपथ लेकर कैकेयी से कहते हैं[1] कि निश्चित रूप से राम के बिना मैं मुहूर्त भर भी जीवित नहीं रह सकता।

"यं मुहूर्तमपश्यंस्तु न जीवे तमहं ध्रुवम्।
तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम ॥"[2]

इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में कौसल्या से कहते हैं कि राम से रहित होकर मैं अधिक काल जीवित न रह सकूंगा।

"अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विनाकृतः।"[3]

रामचरितमानस में भी दशरथ राम की बार-बार शपथ करके कैकेयी से अनुनय-विनय करते हैं।[4] कैकेयी को भी दशरथ के राम-प्रेम की तरलता का भली-भाँति बोध है।[5] इसी कारण वह उनके द्वारा की हुई राम की शपथ पर विश्वास कर लेती हैं।

"यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहंसि उठी मतिमंद।"[6]

वाल्मीकि एवं अध्यात्मकार की भाँति सूर के दशरथ भी प्राणों के प्राण राम से कहते हैं कि तुम्हारा वियोग होते ही मेरे प्राण भी प्रयाण करेंगे। अतः कम से कम आज तो रह जाओ, फिर मार्ग पकड़ना।

"आतुरह्वै अब छांड़ि अवधपुर, प्रामजिवन ? कित चलन कहाँ हो।
बिछुरत प्रान पयान करेंगे, रहो आजु , पुनि पंथ गहो हो ॥"[7]

---

१. वा० रा०, २/११/६-८

२. तदेव, २/११/७

३. अध्यात्म०, २/५/४६

४. (अ) "जौ कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही ॥"
—मानस, २/२६/३

(ब) "तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥"
—तदेव, २/२८/४

(स) "राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राम मातु कछु कहेउ न काऊ ॥"
—तदेव, २/३२/१

५. तदेव, २/८०/३

६. तदेव, २/२६

७. सूरसागर, ६/३३

मानस में भी वे रामरहित जीवन को धिक्कारते हुए कहते हैं कि मैं उस शरीर को रखकर क्या करूंगा जिसने मेरे प्रेम के प्रण का निर्वाह नहीं किया :—

"...... रामरहित धिग जीवन वासा।
सो तनु राखि करब मैं काहा, जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा।।"[१]

कैकेयी द्वारा उनकी प्रार्थना अनसुनी कर देने पर वाल्मीकि रामायण में वे अत्यन्त कठोर शब्दों में उसकी भर्त्सना करते हुए[२] यहाँ तक कहते हैं कि यदि भरत को भी राम का वन जाना प्रिय लगता हो तो मेरी मृत्यु के बाद वे मेरे शरीर का दाह-संस्कार न करें :—

"प्रियं वेद् भरतस्यैतद् रामप्रव्राजनं भवेत्।
भास्म में भरतः कर्षीत् प्रेतकृत्यं गतायुषः।।"[३]

इसी प्रकार मानस में भी राम का अपकार करने के कारण प्राण-प्रिय अनिंद्य सुन्दरी कैकेयी उनके द्वारा तिरस्कृत होती हैं। वे उसे फटकारते हुए कहते हैं कि तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुंह छिपाकर मेरी आंखों की ओट जा बैठ।[४] यही नहीं पुत्र-वियोग से व्यथित दशरथ के समक्ष सुमंत्र का राम-लक्ष्मण और सीता के बिना अवध-लौटना और लक्ष्मण के कटु वचन का संदेश सुनाना उनके लिये घातक सिद्ध होता है। वाल्मीकि का उक्त प्रसंग कुछ विस्तृत है किन्तु उसी से प्रभावित होकर भी मानसकार ने मर्यादा अतिक्रमण के भय से उसकी ओर संकेत मात्र कर दिया है।[५] परिणामतः अध्यात्म-रामायण की भाँति असह्य वेदना से तड़पते एवं पुत्र राम का नामोच्चारण करते हुए मानस के दशरथ भी प्राणोत्सर्ग कर देते हैं।[६]

---

१. मानस, २/१५५/३

२. वा० रा०, २/१२/६३-१०१

३. तदेव, २/१२/६२

४. "तौर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहिं न जाइहि काऊ।।
अब तोहि नीक लाग करू सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई।।"
—मानस, २/३६/३

५. (अ) वा० रा०, २/५८/२६-३२
(ब) मानस, २/१५२/४

६. (अ) अध्यात्म०, २/७/४७
(ब) मानस, २/१५५

दशरथ के इसी अतिशय राम-प्रेम एवं वात्सल्य भाव के कारण स्वयं राम को भी स्वर्ग में प्रतिष्ठित अपने पिता के प्रति यह शंका होती है कि सीता-हरण को सुन कर कहीं वे शोकार्त न हो जायँ अतएव स्वर्गगामी जटायु से पिता दशरथ को उक्त समाचार न सुनाने का अनुरोध करते हैं। तुलसी ने ये भाव हनुमन्नाटक[1] से ग्रहण किए हैं :—

"सीता हरन तात जनि कहहुँ पिता सन जाइ।"[2]

"सीय हरन जनि कहेहु पिता सों, ह्वै हैं अधिक अंदेसो।।"[3]

वाल्मीकि रामायण में लंका विजयोपरान्त पुत्र-स्नेहवश दशरथ स्वर्ग से आकर राम को गोद में बिठाकर प्रेम-पुलकित हो कहते हैं :—"तुमसे विलग होकर मुझे स्वर्ग का सुख एवं देवताओं द्वारा प्रदत्त सम्मान भी प्रिय नहीं है। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।"[4]

इसी प्रकार मानस के दशरथ भी स्वर्ग से उतरकर प्रिय पुत्र राम को प्रेम-विह्वल हो अश्रु-भरे नेत्रों से देखते एवं आशीर्वाद देते हैं।[5]

कामुक रूप

दशरथ के व्यक्तित्व का सबसे दुर्बल पक्ष उनका स्त्रैण एवं कामुक रूप है। वृद्धावस्था में तरुणी के साथ विवाह करने के जो दुष्परिणाम हो सकते हैं वे सब दशरथ के चरित में पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बत हैं। वाल्मीकि का कथन है कि उस समय राजा वृद्ध थे और उनकी पत्नी कैकेयी तरूणी थी। अतएव वह उसे अपने प्राणों से भी बढ़कर मानते थे: —

"सवृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।"[6]

वे उस तरुणी भार्या को रिझाने एवं मानने में अपनी बुद्धि, विवेक एवं नैतिक आदर्श सभी को तिलांजलि दे देते हैं। दम्भ एवं गर्वोक्तियों के मध्य उनका पुरूषार्थ जाग्रत हो उठता है। अध्यात्म रामायण में वे कैकेयी से पूछते हैं कि तुम्हारा अहित करने वाला कौन है ? वह स्त्री हो या पुरुष अवश्य मेरे दण्ड का

---

१. हनुमन्नाटक, ५/१६
२. मानस, ५/३१
३. गीतावली, अरण्य०, १६
४. वा० रा०, ६/११६/१३
५. मानस, ६/११२/१-२
६. वा० रा०, २/१०/२३

पात्र होगा । तुम मेरे हृदय को जानती ही हो, मैं तुम्हारे वशीभूत हूँ । बताओ, तुम्हारा प्रिय करने वाले किस दरिद्र को धनी कर दूँ अथवा तुम्हारा अहित करने वाले किस धनाढ्य को क्षण मात्र में कंगाल बना दूँ । यही नहीं किस अवध्य का वध कर डालूँ और किसे वध्य से मुक्त कर दूँ । प्रिये, इस सम्बन्ध में और क्या कहूँ मैं तुम्हें अपने प्राण भी दे सकता हूँ ।

"को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा ।
स मे दण्डयश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः ।।

× × ×

जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मां स्ववंश स्थितम् ।
ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियङ्करम् ।।
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ।
ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हो वा विनोक्ष्यते ।।
किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ।।"[१]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में भी उनका स्त्रैण एवं कामुक रूप उनके विवेक को कुंठित कर देता है । यहाँ भी वे कहते हैं, "कहो आज किसका प्रिय करना है या तुम्हारे किस अपकारी को दंड दिया जाए । तुम्हारी इच्छानुसार किस अवध्य का वध अथवा वध्य को मुक्त किया जाय । या किस दरिद्र को धनवान तथा धनाढ्य को कंगाल बना दें ।"[२]

इस विषय में मानसकार में उपर्युक्त उभयग्रन्थों से प्रभाव ग्रहण किया है । यहाँ भी दशरथ की दर्पोक्ति केवल रंक को राव एवं राव को देशनिष्कासन कर कंगाल बना देने तक ही सीमित नहीं रहती, वे कैकेयी का अप्रिय करने वाले अमरों तक को मारने के लिये उद्यत हैं । यही नहीं उनकी प्रजा, पुत्र एवं कुटुम्ब सहित सम्पूर्ण सम्पत्ति यहाँ तक कि उसके प्राण उनके चरणों में अर्पित हैं ।

---

१. अध्यात्म०, २/३/६, ११-१३

२. "कस्य वापि प्रियं कार्यंकेन वा विप्रियं कृतम् ।
कः प्रियं लमतामथ को वा सुमहदप्रियम् ।।
अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम् ।
दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिंचनः ।।"

—वा० रा०, २/१०/३१-३३

"अनहित तोर प्रिया केहुं कीन्हा, केहि दुइ सिर केहि जसु चह लीन्हा ।
कहु केहि रंकहि करों नरेसू, कहु केहि नृपहिं निकासी देसू ।।
सकउं तौर अरि अमरउ मारी, काह कीट बपुरे नर नारी ।
जानसि मोर सुभाउ बरोरू, मनु सब आनन चंद चकोरू ।।
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे, परिजन प्रजा सकल बस तोरें ।"[१]

कौशल्या अध्यात्म रामायण में पुत्र राम के राज्यतिलक के अवसर पर इष्ट-सिद्धि हेतु लक्ष्मी-पूजन करती हैं किन्तु उन्हें दशरथ के वचन के प्रति पूर्ण आस्था नहीं है। वे उन पर सन्देह व्यक्त करती हैं कि यद्यपि वे सत्यवादी तथा दृढ़-प्रतिज्ञ हैं किन्तु वे कामी और कैकेयी के वशीभूत हैं, ऐसी अवस्था में क्या वे अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सकेंगे ।

"लक्ष्मीं पर्यचरदेवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ।
सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ।।
कैकेयीवशगः किन्तु कामुकः किं करिष्यति ।"[२]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण पिता दशरथ को कामुक एवं स्त्रैण बताते हुये कहते हैं कि एक तो वे बूढ़े हैं, दूसरे विषयों ने उन्हें वश में कर लिया है अतः कामदेव के वसीभूत हुए वे नरेश कैकेयी सदृश स्त्री की प्रेरणा से क्या नहीं कर सकते हैं ?

"विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रघार्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रुयाच्चोद्यमानः समन्यथः ।।[३]

यही नहीं राम भी उन्हें कैकेयी के प्रेमपाश में आबद्ध एवं काम के वशीभूत बताते हैं ।[४] सीता के उस कथन से भी दशरथ की कामुक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है जिसमें वे अनुसूया से कहती हैं कि राजा दशरथ ने एक बार भी जिन स्त्रियों को प्रेम-दृष्टि से देख लिया है उनके प्रति भी राम का मातृ-भाव हो गया है ।

"सकृद् दृष्टास्वपि स्त्रीषु नृपेण नृपवत्सलः ।
मातृवद् वर्तते वीरो मानमुत्सृज्य धर्मवित् ।।"[५]

---

१. मानस, २/२६/१-३
२. अध्यात्म०, २/२/४२-४३
३. वा० रा०, २/२१/१ ।
४. तदेव, २/३१/१२, २/५३/८-९ ।
५. तदेव, २/११८/६ ।

वाल्मीकि के अनुसार तीन पटरानियों के अतिरिक्त दशरथ के ३५० और अन्य रानियाँ भी थीं।[१] आनन्द रामायणकार उनकी तीन प्रमुख रानियों के अतिरिक्त ७०० रानियों का और उल्लेख करता है।[२]

मानस में दशरथ की केवल तीन रानियों का ही उल्लेख मिलता है; साथ ही मानसकार को वाल्मीकि अथवा आनन्दरामायण की भाँति अपने आदर्शपात्रों द्वारा दशरथ का स्त्रैण एवं विषयलोलुप रूप दिखाकर उपहास का पात्र बनाना अभीष्ट नहीं था। उनके उक्त पात्र अत्यन्त मर्यादित एवं शालीन हैं। हाँ, दशरथ की कामुकता का दिग्दर्शन कवि ने कैकेयी के साथ उनकी काम-क्रीड़ाओं एवं चेष्टाओं द्वारा स्वतः करा दिया है।[३]

इसी प्रकार रामचरित चिन्तामणि में भी दशरथ मदन की महिमा से अभिभूत दिखाए गए हैं।

"पग बढ़ा सकते नृप हैं नहीं।
मदन की महिमा हत है नहीं॥"[४]

दशरथ कामुक एवं विषयासक्त होकर भी अपने कर्त्तव्य, सत्यपालन एवं प्रण के प्रति दृढ़ तथा आस्थावान थे। यही कारण है कि कैकेयी में रममाण नृपति ने बड़ी रानी कौशल्या के पुत्र राम को ही राज्याधिकारी बनाना चाहा।

अध्यात्म रामायण में वसिष्ठ भरत को सान्त्वना देते हुये कहते हैं कि राजा दशरथ वृद्ध, ज्ञानी एवं सत्यपराक्रमी थे।

"वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः।"[५]

---

१. तदेव, २/३६/३६।

२. आनन्दरामायण, १/१/७२।

३. मानस, २/२५/२, २/२५ छंद।

४. रामचरित चिन्तामणि, पाँचवाँ सर्ग, पृ० ५६।

५. अध्यात्म० २/७/६३।

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी वे दशरथ के सत्य एवं प्रणपालन की सराहना करते हैं ।[1]

हाँ, यह अवश्य है कि वे राम प्रेम के आगे अपने प्राण एवं प्रणपालन को भी तिलांजलि देने को प्रस्तुत हैं । वस्तुतः उनका राम प्रेम सर्वोपरि है । यही कारण है कि अध्यात्म रामायण में आत्मभर्त्सना करते हुए राम से कहते हैं कि मुझ स्त्रीपरवश, भ्रांतचित, कुमार्गगामी पापात्मा को बाँधकर यह राज्य ले लो, इससे तुम्हें कोई पाप न लगेगा । हे रघुनन्दन ? ऐसा करने पर मुझे भी असत्य स्पर्श न करेगा ।

"स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ।
निगृह्य माँ गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ।।
एवं चेदनृतं नैव माँ स्पृशेद्रघुनन्दन ।।[2]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में भी वे कहते हैं कि रघुनन्दन ! मैं कैकेयी को दिए हुए वर के कारण मोह में पड़ गया हूँ । तुम मुझे कैद करके स्वयं ही अब अयोध्या के राजा बन जाओ ।

"अहं राघव ! कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्ययां त्वमेवाद्य भवराजा निगृह्य माम ।।"[3]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रन्थों से प्रभावित राशि रामचरित चिन्तामणि में भी दशरथ लगभग यही बातें राम से कहते हैं ।

"हे राम ! मुझको मार कर या जीत करके आज ही ।
मम राज को तुम छीन लो वन में वृथा जाओ नहीं ।।
मैं कामिनी-वश इस बुढ़ापे में अहो धिक हो गया ।
सदज्ञान ही मेरा नहीं सर्वस्व मेरा खो गया ।।"[4]

साकेत में लक्ष्मण से भी वे यही अनुरोध करते हैं कि मुझे बन्दी बनाकर राज्याभिषेक करो :—

---

१. "भूप धरमव्रत सत्य सराहा । जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा ।।"
—मानस, २/१७१/३ ।

"नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रवाना ।।"
—तदेव, २/१७४/३ ।

२. अध्यात्म० २/३/६८-६९ ।

३. वा० रा०, २/३४/२६ ।

४. रामचरित चिन्तामणि, सातवाँ सर्ग, पृ० ८८ ।

"मुझे बन्दी बनाकर वीरता से ।
करो अभिषेक साधन धीरता से ।।"[१]

मानस के दशरथ की भी आन्तरिक इच्छा है कि राम उनके वचन का पालन न करें तथा शील-स्नेह त्यागकर घर ही में रह जाएँ ।[२] यही नहीं वे यहाँ तक सोचते हैं कि चाहे उन्हें सुयश खोकर अपयश का पात्र बनना पड़े या स्वर्ग के स्थान पर नरक की प्राप्ति हो तथा भले ही उन्हें असह्य दुःख सहन करना पड़े किन्तु उनके वत्स राम उनके नेत्रों से ओझल न हों :—

"अजसु होऊ जग सुजसु नसाऊ, नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ ।
सब दुख दुसह सहावहु मोही, लोचन ओट रामु जनि होहीं ।।"[३]

और इसी सत्यपालन एवं रामप्रेम के अन्तर्द्वन्द्व के मध्य उनकी मृत्यु हो जाती है । वाल्मीकि के अनुसार वे अपने प्रणपालन के लिए राम को त्यागते हैं किन्तु राम की वियोगाग्नि में अपने शरीर की आहुति भी दे देते हैं ।[४] ठीक यही दशा मानस के दशरथ की भी होती है —

"तजे रामु जेहि बचनहि लागी, तनु परिहरेउ राम बिरहागी ।"[५]

तुलसी उनके इसी निश्छल रामानुराग के प्रति श्रद्धावनत हैं ।

"बंदउ अवध भुआल सत्यप्रेम जेहि राम पद ।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तन इव परिहरेत ।।"[६]

इस प्रकार दशरथ का चरित अनेक विशेषताओं के होते हुये मानव-सुलभ दुर्बलताओं से मुक्त नहीं है । यही कारण है कि रामकथा के अन्य सभी पात्रों की अपेक्षा उनका चरित्रांकन अधिक मानवीय एवं एथार्थरूप में हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

---

१. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ० ८३ ।
२. "तुम्ह प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहि देहु ।
बचनु मोर तजि रहहि घर, परिहरि सील सनेहु ।।"—मानस, २/४४ ।
३. तदेव, २/४५/१ ।
४. वा० रा०, २/७२/५०-५१ ।
५. मानस, २/१७४/२ ।
६. तदेव, १/१६ ।

परशुराम

संस्कृत एवं हिन्दी सभी राम-कथाकारों ने परशुराम का चरित्र उस तीव्र अंधड़ सदृश चित्रित किया है जो अचानक प्रलयंकर रूप धारणकर सभी को झक-झोरता हुआ शीघ्र ही विलीन हो जाता है। वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में परशुराम राम से विवाहोपरान्त बारात के लौटते समय मार्ग में दिशा-विदिशा को प्रकम्पित करते हुए क्रुद्ध रूप में मिलते हैं।[1] इसी से प्रभावित केशवकृत रामचन्द्रिका में भी उक्त घटना मार्ग में ही घटित होती है। वहाँ भी उनके भयावह एवं अतिक्रुद्ध रूप से आतंकित हो बड़े-बड़े शूरवीर स्त्री-वेश धारण करके भागने लगते हैं।[2] इससे भिन्न तुलसी के मानस में 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' की भाँति परशुराम का प्रवेश विवाह के पूर्व ही शिव-धनु टूटने की ध्वनि सुनकर जनक की रंगशाला में होता है।[3]

वाल्मीकि रामायण में परशुराम की रूपाकृति एवं वेश-भूषा एक दुर्द्धर्ष क्षत्रिय-रूप में अधिक स्पष्ट है, ब्राह्मण रूप में कम। केवल उनके मस्तक की सुदीर्घ जटाएँ ही उनके मुनि होने का आभास दिलाती हैं। परन्तु जटाओं के कारण शान्तरूप की अपेक्षा उसका रौद्ररूप ही अधिक मुखरित हो रहा है। वे कैलास सदृश दुर्जय एवं कालाग्नि के समान दुःसह प्रतीत होते हैं। कंधे पर परशु और हाथ में भयंकर धनुष-वाण धारण किये हुए त्रिपुरनाशक प्रलयंकर शंकर के समान दुर्दमनीय प्रतीत हो रहे हैं। जामदग्न्य की वेशभूषा तथा शारीरिक चेष्टाएँ वीर एवं रौद्र रस से समन्वित हैं।[4]

'हनुमन्नाटक' में उनका वेश ब्राह्मणों-जैसा सौम्य साथ ही क्षत्रियोचित भयावह है। पीठ पर वाण से भरे दो तरकश, वक्षस्थल भस्म एवं कटि कृष्णमृगचर्म से युक्त है। एक हाथ में जयमाला तथा दूसरे में धनुष और पिप्पलदंड लिये आजन्म ब्रह्मचारी का रूप है। वे अपने पितृकुल के अनुरूप यज्ञोपवीत एवं क्षत्रिय माता के अनुसार विशाल धनुष धारण किये हुए हैं।[5]

---

१. (अ) वा० रा०, १/७४/१३-१९
   (ब) अध्यात्म०, बाल०, सर्ग ७
२. रा० चं०, ७/२
३. (अ) प्रसन्न०, ४/१५
   (ब) हनुमन्नाटक, १/२९-३०
   (स) मानस, १/२६८-२६९
४. वा० रा०, १/७४/१३-१९
५. हनुमन्नाटक, १/२९-३०

इसी प्रकार 'प्रसन्नराघव' के परशुराम में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के गुण एक साथ विद्यमान हैं; क्योंकि धनुष की प्रत्यंचा एवं मूँज की मेखला दोनों ही हैं। हाथ में बाण और कुश एक साथ हैं, परशु और कमण्डल लिए हुए वीर एवं शान्त रस से समन्वित रूप धारण किये हुए हैं।[1]

इस सन्दर्भ में मानसकार 'प्रसन्नराघव' से अधिक प्रभावित है। उसके परशुराम की वेशभूषा भी वीर एवं शान्त रस से पूर्ण है। उनके गौरवर्ण पर विभूति सुशोभित है, विशाल ललाट पर त्रिपुण्ड है, सिर जटायुक्त है किन्तु मुख तथा नेत्र क्रोध से रक्तवर्ण से हो गये हैं। भ्रू वक्र हो गये हैं। वे किसी की ओर सरलता से भी देखते हैं तो प्रतीत होता है कि क्रोध कर रहे हैं। उनके कंधे वृषभवत् ऊँचे एवं सम्पुष्ट हैं जबकि वक्षस्थल तथा भुजाएँ विशाल। एक ओर वे ब्राह्मणोचित यज्ञोपवीत, मृगचर्म एवं माला धारण किये हैं तो दूसरी ओर उनके कंधे पर कराल परशु और हाथों में भयानक धनुष-वाण है। उनका वेश शान्त है किन्तु कार्य कठोर। ऐसा लगता है कि स्वयं वीर रस ही मुनिरूप में मूर्तिमान हो गया है।[2]

इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' के परशुराम की वेषभूषा एवं रूप का चित्रण 'प्रसन्न-राघव' के ही अनुकरण पर हुआ है। प्रसन्नराघव में मार्ग के अद्‌भूत् वेश को देखकर लक्ष्मण राम से कुतूहल प्रकट करते हैं,[3] परन्तु यहाँ लक्ष्मण के स्थान पर भरत राम से भृगुपति के विषय में जिज्ञासा प्रकट करते हैं।[4] यहाँ भी परशुराम की रूपाकृति शान्त एवं वीर रस से समन्वित है। वे ब्राह्मण-धर्म के प्रतीक रूप पैंती, हवनकाष्ठ, श्रुवा, कुश, कमण्डल, मेखला तथा मृगछाला से युक्त हैं। साथ ही क्षत्रियोचित कटि से कान तक लम्बा तूणीर बाँधे, धनुष-वाण और तीक्ष्ण कुठार धारण किये हुए सात्विक धर्म से युक्त वीर रस सदृश प्रतीत हो रहे हैं।[5] अधिकांश हिन्दी-रामकथाओं में परशुराम का चरित्र-चित्रण प्रसन्नराघव की भावभूमि पर ही हुआ है।

प्रसन्नराघव नाटक में क्रुद्ध परशुराम रंगभूमि में प्रवेश करते ही अपने वैभव, पराक्रम की गर्वोक्तियाँ करते हैं। यहाँ सर्वप्रथम उनके क्रोध का भाजन जनक को बनना पड़ता है, जिन्होंने शिवधनु उठाने वाले को कन्यादान का संकल्प किया है। कारण, उन्होंने पहले ही एक मुनि द्वारा जनक को यह कहलवा भेजा था कि वे

---

१. प्रसन्न०, ४/१५

२. मानस, १/२६८/२ से दो० २६८ तक

३. प्रसन्न०, ४/१५

४. रा० चं०, ७/१५

५. तदेव, ७/१५

इस प्रकार की प्रतिज्ञा से विरत हो जायँ तथा किसी राजकुमार को कन्यादान कर दें। परशुराम अमर्ष में भरकर कहते हैं कि कार्तवीर्य के बाहुबल का उन्मूलन करने वाला मेरा परशु आज पृथ्वी को जनकशून्य बना देगा।[१] फिर जब शतानन्द का शिष्य ताण्ड्यायन केवल इतना ही कह पाता है कि "विश्वामित्र के यज्ञ को विध्वंस करने वाले सुबाहु और मारीच आदि वे राक्षस जिनके वश में थे"[२]—से परशुराम यह अनुमान लगा लेते हैं कि शिव-धनुष रावण ने तोड़ा होगा। वे क्रुद्ध हो उसे मारने के लिए निकल पड़ते हैं किन्तु अपनी भूल मालूम होने पर वे लौट आते हैं। तब पूछने पर ताण्ड्यायन बताता है कि शिवधनु मारीच का दमन करने वाले राम ने तोड़ा है। इस प्रकार प्रसन्नराघवकार ने परशुराम को जल्दबाज एवं क्रोधी स्वाभाववाला दर्शाया है।

इसी प्रकार रामचन्द्रिका में प्रसन्नराघव के ताण्ड्यायन की भाँति ही वामदेव के मुख से 'रा' अक्षरमात्र के उच्चारण से परशुराम 'रावण' को शिवधनुष तोड़ने वाला समझ बैठते हैं[३] तथा क्रुद्ध हो वामदेव की बात काटकर बोल पड़ते हैं :

"अति कोमल नृप सुतन की, ग्रीवा दलीं अपार।
अब कठोर दशकण्ठ के, काटहुँ कण्ठ कुठार॥"[४]

फिर वे आत्मश्लाघायुक्त अनेक गर्वोक्तियाँ करते हैं जब उन्हें वामदेव द्वारा यह ज्ञात होता है कि कौशिक-यज्ञ की रक्षा करने वाले, गौतम-तिय का उद्धार करने वाले तथा स्वयंवर में सीता का वरण करने वाले राम ने शिवधनुष तोड़ा है,[५] तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हो राम से कहते हैं—"आज हाथी, घोड़े और रथ समेत सभी रघुवंशियों को कुठार की धारा में डुबा दूंगा।" यही नहीं, यदि राम धनुष उठा कर लड़ेगा तो आज दशरथ को अनाथ कर दूंगा।[६]

इस प्रकार प्रसन्नराघवकार की भाँति केशव ने भी परशुराम के ओजस्वी, दुर्द्धर्ष एवं अतिशीघ्र क्रुद्ध होने वाले निर्मम रूप का निदर्शन किया है।

यद्यपि 'मानस' के परशुराम 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' की भाँति ही रंगभूमि में आते हैं, किन्तु तुलसी ने उपयुक्त अवसर पर बड़े नाटकीय ढंग से परशुराम की उपस्थिति दर्शायी है। सीता राम के गले में जयमाल डाल देती है।

१. प्रसन्न०, ४/६, ७
२. तदेव, ४/६
३. रा० चं०, ७/४
४. रा० चं०, ७/५
५. तदेव, ७/१०
६. तदेव, ७/१२

धनुषयज्ञ में आये हुए राजाओं को यह असह्य हो उठता है। वे कहते हैं कि सीता को छीन लो और दोनों राजकुमार को पकड़कर बाँध लो। हमारे जीते-जी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है ?[१] उसी अवसर पर शिवधनु का टूटना सुनकर भार्गव वीर रौद्र रूप में उपस्थित होते हैं। उनके आते ही सभी नृपतिगण सहमकर उसी प्रकार छिप जाते हैं जैसे बाज के झपटने पर बटेर छिप जाता है।[२] उनका मुख क्रोध के कारण कुछ लाल हो आया है, भौहें टेढ़ी और आँखें क्रोध से रक्तिम हैं। जब वे किसी को सहज भाव से भी देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर क्रुद्ध ही हैं; वस्तुतः उनका वेश अत्यन्त कराल एवं भयावह है।[३]

जनक द्वारा राजाओं के आगमन का कारण निवेदन करते समय ही परशुराम की दृष्टि टूटे हुए शिवधनु पर पड़ती है। इससे वह अत्यन्त क्रुद्ध हो जनक से धनुर्भंग करने वाले का नाम पूछते हैं, परन्तु राजा भय के कारण उत्तर न दे पाये। तब 'प्रसन्न-राघव' के ताण्ड्यायन के स्थान पर यहाँ स्वयं राम ही 'हनुमन्नाटक' की भाँति[४] जामदग्न्य से निवेदन करते हैं, कि "हे नाथ ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई एक दास ही होगा।[५] परन्तु इससे भार्गव का क्रोध और भी अधिक भड़क उठता है। वे 'हनुमन्नाटक' की ही भाँति[६] यहाँ भी कहते हैं कि शिवधनुष को तोड़ने वाला कार्त्तवीर्य के समान ही मेरा शत्रु है तथा वह इस राजसमाज से पृथक होकर सामने आवे अन्यथा सभी नृपतिगण मारे जायेंगे।[७]

तदुपरान्त परशुराम और राम का 'प्रसन्नराघव' नाटक की भाँति[८] लम्बा संवाद चलता है। भृगुराज क्रुद्ध होकर युद्ध करने को तत्पर हैं,किन्तु वीर राम अपने शान्तियुक्त वचनों से उन्हें उत्तर देते हैं, उपर्युक्त उभय ग्रंथों में लक्ष्मण बीच-बीच में कटूक्तियाँ एवं व्यंग्यवाणों से परशुराम को और भी अधिक उत्तेजित कर देते हैं,[९] परन्तु राम के मना करने पर लक्ष्मण शान्त हो जाते हैं :

---

१. मानस, १/२६६/१-३
२. तदेव, १/२६८/२
३. तदेव १/२६८/३-४।
४. हनुमन्नाटक, १/३४।
५. मानस, १/२७१/१।
६ हनुमन्नाटक, १/३६।
७. मानस, १/२७१/३।
८. प्रसन्न०, ४/१६-४०।
९. (अ) प्रसन्न०, ४/२५-२९।
(ब) मानस, १/२७१-२७६।

'प्रसन्नराघव' में जब राम एवं भार्गव का विवाद चरम सीमा पर पहुँच जाता है तथा राम द्वारा उन्हें अनेक बार 'ब्राह्मण' कहने पर उन्हें अपनी हीनता का आभास होता है तब वे अपने सम्बन्ध में अनेक गर्वोक्तियाँ करते हुए राम से कहते हैं कि मुझे निरा प्रणामयोग्य ब्राह्मण ही न समझो।[1] फिर वे उन्हें युद्धभूमि में उतरने के लिए ललकारते एवं अपना वैष्णव धनुष दिखाते हुए कहते हैं कि या तो इसे उठा लो अथवा मुझसे युद्ध करो। राम उस धनुष को अनायास ही उठा लेते हैं तथा परशुराम के स्वर्गगमन के प्रतिबन्धक-स्वरूप उस पर बाण चढ़ाकर संधान करते हैं।[2] इसी प्रकार का वर्णन 'हनुमन्नाटक' में भी उपलब्ध है।[3] प्रसन्नराघव एवं हनुमन्नाटक दोनों ही ग्रन्थों में जामदग्न्य राम के अप्रतिम तेज एवं ऐश्वर्य को देखकर उनमें ब्रह्म का आरोपण करते तथा अत्यन्त विनीत भाव से उनकी स्तुति करके चले जाते हैं।[4]

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण के मूलाधार ग्रन्थ होने पर भी इस प्रसंग में तुलसी प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से अधिक प्रभावित दीख पड़ते हैं। मानस में प्रसन्नराघव की ही भाँति परशुराम और राम में दीर्घ विवाद चलता है तथा भृगुपति राम को युद्ध के लिए ललकारते हुए कहते हैं, "अरे शिवद्रोही ! छल त्यागकर मुझसे युद्ध कर अन्यथा भाई सहित तुझे मैं मार डालूँगा।"[5] और जब परशुराम अत्यन्त क्रुद्ध हो व्यर्थ का प्रलाप करने लगते हैं तब राम भी कुछ रोष में आकर कहते हैं कि "हे भृगुनाथ ! यदि हम वास्तव में ब्राह्मण कह कर आपका तिरस्कार कर रहे हैं तो फिर बताइए कि संसार में कौन ऐसा योद्धा है जिसके समक्ष हम भयवश नतमस्तक हों।"[6] प्रसन्नराघव[7] की भाँति यहाँ भी परशुराम अपना सन्देह निवारण करने के लिए राम को वैष्णव धनुष देते हैं, किन्तु यहाँ एक विशेष घटना यह घटती है कि धनुष देते समय वह अपने-आप राम के पास चला जाता है। इस प्रकार भार्गव राम के विष्णु रूप से परिचित हो जाते हैं।[8] तदुपरांत प्रसन्नराघव की ही भाँति यहाँ भी वे राम की स्तुति करके तपहेतु वनगमन करते हैं।[9]

---

१. प्रसन्न०, ४/३३।
२. प्रसन्न०, ४/४३।
३. हनुमन्नाटक, १/४१, ४४, ४५, ४६, ४६।
४. (अ) प्रसन्न०, ४/४४, ४७-४८।
   (ब) हनुमन्नाटक, १/५२-५३, ५५।
५. मानस, १/२८१/१-२।
६. तदेव, १/२८३।
७. प्रसन्न०, ४/४३।
८. मानस, १/२८४/४।
९. तदेव, १/२८५/१-४।

अस्तु प्रसन्नराघव के जामदग्न्य-चरित का मानस के परशुराम पर प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हाँ, उसे और अधिक सँवारना, स्वाभाविक तथा आकर्षक बनाना मानसकार की अपनी पृथक विशेषता है।

रामचन्द्रिका का उक्त प्रसंग यद्यपि बीजरूप में आदिकाव्य का ही ऋणी है, साथ ही घटनाएँ भी वाल्मीकि रामायण के समान्तर चलती हैं, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से केशव प्रसन्नराघव से ही अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं।

प्रसन्न राघव की भाँति यहाँ भी परशुराम अत्यधिक क्रुद्ध हो राम पर अनेक कटुक्तियों द्वारा दोषारोपण करते हुए कहते हैं कि "तुमने शंकर का धनुष तोड़कर स्वयंवर में सीता को विवाहा है, इससे तुम्हारे मन में अभिमान अधिक बढ़ गया है। अब तो तुम अपने दोनों हाथ मेरे कुठार को देकर ही घर जा सकेगा।"[1] वाल्मीकि रामायण की भाँति यह घटना रामचन्द्रिका में भी बारात के लौटते समय मार्ग में घटित होती है। यहाँ चारों भाई उपस्थित हैं; अतएव विवाद में राम के साथ भरत-लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न सभी भ्राता सम्मिलित हैं।[2] यह केशव की मौलिक सूझ है। इसको नकारते हुए गोविन्द रामायण में वाग्विवाद केवल परशुराम और राम के ही बीच होता है। उसमें लक्ष्मण भी भाग नहीं लेते। यहाँ परशुराम का राम से युद्ध भी होता है जिसमें परशुराम पराजित होते हैं।[3] रामचन्द्रिका में राम प्रसन्नराघव की भाँति[4] कहते हैं, "आप ब्राह्मण हैं; अतः अबध्य हैं।"[5] तब परशुराम उत्तेजित हो कहते हैं कि "तुम सब अस्त्र धारण करके भी क्यों डरते हो। अनेक उपाय करने पर भी तुम मृत्यु से नहीं बचोगे।"[6] लक्ष्मण की कटुक्तियों से आहत वे उन्हें मारने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार वाग्युद्ध बढ़ जाता है।[7] इसी अवसर पर केशव ने महादेव को उपस्थित करके मौलिक कल्पना की है। महादेव दोनों रामदेवों को समझा-बुझा कर शान्त करते हैं।[8]

---

१. रा० चं०, ७/१०

२. तदेव, ७/२३-२४, २८-२९

३. गोविन्द०, सीता स्वयंवर, पृ० २६ से ३३ तक।

४. प्रसन्न०, ४/२३-२४

५. रा० चं०, ७/३३

६. तदेव, ७/३४

७. तदेव, ७/३५

८. रा० चं०, ७/४३-४५

रामचन्द्रिका में भी परशुराम नारायण का धनुष राम के हाथों में देते हैं। राम के द्वारा उस पर बाण चढ़ा देने से उन्हें उनके नारायणत्व पर विश्वास हो जाता है।[१] फिर वे राम से स्वयं कहते हैं कि इस वाण से मेरी गति अवरुद्ध कर दो।[२] राम द्वारा उनकी गति भंग होने पर वे अत्यन्त विनीत भाव से स्तुति करके अपना रावणादि-वध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राम को सौंप कर चले जाते हैं।[३]

इस प्रकार रामचंद्रिका में परशुराम का चरित्रांकन आदिकाव्य एवं प्रसन्नराघव दोनों के ही अनुकरण पर हुआ है। किन्तु वार्त्तालाप के अन्तर्गत व्यंग्य एवं कटूक्तियों की सूक्ष्मता केशव की अपनी निजी विशेषता है।

विभीषण

संस्कृत एवं हिन्दी सभी राम-कथाओं में विभीषण धार्मिक एवं साधु-प्रकृति के चित्रित किये गये हैं। वाल्मीकि रामायण में जन्म से पूर्व ही उनकी माता कैकेयी से प्रसन्न होकर विश्रवा अन्तिम भावी पुत्र को धर्मात्मा होने का आशीर्वाद देते हैं :

> "पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने।
> मम वंशानुक्रमः स धर्मात्मा च न संशयः ॥"[४]

इस प्रकार विभीषण स्वाध्यायपरायण, नियताहारी, जितेन्द्रिय एवं धार्मिक प्रवृत्ति के उत्पन्न हुए :

> "विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः।
> स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रिय ॥"[५]

वे अपने अग्रजों रावण, कुम्भकर्ण के साथ घोर तप में प्रवृत्त होते हैं, परन्तु उनका अनुसरण न करते हुए वे ब्रह्मा से धर्मबुद्धि होने का वरदान माँगते हैं।[६] इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी वे निश्चल धर्मबुद्धि की याचना करते हैं।[७]

---

१. रा० चं०, ७/४७-४९
२. तदेव, ७/४९
३. तदेव, ७/५०-५१
४. वा० रा०, ७/९/२७
५. वा० रा०, ७/९/३९
६. तदेव, ७/१०/२७-३३
७. अध्यात्म०, ७/२/१८

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी विभीषण धर्मपरायण एवं भगवद्भक्त हैं। वे पूर्वजन्म में प्रतापभानु के धर्मरुचि नामक मंत्री थे।[१] मानस में भी विभीषण घोर तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर लेते तथा उनसे भगवद्भक्ति की याचना करते हैं।[२]

उनकी साधु प्रकृति से सभी परिचित हैं। शूर्पणखा भी राम से कहती है कि "मेरे तीसरे भाई का नाम विभीषण है परन्तु वह धर्मात्मा है, राक्षसों के आचार-विचार का वह कभी पालन नहीं करता" :

"विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः ॥"[३]

मानस के हनुमान लंका में विभीषण को भगवद्भक्ति में तल्लीन पाते हैं।[४] यही नहीं, कुम्भकर्ण भी धार्मिक एवं साधु विभीषण की प्रशंसा करता है :

"धन्य धन्य तैं धन्य विभीषण। भयहु तात निसिचर कुल भूषन ॥
बंधु वंश तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर ॥"[५]

विभीषण की साधुता का सबसे बड़ा प्रमाण उस पर रावण द्वारा पाद-प्रहार किये जाने पर मिलता है। उस समय भी उसकी विनम्रता, धैर्य, तितिक्षा एवं क्षमाशीलता दर्शनीय है :

"उमा संत कह इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ बड़ाई ॥
तुम्ह पितु सरिस भलहिं मोहि मारा। राम भजें हित नाथ तुम्हारा ॥"[६]

नीतिज्ञ एवं परामर्शदाता

विभीषण नीतिधर्म के ज्ञाता और सत्परामर्शदाता थे। वाल्मीकि रामायण में वे बार-बार रावण के लंका-विनाश की आशंका व्यक्त करते तथा सीता को लौटाने का अनुरोध करते हैं।[७] यही नहीं, इन्द्रजित को कायर कह कर उनकी भर्त्सना करता है, फिर भी रावण को सत्परामर्श ही देते हैं।[८] सीता-हरण के पूर्व भी रावण

---

१. मानस, १/१७६/२-३
२. तदेव, १/१७७
३. वा० रा०, ३/१७/२३
४. मानस, ५/५/४ से ५/८/१ तक
५. तदेव, ६/६४/४-५
६. तदेव, ५/४१/४
७. वा० रा०, ६/६/१३-१६
८. तदेव, ६/सर्ग ११-१५

द्वारा अनेक स्त्रियों के बलात् अधिकृत कर लेने पर विभीषण उसे इस प्रकार के दुष्कृत से विरत होने की मंत्रणा देता है।[1]

इसी प्रकार हनुमान की हत्या में प्रवृत्त रावण को वे धर्मनीति का उपदेश करते हैं कि दूत सदैव अवध्य होता है, भले ही वह शत्रु का दूत क्यों न हो। विभीषण के इस सत्परामर्श का रावण पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।[२] इसी प्रकार मानस,[३] साकेत,[४] रामचन्द्रिका[५] आदि हिन्दी-रामकाव्यों में भी विभीषण की मन्त्रणा को रावण स्वीकार करता है।

जब विभीषण सीता को लौटाने और राम से द्रोह न करने की सम्मति देता है तब कामुक रावण का अहं जागृत हो उठता है। उसका यह सत्परामर्श उसके गले नहीं उतरता। विभीषण उसे अत्यन्त विनम्र शब्दों में समझाता हुआ कहता है, "राजन् ! हम लोग धन, रत्न, सुन्दर आभूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणि और देवी सीता को राम की सेवा में समर्पित करके ही शोकरहित होकर इस नगर में निवास कर सकते हैं :[५]"

"धनानि रत्नानि सुभूषणानि।
वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान्॥
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं।
वसेन राजन्निह वीतशोकाः॥"[६]

वे उसे सावधान करते हुए कहते हैं कि जबसे विदेहकुमारी सीता यहाँ आयी हैं तभी से हम लोगों को अनेक प्रकार के अमंगलसूचक अपशकुन दिखाई दे रहें हैं।[७] अध्यात्म रामायण में भी वह कहते हैं कि, "आपको सीता नामक एक प्रबल ग्रह ने ग्रस्त कर लिया है, इससे आपका छुटकारा इस तरह नहीं हो सकता। आप उसे सत्कारपूर्वक प्रचुर धन के साथ राम को लौटा दीजिए और सुखी हो जाइए।"[८]

---

१. वा० रा०, ७/२५/१८
२. तदेव, ५/५२/५-६
३. मानस, ५/२३/४
४. साकेत, सर्ग ११, पृ० ४३५
५. रा० चं०, १४/३
६. वा० रा०, ६/१५/१४
७. "यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेह परंतप।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्य शुभानि नः॥" तदेव, ६/१०/१४
८. अध्यात्म०, ६/२/२३

आदि काव्य एवं अध्यात्म रामायण के भावों से अनुप्रेरित मानस के विभीषण भी उपयुक्त अवसर देख कर अग्रज दशानन के चरणों में शीश झुकाकर नीतियुक्त वचनों द्वारा समझाता है।[१] वह रावण से अनुनय करता है कि आप मेरा दुलार रखिए, राम को सीता दे दीजिए जिससे आपका अहित न हो :

"तात चरन गहि मागउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥"[२]

वह यहाँ भी रावण को सावधान करता है कि यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो परस्त्री सीता को चौथ के चन्द्रमा की भाँति त्याग दीजिए :

"जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद को नाईं ॥"[३]

मानसकार ने ये भाव प्रसन्नराघव के निम्नलिखित श्लोक से ग्रहण किये हैं :

"उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्री मालपट्टिका ॥"[४]

कामान्ध एवं हठी रावण के किसी प्रकार भी न मानने एवं तिरस्कार करने पर नीतिपथ पर दृढ़ विभीषण अन्तिम चेतावनी देता हुआ उसका परित्याग करता है :

"हन्यमानं न शक्नोमि द्रष्टुं रामेण रावण।
त्वां राक्षसकुलं कृत्स्नं ततो गच्छामि राघवम् ॥
मयि याते सुखी भूत्वा रमस्व भवने चिरम्।"[५]

"हे रावण ! मैं राम द्वारा सम्पूर्ण राक्षसवंश और आपका संहार होता नहीं देख सकता। अतः मैं रघुनाथ जी के पास जाता हूँ। मेरे चले जाने पर आप आनन्दपूर्वक अपने महल में चिरकाल तक भोग भोगें।"

कुछ इसी ध्वनि में मानस का विभीषण भी कहता है कि राम सत्यसंकल्प प्रभु हैं और तुम्हारी सभा काल के वशीभूत है। अतः मैं अब राम की शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना :

---

१. मानस, ५/४१/१
२. तदेव, ५/४०
३. मानस, ५/३८/३
४. प्रसन्नराघव, ७/१
५. अध्यात्म०, ६/२/४४-४५

"रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मैं रघुवीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ।।"[1]

शरणागत विभीषण

रावण द्वारा तिरस्कृत होने पर विभीषण अपने चार राक्षस मंत्रियों के साथ लंका का परित्याग करता है।[2] वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण में रावण उसे धिक्कारता हुआ कहता है कि यदि तेरे सिवा दूसरा कोई ऐसी बातें कहता तो मैं उसे उसी क्षण मार डालता।[3]

हनुमन्नाटक में कटु बचनों के साथ-साथ रावण विभीषण पर बायें चरण से प्रहार भी करता है।[4] यहीं से केशव और तुलसी ने प्रेरणा ग्रहण की है। मानस एवं रामचन्द्रिका दोनों ही ग्रन्थों में रावण विभीषण पर पदाघात करता है।[5] तुलसीकृत गीतावली में भी वह विभीषण की छाती में हुमककर लात मारता है :

"तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात, भले तात।
चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर थामें ।।"[6]

वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय पाठ में रावण द्वारा तिरस्कृत होने पर विभीषण अपनी माता से विदा लेकर कैलास की यात्रा करता है। वहाँ वैश्रवण (कुबेर) तथा शिव दोनों के परामर्श से बह राम की शरण में जाता है।[7] इसी से प्रभावित तुलसीकृत गीतावली में भी वर्णन मिलता है।[8]

---

१. मानस, ५/४१
२. (अ) वा० रा०, ६/१६/७-१६।
   (ब) अध्यात्म०, ६/२/३४-३६।
३. (अ) वा० रा०, ६/१६/६।
   (ब) अध्यात्म०, ६/२/३१।
४. "इति वामचरणेन विभीषणं ताडयामास।" —हनुमन्नाटक, ७/११
५. (अ) "अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।" — मानस, ५/४१/३
   (ब) "सिर माँझ लात पग लागत मार्‍यो।" -- रा० चं०, १५/१३
६. गीतावली, ५/२५/४।
७. वा० रा० गौ०, ५/४२, ५/८६।
८. गीतावली, ५/२७-२८।

संस्कृत की कुछ रामकथाओं की उक्त घटना में अन्तर मिलता है। महावीर-चरित में विभीषण खर-दूषण-वध के उपरान्त लंका का परित्याग करके अपने मित्र सुग्रीव के पास रहने लगता है तथा राम और सुग्रीव की भेंट होने के पूर्व ही वह राम की शरण में जाता है।[१] पद्मपुराण, पातालखंड के अनुसार विभीषण मेघनाद-वध के बाद राम के शरणागत होता है।[२]

उपर्युक्त विचारधारा का अनुसरण अधिकांश हिन्दी-रामकथाकारों ने नहीं किया। वे इस प्रसंग में हनुमन्नाटक, वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण से अधिक प्रभावित रहे हैं। यही कारण है कि तुलसी, सूर, केशव, मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति रामकथाकारों की कृतियों में विभीषण लंका-दहन के उपरान्त ही राम की शरण में चला जाता है।

विभीषण रामसेना के शिविर के समीप आकर सर्वप्रथम अपना परिचय देता हुआ शरण की याचना करता है :

> "रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः।
> तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः॥"[३]
>
> × × ×
>
> "सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
> त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणंगतः॥"[४]

"रावण नाम का जो दुराचारी राक्षस निशाचरों का राजा है, उसी का मैं छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। उसने (रावण ने) मुझे बहुत-सी कठोर बातें सुनाईं और दास की भाँति मेरा अपमान किया। इसलिए मैं अपने स्त्री-पुत्रों को वहीं छोड़कर रघुनाथ की शरण में आया हूँ।"

इसी प्रकार तुलसी का विभीषण भी अपना परिचय देता हुआ राम से शरण की याचना करता है।[५] वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव उस पर रावण के गुप्तचर होने

---

१. महावीर चरित, ५/३०।
२. पद्मपुराण, पाताल खंड; ११२-२२०।
३. वा० रा०, ६/१७/१२।
४. तदेव, ६/१७/१६।
५. (अ) मानस, ५/४५/४ से दो० ४५ तक।
   (ब) गीतावली, ५/४३-४४।

का संदेह व्यक्त करते हैं तथा उसका वध करने की मन्त्रणा देते हैं।[१] मानस के सुग्रीव भी उसे कैद में रखने की सलाह देते हैं।[२]

वाल्मीकि रामायण में हनुमान उसे निष्कपट एवं निश्छल बताते हुए शरण में लेने का आग्रह करते हैं।[३] इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी राम के निर्णय पर हनुमान प्रसन्नता व्यक्त करके अपनी सहमति प्रकट करते हैं।[४] यही नहीं, राम शरणागत को सर्वथा अवध्य बताकर उसे ग्रहण करते हैं[५] तथा लंकेश कह कर सिंधु-जल से उसका राज्यतिलक करते हैं।[६]

शरणागत होने पर विभीषण भी राम के प्रति मैत्री-धर्म का पूर्ण निर्वाह करता है। वह लंका का कोई भेद नहीं छिपाता तथा प्राणपण से उनकी सहायता करता है।

राम के पास रह कर विभीषण एक सुयोग्य मंत्री की भाँति समय-समय पर सत्परामर्श देता है। वाल्मीकि रामायण एवं उससे प्रभावित मानस आदि ग्रंथों में वह राम को सागर की शरण लेने का परामर्श देता है।[७] नीतिज्ञ विभीषण की अनुमति लेकर ही राम अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजते हैं।[८] मानस में राम समस्त मंत्रिमंडल से परामर्श लेते हैं और यहाँ जाम्बवान ही अंगद को दौत्यकर्म के लिए उपयुक्त बताते हैं।[९] विभीषण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य रावण-सेना की गुप्त बातों एवं रहस्यों से राम को अवगत कराना रहा है। वह शुक-सारण एवं शार्दूल

---

१ वा० रा०, ६/१७/२९।

२. मानस, ५/४३/४।

३. वा० रा०, ६/१७/५८, ६७, ६९।

४. मानस, ५/४३/५।

५. (अ) वा० रा०, ६/१८/२७।
(ब) मानस, ५/४३/४।

६. (अ) वा० रा०, ६/१९/२४-२५।
(ब) मानस, ५/४९/४-५।

७. (अ) वा० रा०, ६/१९/३०-३१।
(ब) मानस, ५/५०/४।

८. वा० रा०, ६/४१/५९-६०।

९. मानस, ६/१७/१-२।

सदृश रावण के गुप्तचरों को पहचान कर पकड़वाता है[1], साथ ही अपने मन्त्रियों की सहायता से लंका के गुप्त भेदों का पता लगाता है। यही नहीं, मेघनाद तथा रावण द्वारा गुप्तरूप से किये जाने वाले यज्ञों की सूचना भी राम को देता है[2] और अन्त में अध्यात्म रामायण की भाँति मानस में वह रावण-वध का उपाय भी बताता है।[3]

विभीषण-शक्ति

रामकथाओं में विभीषण की शक्ति-प्रदर्शन के अधिक अवसर नहीं आये हैं। आदिकाव्य में उनके तीन बार के युद्ध का वर्णन मिलता है। प्रथम उसके सामान्य युद्ध का वर्णन,[4] दूसरे उसका इन्द्रजित की सेना से संघर्ष करना[5] और तीसरे लक्ष्मण के साथ युद्धरत रावण के अश्वों को मार डालना।[6] तुलसी के मानस में भी[7] रावण की शक्ति से विभीषण को बचाने के प्रयत्न में राम जब स्वयं मूर्च्छित हो जाते हैं उस समय विभीषण का पौरुष जाग्रत हो उठता है और तुमुल युद्ध में वह गदा के प्रहार से अपने अग्रज रावण को धराशायी कर देता है।

वाल्मीकि रामायण में रावण-वध के उपरान्त वह अग्रज रावण की अन्त्येष्टि करना अस्वीकार कर देता है, किन्तु राम के समझाने पर बाद में रावण का दाह-संस्कार सम्पन्न करता है।[8] मानस में रावण-वध पर वह रुदन करता एवं राम के

---

१. (अ) वा० रा०, ६/सर्ग २५, २६।
   (ब) मानस, ५/५२/१।

२. (अ) अध्यात्म०, युद्ध०, सर्ग ६, १०।
   (ब) वा० रा०, ६/सर्ग ८४।
   (स) मानस, ६/७५/२, ६/८५/१।

३. (अ) "नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्।
   तच्छोपयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्॥"
   —अध्यात्म०, ६/११/५३-५४

   (ब) "नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जियत रावण बल ताकें॥"
   —मानस, ६/१०२/३

४. वा० रा०, ६/सर्ग ४३।

५. तदेव, ६/सर्ग ८८-८९।

६. तदेव, सर्ग १००।

७. मानस, लंका०, दो० ९३-९४ तक।

८. वा० रा०, ६/सर्ग १११

समझाने पर दाह-संस्कार करता है।[1] यहाँ विभीषण का रावण की अन्त्येष्टि से अस्वीकार करने का कोई उल्लेख नहीं है।

इसके उपरान्त राम लक्ष्मण से विभीषण का राज्याभिषेक कराते हैं।[2] पुनश्च सभी के साथ अयोध्या आकर राम के राज्याभिषेक में सम्मिलित होते हैं।[3] अन्त में स्वर्गगमन के समय राम उसे लंका में अचल राज्य करने का वरदान देते हैं।[4] वाल्मीकि से अनुप्रेरित तुलसी के हनुमान भी सीता से विभीषण के अविचल राज्य पाने का संकेत पहले ही कर देते हैं।[5]

महानाटक के अनुसार विभीषण मन्दोदरी से विवाह कर लेता है। सरस्वती कंठाभरण[6] के अनुसार भी विभीषण के साथ मन्दोदरी के विवाह का उल्लेख मिलता है।[7] इसी से प्रभावित मानस[8] तथा रामचन्द्रिका[9] में भी विभीषण-मन्दोदरी-परिणय की ओर संकेत किया गया है। वैसे वाल्मीकि रामायण में सरमा विभीषण की पत्नी मानी गई है।[10] इसी प्रकार साकेत में भी सरमा ही उसकी पत्नी है। इसके अतिरिक्त आनन्द रामायण में त्रिजटा को उसकी पत्नी बताया गया है,[11] परन्तु हिन्दी रामाकथाकारों ने इस प्रकार का कोई संकेत नहीं किया है।

विभीषण पर आक्षेप

विभीषण पर कुलद्रोही, जातिद्रोही एवं राष्ट्रद्रोही होने का आरोप लगाया जाता है। इसका प्रमुख आधार वाल्मीकि रामायण का वह प्रसंग हो सकता है जहाँ

---

१. मानस, ६/१०४/२-४
२. (अ) वा० रा०, ६/सर्ग ११२
 (ब) मानस, ६/१०६/१-३
३. (अ) वा० रा०, ६/सर्ग १२१-१२८
 (ब) मानस, ६/११८
४. वा० रा०, ७/१०८/२४-२५
५. मानस, ६/१०७/४
६. सरस्वती कंठाभरण, ५/३६४
७. देखिए, रामकथा का विकास, पृ० ५४४-४५ (द्वितीय संस्करण), डॉ० कामिल बुल्के।
८. मानस, १/३०/७
९. रा० चं०, ३७/१८
१०. वा० रा०, ७/१२/२४-२५
११. आनन्द०, १/९/१०१

इन्द्रजित अपने चाचा विभीषण की अत्यन्त कटु शब्दों में भर्त्सना करता हुआ कहता है, "दुर्मते ! तुममें न तो कटुम्बीजनों के प्रति अपनापन का भाव है, न आत्मीयों के प्रति स्नेह है और न अपनी जाति का अभिमान ही है। तुम में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की मर्यादा, भ्रातृप्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है। तुम राक्षस-धर्म को कालंकित करने वाले हो :

"न ज्ञातित्वं न सौहार्द्रं न जातिस्तव दुर्मते !
प्रमाणं न च सौन्दर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥"[१]

यहाँ विभीषण उक्त आक्षेपों का उत्तर देता है तथा अपने को निर्दोष सिद्ध करता है।[२] सूर, तुलसी, केशव प्रभृति हिन्दी रामकथाकारों ने ऐसा नहीं किया है। यद्यपि तुलसी भी विभीषण के आचरण के प्रति अधिक सन्तुष्ट नहीं दिखाई पड़ते,[३] किन्तु उनका विभीषण राम के प्रति प्रसन्न हो जाने के कारण सर्वदोषों से मुक्त अवश्य हो जाता है।

सुग्रीव

यद्यपि कपिराज सुग्रीव को रामकथा के घटनाक्रम में नवीन मोड़ समुपस्थित करने का श्रेय प्राप्त है, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वे सामान्य कोटि के पात्र ठहरते हैं। उन्हें सूर्य-पुत्र कहा गया है।[४] रामकाव्य में सुग्रीव एक आदर्श एवं सच्चे मित्र के रूप में अंकित किये गये हैं। सुख-दुःख में सदैव साथ रहने वाले वे राम के अभिन्न मित्र हैं। अग्नि को साक्षी देकर राम के साथ वे प्रगाढ़ मैत्री स्थापित करते हैं :

"ततोऽग्निं दीप्यमान तो चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ ॥"[५]

---

१. वा० रा०, ६/८७/१२

२. तदेव, ६/८७/१८-२६

३. "जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिर सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥"
—मानस, १/२९/३-४

४. वा० रा०, ४/४/२८

५. तदेव, ४/५/१५-१६

वाल्मीकि रामायण की भाँति अध्यात्म रामायण में भी अग्नि को साक्षी करके वे अन्तरंग मित्र बन जाते हैं ।[१] इसी प्रकार मानस के हनुमान अग्नि के साक्ष्य में उन दोनों में दृढ़ मैत्री करा देते हैं :

"पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ।"[२]

'रामचन्द्रिका' में भी अग्नि के साक्ष्य में दोनों मैत्री स्थापित करते हैं :

"आग्नि बारि जब साखि कराजू । रामचंद्र हँसि बाँह धरीजू ।।"[३]

फिर दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख के भागी हो जाते हैं । वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव राम से कहते हैं, "आप मेरे मित्र हैं । आज से हम दोनों का सुख-दुःख एक है":

"त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे ह्येकं दुःखं-सुखं च नौ ।।"[४]

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी हृदय से प्रीति जोड़ लेते हैं, कोई भी अन्तर नहीं रखते :

"कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा ।।"[५]

'सूरसागर' तथा 'गोविन्द रामायण' में भी दोनों में प्रगाढ़ मैत्री हो जाती है, किन्तु वहाँ अग्नि को साक्षी बनाने का उल्लेख नहीं मिलता ।[६]

उन दोनों की समभावस्थिति बताते हुए वाल्मीकि के हनुमान राम से कहते हैं कि वे (सुग्रीव) भी राज्य से भ्रष्ट हैं, उनकी स्त्री का भी अपहरण वालि ने कर लिया है तथा वे भ्राता द्वारा निर्वासित होकर वन में निवास कर रहे हैं ।[७] राम मित्र-धर्म का निरूपण करते हुए सुग्रीव को आश्वस्त करते हैं, "मित्र उपकाररूपी फल देने वाला होता है—यह मुझे भली-भाँति ज्ञात है । मैं तुम्हारी पत्नी का अपहरण करने वाले बालि का बध करूँगा":

---

१. अध्यात्म०, ४/१/४४-४५
२. मानस, ४/४ ।
३. रा० चं०, १२/६३
४. वा० रा०, ४/५/१७
५. मानस, ४/४/१
६. (अ) सूर०, ६/७०
   (ब) गोविन्द०, सीता की खोज, पृष्ठ १०० (प्रथम संस्करण)
७. वा० रा०, ४/४/२७

"उपकार फलं मित्रं विदितं मे महाकपे ।
बालिनं तं बधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ।।"[१]

इसी प्रकार मानस में भी वे विश्वापूर्वक कहते हैं कि मैं एक ही वाण से बालि का वध कर डालूंगा ।[२]

साथ ही सुग्रीव भी राम को सीता प्राप्त करा देने का विश्वास दिलाते हुए अध्यात्म रामायण में कहते हैं, "मैं प्रण करता हूँ कि रावण को युद्ध में मारकर जानकी को आपसे मिला दूंगा :

"सुग्रीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञां करवाणि ते ।
समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम् ।।"[३]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में भी वे मैथिली को प्राप्त करा देने की सत्य-प्रतिज्ञा करते हैं ।[४]

उक्त प्रसंग से अनुप्रेरित मानस के सुग्रीव राम को आश्वस्त करके कहते हैं कि मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा । मैं वह सभी प्रयत्न करूँगा जिससे आपको सीता की प्राप्ति हो सके ।[५]

अजेय बालि विश्व में किसी से पराभूत भी हो सकता है, सुग्रीव के मन में यह बात बैठ नहीं पाती । राम को दुंदुभि-अस्थि तथा सप्तताल-बेधन की परीक्षा में सफल पाकर वह आश्चर्यचकित होता तथा अपने कार्य के प्रति लज्जित होता है । साथ ही उसमें वैराग्य-भावना जागृत होती है ।

इस दृष्टि से मानसकार ने अध्यात्म रामायण के भावों का अनुवर्त्तन किया है । अध्यात्म रामायण में सुग्रीव राम से कहता है कि "स्त्री, पुत्र, धन, राज्य आदि सब आपकी माया के कार्य हैं; अतएव अब मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है । आप मुझ पर कृपा करें । पुत्र, स्त्री आदि सम्पूर्ण बन्धन मायामय ही हैं":

---

१. वा० रा०, ४/५/२५-२६

२. "सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहिं एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सारनागत, गएँ न उबरिहिं प्रान ।।"—मानस, ४/६

३. अध्यात्म०, ४/७/३ ।

४. वा० रा०, ४/७/३ ।

५. मानस, ४/५/४ ।

"दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वे त्वन्यायया कृतम् ।
अतोऽहं देवदेवेश नाकाङ्क्षेऽन्यत्प्रसीद मे ॥"[१]

× × ×

"मायामूलमिदं सर्वं पुत्रदारादिबन्धनम् ।"[२]

इसी प्रकार तुलसी का सुग्रीव भी कहता है :

"सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥
ये सब राम भगति के बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक ॥
सत्रु मित्र सुख-दुख जग माहीं । मायाकृत परमारथ नाहीं ॥"[३]

वह यहाँ तक कहता है कि अब मुझे बालि को जीतने वाला अथवा स्त्री आदि का सुख प्राप्त करने की इच्छा नहीं है । मैं भवबंधन छुड़ाने वाली आपकी सतत भक्ति चाहता हूँ :

"न काङ्क्षे विजयं राम न च दारसुखादिकम् ।
भक्तिमेव सदा काङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ॥"[४]

अध्यात्म रामायण के उक्त भावों से अनुप्रेरित मानसकार भी कहता है :

"अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिनु राती ॥"[५]

वस्तुतः सुग्रीव का यह वैराग्य परिस्थितिजन्य क्षणिक ही था, क्योंकि आगे हम उसे विषय-भोगों में लिप्त पाते हैं । यही कारण है कि राम उसकी इन बातों पर अधिक ध्यान नहीं देते और मुस्कुराकर उसे स्त्री एवं राज्य-प्राप्ति का ही आश्वासन देते हैं ।[६]

वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण की भाँति तुलसी के मानस में भी सुग्रीव का मद्यप एवं विलासी रूप उसके व्यक्तित्व को कलंकित किये हुए दृष्टिगोचर होता है ।

---

१. अध्यात्म०, ४/७८ ।

२. अध्यात्म० ४/१/६० ।

३. मानस, ४/७/८-९

४. अध्यात्म०, ४/१/८५

५. मानस, ४/७/११

६. (अ) अध्यात्म०, ४/२/१-३
(ब) तदेव, ४/७/११-१२

मित्रता की शपथ लेने के उपरान्त वह अपने प्राण का विस्मरण कर बैठता है तथा विलासी जीवन व्यतीत करता है। उक्त दुर्गुणों के कारण ही वह राम और लक्ष्मण के क्रोध का भाजन बनता है।[१]

केशवकृत रामचन्द्रिका में भी राम लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को संदेश भेजते हैं कि कामान्ध होकर सीता की खोज न करने के कारण तुम अपने शरीर की कुशल न समझो, तुम्हें भी बालि के पथ का पथिक बनना पड़ेगा।[२] वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित मानस और रामचन्द्रिका में भी लक्ष्मण सुग्रीव को मद्यपान किये हुए स्त्रियों के मध्य अस्त-व्यस्त स्थिति में देखकर अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं।[३]

सुग्रीव अपने इस दुष्कृत्य एवं कामुक रूप को राम के समक्ष स्वीकार करता एवं लज्जावनत होता है :

"विषय वस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम समान रघुराया॥"[४]

मानस के उपर्युक्त भाव भर्तृहरि शतक के निम्नलिखित स्थल से अनुप्रेरित हैं :

"कान्ता कटाक्ष विशिखा न लुलन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोप कृशानु तापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभशैलोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥"[५]

स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाण जिसको नहीं बेधते, कोपाग्नि का ताप जिसके चित्त को नहीं जलाता, सम्पूर्ण विषय जिसे लोभपाश में नहीं खींचते, वह धीर पुरुष त्रैलोक्य में जय पाता है।

---

१. (अ) वा० रा०, ४/३०/८१-८२
(ब) अध्यात्म०, ४/५/७-१२
(स) मानस, ४/१८/२-३, ४/१९

२. रा० चं०, १३/२८

३. (अ) वा० रा०, ४/३१/२२, ३८, ४/३३/४३, ५४-५५
(ब) अध्यात्म०, ४/५/४८-५३
(स) मानस, ४/१९/४
(द) रा० चं०, १३-२९

४. मानस, ४/२१/२-३

५. भर्तृहरि शतक

सुग्रीव बालि के भय से अत्यन्त भीरु एवं शंकालु प्रकृति का हो गया था। वह सदैव भागा-भागा फिरता रहा। यहाँ तक कि राम को ऋष्यमूक पर आते देख सशंकित हो उठा। वह अपनी उक्त प्रकृति के विषय में राम से कहता भी है कि "रघुनन्दन ! आपको भी देखकर मेरे मन में ऐसा सन्देह हुआ था, अतएव भयग्रस्त होने के कारण मैं पहले आपके पास न आ सका, क्योंकि भय का अवसर आने पर प्रायः सभी डर जाते हैं :

"शङ्कया त्वेतयाहं च दृष्ट्वा त्वामपि राघव।
नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति॥"[१]

इसी प्रकार मानस में भी वह कहता है कि मैं उसके भय से सभी लोकों में व्यथित हो फिरता रहा। वह यहाँ शापवश आने में असमर्थ है, तब भी मेरे मन में भय समाया रहता है :

"ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥
इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥"[२]

यही नहीं, वाल्मीकि रामायण से अनुप्रेरित मानस और साकेत में भीरु प्रकृति सुग्रीव लक्ष्मण के क्रोध से भयाकुल हो उठता है तथा आत्मरक्षा हेतु उनके पास पहले तारा को भेजता है।[३]

अंगद अपने चाचा के कार्य और व्यवहार के प्रति संतुष्ट नहीं है।[४] सीता-अन्वेषण की एक मास की अवधि समाप्त हो जाने पर अंगद का सुग्रीव के प्रति व्यक्त किया गया उद्गार उसके क्रूर एवं कामी रूप का चित्र प्रस्तुत करता है। वह सुग्रीव के विषय में कहता है :

---

१. वा० रा०, ४/८/३५
२. मानस, ४६/६-७
३. (अ) वा० रा०, ४/३३/३६
(ब) मानस, ४/२०/२
(स) साकेत, सर्ग ११, पृ० ४३०
४. वा० रा०, ४/५३/१७-१९

"भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम् ।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकारोति जुगुप्सितः ।।"[१]

× × ×

"उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपादयेत् ।
शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात् ।।"[२]

"जिसने अपने बड़े भाई के जीते-जी उनकी प्यारी पत्नी को, जो धर्मतः उसकी माता के समान थी, कुत्सित भावना से ग्रहण कर लिया था, वह धर्म को जानता है— यह कैसे कहा जा सकता है । सुग्रीव शठ, क्रूर और निर्दयी है । वह राज्य के लिए मुझे गुप्त रूप से दंड देगा अथवा सदा के लिए मुझे बंधन में डाल देगा ।"

इसी प्रकार मानस में भी अंगद कहता है कि यहाँ हम लोग सीता की खोज में असफल रहे, वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे । वे तो पिता के वध के उपरान्त ही मुझे मार डालते परन्तु राम ने मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीव का कोई निहोरा नहीं है :

"इहाँ न सुधि सीता कै पाई । उहाँ गये मारिहि कपिराई ।।
पिता बधे पर मारत मोहीं । राखा राम निहोर न ओही ।।"[३]

तुलसी को भी सुग्रीव का विषयी रूप अखरा है । इसे और उन्होंने मानस के प्रारम्भ में ही संकेत कर दिया है :

"जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि वाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ।।"[४]

सुग्रीव एक कठोर शासक एवं सफल सेनापति है । वानर-सेना को पन्द्रह दिन के भीतर ही एकत्र हो जाने का आदेश देते हुए चेतावनी देता है कि जो वानर पन्द्रह दिनों के बाद यहाँ पहुँचेगा उसे मृत्यु-दंड दिया जायेगा । इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए :

"त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः ।
तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा ।।"[५]

---

१. वा० रा०, ४/५५/३ ।
२. तदेव, ४/५५/१० ।
३. मानस, ४/२६/२-३ ।
४. तदेव, १/२६/४ ।
५. वा० रा०, ४/२६/३२ ।

इसी से अनुप्रेरित मानस का सुग्रीव भी आदेश देता है :

"कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ताकर बध होई ।।"[१]

वह वानरों को एक मास की अवधि के उपरान्त सीता-समाचार लिये बिना लौटने पर मृत्यु-दंड की घोषणा भी करता है।[२]

इसके अतिरिक्त सुग्रीव में अनेक गुण भी विद्यमान हैं। भरत इनके गुणों की प्रशंसा करते हुए वाल्मीकि रामायण में कहते हैं कि "सुग्रीव! तुम हम चारों के पाँचवें भाई हो; क्योंकि स्नेहपूर्वक उपकार करने से ही कोई भी मित्र होता है। अपकार करना ही शत्रु का लक्षण है :

"त्वमस्माकं चतुर्णो वे भ्राता सुग्रीव पञ्चमः।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ।।"[३]

राम ने भी सुग्रीव को एक सच्चा मित्र कह कर उनकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। रावण-विजयोपरान्त वे उससे कहते हैं कि "सखे सुग्रीव! एक हितैषी एवं प्रेमी मित्र को जो काम करना चाहिए वह सब तुमने पूर्ण कर दिखाया, क्योंकि तुम अधर्म से डरते हो :

"यत् तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
कृतं सुग्रीव तत् सर्वं भवताधर्मभीरुणा ।।"[४]

तुलसी के मानस में तो राम कपिपति सुग्रीव ही नहीं अपितु उनके सभी सैनिकों के प्रति भी कृतज्ञ हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारे ही बल से मैंने रावण पर विजय प्राप्त की तथा विभीषण को राज्यतिलक दिया :

"तुम्हरे बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक विभीषन कहुँ पुनि सार्‌यो ।।"[५]

अयोध्या लौटकर गुरु वसिष्ठ से भी यही बात कहते हैं :

---

१. मानस, ४/१८/३।
२. (अ) वा० रा०, ४/३७/१२।
(ब) मानस, ४/२२/४।
३. वा० रा०, ६/१२७/४७।
४. तदेव ६/११२/१५।
५. मानस, ६/११८/२।

"ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहु ते मोहिं अधिक पिआरे॥"[१]

बिदा के समय वे सर्वप्रथम सखा सुग्रीव को भरत द्वारा वस्त्राभूषण पहनवाते हैं :

"तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥"[२]

सुग्रीव को भी मैत्री-धर्म के निर्वाह का पूर्वज्ञान है। वाल्मीकि रामायण में रावण को ललकारते हुए कहता है कि राक्षस ! मैं लोकनायक राम का सखा और दास हूँ। राम के तेज से आज तू मेरे हाथ से छूट नहीं सकेगा :

"लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य एवं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा॥"[३]

यही नहीं, जब भेदनीति का आश्रय लेकर रावण दूत द्वारा[४] उसे फोड़कर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करता है तब वह उसे उत्तर भेजता है कि "वध के योग्य दशानन ! तुम न तो मेरे मित्र हो, न दया के पात्र हो, न मेरे उपकारी हो, न मेरे प्रिय व्यक्तियों में से ही कोई हो। तुम राम के शत्रु हो, इस कारण अपने सगे-सम्बन्धियों सहित बालि की भाँति मेरे बध्य हो" :

"न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो।
न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि॥
अरिश्च रामस्य सहानुबन्ध—
स्ततोऽसि बालीव बधार्ह बध्यः॥"[५]

सुग्रीव एक कुशल नीतिज्ञ एवं परामर्शदाता है। विभीषण के आने पर वह राम को समयानुकूल मंत्रणा देता है कि यह निशाचर रावण के कहने पर मन में कुटिल विचार लेकर यहाँ आया है। जब हम लोग इस पर विश्वास करके इसकी ओर से निश्चिन्त हो जाएँगे, उस समय यह आप पर, मुझ पर तथा लक्ष्मण पर

१. वा० रा०, ७/११/१-२।

२. तदेव, ७/१६/३।

३. तदेव, ६/४०/१०।

४. तदेव, ६/२०/१०-११।

५. तदेव ६/२०/२३

भी प्रहार कर सकता है। इसलिए महाबाहो ! क्रूर रावण के भाई इस विभीषण का मंत्रियों सहित वध कर देना ही उचित है।"[1]

इसी प्रकार तुलसी के मानस में भी वह राम से कहता है कि राक्षसी माया जानी नहीं जा सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हमारा भेद लेने यहाँ आया है; अतएव मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे कैद कर लिया जाए :

"............... ....। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाय निशाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा ॥"[2]

इस प्रकार सुग्रीव में अनेक चारित्रिक दुर्बलताएँ होते हुए भी उसमें एक कर्त्तव्यनिष्ठ मित्र के गुणों का अभाव नहीं है।

अंगद

राम-काव्य-परम्परा में अंगद अपने पराक्रम, प्रत्युत्पन्नमति एवं वाक्पटुता के कारण प्रसिद्ध रहे हैं।

बाल्यावस्था में ही पिता बालि के वध के कारण उसमें राम तथा सुग्रीव के प्रति प्रतिहिंसा का भाव जागृत हो जाता है। हनुमन्नाटक में अंगद दो स्थलों पर राम के प्रति प्रतिशोध की भावना से युक्त दिखाई पड़ता है—एक तो जिस समय राम उसे दूत बनाकर लंका भेजते हैं उस समय वह मन ही मन सोचता है—"यदि इस अवसर पर मैं अपने पितृघाती राम का वध कर डालता हूँ तो उचित न होगा और यदि नहीं मारता हूँ तो पिता का उपस्थित कार्य पूरा हो जाएगा। ये रावण को निश्चित रूप से मारेंगे उससे इनका और पिता बालि दोनों का ही कार्य पूर्ण होगा, क्योंकि रावण दोनों का शत्रु है। सभी वानरों सहित राम का वध करने के लिए तो मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ।"[3] युद्धोपरान्त भी अंगद पितृहन्ता राम से क्रुद्ध होकर कहता है, "भगवन् ! आपने जो-जो आदेश मुझे दिये मैंने पालन किया। यद्यपि आप त्रिलोकी के स्वामी हैं तथापि मैं अपने पिता का वैर-शोधन कदापि नहीं भूल सकता।......आप अपने आज्ञानुवर्ती लक्ष्मण, सुग्रीव, पवनकुमार आदि वानर-वीरों के साथ रण-भूमि में उतरिए। आज मैं अपने पिता का बदला लेने के लिए अकेला ही युद्ध करके आपको मार डालूँगा।"[4]

---

१. वा० रा०, ६/१८/१८-१९
२. मानस, ५/४३/३-४
३. हनुमन्नाटक, ८/३
४. तदेव, १४/७२-७३

हनुमन्नाटक के उक्त स्थल से केशव ने प्रेरणा ग्रहण की है। रामचन्द्रिका में भी अंगद राम को युद्ध के लिए ललकारता हुआ कहता है कि "वानर वीरो! राक्षसों एवं भरत-लक्ष्मण सहित समस्त रघुवंशी वीरों सहित आपको युद्ध के लिए ललकारता हूँ। आप मुझसे चाहे एक-एक करके अथवा अनेक वीर मिलकर युद्ध करें, तभी मैं अपने पिता को तिलांजलि देकर ऋणमुक्त हो सकूँगा।"[१]

इसके विपरीत तुलसी का अंगद प्रारम्भ में ही पिता बालि के अनुरोध पर राम द्वारा शरण में ले लिया जाता है; अतएव उसके विरोध या प्रतिशोध का प्रश्न ही नहीं उठता।[२] वह सदैव के लिए राम का निष्ठावान एवं अनन्य भक्त बन जाता है। यहाँ तक कि उस पर रावण की भेदनीति भी काम नहीं करती। हनुमन्नाटक की भाँति वह मानस में भी उसे धिक्कारता है कि जिसने तुम्हारे पिता का वध किया तू उसी का दूत बनकर आया है! तेरा यह कार्य वीरोचित नहीं है।[३] हनुमन्नाटक की भाँति रामचन्द्रिका में भी वह अंगद को धिक्कारता हुआ कहता है कि, जो पुत्र अपने पिता के वैरी से बदला नहीं लेता वह जीते-जी मुर्दा के समान है।[४] हनुमन्नाटक

---

१. "देव ही नरदेव वानर नैऋतादिक धीर हौ।
मर्त लक्ष्मण आदि दै रघुवंश के सब वीर हौं॥
आजु मो सन युद्ध माँड़हुँ एक-एक अनेक कै।
बाप को तज हौं तिलोदक दीह देहुँ विवेक कै॥

—रा० चं, २६/३४

२. "यह तनय मम सम विनय, बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह, आपन दास अंगद कीजिए॥"

—मानस, ४/१०/छंद २

३. (अ) "धिग्धिगङ्गद मानेन येन ते निहतः पिता।
निर्भाना वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतस्त्वमागतः॥"

—हनु०, ८/२६

(ब) "अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंश अनल कुलघालक॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥"

—मानस, ६/२१/३

४. "जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकाश।
तासों जीवत ही मर्‌यो, लोग कहैं तजि आस॥"

—रा० चं०, १६/१६

की भाँति मानस और रामचन्द्रिका के अंगद पर रावण की भेदनीति सफल नहीं होती ।[1] मानस का अंगद तो राम की चरण-सेवा में सदैव निमग्न है[2] एवं उनसे अपृथक रहना चाहता है ।[3] उसके भी मन में सुग्रीव के प्रति रोष है । वाल्मीकि रामायण में उसकी विद्रोह की भावना इतनी प्रबल हो उठती है कि वह सुग्रीव को राजच्युत करके स्वयं एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता है ।[4] यही नहीं, वह चाचा सुग्रीव को अपना जन्मजात शत्रु मानता है । सीतान्वेषण के समय अत्यन्त क्षुब्ध होकर वह आमरण अनशन को प्रस्तुत होता है ।[5] इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी सुग्रीव से सशंकित अंगद अत्यन्त क्षुब्ध एवं निराश हो उठता है,[6] परन्तु हनुमान अपने नीतिकौशल से वानरवाहिनी में व्याप्त विघटन तथा अंगद के क्षोभ का निवारण करते हैं ।[7]

जाम्बवान भी राम का महत्व बताकर उनके मनोभावों के परिवर्तन में सहायक सिद्ध होते हैं ।[8]

इसी प्रकार रामचरितमानस में भी अंगद के भाव सुग्रीव के प्रति शुद्ध नहीं हैं । उसे, उसके प्रति क्षोभ एवं आशंका है । हाँ, यह अवश्य है कि यहाँ उसे राम पर पूर्ण विश्वास है । वह स्वीकार भी करता है कि पिता के वध होने पर सुग्रीव मुझे अवश्य मार डालता, केवल राम ने ही मेरी रक्षा की है । सुग्रीव का कोई निहोरा नहीं ।[9]

---

१. (अ) मानस, ६/२१/५
   (ब) रा० चं०, १६/१६
२. मानस, ६/११/७
३. तदेव, ७/१७ से १६/५ तक
४. वा० रा०, ४/५३/२२-२४, ४/५४/१
५. तदेव, ४/५३/७१६, ४/५५/१-२३
६. अध्यात्म०, ४/७/२-१५
७. वा० रा०, ४/५४/१-२२
८ तदेव, ४/६५/२१-२७
९. "पिता बधे पर भारत मोही । राखा राम निहोर न ओही ।।
   पुनि-पुनि अंगद कह सब पाहीं । मरन भयउ कहु संसय नाहीं ।।"
   —मानस, ४/२६/३

अंगद अपरिमित शक्ति से सम्पन्न है। दृढ़ता, स्थिरता के अर्थ में 'अंगद के पाँव' आज एक मुहावरा बन गया है। वाल्मीकि रामायण की भाँति मानस में भी वह समुद्र लाँघ जाने में अपने को सक्षम बताता है। हाँ, लौटती बार उसे कुछ संशय अवश्य है।[१] जाम्बवान को उसके इस कथन पर पूर्ण विश्वास है, क्योंकि वे कहते हैं :

"ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यक्षसत्तमः ॥[२]

"रीछों एवं वानरों में श्रेष्ठ युवराज तुम्हारी शक्ति से हम लोग भलीभाँति परिचित हैं।" इसी प्रकार मानस के जाम्बवान भी उसे सब प्रकार से योग्य एवं समर्थ बताते हैं।[३] राम भी उसे बल, बुद्धि एवं गुणों का धाम कहकर दौत्कर्म के लिए लंका भेजते हैं। वस्तुतः वह उनकी दृष्टि में परम चतुर है।[४] वाल्मीकि ने अंगद के अद्भुत युद्धकौशल एवं पराक्रम का अत्यन्त लोमहर्षक वर्णन किया है। रणक्षेत्र में वह वज्रदंष्ट् एवं नरान्तक सदृश दुर्द्धर्ष योद्धाओं को मौत के घाट उतारता है।[५] वस्तुतः वह समस्त वीरों द्वारा प्रसंशित एक कुशल तथा विश्वसनीय सेनानायक है।[६] इसी प्रकार मानस का अंगद भी एक योग्य एवं चतुर सेनापति है।[७] उसका पराक्रम अतुलनीय है। वह बात-बात में रावण के पुत्र को भूमि पर पटक कर उसे मार डालता तथा सभी लंका-निवासियों को भयत्रस्त कर देता है।[८]

वह दौत्यकर्म में अत्यन्त कुशल तथा वाक्पटु एवं विवेकवान है। इसकी पुष्टि हनुमन्नाटक एवं उससे प्रभावित मानस के अंगद-रावण-संवाद से भलीभाँति हो जाती है। हनुमन्नाटक में अंगद रावण को अपने स्वामी का परिचय अत्यन्त चतुरता से देता

---

१. (अ) वा० रा०, ४/६५/१९।
   (ब) मानस, ४/३०/१।
२. वा० रा०, ४/६५/२०।
३. 'जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही करनायक।"
   —मानस, ४/३०/१
४. "बालि तनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥
   बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥"
   —तदेव, ६/१७/३-४
५. वा० रा०, ६/५३/२७-३२, ६/५४/१६-३५, ६/७०/१२।
६. तदेव, ४/६५/२२।
७. मानस, ४/३०/१।
८. तदेव ४/६५/२२

हुआ कहता है कि जिस कपिश्रेष्ठ बालि ने तुझे अपनी बगल में दबाकर सातो समुद्र के किनारे घूमते संध्यावन्दन किया था उसे राम ने एक ही वाण से यमपुर भेज दिया था। अतः लंकेश, तुम भी अभिमान का परित्याग कर दो।[१] यही बात तुलसीदास का अंगद भी कहता हुआ रावण की भर्त्सना करता है :

"सो नर क्यों दसकंध, बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहु लोचन अंध, धिक तव जन्म कुजाति जड़॥"[२]

हनुमन्नाटक की भाँति रामचन्द्रिका में भी अहंकारी रावण को उसको हीनत्व का ज्ञान कराता हुआ अंगद कहता है कि "मैं उसी बालि का पुत्र हूँ जो तुम्हें काँख में दबाकर सात समुद्र नहाता फिरा था।"[३]

हनुमन्नाटक में जब रावण कहता है कि मैं धर्मप्रिय होने के कारण तुझ कटुभाषी को नहीं मारता हूँ तब अंगद कहता है कि "रे दशमुख ! जो तुम्हारी धर्मशीलता परस्त्री हरण करने में न देखी गई वह अब दूत की रक्षा करने में देखी जा रही है।"[४] मानसकार ने हनुमन्नाटक के उक्त भावों की पुनरावृत्ति मात्र की है।[५] हनुमन्नाटक में अंगद क्रोध में भरकर रावण से कहता है कि तुझे अभी मार डालता परन्तु तीन कारणों से छोड़ रहा हूँ। एक तो यह कि तू मेरे पिता की काँख में रहा है; दूसरे यह कि मैं पैरों से मार-मार कर गेंद की तरह तुम्हारे सिरों से खेला था और तीसरे यह कि सभी प्राणियों को उनके कर्त्तव्य की शिक्षा प्रदान करने वाले राम अपने दमकते हुए अस्त्रों से तुम्हारे सिर काटकर दिग्पालों को बलि देना चाहते हैं।[६]

---

१ हनुमन्नाटक, ८/१४

२. तदेव ४/३३-क

३ "कौन के सुत ? बालि के। वह कौन बालि, न जानिये ?
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये॥" —रा० चं०, १६/६

४. हनुमन्नाटक, ८/२१-२२

५. "कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत परत्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मव्रत धारी॥"
—मानस, ६/२२/३

६. हनुमन्नाटक, ८/४६।

कुछ इसी प्रकार की व्यंग्योक्ति एवं वाक्चातुरी मानस के अंगद में भी देखने को मिलती है।[१] रामचन्द्रिका के अंगद में भी ऐसे ही वाक्चातुर्य के दर्शन होते हैं। वह रावण से कहता है कि जो लंका हनुमान द्वारा जला डाली गई तथा सेतु-बन्ध के समय जो नल द्वारा समुद्र के जल से बहा दी गई, उसे मैं तुझ समेत अभी उखाड़ कर उलट सकता हूँ, किन्तु मैं डरता हूँ कि फिर बेचारा विभीषण कहाँ राज्य करेगा।[२] इस प्रकार अंगद में बल, बुद्धि, वाक्चातुर्य, स्वामिभक्ति, दूरदर्शिता आदि सभी गुण एक साथ विद्यमान हैं।

---

१. (अ) "बालि विमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी।।

× × ×

कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।।"

—मानस, ६/२४/६-८

(ब) "तव सोनित की प्यास, तृषित राम सायक निकर।
तजउँ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निसिचर अधम।।"

– मानस, ६/३३-ख

२. "लंक लाय दियो बली हनुमन्त संतन गाइयो।
सिंधु बाँधन सोचिकै नल छीर छींट बहाइयो।।
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं तेहि ते डरौं।।"

—रा० चं० १७/३३

नवम् अध्याय

अन्य स्त्री पात्र

कौसल्या

अध्यात्म रामायण के कतिपय स्थलों पर अदिति के कौशल्या रूप में अवतरित होने का उल्लेख मिलता है।[१] वाल्मीकि रामायण में भी कश्यप एवं उनकी पत्नी अदिति के एक सहस्र दिव्य वर्षों के तप से प्रसन्न होकर हरि उनके पुत्र रूप में अवतरित होने का वर देते हैं।[२] ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराण में यद्यपि कश्यप-अदिति को वसुदेव-देवकी से भिन्न नहीं माना गया है, किन्तु वहाँ उनका दशरथ-कौशल्या होने का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।[३]

पद्मपुराण के अनुसार एक हजार वर्षों के घोर तप के उपरान्त विष्णु स्वयं मनु और शतरूपा को तीन जन्मों तक उनके पुत्र रूप में अवतरित होने का वर देते हैं। वहाँ मनु-शतरूपा ही क्रमशः दशरथ-कौशल्या, वसुदेव-देवकी एवं हरिगुप्त-देवप्रभा (कलियुग में) रूप में जन्म धारण करते हैं।[४]

विष्णुपुराण[५] और भागवत पुराण[६] में भी मनु-शतरूपा की तपस्या एवं वर-प्राप्ति का वृत्तान्त मिलता है।

---

१. "त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः।
कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी॥"

—अध्यात्म०, १/४/१४, १/२/२५

२. वा० रा० १/२९/१०-१७ (गीता प्रेस)।

३. (अ) ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खंड, अध्याय ७।
(ब) ब्रह्माण्डपुराण, २/७१/२००, २३८।
(स) मत्स्यपुराण, अध्याय ४७/९।

४. पद्मपुराण, उत्तर खंड, अध्याय २६९।

५. विष्णुपुराण, १/अध्याय ७।

६. भागवतपुराण, स्कंध ८, अध्याय १।

हिन्दी-रामकाव्य-परम्परा के मूर्धन्य ग्रंथरत्न तुलसी के मानस में कौशल्या का पूर्व जन्म में अदिति[१] एवं शतरूपा[२] होने का जो वर्णन मिलता है उसका मूल स्रोत उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों में ही विद्यमान है।

आनन्द रामायण[३] में यद्यपि कौसल्या के जन्म, विवाह एवं रावण द्वारा उनके अपहरण का विस्तृत वर्णन मिलता है, किन्तु हिन्दी-रामकथाकार उक्त वृत्तान्त से अप्रभावित ही रहे हैं।

कौसल्या में एक ममतामयी माता एवं पतिपरायणा पत्नी के गुण विशिष्ट रूप से दर्शनीय हैं। वे त्याग, विवेक, औदार्य, गांभीर्य, सरलता और सहृदयता की मूर्ति हैं।

राम को वनगमन की आज्ञा देते समय उनके मन में पुत्र-स्नेह और कर्त्तव्य-भावना का संघर्ष होता है। अन्त में उनकी कर्तव्य भावना विजयिनी होती है, यद्यपि वहाँ उनका पुत्र-स्नेह दृढ़ता एवं निमर्मता से दलित होता है।

वाल्मीकि की कौसल्या अपने पुत्र राम के राज्याभिषेक के समाचार से हर्षित होकर अनेक प्रकार के दान करती है,[४] साथ ही देवी-देवताओं से राम की श्रीवृद्धि एवं कल्याण की कामना करती हैं।[५] इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी देवराघव में तल्लीन कौसल्या को सुमित्रा राम के आगमन का समाचार देकर उनका ध्याना-कृष्ट करती है।[६] पुनश्च अपने वत्स का प्रगाढ़ आलिंगन करती एवं स्नेहपूर्वक उनका मस्तक सूँघकर धर्म, आयु, कीर्ति, कुलवृद्धि का आशीर्वाद देती है।[७] वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण की ही भाँति साकेतकार की कौसल्या भी अपने वत्स राम के मंगलमय राज्यतिलक हेतु देवार्चन में निमग्न दिखाई पड़ती है :

---

१. "कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा॥"
—मानस, १/१८७/२

२. मानस १/१४१-१५२।

३. आनन्द०, १/१/३२-७४।

४ वा० रा०, २/३/४७-४८।

५. तदेव, २/४/३०/३३।

६. अध्यात्म०, २/४/१-२।

७. (अ) वा० रा०, २/२०/२१-२३, २५।
(ब) अध्यात्म०, २/४/२-३।

"पवित्रता में पगी हुई, देवार्चन में लगी हुई ॥"[१]

इसी प्रकार रामचरित चिन्तामणि की कौसल्या भी मूर्त्तिमती गायत्री-सी हरिकीर्तन एवं ईश्वरोपासना में तल्लीन है ।[२] अपने वत्स की अनेक प्रकार से मंगल-कामना करती है ।[३]

साकेत की कौसल्या भी इसी प्रकार अक्षत, रोली एवं तिलक लगाकर पुत्र पर अपना सर्वस्व न्योछावर करती है—

"बहू ! तनिक अक्षत रोली, तिलक लगा दूँ माँ बोली ।
जियो-जियो बेटा जाओ, पूजा का प्रसाद पाओ ॥"[४]

दूसरे ही क्षण जब वह पुत्र राम के वनगमन के समाचार से अवगत होती है तो उसे मर्मान्तिक पीड़ा होती है । वाल्मीकि के अनुसार "उस अप्रिय बात को सुनकर वन में फरसे से काटी हुई शालवृक्ष की शाखा के समान कौसल्या देवी सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ीं मानो स्वर्ग से कोई देवाङ्गना भूतल पर आ गिरी हो ।"[५] यही नहीं, वह अपने द्वारा पुत्र-सुख के लिए किये गये व्रत, दान, संयम आदि को व्यर्थ समझने लगीं ।[६] अध्यात्मकार की कौसल्या भी दुःसह दुःख से मूर्च्छित हो जाती हैं ।[७]

---

१. साकेत, द्वादश सर्ग, पृ० ४५६ ।

२. "मूर्त्तिमती गायत्री-सी वे हरिकीर्तन में लगी रहीं ।
चित्रलिखी-सी बैठ ईश की, प्रेम-सुधा में पगी रहीं ॥"
—रामचरित चिन्तामणि, ६/२६, द्वितीय संस्करण ।

३. बार-बार मुख चुम्बति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयं लगाए । स्रवत प्रेम रस पयद सुहाए ॥
प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई । रंक धनद पदवी जनु पाई ॥
सादर सुन्दर बदनु निहारी । बोली मधुर बचन महतारी ॥
कहहु तात जननी बलिहारी । कबहि लगन मुद मंगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सीव सुहाई । जनन लाभ कइ अवधि अघाई ॥"
—मानस, २/५२/२-४

४. साकेत, सर्ग ४, पृ० ६५ ।

५. "सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना बने ।
पपात सहसा देवी देवतेव विवश्च्युता ॥" —वा० रा०, २/२०/३२

६. तदेव, २/२०/५२ ।

७. अध्यात्म०, २/४/७ ।

उपर्युक्त संस्कृत रामकथाकारों की भाँति मानस की कौसल्या को भी असह्य वेदना हुई। वह उसी प्रकार सूख गई है जैसे वर्षा के जल से जवासा सूख जाता है। सिंह की गर्जना से मृगी अथवा माँजा खाने से मछली की जो दयनीय दशा होती है उससे भी कहीं तीव्र किन्तु अनिवर्चनीय पीड़ा का अनुभव उस समय कौसल्या ने किया।[1] इसी प्रकार साकेतकार की कौसल्या भी शोकविमूर्च्छित हो जाती है, उसका शरीर काँप उठता है—

"काँप उठीं वे मृदुदेही, चरती घूमी या वे ही।

× × ×

आँखें भरीं, भुवन रीता, उलट गया सब मन चीता।
सीता से थामी जाकर, रहीं देखती टक लाकर॥"[2]

रामचरित उपाध्याय की कौसल्या भी कम दुखी नहीं हैं। 'हा पुत्र!' कहकर वह किसी धर्म-देवता के पतन-सदृश भूतल पर गिर कर लौटने लगती है—

"पुत्र-बचन सुन माता के उर लगी अचानक चोट बड़ी।
धर्म-देवता सी वह भू पर हा सुत कहकर लोट पड़ी॥'[3]

गोविन्द रामायण की कौसल्या तो जल के बिना मछली सदृश विह्वल हो पृथ्वी पर चक्कर खाकर गिर पड़ती है। उसके हृदय में मानो दावाग्नि लग गई हो—

"नीर बिना जिमि मीन दशा तिमि भूख पियास गई सब भागी।
झूम, झराक झरी झट बाल विशाल दवा उनके उर लागी॥'[4]

वाल्मीकि रामायण में इस आकस्मिक विपत्ति का मूल कारण वह अपने दुर्भाग्य के साथ कैकेयी,[5] भरत[6] तथा पति दशरथ[7] को मानती हैं। उसकी चिर-

---

१. "बचन विनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर कर के॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय बिबादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर-थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥"
—मानस, २/५४/१-२

२. साकेत, सर्ग ४, पृ० ६७-६८।

३. रामचरित चिन्तामणि, ६/३१, द्वितीय संस्करण।

४. गोविन्द रामायण, पृ० ६४, प्रथम संस्करण।

५. वा० रा०, '२/२१/२२।

६. तदेव, २/७५/११-१७।

७. तदेव, २/६१/२६।

संचित मूक वेदना प्रस्फुटित हो जाती है। वह पति की भर्त्सना करती हुई कहती है कि, "पति की ओर से मुझे सदा तिरस्कार अथवा कड़ी फटकार ही मिली है, कभी प्यार और सम्मान नहीं प्राप्त हुआ है। मैं कैकेयी की दासियों के बराबर अथवा उनसे भी गई-बीती समझी जाती हूँ"।[१]

कौसल्या का उक्त कथन मानवीय, सामयिक एवं अत्यन्त स्वाभाविक है, परन्तु तुलसी ने कौसल्या को आदर्शवादिता के बन्धन में बाँधकर उक्त स्वाभाविकता एवं मानवीयता खो दी है। धर्म एवं स्नेह की द्वन्द्वात्मक स्थिति में उसकी बुद्धि कुंठित हो जाती है, परन्तु अन्त में "पितु आयसु सब धर्मक टीका" कह कर अपने पतिव्रत धर्म का पालन करना ही वह श्रेयस्कर समझती है।[२]

इसी प्रकार साकेत की कौसल्या अनुताप एवं आक्रोश के स्थान पर पति से राम के वन न जाने की भिक्षा माँगना चाहती हैं।[३] हाँ, वाल्मीकि की भाँति यहाँ भी उसे कैकेयी की दुर्नीति के प्रति कुछ आशंका अवश्य है।[४] यही नहीं, कौसल्या के स्थान पर लक्ष्मण-जननी सुमित्रा की क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। वह क्रांति का स्वर भरती हुई कहती है :

---

१. "अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता।
परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवावरा॥"—वा० रा०, २/२०/४२

२. "राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधि गति बाम सदा सब काहू॥"
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछून्दरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु विरोधू॥
× × ×
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥"
—मानस, २/५५/१-४

३. "मेरा राम न वन जावे,
यहीं कहीं रहने पावे।
उनके पैर पड़ूँगी मैं,
कह कर यहीं अड़ूँगी मैं
भरत-राज्य की जड़ न हिले।
मुझे राम की भीख मिले॥" —साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० १००

४. "समझ गई मैं समझ गई, कैकेयी की नीति नई।
× × ×
मँझली बहन राज्य लेवें, उसे भरत को दे देवें।"—साकेत, सर्ग ४, पृ० १००

"राघव ! शान्त रहोगे तुम ? क्या अन्याय सहोगे तुम ?
मैं न सहूँगी लक्ष्मण ! तू नीरव क्यों है इस क्षण तू ?"[१]

अस्तु इस प्रसंग में तुलसी अथवा मैथिलीशरण गुप्त वाल्मीकि से अप्रभावित ही कहे जा सकते हैं ।

आदिकवि एवं अध्यात्मकार की कौसल्या पुत्र राम के साथ वनगमन के लिए हठ करती है । जिस प्रकार गौ अपने अल्पवयस्क बछड़े के पीछे-पीछे चली जाती है, उसी प्रकार वह भी अपने वत्स राम के पीछे-पीछे वन जाना चाहती है ।[२] इसी प्रकार केशव की कौसल्या भी राम के साथ वन जाने के लिए दृढ़संकल्प है—

"मोहि चलौ वन संग लिए, पुत्र तुम्हें हम देखि जिए ।
औधपुरी महँ गाज परै, कै अब राज्य भरत्थ करैं ।।"[३]

यद्यपि तुलसी की कौसल्या को भी पुत्र के साथ वन जाने की इच्छा है किन्तु उसे कर्त्तव्य एवं धर्म का आग्रह वाधित करता है :

"जौ सुत कहौं संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ।।"[४]

कौसल्या का पुत्रवधू के प्रति ममत्व एवं स्नेह अगाध है । वाल्मीकि रामायण में वे वनगमन के समय सीता को पातिव्रत धर्म का उपदेश देती हैं,[५] किन्तु मानस की कौसल्या प्रारम्भ में सीता को वन जाने से रोकने का ही प्रयत्न करती है[६] और फिर अन्त में अनेक प्रकार की शिक्षाएँ देकर विदा करती हैं ।[७] साकेत की कौसल्या भी पुत्रवधू को घर पर ही रोकना चाहती है :

---

१. साकेत, सर्ग ४, पृ० १०२

२. (अ) कथंहि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि ।।" —वा० रा०, २/२४/९

(ब) यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्नकुत्रचित् ।
तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणात्प्रियं सुतम् ।।
—अध्यात्म०, २/४/९

३. रामचन्द्रिका, ९/१०

४. मानस, २/५६/३

५. वा० रा०, २/३९/२०-२५

६. मानस, २/५८-६०

७. तदेव, २/६९

'रोको, रोको राम ! इसे'[१]

वाल्मीकि का कौसल्या अपने पुत्र को निर्वासित करने वाली कैकेयी के प्रति उदार नहीं है। उसमें एक सपत्नी की अन्तर्जलन पूर्णरूप से विद्यमान है।[२]

अध्यात्म रामायण में उसकी अनुदारता इतनी स्पष्ट नहीं है। हाँ, एक सपत्नी की खीझ या ईर्ष्याभाव का कुछ आभास उसके इस कथन से अवश्य हो जाता है :

"कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छतु।
त्वया किमपराद्ध हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ।।'[३]

"कैकेयी को वर देकर चाहे राजा अपना सर्वस्व दे डालें, किन्तु तुमने उनका अथवा कैकेयी का क्या बिगाड़ा है।" अध्यात्म रामायण की कौसल्या का उक्त ईर्ष्या-भाव साकेत में भी प्रतिविम्बित हुआ है। यद्यपि उसका कथन तो यही है कि मुझे राज्यलिप्सा नहीं है, न मेरे मन में कैकेयी के प्रति डाह है;[४] किन्तु उसके इसी कथन में उसकी खीझ, भुँझलाहट या ईर्ष्याभाव अन्तर्निहित है क्योंकि उसे कैकेयी की दुर्नीति का पूर्ण ज्ञान है :

"समझ गई, मैं समझ गई,
कैकेयी की नीति नई।"[५]

गोविन्द रामायण की कौसल्या को भी अपनी कैकेयी आदि सौतों के प्रति ईर्ष्याभाव तो है ही अन्यथा वह उन्हें देखकर भौंह चढ़ाकर क्यों चिढ़ाती या गर्व करती :

"कैंकइ आदिक सौतिन को लखि, भौंह चढ़ाइ सदा गरबाती ।।"[६]

तुलसी की कौसल्या में वाल्मीकि की कौसल्या का सपत्नी के प्रति आक्रोश एवं ईर्ष्याभाव तथा अध्यात्मकार की कौसल्या की खीझ एवं भुँझलाहट लेशमात्र को नहीं है। उसमें सपत्नी के प्रति उदारता एवं सौहार्द्र है। हाँ, राम के वनगमन

---

१. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० ११५
२. वा० रा०, २/२०/४२
३. अध्यात्म रामायण, २/४/११
४. "मुझे राज्य की चाह नहीं।
 उस पर कुछ भी डाह नहीं।' —साकेत, सर्ग ४, पृ० १००
५. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० १००
६. गोविन्द रामायण, पृ० ६४, प्रथम संस्करण

की असह्य वेदना एवं दुर्भाग्य की ग्लानि उसे अवश्य है। वह पुत्र को वनगमन से रोकने के लिए पति की आज्ञा का निषेध कर सकती है, किन्तु सपत्नी की आज्ञा का उल्लंघन उसके शील एवं धर्म में नहीं है।[1]

इस दिशा में तुलसी आदिकवि से प्रभावित नहीं हैं। वाल्मीकि की कौसल्या जहाँ अधिक मानवीय एवं यथार्थ रूप में चित्रित हुई है वहाँ तुलसी की कौसल्या में उदारता, विशालहृदयता एवं आदर्श विशेष रूप से दृष्टव्य है।

वाल्मीकि रामायण में मातुलगृह से लौटने पर भरत के प्रति उसका सन्देह एवं आक्रोश एक मानवीय धरातल पर स्वाभाविक रूप में चित्रित हुआ है। उसके असहनशील एवं कटुभाषी रूप का सहज ज्ञान भरत के प्रति कहे गये इस कथन से हो जाता है :

····"बेटा ! तुम राज्य चाहते थे न ? सो यह निष्कंटक राज्य तुम्हें प्राप्त हो गया, किन्तु खेद यही है कि कैकेयी ने शीघ्रतावश बड़े क्रूरकर्म के द्वारा उसे प्राप्त किया है—

"इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तम् कण्टकम्।
सम्प्राप्तं वत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा।।"[2]

वाल्मीकि की ही भाँति रामचरित चिन्तामणि की कौसल्या के मन में भी भरत के प्रति तीव्र आक्रोश है। वह निर्मम होकर अत्यन्त कटुशब्दों में कहती है :

"छल से छलछद्म ! हा वृथा, बनवासी राम को बना।
सुख से धन-धान्य-पूरिता, तुम भोगो गतकण्टका मही।।
पर का अधिकार छीनना, यह कैसा अपराध घोर है।
उसका विधिवत् जवाब तो, यम देगा तुमको परत्र में।।"[3]

अध्यात्म रामायण की कौसल्या के मन में भरत के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है। वह भरत का आलिंगन करके अत्यन्त दैन्य-भाव से कहती है—"बेटा ! तुम्हारे

---

१. "जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।"
—मानस, २/५६/१

२. वा० रा०, २/७५/११।

३. रामचरित चिन्तामणि, ८/६२-६३, द्वितीय संस्करण।

बाहर चले जाने से जो-जो अनर्थ हुए हैं, अपनी माता की वे सब करतूतें तुमने उसके मुँह से सुन ही ली होगी।"[१]

वाल्मीकि का अनुसरण न करते हुए अध्यात्मकार की भाँति तुलसी की कौसल्या के मन में भी भरत के प्रति किसी प्रकार की आशंका या दुर्भावना नहीं है। सासुवदना माता भरत को गोद में बैठाकर सान्त्वना देती और सारा दोष काल, कर्म एवं विधि की गति को ही देती हैं। अस्तु, यहाँ मानसकार अध्यात्मकार से अनुप्रेरित दिखाई पड़ता है।[२] इसी प्रकार साकेतकार की कौसल्या की दृष्टि में भरत सर्वथा निष्पाप एवं दुरभिसन्धि से परे हैं :

"झूठ यह सब झूठ, तू निष्पाप,
सावित्री तेरी यहाँ मैं आप।
भरत में अभिसन्धि का हो गंध,
तो तुझे निज राम की सौगन्ध।"[३]

इसी प्रकार साकेत-सन्त की कौसल्या भी भरत का आलिंगन करके उन्हें निर्मलशील का अक्षय कोष एवं निष्कलंक बताती है।[४]

मानस में अपने पुत्र को निर्वासित करने वाली कैकेयी के पुत्र भरत के प्रति उनका लगाव वात्सल्य दृष्टव्य है। वे राम और भरत में कोई अन्तर नहीं मानतीं।

---

१. "आलिङ्गय भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी।
कृशातिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत्॥
पुत्र त्वीय गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम्।
उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वं त्वया ते मातृचेष्टितम्॥"
—अध्यात्म०, २/७/८३-८४

२. "माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछि मृदु बचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥
—मानस, २/२६५/२-३

३. साकेत, सप्तम सर्ग, पृ० २०५।

४. "खींचा उनको ले गोद हृदय लिपटाया,
बोली तुमको पा पुनः राम को पाया।
बेटा! तुम निर्मल-शील-कोष अक्षय हो,
तुम निष्कलंक हो पूर्ण, तुम्हारी जय हो।"
—साकेत-संत, ३/५१, प्रथम संस्करण

शोकविह्वल भरत को आश्वस्त करते समय वात्सल्य भाव के अतिरेक के कारण उनके स्तनों से पय स्रवित होने लगता है ।[१]

वह एक पतिपरायणा पत्नी है । अपने पुत्र को वनबास देने वाले पति की सेवा में वह आद्यन्त निमग्न रहती है । दशरथ अन्तिम समय कौसल्या के ही महल में निवास करते हैं । उन्हें उसकी पति-भक्ति का पूर्ण ज्ञान है । वे कैकेयी से कहते हैं कि "देवी कौसल्या का यदि मुझसे, राम से तथा शेष दोनों पुत्रों से वियोग हो जायेगा तो वह इतने बड़े दुःख को सहन न कर सकेंगी; अस्तु मेरे ही पीछे वह भी परलोक सिधार जायेगी ":

"कौसल्या मां च रामं च पुत्रौ च यदि हास्यति ।
दुःखान्यसहती देवी मामेवानु गमिष्यति ।।"[२]

संस्कृत राम-कथाओं विशेषकर वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में कौसल्या में एक महान चारित्रिक दोष दृष्टिगोचर होता है । वह अपने म्रियमाण पति के प्रति अत्यन्त कटु, कठोर एवं अविनीत हो जाती है । वाल्मीकि के शब्दों में वह उलाहना देती हुई स्पष्ट कहती है, "आपने यह बड़ा ही निर्दयतापूर्ण कर्म किया है कि बिना कुछ सोच-विचार किये मेरे बान्धवों को निकाल दिया है, जिसके कारण वे सुख भोगने के योग्य होने पर भी दीन होकर वन में दौड़ रहे हैं ।"[३] अध्यात्म रामायण में तो वह और भी अधिक अविनीत हो गई है । वह कटु शब्दों में कहती है, "अपने-आप ही यह सारी करतूत करके अब आप रोते क्यों हैं ?" कौसल्या की इन बातों से राजा को ऐसी वेदना हुई मानो घाव में अग्नि स्पर्श हो गया हो ":

"कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि ।
कौसल्या वचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ।।"[४]

---

१. "अस कहि मातु भरतु हियँ लाए । थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ।।"
—मानस, २/१६९/३

२. वा० रा०, २/१२/८९ ।

३. "यत् त्वया करुणं कर्म व्ययोह्य मम बान्धवाः ।
निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने ।।
—वा० रा०, २/६१/१०

४. अध्यात्म रामायण, २/७/१७ ।

हिन्दी-राम-कथाकारों ने कौसल्या के चरित्रांकन में संस्कृत-ग्रन्थों से उक्त प्रभाव नहीं ग्रहण किया। रामचरितमानस एवं इसी परम्परा की अन्य हिन्दी राम-कथाओं की कौसल्या पति के प्रति कभी इतनी अधिक क्षुब्ध एवं अविनीत नहीं हुई है।

सुमित्रा

सुमित्रा एक आदर्श भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। उसके पत्नी, माता, सपत्नी आदि सभी रूपों का चित्रांकन उत्कृष्ट एवं आदर्श रूप में हुआ है। उसमें सहनशीलता, निरभिमानिता, धर्मनिष्ठा, क्षमा, संतोष, सरलता, त्याग आदि सभी उच्च गुण एक साथ विद्यमान हैं।

सुमित्रा के चरित्र-चित्रण में यद्यपि संस्कृत-रामकथाकारों ने अधिक रुचि नहीं दिखाई है, फिर भी दो-एक स्थलों पर उसका जो निरूपण हुआ है, वह श्लाघ्य ही नहीं अपितु भारतीय नारी के उज्ज्वलतम पक्ष का प्रतिनिधित्व भी करता है। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी समभाव बनाये रखना एवं सतत् मूक साधनारत रहना सुमित्रा के ही सामर्थ्य की बात थी। वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में वन-गमन के अवसर पर जिस समय राममाता कौसल्या भी असंयमित एवं असंतुलित होकर कैकेयी तथा दशरथ को खरी-खोटी सुनाने लगती है[1] उस विषम परिस्थिति में भी सुमित्रा के धैर्य का बाँध नहीं टूटता।

सुमित्रा के चरित्रांकन में हिन्दी-रामकाव्यकारों के प्रेरक स्रोत यद्यपि संस्कृत-ग्रन्थों में निर्दिष्ट कुछ इने-गिने स्थल ही रहे हैं, किन्तु उन्होंने परम्परा-निर्वाह के साथ ही कुछ विशदता एवं मौलिकता का भी परिचय दिया है। तुलसी तथा मैथिलीशरण गुप्त इस दिशा में अग्रगण्य हैं।

लक्ष्मण के अप्रतिम शौर्य-पराक्रम, रामानुरागी एवं अनन्य रामभक्त होने का प्रमुख श्रेय उनकी माता सुमित्रा को ही है। वनगमन के समय उन्होंने अपने पुत्र को भ्रातृभक्ति एवं रामभक्ति की जो शिक्षा दी है उसका भारतीय संस्कृति में पोषित किसी भी माता का अपने पुत्र के प्रति किये गये नीत्युपदेश में एक विशिष्ट स्थान है।

---

१. (अ) वा० रा०, २/६१/१०।

(ब) अध्यात्म०, २/७/१७।

अग्रज राम के साथ जाने को उद्यत अपने वत्स लक्ष्मण को बिना किसी नन-नचु के सहर्ष अनुमति देती हुई कहती है, "वत्स ! तुम अपने सुहृद राम के परम अनुरागी हो, इसलिए मैं तुम्हें वनबास के लिए विदा करती हूँ। अपने अग्रज के वन में इधर-उधर जाते समय तुम उनकी सेवा में कभी प्रमाद न करना। संकट में हों या समृद्धि में, ये ही तुम्हारा परम गति है। निष्पाप लक्ष्मण ! संसार में सत्पुरुषों का यही धर्म है कि सर्वदा अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करें" :

"सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वरनुवतः सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति॥
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानव।
एव लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत्॥"[१]

और अन्त में वह अपना निर्णय सुनाती हुई कहती हैं, "पुत्र ! तुम राम को ही अपने पिता दशरथ समझो, जनकतनया सीता को ही अपनी माता सुमित्रा मानो और वन ही तुम्हारे लिए अयोध्या है। अब सुखपूर्वक यहाँ से प्रस्थान करो" :

"रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यातटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥"[२]

वाल्मीकि रामायण के उपर्युक्त स्थल से अनुप्रेरित किन्तु अपनी कुछ मौलिक विशेषताओं से युक्त लगभग ये ही भाव गोस्वामी तुलसीदास ने भी सुमित्रा के मुख से व्यंजित कराये हैं। मानस की सुमित्रा अपेक्षाकृत अधिक विचारकुशल है। यह भली-भाँति समझती है कि पुत्र की आसक्ति पिता की अपेक्षा माता के प्रति अधिक हुआ करती है; अतएव लक्ष्मण को सर्वप्रथम अपने ही प्रति निरासक्त होने का उपदेश करती है। कारण यह है कि आसक्ति हटे बिना रामानुराग सम्भव नहीं :

"तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय राम वन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥[३]

---

१. वा० रा०, २/४०/५-६।

२. तदेव, २/४०/६।

३. मानस, २/७४/१-३।

गीतावली में तो वह यहाँ तक कहती हैं, "यदि तुम राम और सीता की सेवा करके पवित्र होंगे तभी मैं तुम्हें अपना सच्चा पुत्र मानूँगी। तुम्हें सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि राम के समीप रहना कम पुण्य की बात नहीं है" :

"सिय-रघुवर-सेवा सुचि ह्वैहौं तो जानिहौं सहीं सुत मोरे।
कीजहु इहै विचार निरन्तर, राम समीप सुकृत नहिं थोरे ॥[1]"

उसकी तो धारणा है कि यह राम-वनगमन लक्ष्मण के ही सौभाग्य का प्रतिफल है :

"तुम्हरेहिं भाग राम वन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥"[2]

साकेत की सुमित्रा भी इसी प्रकार राम को सौंपती हुई अपने पुत्र लक्ष्मण से अपने अग्रज का अनुगामी होने को कहती हैं :

"मैं भी कहती हूँ—जाओ, लक्ष्मण को भी अपनाओ।

× × ×

लक्ष्मण ! तू बड़भागी है, जो अग्रज अनुरागी है।
मन ये हों, तन तू वन में, धन ये हों, तन तू वन में ॥"[3]

रामचरित चिंतामणि की सुमित्रा तो पुत्र लक्ष्मण से अपने पास आज्ञार्थ आना ही व्यर्थ बताती है। वह पुत्र से राम का शीघ्र ही उसी प्रकार अनुगमन करने को कहती है जिस प्रकार उसने जनकपुर जाते समय किया था :

"तुम पूछने आये वृथा झटपट चले जाओ वहाँ—
रघुपति जहाँ हों, सर्व सुख बेटे ! सदा पाओ वहाँ ॥
जैसे जनकपुर में गये थे साथ में रघुनाथ के,
वैसे विपिन जाओ चले हे रत्न ! मेरे हाथ के ॥"[4]

वाल्मीकि के ही भावों से भावित गोविन्द रामायणकार की सुमित्रा भी लक्ष्मण को यही उपदेश करती है, "पुत्र ! वन में जाकर सदा दासभाव से रहना। सदैव राम के चरणों में अनुरक्त रहना। सीता को अपनी माता एवं राम को अपना

---

१. गीतावली, २/११।
२. मानस, २/७५/२।
३. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० १०६/११०।
४. रामचरित चिन्तामणि, ७/३७

पिता समझना। वन के दुःखों को सुखरूप में ग्रहण करना। राम से रहित घर वन के समान है और राम के साथ रह कर वन भी घर ही है।"[१]

इस प्रकार एक आदर्श माता के साथ-साथ राम के सन्दर्भ में आदर्श विमाता के भी लक्षण उसमें पूर्णरूपेण विद्यमान हैं।

सुमित्रा का व्यवहार अपनी सौतों के प्रति सदैव निष्कपट एवं ईर्ष्या-द्वेष से परे था। संस्कृत वाङ्मय में जहाँ सभी क्रूरकर्मा कैकेयी को भला-बुरा कहते हैं वहाँ सुमित्रा सर्वथा मौन है। उसमें कोई भी प्रतिक्रिया नहीं होती। यद्यपि तुलसी की सुमित्रा उस आकस्मिक एवं अप्रत्याशित आघात से "पापिनि दीन्ह कुदाउँ"[२] कहकर कुछ विचलित-सी प्रतीत होती है किन्तु दूसरे ही क्षण वह संयमित हो जाती है और कुसमय जानकर धैर्य धारण कर लेती है।[३]

यही नहीं, सुमित्रा अपनी सपत्नी की सेवा-सुश्रूषा भी करती है। वाल्मीकि रामायण में पुत्र के लिए विलाप करती हुई कौसल्या को वह अनेक प्रकार से सान्त्वना[४] देकर कहती है, "देवि ! मैं तुमसे सत्य कहती हूँ कि तुम वनवास की अवधि पूर्ण होने पर यहाँ लौटे हुए राम को फिर देखोगी, इसे तुम शोक और मोह छोड़ दो :"

"निवृत्तवनवासं तं द्रष्टासि पुनरागतम्।
जहि शोकं च मोहं च देवि सत्यं ब्रवीमिते॥"[५]

इसी प्रकार साकेत की सुमित्रा भी अपनी बड़ी जीजी को आश्वस्त करती है—

"कहा सुमित्रा ने तब यों—
जीजी ! विकल न हो अब यों॥
आशा हमें जिलावेगी।
अवधि अवश्य मिलावेगी॥"[६]

---

१. "दास को भाव धरे रहियो सुत, मात सरूप सिया पहचानो।
तात के तुल्य सियापति को, करि के इह बात सही करि मानो॥
जेतक कानन के दुख हैं, सबहीं सुख-केतन में अनुमानो।
राम के पायँ गहे रहियो, वन के घर को घर के बन जानो॥"
—गोविन्द रामायण, पृ० ६५, प्रथम संस्करण

२. मानस, २/७३

३. "धीरज धरेउ कुअवसर जानी।" —मानस, २/७४/१

४. वा० रा०, २/सर्ग ४४

५. तदेव, २/४४/२१

६. साकेत, सर्ग ४, पृ० १०६

सुमित्रा पत्नी रूप में यद्यपि पति द्वारा सदैव उपेक्षित रही है किन्तु उसकी निष्ठा अपने पति के प्रति कभी स्खलित नहीं हुई। कैकेयी ही नहीं, कौसल्या तक ने दशरथ को कटुवचन कहे हैं[१], परन्तु सुमित्रा सम्पूर्ण रामकाव्य-परम्परा अपने पति के प्रति कहीं अविनीत नहीं हुई है।

कैकेयी

कैकेयी कैकय-नरेश अश्वपति की पुत्री[२] तथा दशरथ की तृतीय कनिष्ठ पत्नी रूप एवं यौवन के मद से गर्विता स्वर्णिम गौरवर्ण वाली थी।[३]

रामकाव्य-परम्परा में उसका चरित्र एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि लिये हुए उपस्थित होता है। वह संक्षिप्त होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यही कारण है कि वह अत्यन्त दुरूह एवं जटिल हो गया है। वस्तुतः कैकेयी का स्वभाव-परिवर्तन परिस्थितिजन्य है। प्रारम्भ में वह निश्छल, सरलहृदया रमणी के रूप में हमारे समक्ष आती है, किन्तु बाद में मन्थरा की दुर्नीति और षड्यन्त्र से प्रभावित होकर वह कठोर-हृदया एवं क्रूर बन जाती है। यही कारण है कि सम्पूर्ण रामकाव्य-परम्परा में उसके सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधाराएँ मिलती हैं—एक वर्ग जहाँ उसे क्रूर, निर्मम एवं कठोर-हृदया कहकर घृणा की दृष्टि से देखता है वहीं दूसरा वर्ग उसे स्वभावज दुःशीला एवं संस्कारहीन दुष्टा न मानकर उसके प्रति सहानुभूति रखता है।

कैकेयी के निष्कपट एवं सरल स्वभाव का सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण यही है कि राम के राज्याभिषेक के समाचार सुनाने के उपलक्ष्य में प्रसन्न होकर गह मन्थरा को आभूषण आदि का दान करती है।[४] साथ ही उससे कोई वर माँगने को कहती है।[५]

---

१. (अ) वा० रा०, २/६१/२-१०

(ब) "कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किं नु रोदिषि ॥"

—अध्यात्म०, २/७/१७

२. वा० रा०, २/६/२२

३. (अ) वा० रा०, २/६/५५-५७

(ब) 'कैकेयी'—सर्ग २, छंद ६, १३-१४

४. वा० रा०, २/८/३३-३४

५. तदेव, २/८/३६

वह भरत और राम में कोई भेद नहीं मानती।[१] राम उसे भरत से भी अधिक प्रिय है—

"यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ॥"[२]

उसे राम की सदाशयता पर पूर्ण विश्वास है। यह मन्थरा से कहती है कि यदि राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को मिला हुआ समझ। क्योंकि राम अपने भाइयों को भी अपने ही समान समझते हैं :

"राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं यथा भ्रातृंस्तु राघवः ॥"[३]

आदिकाव्य ही नहीं, अध्यात्म रामायण में भी राम के प्रति वह इसी प्रकार के भाव व्यक्त करती है।[४]

इसी प्रकार हिन्दी-राम-साहित्य में भी प्रारम्भ में वह एक निश्छल, सरलहृदया रमणी के रूप में चित्रित हुई है। उसे राम के प्रति स्नेह है। तुलसी के मानस में वह राम-राज्याभिषेक के समाचार से पुलकित हो मन्थरा से कहती है :

"सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥"[५]

वह यहाँ भी इस प्रिय संवाद के उपलक्ष्य में मन्थरा को मनोभिलषित वर देने को कहती है, क्योंकि राम तो उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।[६] चाँदमल अग्रवालकृत 'कैकेयी' में भी वह राम और भरत में कोई भेद नहीं मानती :

"राम-भरत में भेद नहीं मुझको तनिक।
जीजी की तो अधिक भरत पर प्रीति नित ॥"[७]

---

१. वा० रा०, २/८/३५
२. तदेव, २/८/१८
३. वा० रा० २/८/१९
४. अध्यात्म०, २/२/५५-५६
५. मानस, २/१५/१
६. "राम तिलकु जों साचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली ॥
× × ×
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें ॥"
—तदेव, २/१५/२-४
७. 'कैकेयी', ७/२६ (चाँदमल अग्रवाल, संस्क० १९६९, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)

वह राम के राज्याभिषेक के समाचार से हर्ष-विह्वल हो स्वयं को मन्थरा की ऋणी बताती है तथा उसे मुँह माँगा उपहार देने को प्रस्तुत है।[१]

पं० रामचरित उपाध्याय की कैकेयी भी राम के राज्यतिलक के समाचार से हर्षित है। उसे भरत और राम में कोई अन्तर नहीं दीखता। वह मन्थरा से कहती है कि तू प्रसन्न हो जा तथा यह माला उपहारस्वरूप ले।[२]

यही नहीं, आगे चलकर भरत द्वारा भर्त्सना किये जाने पर केदारनाथ मिश्र प्रभात की कैकेयी राम के प्रति स्नेहिल एवं ममता की मूर्ति-रूप में प्रतिष्ठित हुई है।[३]

मानस में तो मन्थरा की कपटपूर्ण बातों से वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठती है तथा उसकी भर्त्सना करती और अत्यन्त कठोर होकर कहती है :

"पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।।

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि।।"[४]

साकेत की कैकेयी को भी उस पर इसी कारण आक्रोश है—

---

१. "कर दूँ इस संवाद-हेतु बलिहार क्या?
अरी रही मम ओर, विमूढ़ निहार क्या?
मेरी अच्छी सखी! रहूँ तेरी ऋणी।
कह तू ही दूँ और तुझे उपहार क्या?"
—कैकेयी, ७/१८, संस्करण १९६९

२. "राम-भरत में प्रिये मन्थरे! कुछ भी भेद नहीं है।
हर्ष मना तू, ले इस माला को, कुछ खेद नहीं है।।
राम तिलक यदि कल होगा तो तुझे प्रसन्न करूँगी।
नख से तुझे शिखा तक सजकर अपने अंक भरूँगी।।"
—रामचरित चिन्तामणि, ५/१९, द्वितीय संस्करण
(ग्रंथमाला कार्यालय बाँकीपुर प्रकाशन)

३. "मेरे तन के रक्त मांस से सृष्टि हुई है तेरी।
किन्तु पुत्र कह रामचंद्र की बोली ममता मेरी।।"
—कैकेयी, द्वादश सर्ग, पृ० १८४

४. मानस, २/१४

"वचन क्यों कहती है तू वाम !
नहीं क्या मेरा बेटा राम ?"[१]

तथा उसे फटकारती हुई कहती है :

"सामने से हट अधिक न बोल,
द्विजिह्वे, रस में विष मत घोल।
उड़ाती है तू घर में कीच,
नीच ही होते हैं बस नीच।"[२]

चाँदमलकृत 'कैकेयी' में भी वह मन्थरा को अपशब्द कहने लगती है।[३]

यही नहीं, दशरथ भी कैकेयी की उदारता एवं सरलता से पूर्ण परिचित हैं और इसी कारण जब वह उनसे दो वरदान माँगती है तब उन्हें उसकी बातों पर विश्वास नहीं होता। वाल्मीकि रामायण में वे उससे कहते हैं :

"विशाल लोचने ! आज से पहले तूने कभी कोई ऐसा आचरण नहीं किया है जो अनुचित अथवा मेरे लिए अप्रिय हो। इसी कारण तेरी आज की बात पर मुझे विश्वास नहीं होता है।"[४]

इसी कारण अध्यात्म रामायण में भी निर्णय नहीं कर पाते कि "मैंने यह कोई दुःस्वप्न देखा है या मेरे चित्त को भ्रम हो गया है :

"दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्त विभ्रमः ॥"[५]

इसी प्रकार मानस के दशरथ को भी प्रारम्भ में उसकी बातों पर विश्वास नहीं हो पाता। उसका क्रोध सच्चा है या परिहासजन्य है—इसका निर्णय वे नहीं

---

१. साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ४५, संस्क० संवत् २०१४ (प्रकाशन—साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी)

२. तदेव, द्वितीय सर्ग, पृ० ४७

३. "अरुण हुए दृग, बंक दृगों के बीच भ्रू।
आखिर ठहरी चेरि, कूबरी, नीच तू ॥
फिर जो ऐसे कुटिल वचन तूने कहे।
घरफोड़ी ! कलमुँही !! जीभ ही खींच लूँ ॥" —कैकेयी, ७/२५

४. "नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम।
अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्धामि ॥ —वा० रा०, २/१२/२०

५. अध्यात्म०, २/३/२४

कर पाते ।[1] साकेत के दशरथ को भी इसी कारण भ्रम है, वे स्वप्न अथवा सत्य का निर्णय करने में अक्षम हैं—

"देव, यह सपना है कि प्रतीति ।"[2]

मंथरा की कूटनीति तथा कपटपूर्ण मंत्रणा से उसका हृदय क्रूर एवं अत्यन्त कठोर हो जाता है। अध्यात्म रामायण में मंथरा 'सौतियाडाह' की स्त्रीसुलभ दुर्बलता का लाभ उठाती हुई कैकेयी को उत्तेजित करती है—"तुम्हें दासी के समान सदैव कौसल्या की सेवा करनी पड़ेगी। इस प्रकार सौत से अपमानित होकर रहने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है।"[3] वाल्मीकि की कैकेयी भी सपत्नी कौसल्या के प्रति ईर्ष्यालु है। वह ईर्ष्याग्नि से दग्ध हो दशरथ से कहती है कि आप धर्म का परित्याग करके एवं राम को राज्याभिषिक्त करके कौसल्या के साथ सदैव भ्रमण करना चाहते हैं।[4] साथ ही वह उन्हें धमकाती है कि यदि एक दिन भी राममाता कौशल्या को राजमाता के रूप में अन्य लोगों से हाथ जोड़वाती देख लूंगी तो उस समय मैं अपना मरण ही श्रेयस्कर समझूंगी।[5]

अध्यात्म रामायण की भाँति मानस की मन्थरा भी उसी प्रकार कूटनीति का आश्रय लेकर कहती है कि—

"जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।।"[6]

यही नहीं, वह मर्म की बात बताती है:---

"सासु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई।।"[7]

---

१. "अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साचेहुँ साँचा।"
—मानस, २/३२/३

२. साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ६६

३. त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचारिष्यसि।
ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्या पराभवः।।" —अध्यात्म०, २/२/६३

४. "स त्वं धर्मं परित्यज्य रामं राज्येऽभिषिच्य च।
सह कौसल्यया नित्यं रन्तुमिच्छसि दुर्मते।।"—वा० रा०, २/१२/४५

५. तदेव, २/१२/४८

६. मानस, २/१७/४

७. तदेव, २/१८/२

साथ ही वह यह भी कहती है कि तुम अपने पुत्र सहित कौसल्या की सेविका बनकर ही घर में रह पाओगी, अन्य उपाय नहीं है।[१] इसी प्रकार सपत्नी द्वेष एवं विरोध बढ़ाने वाली उनसे सैकड़ों कथाएँ बना-बना कर कहीं।[२] इसका कैकेयी के ऊपर उपयुक्त प्रभाव भी पड़ा। उसने दृढ़ निश्चय भी कर लिया कि भले ही मैं नैहर जाकर वहीं पूरा जीवन व्यतीत कर दूँ किन्तु जीते जी सौत की चाकरी नहीं करूँगी।[३] रामचरित चिन्तामणि की मंथरा भी उसमें सपत्नी-द्वेष के भाव जाग्रत करती है—

"भरत राम के दास बनेंगे, तुम कौशल्या-दासी।
देवि! बनोगी, राम बनेंगे सीता-सहित विलासी॥"[४]

अस्तु, हम देखते हैं कि कैकेयी की उक्त दुर्बलता का लाभ उठाकर मंथरा उसे अपने मनोनुकूल बनाने में सफल होती है। उसका पति-प्रेम तथा राम के प्रति उसका अगाध स्नेह एवं विश्वास इसी सपत्नी-द्वेष के वात्याचक्र में विलीन हो जाता है। उसका सपत्नी-द्वेष वाल्मीकि की कौसल्या के शब्दों से भी प्रकट होता है, जब वह अपने पुत्र राम से कहती है कि "बेटा! इस दुर्गति में पड़कर मैं सदा क्रोधी स्वभाव के कारण कटुवचन बोलने वाली उस कैकेयी के मुख को कैसे देख सकूँगी।"[५]

इस प्रकार मंथरा की कुमन्त्रणा से उसका हृदय इतना क्रूर एवं कठोर बन जाता है कि फिर वह किसी के समझाने पर भी अपना दुराग्रह तथा हठ नहीं छोड़ती। उसे अपने म्रियमाण पति की भी चिन्ता नहीं है। रामवनगमन और भरत-राज्यतिलक का उसका निश्चय दृढ़ है। वह दशरथ से यहाँ तक कहती है कि यदि आप मुझसे की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो आपसे उपेक्षित होकर मैं आपके सामने ही अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी :

"समयं च ममार्येमं यदि त्वं न करिष्यसि।
अग्रतस्ते परित्यक्ता परित्यक्ष्यामि जीवितम्॥"[६]

---

१. "जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।"
तदेव, २/१६/४

२. रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै, जेहि विधि बाढ़ विरोधु॥"
तदेव, २/१८

३. नैहर जनमु मरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥"
मानस, २/२१/१

४. रामचरितचिन्तामणि, ५/२४

५. वा० रा०, २/२०।४४

६. तदेव, २/१४/१०

वाल्मीकि की ही भाँति तुलसी की कठोरहृदया कैकेयी का भी यही दृढ़ निश्चय है कि यदि प्रातः होते ही राम मुनिवेष धारण करके वन को नहीं चले जाते हैं तो उसका मरण ध्रुवसत्य है :

"होत प्रात मुनिवेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस, नृप समुझिअ मन माहिं।।"[१]

वह अपने उक्त संकल्प के प्रति इतनी दृढ़ है कि सुमंत्र, वसिष्ठ एवं अन्य राज्यमहिषियों के द्वारा समझाने एवं उनसे तिरस्कृत होने पर भी उसके विचार में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।[२]

कैकेयी के उभय वरदानों का सम्बन्ध संस्कृत-रामकाव्य-परम्परा दशरथ द्वारा किये गये देवासुर-संग्राम से जोड़ती है।

वाल्मीकि के अनुसार शम्बरासुर से युद्ध करते समय दशरथ के मूर्च्छित हो जाने पर सारथी का काम करके कैकेयी ने रणभूमि से दूर ले जाकर अपने पति की रक्षा की थी। इससे प्रसन्न होकर दशरथ ने उसे दो वर देने का प्रण किया था, परन्तु कैकेयी ने उन्हें उस समय न माँगकर धरोहर रूप में रख दिया था।[३] अध्यात्म रामायण में वाल्मीकि रामायण से किंचित भिन्न कारण का उल्लेख मिलता है। इसमें दशरथ के मूर्च्छित होने एवं कैकेयी द्वारा उन्हें रणभूमि से बाहर ले जाकर रक्षा करने का वर्णन नहीं है। यहाँ राक्षसों से युद्ध करने में निमग्न राजा दशरथ की धुरी की कील के टूट जाने पर कैकेयी अपना हाथ उस कील के छिद्र में लगा देती है तथा दैत्यों के दमन के उपरान्त दशरथ इस तथ्य से अवगत होते एवं प्रसन्न होकर कैकेयी को दो वरदान देते हैं, किन्तु वह उन्हें धरोहर रूप में रख लेती है।[४] अध्यात्म रामायण की भाँति आनन्द रामायण में भी दशरथ के रथ की धुरी टूट जाने पर कैकेयी उसके स्थान पर अपना हाथ लगाकर रक्षा करती एवं दशरथ से दो वरदान प्राप्त करती है।[५]

उपर्युक्त ग्रंथों से अनुप्रेरित होते हुए भी तुलसी के मानस में उभय वरदानों के कारण का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। वहाँ मंथरा केवल एक कथा की ओर कैकेयी का ध्यानाकृष्ट करती है, जिसमें दशरथ से उसे दो वरदान धरोहर रूप में प्राप्त हुए

---

१. मानस, २/३३
२. (अ) वा० रा०, अयो०, सर्ग ३५, ३७
(ब) मानस, २/४६-५१
३. वा० रा०, २/६/१७, २/११/१८-२०
४. अध्यात्म०, २/२/६७-७२, २/३/१७-१८
५. आनन्द रामायण, १/१/८५

थे[१]। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में वाल्मीकि के आधार पर शम्बरासुर से युद्ध के समय आहत दशरथ की रक्षा करने एवं विजय दिलाने के उपलक्ष्य में कैकेयी के दो वरदान प्राप्त करने का स्पष्ट उल्लेख है, परन्तु यहाँ मंथरा के स्थान पर स्वयं दशरथ ही उन वरदानों का स्मरण दिलाते हैं।[२] चांदमल अग्रवाल कृत कैकेयी में वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही शम्बरासुर-युद्ध[३] में कैकेयी अपने पति के रथ का संचालन अत्यन्त कुशलतापूर्वक करके असुर-त्राण से ही नहीं,[४] रथ की धुरी टूट जाने पर उसके स्थान पर बाण लगाकर उनकी रक्षा करती है।[५] इस प्रकार दशरथ के प्राण दो बार बचाने के उपलक्ष्य में उसे दो वर प्राप्त होते हैं।[६] गोविंद रामायण में युद्ध के अवसर पर सारथी के मरने के उपरान्त कैकेयी रथ का संचालन करती है। इससे प्रसन्न होकर दशरथ वर देने की प्रतिज्ञा करते हैं। यही नहीं, गोविन्द रामायण में विवाह के समय ही कैकेयी अवधेश के प्राणलेवा दो वरों की याचना करती है जो कवि की मौलिक उद्भावना है।[७] आगे चलकर देवासुर-संग्राम में सारथी के मरने पर कैकेयी के रथ-संचालन-कौशल से प्रसन्न होकर दशरथ उक्त उभयवरों को देने की दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं,[८] जो वाल्मीकि रामायण के अनुकूल है। वाल्मीकि रामायण से

---

१. "कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ वरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥"
मानस, २/२२/२-३

२. "तुम्हें पहले ही दो वरदान, प्राप्य हैं, फिर भी क्यों यह मान ?
याद है वह संवर-रण-रंग, विजय जब मिली व्रणों के संग।
किया था किसने मेरा त्राण ? विकल क्यों करती हो अब प्राण॥"
—साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ० ६३

३. कैकेयी, ३/६

४. तदेव, ३/३५

५. तदेव, ३/३२

६ "बचा प्राण दो बार तुमने लिये
कहो, दें तुम्हें कौन वरदान द्वय ?" —कैकेयी, ३/३८

७. "तिह ब्याहत माँग लिये दुवरं, जिह तें अवधेशन प्राण हरं।"
—गोविन्द रामायण, रामावतार, पृ० ४, (प्रथम संस्करण)

८. "पुनि देव अदेवन युद्ध भयो, तहँ युद्ध घणं नृप आप कियो।
हत सारथि स्यंदन नारि हंक्यो, यह कौतुक देख नरेश चक्यो।
पुनि रीझ दिये तिय दोउँ वरं, मन मो सुविचार कछू न करं॥"
— तदेव, रामावतार, पृ० ४ (प्रथम संस्करण)

यह भी संकेत मिलता है कि विवाह के समय ही कैकेयी के पिता से दशरथ ने यह प्रतिज्ञा की थी कि कैकेयी से उत्पन्न पुत्र ही राज्याधिकारी होगा। चित्रकूट में स्वयं राम भरत से उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं :—

"पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन ।
मातामहे समाश्रौषीद राज्यशुल्कमनुत्तमम् ।।"[१]

वाल्मीकि के उक्त स्थल से अनुप्रेरित 'कैकेयी' काव्य में भी विवाह के समय ही दशरथ इस प्रकार की शर्त में बँध जाते हैं :—

"पर तुम्हारे तात ने यह शर्त रक्खी—
राज्य पर अधिकार होगा कैकई के पुत्र का ही ।।"[२]

यही नहीं, राम अपनी माता कौसल्या और भाई लक्ष्मण से उक्त बात की ओर संकेत करते हैं।[३]

जैसा कि पूर्ववर्णित है, कुछ विचारक कैकेयी की कुटिलता एवं क्रूरता जन्मजात सिद्ध करते हैं।[४] इसकी पुष्टि वे वाल्मीकि रामायण के उस स्थल से करते हैं जहाँ सुमंत्र कैकेयी की तीव्र भर्त्सना करते हैं तथा उसके दोष मातृपक्ष से आये हुए बताते हैं :—

"अभिजात्यं हि ते मन्ये यथा मातुस्तथैव च ।
नहि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ।।"[५]

इसी प्रकार चम्पू रामायण में भी कैकेयी के दोष मातृपक्ष से आये हुए बताये गये हैं। साथ ही उसकी माता को कुटिलहृदया कहा गया है।[६]

---

१. वा० रा०, २/१०७/३
२. कैकेयी, ७/१६३, पृ० ७०, संस्करण १९६९
३. (अ) "राज्य भरत को, नाना को,
चूंकि पिता ने दिये वचन" —कैकेयी, १२/१७
(ब) "कैकय-कन्या-ब्याह समय,
(तुम-हम जन्मे भी ना जब)
किया गया अधिकार नियत
अवध राज्य पर उसका तब।" —तदेव, १२/५४
४. विस्तार के लिए देखिए—वी० एस० शास्त्री, लेक्चर्स, पृ० ४०९, ४२३
५. वा० रा०, २/३५/१७
६. चम्पूरामायण, २/३४ के बाद

यद्यपि वाल्मीकि ने सुमन्त्र द्वारा कैकेयी की निन्दा के प्रसंग में उसे कुटिल एवं दुष्टा कहा है[१], किन्तु आगे चलकर उन्होंने भरद्वाज[२] और राम[३] द्वारा उसके दोष-परिहार का भी कुछ प्रयत्न किया है। इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में भी उसके दोष-निवारण के प्रयत्न का संकेत मिलता है। वहाँ राम कैकेयी से कहते हैं कि मेरी ही प्रेरणा से वनवास देने की वाणी आपके मुख से प्रस्फुटित हुई थी :—

"ममैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता।"[४]

उपर्युक्त स्थलों से अनुप्रेरित हो तुलसी एवं उनके परवर्ती मैथिलीशरण गुप्त, पं० बलदेव प्रसाद मिश्र प्रभृति हिन्दी-रामकथाकारों ने कैकेयी को दोषमुक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रयत्न में उन्होंने कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं।

तुलसी के मानस में अध्यात्म रामायण के आधार पर[५] दैवप्रेरित सरस्वती द्वारा मंथरा एवं कैकेयी दोनों की बुद्धि पलट दी जाती है। इस प्रकार वहाँ कैकेयी के स्थान पर देवगण तथा सरस्वती ही दोषी ठहराये जाते हैं।[६]

दशरथ की मृत्यु तथा भरत के मनोभाव एवं उनका राम के प्रति अगाध अनुराग देखकर कैकेयी के हृदय में परिवर्तन होता है। कठोर एवं क्रूरहृदया कैकेयी पश्चाताप की अग्नि से अनुतप्त होती है। वह भी अवधवासियों के साथ राम को मनाने

---

१. वा० रा०, २/सर्ग ३५
२. तदेव, २/९२/३१
३. तदेव, २/१०७/३-५
४. अध्यात्म, २/९/६३
५. तदेव, २/२/४४-४६
६. (अ) "सारद बोलि विनय सुर करहीं। बारहिं बार पायँ ले परहीं॥
विपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोई आजु।
रामु जाहिं बन आजु तजि, होइ सकल सुरकाजु॥"
—मानस, २/११

(ब) "नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥"
—तदेव, २/१२

चित्रकूट जाती है।[१] उसकी आत्मग्लानि एवं घुटन वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण मानस में अभिव्यक्ति का अवसर नहीं पाती। मानस में तो वह आत्मग्लानि से भीतर ही भीतर संतप्त है। वहाँ उसकी वेदना सर्वथा मूक है।[२] इसी कारण उसकी ग्लानि के निवारणार्थ राम चित्रकूट में सर्वप्रथम कैकेयी से ही मिलते हैं :—

"प्रथम राम भेंटी कैकेयी। सरल सुभाय भगति गति भेई॥"[३]

इसी प्रकार वन से लौटने पर भी वे उससे मिलते हैं; परन्तु उसका पश्चाताप एवं संकोच दूर नहीं हो पाता—

"भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।
रामहिं मिलत केकई, हृदय बहुत सकुचानि॥"[४]

हाँ, साकेत में उसकी मर्मवेदना अवश्य ही दीन वाणी में प्रस्फुटित हो उठती है।[५] परन्तु यहाँ कवि की मौलिक उद्भावना अधिक है, पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य का अपेक्षाकृत कम।

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र कृत साकेत-सन्त में भी उसका अन्तर पश्चाताप की अग्नि से प्रखर हो उठा है, तभी तो वह राम से कहती है—

"तुमको वन भेजा अहह ! हुई मैं वन्या,
तुम गहो भरत का हाथ बनूँ मैं धन्या।
तुम एक बार 'माँ' कहो लाल ! बलि जाऊँ।
मैं जो कुछ हूँ खो चुकी पुनः वह पाऊँ॥[६]

---

१. (अ) बा० रा०, २/८३/६।
   (ब) मानस, २/१८६।
२. "गरइ गलानि कुटिल कैकेयी। काहि कहै केहि दूषनु देई॥"
   —मानस, २/२७३/१
३. तदेव, २/२४४/४।
४. तदेव, ७/६।
५. "हाँ जानकर भी मैंने न भरत को जाना।
   सब सुन लें तुमने स्वयं अभी यह माना॥
   सच है तो फिर लौट चलो घर भैया।
   अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया॥"
   —साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २४८, संस्करण २०१४
६. साकेत-सन्त, ११/४५, पृ० १३३।

इसी प्रकार अग्रवाल कृत 'कैकेयी' में पति-मरण पर उसे मार्मिक वेदना है[1] और उसे अपने कुकृत्य पर पश्चाताप होता है।[2] साकेत-संत की कैकेयी तो कुलगुरु वसिष्ठ से पति दशरथ के पुनर्जीवित हो जाने की प्रार्थना भी करती है[3] तथा उसमें असफल होने पर सती होने का प्रयत्न करती है।[4]

इसी प्रकार कैकेयी के दोष-परिष्कार की प्रेरणा हिन्दी-रामकथाकारों को यद्यपि वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण से ही मिली है किन्तु जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है उन्हें उसके चरित को अधिक उदात्त बनाने में अनेक अभिनव एव मौलिक उद्भावनाओं का भी आश्रय लेना पड़ा है।

मन्दोदरी

राक्षसराज रावण की भार्या मन्दोदरी हेमा नामक अप्सरा से उत्पन्न मय दानव की पुत्री थी।[5] वाल्मीकि रामायण में अपनी कन्या को समर्पित करते हुए मय स्वयं रावण से कहता है :—

> "इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता।
> कन्या मन्दोदरी नाम पत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥"[6]

---

१. कैकेयी, १४/१५।

२. 'रही अब तक बनी वह मौन पत्थर।
बही अविरल बिमल जल नयन-निर्झर॥
तरल बन बह गया मल सकल धुल गल।
हुआ मानस मुकुर-सा स्वच्छ, उज्ज्वल॥' —तदेव, १४/६२

३. नृपति फिर देह में यदि जाग जावें।
अवध के दु:ख सारे भाग जावें॥

× × ×

मिटा दो ताप इस उर का मिटा दो।
प्रभो क्षण के लिए नृप को जिला दो॥' —साकेत-संत, ६/१६-१७

४. तदेव, ६/४०-४१।

५. वा० रा०, ७/१२/१०।

६. तदेव, ७/१२/१८-१९

वह अत्यन्त रूपवती थी। अध्यात्म रामायण के अनुसार दितिपुत्र मय ने अपनी त्रैलोक्यसुन्दरी कन्या मन्दोदरी रावण को दी।[१] इसी प्रकार मानस की परम सुन्दरी मयतनुजा मन्दोदरी भी रावण को समर्पित की जाती है :

"मय तनुजा मन्दोदरि नामा। परम सुन्दरी नारि ललामा॥
सोइ मयँ दीन्हि रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥"[२]

शयन करती हुई मन्दोदरी के रूप-सौन्दर्य को देखकर एक बार स्वयं हनुमान को इसके सीता होने का भ्रम हो जाता है। आदिकवि इस समय की उसकी रूप-सुषमा का चित्रण करते हुए कहता है—"वह गौरवर्ण की थी। उसकी अंगकान्ति सुवर्ण के समान दमक रही थी। वह रावण की प्रियतमा और उसके अन्तःपुर की स्वामिनी थी। उसका नाम मन्दोदरी था। वह अपने मनोहर रूप से सुशोभित हो रही थी। वही वहाँ सो रही थी। हनुमान ने उसी को देखा। रूप और यौवन की सम्पत्ति से युक्त और वस्त्राभूषणों से विभूषित मन्दोदरी को देखकर महाबाहु पवनकुमार ने अनुमान किया कि ये ही सीता हैं।"[३]

वस्तुतः वह रूपगर्विता है। वह अपने को सीता की अपेक्षा कम रूपवती नहीं मानती। रावण की मृत्यु पर विलाप करते हुए वह कहती भी है—"मैथिली सीता न तो कुल में, न रूप मे और न दाक्षिण्य आदि गुणों में ही मुझसे बढ़ कर है। वे मेरे बराबर भी नहीं है, किन्तु आप मोहवश इस बात की ओर ध्यान न देते थे।"[४]

हनुमन्नाटक में तो वह रावण से पूछती भी है कि "मेरी और सीता की सुन्दरता में क्या भेद है?" तब रावण उसका तिरस्कार करता हुआ कहता है, "तुम्हारे अंग में मछली की सी गंध है और जानकी के शरीर से पद्म की सी सुगन्ध आती है।"[५]

---

१. 'ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसानां दितेः सुतः।
सुतां मन्दोदरी नाम्ना ददौ लोकैकसुन्दरीम्॥ —अध्यात्म०, ७/१२/३६-४०

२. मानस, १/१७८/१-२।

३. "गौरी कनकवर्णाभामिष्टामन्तः पुरेश्वरीम्।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्॥
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा॥"—वा० रा०, ५/१०/५२-५३

४. "न कुलेन न रूपेण न दाक्षि येन मैथिली।
मयाधिका व तुल्या वा तद् तु मोहान्न बुद्धयसे॥" —तदेव, ६/१११/२८

५. हनुमन्नाटक, ६/३६।

मन्दोदरी पतिभक्ता है। वह सदैव अपने पति का हितचिन्तन ही करती है। पति रावण के असन्तुष्ट या रुष्ट होने पर भी वह उसे सत्परामर्श ही देती है। अध्यात्म रामायण में जिस समय अंगद मन्दोदरी की चोटी पकड़कर खींचता एवं उसे वस्त्रहीन कर देता है[1] उस समय वह राम के ब्रह्मत्व का पारज्ञान कराकर अत्यन्त दुखित हो रावण को युद्ध से विरत हो जाने की सम्मति देती है।[2] इसी प्रकार हनुमन्नाटक में राम-सेना द्वारा सेतु बाँधकर लंका पहुँचने पर वह बालि-विजेता एवं अद्वितीय पराक्रमी राम से युद्ध न करने और सीता को वापस देने की सलाह देती है।[3]

उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों से प्रेरणा ग्रहण करके तुलसी ने मन्दोदरी द्वारा रावण को समझाने का विशद एवं व्यापक वर्णन किया है। अकेले मानस में ही प्रमुख चार स्थलों पर उक्त प्रसंग आया है। सर्वप्रथम मानस में रामसेना के समुद्र-तट पर आगमन की सूचना पाकर एकान्त में प्रियतम रावण को वह राम से विरोध त्यागने और सीता को वापस लौटाने की सलाह देती है।[4] दूसरी बार हनुमन्नाटक[5] की भाँति ही समुद्र पर सेतु बाँधकर रामसेना के लका-आगमन तथा साथ ही रामबाण से कर्णफूल गिरने पर आतंकित होकर वह उसका हाथ पकड़कर अपने भवन में ले जाकर समझाती है।[6] तीसरी बार राम-बाण द्वारा उसके कर्णपूर एवं रावण के छत्र, मुकुट और कुंडल गिरने पर वह राम के विराट रूप का वर्णन करती तथा उनसे वैर-परित्याग की सम्मति देती है।[7] चौथे अंगद द्वारा रावण के मानमर्दन के पश्चात् वह व्याकुल पति को भगवान राम के अद्भुत एवं अलौकिक कार्यों का वर्णन करती हुई समझाती है।[8]

हनुमन्नाटक एवं अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित केशवकृत रामचन्द्रिका में भी मन्दोदरी अपने प्रियतम को सावधान करती है कि राम ने तुम्हारे ही वध के लिए अवतार धारण किया है और आज तक तुम उन्हीं के जिलाये जी रहे हो—

"देह धरी तुमही लगि, आजु लौं रामहि के पिय ज्याये जियो है।"[9]

---

१. अध्यात्म०, ६/१०/२४-३२।
२. तदेव, ६/१०/४४-५४।
३. हनुमन्नाटक, ९/५।
४. मानस, ५/३६/३ से दो० ३६ तक।
५. हनुमन्नाटक, ९/५।
६. मानस, ६/६/१ से दो० ६ तक।
७. तदेव, ६/१४/४ से दो० १५ तक।
८. तदेव, ६/दो० ३६ से दो० ३७ तक।
९. रा० चं०, १८/१६।

वह यह भी कहती है कि सीता को लौटा दो, फिर चाहे युद्ध ही करो। क्योंकि सीता-जैसी पतिव्रता स्त्री की देह को सामान्य प्राणियों का शरीर न समझो।[१]

अध्यात्म रामायण[२] की ही भाँति यहाँ भी अंगद मन्दोदरी के केश पकड़ कर खींचता एवं उसे वस्त्रहीन कर देता है। केशव ने मन्दोदरी के कंचुकीरहित कुच के चित्रण में अधिक रुचि दिखाई है।[३] इस अपमान से व्यथित हो वह अपने पति की कटु शब्दों में भर्त्सना करती है।[४]

इसी प्रकार सूर ने मन्दोदरी का अपने पति रावण को समझाने का वर्णन ग्यारह पदों में अति विस्तार से किया है।[५] यहाँ भी वह राम की अप्रतिम शक्ति एवं अमानवीय कार्यों का निरूपण करती हुई उससे अपना दुराग्रह छोड़ने और सीता को वापस लौटा देने की बिनम्र प्रार्थना करती हुई कहती है—

"कहति मन्दोदरि, सुनु पिय रावन ! मेरी बात अगा।
तृन दसननि लै मिलि दसकंधर, कंठनि मेलि पगा।।
सूरदास प्रभु रघुपति आये, दहपट होइ लंका।।[६]

गोविन्द रामायण में समुद्र पर राम सेना के आगमन और राम द्वारा विभीषण को लंका का राजा घोषित करने की सूचना पाकर उद्विग्नमना वह राम के अवतारत्व के साथ उनके अतिमानवीय कार्यों का वर्णन करती हुई सीता को वापस लौटा देने की प्रार्थना करती है।[७] साथ ही वह रावण को सतर्क भी करती है कि योद्धाओं की गर्जना, बाजों का बजना और आपके शरीर का अस्तित्व तभी तक है जब तक यहाँ राम नहीं आ जाते। अतएव समय की गति पहचान और मेरी बात मानकर आप सीता राम के हाथ सौंप दें—

---

१. "संधि करो विग्रह करो, सीता को तो देह।
गनौ न पिय देहीन में, प्रतिब्रता का देह।।' —रा० चं०, १८/१७

२. अध्यात्म०, ६/१०/२४-३२।

३. रा० चं०, १६/३१।

४. तदेव, १६/३४।

५. देखिए, सूर रामचरितावली, गीता प्रेस, पद १२० से १२६ तथा १५६।

६. तदेब, पद १२०।

७. 'सूर वीरा सजे घोर बाजे बजे भाज कंता सुने राम आये।
बालि मार्‌यो बली सिंह पाट्‌यो जिने ताहि सों बैर कैसे रचाये।।

"भीम भेरी बजें जंग जोधा गजै वाण चापै चलै नाहिं जौलौं ।
बात को मानिये घात पहिचानिए रावरी देह की सांति तौलौं ॥"[१]

इसी प्रकार रामचरित चिन्तामणि में सुबेल पर्वत पर राम-सेना के शिविर-स्थापन की सूचना पाकर मन्दोदरी अपने प्रियतम रावण को राम के अलौकिक कार्यों का दिग्दर्शन कराती हुई सती सीता को वापस लौटा देने का आग्रह करती है।[2] साथ ही अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहती है :—

"पर रमा रमणी विषतुल्य है, हठ नहीं करिये प्रिय ! मानिये ।
तनिक ताप उसे लगता नहीं, वृजिन का जिसका शुभ कर्म है ॥"[३]

हठी रावण उसकी बात पर ध्यान नहीं देता और अन्ततः वह वीरगति प्राप्त करता है। उसकी मृत्यु पर वह हनुमन्नाटक में करुण क्रन्दन करती है।[४]

वाल्मीकि रामायण में उसका विलाप अत्यन्त हृदयद्रावक एवं मार्मिक हुआ है। वहाँ वह अपने पति के शौर्य-पराक्रम के साथ-साथ उसके गुण-दोषों का भी वर्णन करती है। रावण की निन्दा एवं राम की प्रशंसा वह निष्पक्ष भाव से करती है, किन्तु रावण के प्रति अविनीत नहीं होती।[५] इस स्थल पर मानस की मन्दोदरी पति रावण के प्रति अधिक कटु एवं दुर्विनीत है। 'जाके प्रिय न राम वैदेही' के समर्थक तुलसी की मन्दोदरी अपने पति की भर्त्सना करने में तनिक भी संकोच नहीं करती। यहाँ उसे अनुसूया के पातिव्रत धर्म का बिल्कुल स्मरण नहीं है[६]—

"अस तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम विमुख अस अनुचित नाहीं ॥"[७]

जैसे वाक्य अपने पति के प्रति कहना एक पतिव्रता के लिए चिन्त्य अवश्य है, परन्तु सूर की मन्दोदरी, हनुमन्नाटक एवं वाल्मीकि रामायण की भाँति ही, रावण

व्याध जीत्यौ जिनै जंभ मार्‍यौ उनै राम औतार सोई सुहाये ।
दै मिलौ जानकी बात है स्यान की चाम के दाम काहे चलाये ॥
—गोविन्द रामायण, पृ० १०९

१. तदेव, पृ० १११
२. रामचरित चिन्तामणि, प्रथम संस्करण, पृ० २१०-२११
३. तदेव, पृ० २१०
४. हनुमन्नाटक, अंक १४, पृ० २३६-३७ (चौखम्भा प्रकाशन)
५. वा० रा०, युद्धकांड, अध्याय १११।
६. मानस, ५/३।
७. तदेव, ६/१०४/६।

के दोषों एवं दुराग्रहों को बता कर केवल पश्चाताप करती है। वह उसके प्रति अविनीत नहीं है।[1]

राम कथाकारों ने मन्दोदरी के पत्नी रूप के अतिरिक्त उसके माता रूप का भी चित्रण किया है। वह एक आदर्श एवं स्नेहमयी माता है। हनुमन्नाटक में अपने सब पुत्रों के वध के उपरान्त जब रावण हतोत्साहित हो उससे युद्ध करने या न करने की सलाह लेता है तब वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उसकी तीव्र भर्त्सना करती है तथा उसे युद्ध के लिए उत्साहित करती है।[2] वह क्रोधावेश में आकर यहाँ तक कहती है कि "लंकापते शोक न कीजिये। अन्तिम बार अपना गाढ़ालिंगन दीजिए और मुझे आदेश दीजिये कि मैं समर में उतरूँ। क्योंकि मैं क्षत्रिया हूँ।[3]" यही नहीं, अध्यात्म रामायण में अंगद द्वारा केश खींचे जाने पर अपने पति रावण की निन्दा और दिवंगत पुत्र मेघनाद का स्मरण करती हुई वह कहती है, "हा मेघनाद! आज तेरी माता वानरों के हाथों में पड़ कर क्लेश पा रही हैं। बेटा, तेरे जीते रहने पर मुझे यह दुःख क्यों देखना पड़ता? मेरे पति ने तो अपना जीवन बचाने के लिए अपनी स्त्री और लज्जा से भी मुँह मोड़ लिया है।"[4] मानस की मन्दोदरी का भी पुत्र मेघनाद के प्रति वात्सल्य-भाव प्रगाढ़ है। उसकी मृत्यु पर वह छाती पीट-पीट कर करुण क्रन्दन करती है।[5]

इस प्रकार मन्दोदरी का एक आदर्श माता के रूप में भी सफल चित्रांकन हुआ है।

---

१. "चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आय तुलानी।
कुम्भकरन समुझाइ रहे पचि, दे सीता मिलि सारङ्गपानी॥
'सूर' सबनि को कह्यो न मान्यो, त्यौं खोई अपनी रजधानी॥"
— सूर रामचरितावली, गीता प्रेस, पद १८४

२. हनुमन्नाटक, १४/५।

३. "शोकं लंकेश मा गाः कुरु चिरमपुनर्मा विगूढ़ोपगूढं।
देवाज्ञां देहि यौद्धुं समरमवतराम्यस्मि सुक्षत्रिया यत्॥"
—हनुमन्नाटक, १४/७

४. "हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते बत वानरैः।
त्वयि जीवति मे दुःखमीदृशं च कथं भवेत्॥
'भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया॥'
—अध्यात्म०, ६/१०/३१-३२

५. "मन्दोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥"
—मानस, ६/७७/४

दशम् अध्याय

उपसंहार

भारतीय परम्परा चाहे राम के मर्यादापुरुषोत्तम और महामानव रूप को आधार बनाकर एक आदर्श जीवन के निर्माण में संलग्न रही हो अथवा उनके परात्पर पूर्णब्रह्म या महाविष्णु रूप की आराधना-उपासना में तन्मय रही हो, यह निर्विवाद सत्य है कि ऐसा उत्प्रेरक एवं लोकपावन चरित भारतीय वाङ्मय में अद्यावधि उपलब्ध नहीं हो सका।

आदिकवि वाल्मीकि से लेकर अत्याधुनिक रामकथाकारों पर्यन्त सभी ने राम के चरित्रांकन द्वारा मानव-जीवन के चरम लक्ष्य, उसकी सर्वोच्च क्षमता एवं महत्तम आकांक्षाओं को प्राप्त करने का प्रयास किया है। राम का व्यक्तित्व प्रभाविष्णुता अथवा व्यापकता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी रामकथाकारों ने उसका अवलोकन जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अत्यन्त निकटता और सूक्ष्मता से किया है। उनके सौन्दर्य, शील और शक्ति का उद्घाटन जीवन की विभिन्न सम-विषम परिस्थितियों एवं घटनाओं के मध्य हुआ।

राम की आकर्षक एवं विमोहक बाह्याकृति के साथ ही कान्ति, ओज, लावण्य, माधुर्य रूप में प्रस्फुटित उनके आन्तरिक सौन्दर्य की सभी रामकथाकारों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उनकी उस अनूप रूपमाधुरी पर मनु-शतरूपा, कौसल्या, मिथिला-वासी या वनपथ की ग्रामवधूटियाँ ही विमुग्ध नहीं हुईं वरन् उस अद्भुत रूप-सौन्दर्य को कोल-भील आदि बनैले प्राणियों, खरदूषणादि क्रूरकर्मा राक्षसों, तामस-तीखे स्वभाव वाले साँप-बिच्छुओं तथा सेतुबन्ध पर जलचरों तक ने चकित होकर देखा।

माता, पिता, गुरु एवं बन्धु-बान्धवों के साहचर्य में अंकुरित राम का शील स्नेही निषाद, वनपथ के नर-नारियों, भरत की भायप-भगति, दण्डकारण्य के सन्तप्त ऋषियों, सखा सुग्रीव तथा वानर-भालुओं के अकृत्रिम प्रेम के मध्य विकसित होता हुआ विभीषण-शरणागति एवं प्रजापालन के अवसर पर संपुष्ट हुआ। वस्तुतः राम का शील भारतीय हिन्दू संस्कृति का मेरुदंड है।

राम का पराक्रम चाहे उसका उद्घाटन ताड़कावध या धनुर्भंग प्रसंग में हुआ हो अथवा खरदूषणादि दुर्द्धर्ष राक्षसों एवं विश्वविजयी रावणादि योद्धाओं के मध्य हुआ हो, निश्चित रूप से अपूर्व और अद्भुत था। भारतीय जनजीवन में राम की इसी अप्रतिम शक्ति-सामर्थ्य की उपासना, आराधना युगों से होती चली आ रही है।

राम के व्यक्तित्व में मानवीय मूल्यों का ह्रास कहीं भी परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि सभी रामकथाकारों ने उनके द्वारा बालि को छिपकर मारना, सीता को दुर्वचन कहना एवं निष्कासित करना औचित्यपूर्ण नहीं समझा तथा उन्होंने उक्त तथ्य को घुमाकर कहने या उस पर भक्ति का झीना आवरण डालने का प्रयास भी किया है। किन्तु ये तथाकथित मानवीय दुर्बलताएँ ही राम के चरित या चरित्र को अधिक स्वाभाविक, अनुकरणीय और उदात्त बनाने में सहायक सिद्ध हुई हैं।

सीता, वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि समस्त हिन्दी-राम-साहित्य में चाहे एक आदर्श नारीरूप में चित्रित की गई हों अथवा उनका निरूपण आद्याशक्ति, मूल प्रकृति तथा योगमायारूप में हुआ हो, सर्वत्र वे अपने सतीत्व एवं पतिव्रतधर्म के कारण स्पृहणीय और अनुकरणीय रही हैं। उनके त्याग, सतीत्व, शील, धैर्य एवं निर्भयता की परीक्षा जीवन की विषम परिस्थितियों के मध्य हुई। चाहे युवराज्ञी पद से च्युत होकर वनगमन का अवसर हो या रावण द्वारा अपहरण का दु:खद प्रसंग हो, चाहे राम के कटु वाक्यों से मर्माहित होकर उनका अग्निप्रवेश हो अथवा लोकापवाद के भय से प्रियतम द्वारा उनका निर्वासित होना हो, कहीं भी उनकी विनयशीलता एवं पति-निष्ठा पर आँच नहीं आयी। उनके अटूट धैर्य और निर्भयता का अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि राक्षसियों के मध्य अकेली घिरी हुई आसन्नमृत्युरूपी रावण से वह निर्भीकता के साथ कहती है कि मेरे गले का संस्पर्श या तो मेरे पतिदेव की भुजाएँ करेंगी अथवा तेरी चन्द्रहास तलवार। इसके अतिरिक्त अन्य द्वारा इसका संस्पर्शित होना सम्भव नहीं।"

वस्तुत: सीता की इन्हीं अन्यतम चारित्रिक विशेषताओं को लेकर एक आदर्श भारतीय नारी का रूप निर्मित हुआ है।

सम्पूर्ण रामकाव्य-परम्परा में भरत का चरित्रांकन सर्वाधिक निष्कलंक एवं उज्ज्वल रूप में हुआ है। माँ की कुटिलता और अपने प्रति लोक की संदिग्ध दृष्टि के कारण भरत की आत्मग्लानि एवं आत्मभर्त्सना ही वस्तुत: उन्हें आदर्श की उच्चतम भूमि पर प्रतिष्ठित कराने में सक्षम हुई है। चाहे वाल्मीकि रामायण का तप-त्याग की मूर्ति एवं ऋषिधर्म-पालन करने वाला भ्रातृप्रेमी भरत हों अथवा अध्यात्म रामायण, मानस, साकेत-सन्त प्रभृति रामकथाओं का 'भायप-भगति' से युक्त रामानुरागी भरत हो, सर्वत्र उसका निश्छल सिद्धान्त शुद्धान्त:करण उभरकर प्रतिविम्बित हुआ है।

व्यक्तित्व की दृष्टि से लक्ष्मण को कठोर एवं उग्र कहा गया है किन्तु वस्तुत: वे संयत और उदार प्रकृति के थे। उन्होंने अपना सर्वस्व राम को ही अर्पित कर दिया

था। राम-कीर्तिपताका के दृढ़ दंड लक्ष्मण ही थे। राम का अपमानित होना या उनकी मान-प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार का व्याघात पहुँचना लक्ष्मण के लिए असह्य था, चाहे वह परशुराम-प्रसंग हो, कैकेयी-मन्थरा की दुरभिसन्धि या पिता दशरथ की वनवास देने की आज्ञा हो अथवा भरत का ससैन्य चित्रकूट आकर राम पर आक्रमण की आशंका हो, चाहे सुग्रीव का राजपद में रामकार्य भूल जाने का वृत्तान्त हो अथवा राम के तीन दिनों के उपवास के उपरान्त भी सागर की हठधार्मिकता हो— जहाँ भी उन्हें राम के अपमान की लेशमात्र भी गन्ध मिली, उनके धैर्य का बाँध टूट गया। राम का विरोधी माता-पिता, बन्धु-बान्धव कोई भी हो, उनकी क्षमा की परिसीमा में नहीं आ सकता। राम की आज्ञा का पालन ही उनके जीवन का चरम उद्देश्य बन गया था। अपनी इच्छा न होते हुए भी अग्रज राम की कठोर आज्ञा का पालन करना लक्ष्मण के ही सामर्थ्य की बात थी। सीता की अग्नि-परीक्षा में चिताग्नि प्रज्ज्वलित करता या सीता-निर्वासन के अवसर पर गर्भवती सीता को घोर वन में छोड़ आना उनके ही जैसे धैर्यवान एवं आज्ञापालक का कार्य था। राम को भी उन पर दृढ़ विश्वास था। वे उनके बाह्य प्राण ही थे।[१] यही कारण है कि सीता के बिना तो राम जीवित भी रह सके परन्तु लक्ष्मण-परित्याग के अनन्तर उनका पृथ्वी पर रहना एक क्षण के लिए भी सम्भव न हुआ। सदैव साथ रहने पर भी सीता के केवल नूपुर ही पहचान पाना[२] उनके दृढ़ संयम, तारा और अंगद की प्रार्थना, सुग्रीव की विलासिता एवं कुटिलता पर ध्यान न देना तथा शुक-सारण को बन्धन-मुक्त करना उनकी क्षमाशीलता और दयालुता का द्योतक है। साथ ही मेघनाद-वध जैसे दुष्कर कार्य करने पर ऋषियों द्वारा सर्वाधिक उन्हीं की प्रशंसा करना उनके अद्भुत शौर्य एवं पराक्रम का परिचायक है।[३]

वाल्मीकीय संस्कृत-परम्परा ही नहीं प्रत्युत समस्त हिन्दी-रामकाव्य में हनुमान अपने अद्भुत पराक्रम समुद्रोल्लंघन, रावण की अशोक वाटिका का विध्वंस, लंकादहन, रावण सदृश बलवान योद्धा को एक मुष्टिकाघात से मूर्च्छित करने, कालिनेमि की कपालक्रिया करने, रावण और मेघनाद के असमर्थ होने पर लक्ष्मण को राम के पास उठा लाने, द्रोणगिरि आनयन एवं युद्ध के अनेक प्रसंगों द्वारा प्रकट होता है। इनकी शक्ति के विषय में जामवन्त को इतना अगाध विश्वास था कि यदि अकेले हनुमान जीवित हैं तो सम्पूर्ण मरी हुई रामसेना जीवित ही समझनी चाहिये और उनके न

---

१. वा० रा०, १/१८/३०

२. (अ) वा० रा०, ४/६/२२-२३
   (ब) हनुमन्नाटक, ५/३६

३. वा० रा०, ७/१/२८-३०

रहने पर सभी जीते हुए भी मृतकतुल्य हैं।[१] उनकी शक्ति एवं गति के विषय में वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि समस्त हिन्दी-रामसाहित्य एकमत हैं। उनका बल-वेग गरुड़, वायु तथा रावण के सदृश तीव्र और अमोघ कहा गया है।[२] उनके बुद्धि-कौशल एवं प्रत्युत्पन्नमति के दर्शन विद्रोही अंगद को भेदनीति द्वारा अपने पक्ष में करने,[३] नागमाता सुरसा के मुख में प्रविष्ट होकर पुनः बाहर निकलने,[४] राहु-जननी सिंहिका के मुख में प्रवेश करके उसके मर्मस्थलों को विदीर्ण करने,[५] अशोक वाटिका में सीता पर विश्वास जमाने के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग न करके अयोध्या की क्षेत्रीय बोली के माध्यम से बातचीत करने,[६] लंकादहन के समय ही रावण की सैन्य-शक्ति का निरीक्षण करने,[७] सुग्रीव के विरोध करने पर भी विभीषण को अपने पक्ष में मिला लेने की सम्मति के समय होते हैं।

रामदत एवं रामसेवक रूप में हनुमान की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। उनका सेवाभाव इतने उच्च कोटि का था कि स्वयं राम को यह कहना पड़ा कि मैं तुम्हारे द्वारा किये गये उपकारों का बदला चुकाने में समर्थ नहीं हूँ। मैं सदैव ऋणी ही

---

१. "अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृतावयम्॥" —तदेव, ६/७४/२२

२. (अ) मारुतस्य समो वेगे गरुडस्य समो जवे। —वा० रा०, ४/६७/२७
(ब) यथा राघव निर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः॥ —तदेव, ५/१/३९
(स) "पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना॥"
—मानस, ४/३०/२
(द) जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥
—तदेव,५/१/४
(य) गरुड़ पंख में जो बल है, वह बल है पुष्ट भुजाओं में।
पवनदेव के सदृश वेग है, कठिन तुम्हारे पाँवों में॥"
—जय हनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० ९

३. वा० रा०, ४/५४/८-२२

४. (अ) अध्यात्म०, ५/१/२३
(ब) मानस, ५/२/२६ से दो० २ तक।

५. (अ) वा० रा०, ५/१/१९९
(ब) जय हनुमान, प्रथम सर्ग, पृ० १८

६. वा० रा०, ५/३६/२, १०

७. तदेव, ५/सर्ग ४१

रहूँगा ।[१] हनुमान का यही सेवकरूप ही आगे चलकर आदर्श भक्तरूप में परिणत हो गया; सम्प्रति राम-साहित्य उन्हें एक आदर्श रामभक्त के रूप में जानता-मानता है ।

रामकाव्य-परम्परा में रावण का चरित्रांकन प्रतिनायक के रूप में हुआ है । एक आदर्श प्रतिनायक की समस्त विशेषताएँ उसमें विद्यमान थीं । पराक्रम, साहस, उत्साह, धैर्य, शौर्य, बौद्धिक प्रतिभा एवं राजनय-निपुणता उसके स्वाभाविक गुण थे । उसके गुणों पर मुग्ध होकर वाल्मीकि का तो यहाँ तक कहना है कि यदि उसमें अधर्म न होता तो वह इन्द्र सहित समस्त देवलोक का संरक्षक होने योग्य था ।[२] उसके रूप, तेज, धैर्य, पराक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं :—

''अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ॥[३]

उसकी शक्ति, पराक्रम एवं साहस का परिज्ञान उसकी प्रारम्भिक दिग्विजय से होने लगता है । वह यक्षों को हराकर और लंकापुरी से कुबेर को निकालकर पुष्पकयान छीन लेता है; तदनन्तर स्वर्ग, पाताल, वरुण आदि लोकों को अधीनस्थ करता है । उसे जहाँ भी कोई बलवान योद्धा मिलता उसी से वह जा भिड़ता है ।[४] उस प्रतापी रावण से चराचर सृष्टि सदैव आतंकित एवं प्रकम्पित रहती है । बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, वायु, सूर्य आदि प्रमुख देवगण भी उसके मुखापेक्षी हैं ।[५] वह इतना अदम्य उत्साही एवं साहसी है कि मन्दोदरी के बार-बार राम-गुणगान करने और उसे हीन बताने पर भी वह कहता है :—

---

१. (अ) वा० रा०, ७/४०/२३ ।
   (ब) अध्यात्म०, ५/५/६० ।
   (स) मानस, ५/३२/३-४ ।

२. वा० रा०, ५/४६/१८ ।

३. तदेव, ५/४६/१७ ।

४. (अ) वा० रा०, ७/सर्ग २३, २६ ।
   (ब) अध्यात्म०, ७/२/४६-५०
   (स) मानस, १/१७६/४, १/१८२/५-६ ।

५. (अ) हनुमन्नाटक, ८/४५ ।
   (ब) रा० चं०, १६/२ ।

"किं ते भीरु भिया निशाचरपतेर्नासौरिपुर्मे महान ।
यस्याग्रे समरोद्यतस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः ।।"[1]

यही नहीं, उसके अनुसार मन्दोदरी को भय करने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि—

"देवर कुम्भकरन सो, हरि-अरि सो सुत पाइ ।
रावण सो प्रभु कौन को, मन्दोदरी डेराइ ।।"[2]

अपनी सम्पूर्ण सेना के नष्ट हो जाने पर भी वह हताश नहीं होता। उसे अपने पुरुषार्थ पर दृढ़ विश्वास है। वह आत्मविश्वास के साथ कहता है :—

"निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा । देहउँ उतर जो रिपु चढ़ि आवा ।।"[3]

यही नहीं, वह एक राजनयनिपुण प्रजापालक चक्रवर्ती सम्राट है।[4] एक व्यवहारकुशल एवं वाक्पटु राजनीतिज्ञ की भाँति समय-समय पर अपने मन्त्रिमण्डल से परामर्श लेता तदनुसार कार्य करता है।[5]

उसमें एक सहृदय पिता के दर्शन मेघनाद-वध पर होते हैं। वह पुत्रशोक से विह्वल हो करुण-क्रन्दन करता और सीता का वध तक करने को प्रस्तुत हो जाता है।[6]

ये सब मानवीय गुण होते हुए भी अहंकार और कामुकता रावण के ऐसे दुर्गुण थे जिनके कारण वह सम्पूर्ण राम-साहित्य में घृणा एवं निन्दा का पात्र बना। उसकी अहंवृत्ति इतनी प्रबल थी कि मारीच, विभीषण, कुम्भकर्ण, मन्दोदरी तथा अन्य मन्त्रियों के बार-बार समझाने पर भी वह अपना दुराग्रह नहीं छोड़ता। साथ ही यह कहना भी अनुचित न होगा कि उसकी ओर कामुकता ही उसके विनाश का कारण बनी। यदि उसका व्यक्तित्व उक्त दुर्गुणों से असंपृक्त रहता तो उसकी गणना निश्चित रूप से आज देववर्ग के श्रेष्ठ पुरुषों में होती।

---

१. हनुमन्नाटक, ९/६।
२. रा० चं०, १८/१९।
३. मानस, ६/७८/३।
४. वा० रा० ७/सर्ग १३-१५, सर्ग २१-३०।
५. तदेव, ६/३५/१।
६. तदेव, ६/९२/४-६, ४४।

दशरथ का व्यक्तित्व मानवीय गुण-दोषों से उलझा हुआ मिलता है। एक ओर रामकाव्य-परम्परा जहाँ उन्हें धर्मनिष्ठ, सत्यसंध, जितेन्द्रिय, प्रजापालक एवं दिव्यगुणसम्पन्न राजर्षि कहती है[1] दूसरी ओर सवृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योपि गरीयसीम'[2] कहकर वही उनकी कामुकता, बहुपत्नीत्व और स्त्रैणता की निन्दा करती है। यद्यपि वृद्धावस्था में तरुणी भार्या से विवाह करना उनका चारित्रिक दोष कहा जा सकता है, साथ ही कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए उनके पैरों तक पड़ने को प्रस्तुत होना[3] और राममाता कौसल्या की उपेक्षा करना[4] उनकी स्त्रैण एवं कामुक प्रवृत्ति का द्योतक है, किन्तु उनका रामप्रेम और सत्यपालन सर्वोपरि था। यही कारण है कि कैकर्या मे रममाण नृपति ने राम को ही राज्याधिकारी बनाना चाहा, किन्तु राम-प्रेम से भी अधिक उन्हें सत्य प्रिय था। अस्तु सत्यपालन के लिए उन्होंने राम का भी परित्याग कर दिया। परन्तु पुत्र राम के बिना उनका शरीर धारण करना सम्भव न हुआ।[5] इस प्रकार रामकथा मे दशरथ का चरित्रांकन अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक यथार्थ एवं मानवीय कहा जा सकता है।

संस्कृत एवं हिन्दी के सभी रामपरक ग्रन्थों में परशुराम का प्रवेश उस झंझावात सदृश कराया गया है जो एक साथ आन्दालित और प्रकम्पित करता हुआ शीघ्र ही विलीन हो जाता है। आकृति एवं प्रकृति की दृष्टि से उनमें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों के ही लक्षण विद्यमान हैं, किन्तु उनका दुर्द्धर्ष क्षत्रिय रूप ही अधिक प्रखर है।

---

१. (अ) वा० रा, १/६/१-५
(ब) मानस, १/१८८/४, २/१७२/३-४, २/२०६/४
(स) रा० चं०, २/१०
(द) साकेत, सर्ग १, पृ० २४

२. वा० रा०, २/१०/२३

३. तदेव, २/१२/३६

४. अध्यात्म०, २/२/४२-४३

५. "राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेमपन लागी॥"
—मानस, २/२६४/३

वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण तथा उनके अनुवर्ती रामचन्द्रिका और गोविन्द रामायण प्रभृति हिन्दी ग्रंथों में परशुराम विवाहोपरान्त बारात के लौटते समय मार्ग में मिलते हैं। किन्तु हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव की भाँति तुलसी के मानस में शिवधनु टूटने की ध्वनि सुनकर उनका आगमन जनक की रंगशाला में होता है। अतएव यहाँ वाग्विवाद में नाटकीयता के कारण उनका व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक सुस्पष्ट होकर निखार पा सका है।

विभीषण-चरित विवादग्रस्त है। कुछ लोग राष्ट्रद्रोही एवं स्वार्थी कह कर उसकी निन्दा करते हैं, किन्तु दूसरे विचारक नीति, धर्मपालक, रामभक्त कह कर उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। सम्पूर्ण रामकाव्य में बाल्यावस्था से ही वह एक धार्मिक, पवित्रात्मा, भक्त, नीतिज्ञ कहा गया है। अतएव उसका धर्मात्मापन छल-छद्मयुक्त नहीं है; न वह केवल स्वार्थ से ही प्रेरित होकर राम की शरण में जाता है। रावण को बार-बार समझाने, उसके दुराग्रह न त्यागने तथा उसके द्वारा तिरस्कृत होने पर राक्षसकुल को सर्वनाश से बचाने के लिए वह रावण की ही अनुमति से उसका परित्याग करता है। राम के साथ रह कर निश्छलभाव से एक सच्चे मित्र की तरह उसकी सहायता करता है।

यद्यपि कपिराज सुग्रीव रामकथा के घटनाक्रम में नवीन मोड़ लाने में सहायक हुए हैं, किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उनका अधिक महत्व नहीं है। रामकाव्य में वे अनुदार, कठोर, सुरा-सुन्दरी में लिप्त एवं भीरु प्रकृति के चित्रित किये गये हैं। किन्तु राम के मित्र बन जाने के उपरान्त उनके उक्त दोषों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। वे अन्त तक राम के एक आदर्श एवं सच्चे मित्र बने रहे।

रामकाव्य-परम्परा में अंगद अपनी प्रत्युत्पन्नमति, वाक्पटुता एवं शक्ति के कारण प्रसिद्ध रहे हैं। वाल्मीकि रामायण में वे वानर-सेना का संगठन करके सुग्रीव के विरुद्ध विद्रोह करने को उद्यत हो जाते हैं।[१] हनुमन्नाटक और रामचन्द्रिका में उनमें पितृवध के कारण राम के प्रति प्रतिशोध की भावना जागृत होती है।[२] इसके अतिरिक्त अन्य रामकथाओं में उन्हें राम के अनन्य भक्त एवं आज्ञाकारी सेवकरूप में चित्रित किया गया है।

---

१. वा० रा०, ५/५४

२. (अ) हनु०, ८/३, १४/७२-७३

(ब) रा० चं०, २६/३४

कौसल्या के व्यक्तित्व में एक ममतामयी माता और पतिपरायणा पत्नी के दर्शन अधिक स्पष्ट रूप में होते हैं । पुत्र राम के वनगमन पर उन्हें जो मर्मान्तक पीड़ा होती है उससे उनके अगाध वात्सल्यभाव का अनुमान लगाया जा सकता है ।[१] यही उनके वात्सल्यभाव का अतिरेक उनके पतिप्रेम को भी ठुकरा देता है । वाल्मीकि एवं अध्यात्म रामायण में वह म्रियमाण पति के प्रति अत्यन्त कटु और अविनीत हो जाती है ।[२] यही नहीं, उनका एकनिष्ठ पुत्र-प्रेम साधु भरत के प्रति भी शंका उत्पन्न कर देता है ।[३] इस प्रकार कौसल्या का पुत्र-प्रेम ही सर्वोपरि रहा है । अधिकांश हिन्दी-रामकथाकारों ने कौसल्या के चरित्रांकन में उसका उक्त अविनीत एवं असहिष्णु रूप नहीं ग्रहण किया है ।

यद्यपि रामकाव्य-परम्परा में सुमित्रा का व्यक्तित्व अधिक उभर कर सामने नहीं आया है । किन्तु यत्किंचित उनका जो भी रूप उपलब्ध होता है वह एक भारतीय नारी के जीवन का उज्ज्वलतम् पक्ष प्रस्तुत करता है । जीवन की विषम परिस्थितियों में भी संतुलित रह कर मूक साधनारत रहना सुमित्रा की स्वाभाविक विशेषता थी । लक्ष्मण को रामानुरागी एवं अनन्य रामभक्त बनाना उन्हीं का कार्य था ।

कैकेयी का व्यक्तित्व अत्यन्त दुरूह, जटिल एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि लिये हुए मिलता है । इस प्रकार के विचारक निर्मम, कठोर एवं क्रूर कह कर उसकी भर्त्सना करते हैं, किन्तु दूसरे वर्ग के लोग उसका स्वभाव-परिवर्तन परिस्थितिजन्य मानकर उसके प्रति अनुदार नहीं हैं । वस्तुतः कैकेयी प्रारम्भ में एक निश्छल, सरल नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है किन्तु बाद में मंथरा की दुर्नीति एवं कुमंत्रणा उसे सशंकित, कठोर तथा क्रूर बना देती है । यही कारण है कि परवर्ती रामकथाकारों ने उसके दोष-परिहार का प्रयत्न किया है ।

---

१. (अ) वा० रा०, २/२०/३२
   (ब) अध्यात्म०, २/४/७
   (स) मानस, २/५३/१-२
२. (अ) वा० रा०, २/६१/१०
   (ब) अध्यात्म०, २/७/१७

मन्दोदरी एक पतिव्रता एवं पतिभक्ता रूप में चित्रित हुई है। वह रावण के असन्तुष्ट या रुष्ट होने पर भी सदैव सत्परामर्श देकर पति के हितचिन्तन में ही लगी रहती है।

रामकाव्य के उपर्युक्त पात्रों के चरित्र-चित्रण के द्वारा विशिष्ट ही नहीं, सामान्यजन की भी मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण एवं आकलन बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। दैनन्दिन जीवन की विभिन्न मानवीय विशिष्टताएँ एवं दुर्बलताएँ इन्हीं पात्रों के माध्यम से उभरकर प्रतिबिम्बित हो सकी हैं। यही नहीं, व्यक्ति के साथ ही समष्टिगत शील, शिष्टाचार, बाह्य-व्यवहार एवं आन्तरिक मनोविकार अपने पूर्णरूप में रूपायित हुए हैं।

भारतीय जनता शताब्दियों से रामकथा के आदर्श पात्रों से अनुप्रेरित और अनुप्राणित होकर अपने निःश्रेयस की प्राप्ति में सतत् उद्योगरत एवं आशान्वित रही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृत का मूल उत्स इन्हीं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं में अन्तर्निहित है।

———

सन्दर्भ ग्रंथ

(अ) संस्कृत

१. अध्यात्म रामायण—गीता प्रेस, गोरखपुर।

२. अनर्घराघवम्—चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१

३. आनन्द रामायणम् — पंडित पुस्तकालय, काशी (संस्करण, १६६६)

४. उत्तररामचरितम्—प्रकाशक—रामनारायण लाल, बेनी माधव, इलाहाबाद (प्रथम संस्करण)

५. चम्पू रामायणम्—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

६. प्रसन्न राघवम्—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

७. प्रतिमा नाटकम्—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

८. भगवत् गीता—गीता प्रेस, गोरखपुर।

९. भागवत महापुराणम्—गीता प्रेस, गोरखपुर।

१० महाभारतम्-मूल (सम्पूर्ण भाग)—गीता प्रेस, गोरखपुर।

११. महावीर चरितम्—चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणमी-१

१२. रघुवंश महाकाव्यम्—चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी-१

१३. वाल्मीकि रामायण—गीता प्रेस, गोरखपुर।

१४. शुक्र नीति

१५. हनुमन्नाटक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

पुराण ग्रन्थ

१६. कूर्म पुराण

१७. नरसिंह पुराण

१८. नारद पुराण

१९. पद्म पुराण

२०. ब्रह्म पुराण

२१. मत्स्य पुराण

२२. विष्णु पुराण

२३. शिव पुराण

उपनिषद ग्रन्थ

२४. केनोपनिषद्—शांकर भाष्य सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

२५. छान्दोग्योपनिषद्—शांकर भाष्य सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

२६. तैत्तिरीयोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

२७ माण्डूक्योपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

२८ मुण्डकोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

२९. रामतापनीयोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३० बृहदारण्यकोपनिषद्—शांकर भाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३१. श्वेताश्वतरोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३२. सीतोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

भक्ति ग्रन्थ

३३. नारद भक्ति सूत्र—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३४. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

(ब) हिन्दी

१. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय—डॉ० दीन दयालु गुप्त ।

२. कवितावली—तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३. कृतिवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० रामनाथ त्रिपाठी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।

४. कैकेयी—चाँदमल अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (प्रथम संस्करण)

५. गीतावली—तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर ।

६. गोसाईं तुलसीदास—आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी-१ ।

७. गोविन्द रामायण—साहित्य रत्नमाला कार्यालय, २०-धर्मकूप, बनारस (प्रथम संस्करण)

८. चित्रकूट के पथ पर—डॉ० देवकी नन्दन श्रीवास्तव ।

९. तुलसी काव्य मीमांसा—डॉ० उदयभानु सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली (प्रथम संस्करण) ।

१०. तुलसी दर्शन मीमांसा—डॉ० उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन (प्रथम संस्करण) ।

११. तुलसीदास—परिवेश, प्रेरणा, प्रतिफलन—डॉ० हरिकृष्ण अवस्थी (प्रथम संस्करण) काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
१२. तुलसी रसायन—डॉ० भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।
१३. तुलसी दर्शन—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र (छठा संस्करण)।
१४. तुलसी पूर्व राम-साहित्य—डॉ० अमरपाल सिंह (प्रथम संस्करण)।
१५. तुलसी रचित रामचरित का मूलाधार—शार्लोत वोदविल।
१६. बरवै रामायण—तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
१७. भक्ति साहित्य में मधुरोपासना परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, इलाहाबाद।
१८. भागवत—सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
१९. भूमिजा—रघुवीर शरण 'मित्र' (प्रथम संस्करण।
२०. मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव—डॉ० कमला भंडारी (प्रथम संस्करण)
२१. मानस पीयूष (सम्पूर्ण)—गीता प्रेस, गोरखपुर।
२२. मिश्र बन्धु विनोद—मित्रबन्धु, १९९५ वि०
२३. योग वासिष्ठ कथा—रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
२४. रामचरितमानस—तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
२५. राम चन्द्रिका—टीकाकार—लाला भगवानदीन ग्यारहवाँ संस्करण।
२६. रामचरित चिन्तामणि—रामचरित उपाध्याय (द्वितीय संस्करण)।
२७. रामकथा—उत्पत्ति और विकास—डॉ० कामिल बुल्के (द्वितीय संस्करण)।
२८. राम कथा के पात्र—डॉ० म० ह० राजूरकर (प्रथम संस्करण)।
२९. रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० शिवकुमार शुक्ल (प्रथम संस्करण)।
३०. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह (प्रथम संस्करण)
३१. रामकाव्य की भूमिका—डॉ० जगदीश प्रसाद शर्मा (प्रथम संस्करण)
३२. रामचरितमानस और साकेत—डॉ० परमलाल गुप्त (प्रथम संस्करण)
३३. राम भक्ति परम्परा और साहित्य—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह (प्रथम संस्करण)
३४. रामायण के कुछ आदर्श पात्र—गीता प्रेस, गोरखपुर।
३५. राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना—भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' (प्रथम संस्करण)

३६. रामकाव्य-परम्परा में राम चंद्रिका का विशिष्ट अध्ययन—डॉ० गार्गी गुप्त (प्रथम संस्करण)
३७. रामचरितमानस में पुराख्यान तत्व—डॉ० चन्द्रशेषर (प्रथम संस्करण)
३८. रामचन्द्रिका—संपादक—डॉ० श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३९. राम रसायन—रसिक बिहारी लाल, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई।
४०. राम चंद्रोदय काव्य—पं० रामनाथ ज्योतिषी (प्रथम संस्करण)
४१. राम भक्ति शाखा—डॉ० राम निरन्जन पाण्डेय (प्रथम संस्करण)
४२. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ (१९५९ ई०), कलकत्ता
४३. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० विद्या मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन।
४४. वाल्मीकि और तुलसी—साहित्यिक मूल्यांकन—डॉ० राम प्रकाश अग्रवाल
४५. विनय पत्रिका—तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
४६. वेदान्त दर्शन—गीता प्रेस, गोरखपुर
४७. वैदेही वनवास—अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (पंचम संस्करण)
४८. समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र-सृष्टि—जयदेव तनेजा (प्रथम संस्करण)
४९. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त (सं० २०१४)
५०. सूरसागर—संपादक—श्री नन्ददुलारे बाजपेयी (द्वितीय संस्करण)
५१. सूररामचरितावली—गीता प्रेस, गोरखपुर (सं० २०१४)
५२. हनुमान बाहुक—गीता प्रेस, गोरखपुर
५३. हिन्दी के आधुनिक राम-काव्य का अनुशीलन—डॉ० परमलाल गुप्त, (प्रथम संस्करण)
५४. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव—डॉ० सरनाम सिंह शर्मा (प्रथम संस्करण)
५५. हिन्दी और तेलगु के मध्यकालीन राम साहित्यों का तुलनात्मक अनुशीलन—डॉ० चावलि सूर्य नारायण मूर्ति (प्रथम संस्करण)
५६. हिन्दी शिव-काव्य का उद्भव और विकास डॉ० राम गोपाल शर्मा 'दिनेश'
५७. हिन्दू धार्मिक कथाओं के भौतिक अर्थ—श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह, पटना-३
५८ हिन्दी काव्य साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल (सं० १९९९)
५९. हिन्दी साहित्य की भूमिका—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, १९४० ई०
६०. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

(स) पत्र-पत्रिकाएँ

१. कल्याण – श्री रामाङ्क, श्री रामवचनामृताङ्क, उपासनाङ्क, धर्माङ्क, श्री हनुमान-अंक, ब्रह्मवैवर्त्त पुराणांक, स्कन्द पुराणांक, उपनिषद अंक, नारी अंक, अग्निपुराणाङ्क, गर्गसंहिता अंक ।

२. नारी प्रचारिणी पत्रिका ।

३. भारतीय साहित्य ।

४. विश्व भारती ।

५. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका ।

६. सरस्वती ।

७. हिन्दी अनुशीलन ।

(द) ENGLISH BOOKS

1. The Age of Ramayan—Keith, A. B.
2. The Ramayana—A Criticism—Majumdar, A. K., Vol. 31
3. Studies in Ramayana—Ramaswami, Sastri, K. S. Baroda 1944
4. The Journal of the Royal Asiatic Society—G. Grierson, July 1907.

———